ब्रज साहित्य-माला सं० ९

भक्त-कवि व्यास जी

मध्य युग के कृष्ण-भक्त कवि महात्मा हरिराम जी व्यास के जीवन-वृत्तांत की आलोचनात्मक शोध, काव्य की समीक्षा और उनकी समस्त रचनाओं का सुसंपादित सकलन.



रचयिता :

वासुदेव गोस्वामी



संपादक :

प्रभुदयाल मीतल

प्रकाशक :

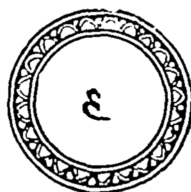
अग्रवाल प्रेस, मथुरा.

मूल्य ६)

प्रथम संस्करण

माघ शु० १२ स० २००६ वि०

ब्रज-साहित्य-माला सं०



मुद्रक, प्रकाशक :

प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, अग्रवाल भवन, मथुरा.

समर्पण

जिनके कोमल कठ के सरस संगीत की

स्मृति से प्रेरणा पाकर

उनके वृंदावन-वास की तिथि

पौष शुक्ला ७ संवत् २००५ वि० गुरुवार को

प्रस्तुत पुस्तक की रचना का संकल्प किया था,

उन्हीं परम पूज्य पिता

पं० श्री मुकुंदलाल गोस्वामी

की तृप्ति हेतु

यह श्रद्धांजलि अर्पित है।

समर्पण कर्ता—

वासुदेव

श्याम पञ्चमी, सं० २००६ वि०

रचयिता के संबंध दो शब्द



गोस्वामी वासुदेव का जन्म वैशाख कृ० ८, स० १९७१ वि० तदनुसार दिनाक १८ अप्रेल, १९१४ शनिवार के दिन विन्ध्य प्रदेश के एक सुसस्कृत ब्राह्मण परिवार में हुआ । आपके पिता श्री मुकुदलाल जी गोस्वामी और माता सुश्री कुजन देवी में परंपरागत धार्मिक एव साम्प्रदायिक सस्कार तथा व्रजभाषा साहित्य एव ललित कलाओ के प्रति अनुराग था । गोस्वामी वासुदेव ने अपने अग्रज प० व्रजभूषण गोस्वामी की भॉति व्रजभाषा साहित्य तथा काव्य, सगीत, चित्रकारी आदि ललित कलाओं के प्रति प्रेम पैतृक उत्तराधिकार में पाया है ।

वासुदेव जी प्रतिभाशाली कवि और काव्य-मर्मज्ञ है । आपका कविता-काल सन् १९३२ से प्रारभ होता है । आपकी कविताओ ने अनेक कवि-समेलनो एव पत्र-पत्रिकाओ मे आदर पाया है, किंतु आपकी कविता पुस्तक 'त्रिवेणी के संगम पर' अभी छप कर प्रकाशित हुई है । सरल, सहृदय और सर्वप्रिय कवि वासुदेव की विनोदप्रियता, गणितवृत्ति और सेवाभिरुचि उनकी कविता में भली प्रकार व्यक्त है । 'म मालकोष पर मुग्ध रहा, पर राग देश का गा न सका' का गायक सच्ची बात युक्ति से कह देता है । कदाचित् उसे, जो वाग्वैदग्ध मे बहुत आगे है, नेता न बन सकने का कुछ क्षोभ हो उठा है ।

किंतु जीवन मे क्रमिक उत्कर्ष पाने वाले गोस्वामी वासुदेव की यह विवशता ही उनकी सराहना का विशिष्ट कारण भी है । एकाउट आफिस के गभीर कार्यक्षेत्र मे व्यस्त रह कर भी उन्होने तीन-चार वर्ष के अपने निरतर अध्यवसाय से इस 'भक्त-कवि व्यास जी' नामक श्रेष्ठ ग्रथ का प्रणयन किया है । मुझे भली प्रकार विदित है, अपने इस खोजपूर्ण अध्ययन मे वे कितने व्यस्त रहे है ।

कृष्ण-काव्य मे लोकसग्रह के भाव को महत्त्व देने वाले एक अकेले भक्त-कवि श्री हरिराम जी व्यास को अपने अध्ययन का विषय बना कर उन्होने व्रजभाषा और हिंदी जगत् की ठोस सेवा की है । मेरा विश्वास है, उनका यह ग्रथ साहित्यिक और सम्प्रदायवादी दोनो को ही व्यास जी के विषय मे विचार की एक नई धारा बतायेगा, और साथ ही वासुदेव जी को भी आलोचना-क्षेत्र मे योग्य स्थान पर आसीन कराने मे समर्थ होगा ।

परिश्रम के पुरस्कृत होने की मगल-कामनाओ के साथ—

दतिया,
नागपंचमी, स० २००६ वि०

—हरिमोहनलाल श्रीवास्तव,
एम०ए०, एल०टी०, साहित्यरत्न

प्राक्कथन



हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में कृष्ण-भक्ति काल की साहित्यिक प्रगति से परिचय कराने में हरिराम व्यास का भी कवि रूप में नामोल्लेख पाया जाता है, किन्तु उनके व्यक्तित्व का यथोचित परिचय देने वाला अभी तक कोई साहित्य हिंदी संसार के सम्मुख नहीं आया। सं० १९८० में प्रकाशित 'व्रज-माधुरी-सार' में श्री वियोगी हरि जी ने हरिराम व्यास के भी कुछ पद संगृहीत किये थे, और उस संकलन की योजना के अनुसार उनके जीवन-वृत्त का भी संक्षिप्त परिचय दिया था। इसके अनंतर संवत् १९९१ में अखिल भारतवर्षीय श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा वृंदावन द्वारा 'व्यास-वाणी' के नाम से व्यास जी की उपलब्ध समस्त रचनाओं का प्रथम बार प्रकाशन हुआ। इस प्रकाशन की प्रस्तावना में व्यास जी का हित-शिष्य होने के संबंध में प्रचलित मत को वाणी के अंतर्साक्ष्य से सिद्ध करने के प्रयत्न में आलोचनात्मक शैली के प्रयोग का भी कुछ आभास मिला। वृंदावन निवासी व्यासवंशीय गोस्वामी श्री राधाकिशोर जी को कदाचित् इस प्रस्तावना ने शीघ्र ही व्यास-वाणी का एक और प्रकाशन रसिकों के सम्मुख रखने की प्रेरणा दी, जो संवत् १९९४ में मुद्रित हुआ और जिसके प्राक्कथन में व्यास जी का हित-शिष्य होने के मत का विरोध किया गया। व्यास-वाणी के यह दोनों संस्करण साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से प्रकाशित हुए थे। इससे इनमें व्यास जी के जीवन-चरित्र संबंधी उल्लेख भी तदनुकूल ही हैं।

हिंदी संसार को उपर्युक्त प्रकाशनों ने व्यास जी की रचनाओं से परिचय कराने में महत्वपूर्ण सुयोग प्रदान किया है। धार्मिक केन्द्रों से प्रकाशित व्यास-वाणी का अध्ययन अभी तक भक्ति की साधना के लिए प्रधान रूप से होता रहा है। लेखक के निजी संग्रहालय में संवत् १८९४ की हस्तलिखित व्यास-वाणी की एक प्रति में दो स्थानों पर की पुष्पिकाओं को पढ़ने से यह सिद्ध हो जाता है कि बड़े-बड़े दिग्विजयी शास्त्रार्थी विद्वान व्यास जी की वाणी के पाठ द्वारा भगवान् के मानसी ध्यान-पूजन की साधना करते रहे हैं। उक्त प्रति में पृष्ठ १९२ पर लिखित रास पंचाध्यायी के पश्चात् की पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति श्री पंचध्यायी कृत रास संपूर्ण ॥शुभभूयात ॥ संवत १८९४ चैत्र शुक्ल ॥१२ ॥सोम॥ लिखदई पं श्री करोरिया भजनदास के मानसी ध्यान पूजा के अर्थ सो जानकी जिनने दिगविजय करी दिसा दस मे ॥ ताको झंडा भारी से रुपेहे । वजाजी के पृष्ठ पे ॥ इति सिद्धि कीर्ति ॥'

'व्यास-वाणी' का ध्यान-पूजन के अर्थ पठन-पाठन करने वाली परपरा के अंतर्गत ही उक्त दोनों प्रकाशन भी आते हैं। व्यास-वाणी से हमें उस समय का जीता-जागता चित्र सुलभ होता है, जो कवि की वास्तविक देन है। बगाल के किसी कवि ने कहा भी है, 'वही लेखक अथवा कलाकार कवि कहला सकता है, जो अपने देश के झरोखे का काम देता है', अर्थात् जिसके विचारों से हमें उस समय के सारे समाज की स्थिति का पता लग जाय। जो लेखक मनुष्य की हृदय-तत्री को बजा सकता है, वह कवि से ऊपर है, उसी को तत्वदर्शी कहा जाता है। उक्त परिभाषा के अनुसार व्यास जी भी तत्वदर्शी थे। उन्होंने न केवल अपने समय को प्रतिबिंबित करने भर में अपना कर्तव्य समझा, वरन् एक भक्त और लोकोपकारी महात्मा के नाते अपने आदर्श आचरण और आदेशों द्वारा उसे कुमार्ग पर जाने से भी रोका।

अपने सप्रदाय के अनन्य प्रेमी होने पर भी वे दूसरे वैष्णव सप्रदायों का आदर करते थे। वास्तव में उन्होंने साप्रदायिक असहिष्णुता की प्रवृत्ति में रोडे अटकाये। सत नाभादास एव गोस्वामी तुलसीदास जी की भाँति उनमें अनन्यता और उदारता के भावों का अपूर्व सामजस्य पाया जाता है। इतने लोकप्रिय और श्रद्धास्पद होने पर भी अपना कोई अलग सप्रदाय न चला कर, जो उस समय की एक साधारण सी प्रवृत्ति भी थी, उन्होंने कृष्ण-पूजा की माधुर्य-भावना को प्रधानता देने वाले सभी सप्रदायों के प्रति अपना अनुराग दिखाया।

परतु जहाँ व्यास जी एक आदर्श भक्त-शिरोमणि हुए हैं, वहाँ वे उच्च कोटि के कवि भी थे। इस कारण साहित्य क्षेत्र के लिए भी व्यास जी से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। फिर विषयों की विभिन्नता और दृष्टिकोण की व्यापकता के कारण व्यास-वाणी में ऐसे तथ्यपूर्ण अनेक कथन भरे हुए हैं, जिनसे तत्कालीन परिस्थिति एव अन्य कवियों के जीवनवृत्त सबधी कई बातों का प्रामाणिक ज्ञान मिल सकता है। परतु स्वय व्यास जी के ही जीवन-चरित्र सबधी वैज्ञानिक खोजपूर्ण विवेचना के अभाव में उस सामग्री का भी समुचित उपयोग नहीं हो सका है।

लेखक को व्यास जी के साहित्य से स्वाभाविक प्रेम होने के कुछ सास्कारिक कारण भी हैं। एक तो लेखक का जन्म व्यास-वशा में हुआ और इसके पूज्य देवालय में परपरा से प्रति वर्ष व्यास जी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। लेखक का सपर्क बाल्यावस्था से ही कृष्ण-कीर्तन की एक सुव्यवस्थित मडली से, जो अब भी चल रही है, रहा है। दतिया में यह कीर्तन-मडली 'समाज' के नाम से प्रसिद्ध है और इसके सदस्य 'समाजी' कहलाते हैं। लेखक के पिता इस समाज के एक प्रमुख आजीवन सदस्य रहे। इस समाज का कीर्तन सुनने तथा कई अवसरों पर इसमें सक्रिय भाग लेने का सौभाग्य लेखक को रहा है। इस वातावरण ने लेखक को ब्रजभाषा काव्य की अनूठी निधि का परिचय दिया, जिसके फलस्वरूप यह ग्रथ इसरूप में प्रस्तुत है।

इस पुस्तक के लिखने का मेरा प्रयोजन हिंदी साहित्य प्रेमियों को श्री हरिराम व्यास का परिचय देना मात्र है। इसमें सांप्रदायिक सिद्धांतों की आलोचना करने का मेरा उद्देश्य नहीं रहा है। प्रत्येक तथ्य को प्रकट करने के साथ-साथ अपनी उस विचारधारा को मैंने प्रकट कर दिया है, जिसके आधार पर वह स्वीकार किया गया है। ऐसा करने में कितनी ही प्रचलित बातों तथा विद्वानों के मतों पर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ देने के लिए मैं विवश था। इस विवेचना के आधार पर उन विद्वानों की निर्धारित मान्यताओं में परिवर्तन भी करना पड़ा है। परंतु यह मैं निस्संकोच रूप से प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मैं बहुत ही अल्पज्ञ हूँ। यह शोध संबंधी पुस्तक लिखने की कुछ धुन ही मुझ पर सवार हो गई। वैज्ञानिक ढंग पर शोधकर्त्ता के कटु कर्तव्य के वशीभूत होकर मुझे यह दुस्साहस करना पड़ा, जिसे मेरे सम्मान्य लेखक और विद्वान उदारता पूर्वक क्षमा करेंगे। मैं अपने निर्णयों में संदिग्ध नहीं हूँ, फिर भी संभव है कि आगे ऐसे तथ्य सामने आवें जो उन्हें बदल सकें, परंतु मुझे किसी निर्णय में कोई आग्रह नहीं। मेरा उद्देश्य सत्य की खोज करना है। व्यास जी के जीवन-चरित्र पर प्रकाश डालने वाली जो सामग्री जिस रूप में मुझे मिली, उसको यथा स्थान प्रकट कर उसकी विवेचना द्वारा यह निर्णय किया गया है कि वह कहाँ तक मान्य है। प्रत्येक विषय पर एक निश्चित मत स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। सभी श्रेणी के पाठकों को विषय की रोचकता प्रकट करने के लिए ऐसी लेखन-शैली प्रयोग में लाई गई है, जो शोधोचित गंभीर विवेचना तथा सरस काव्य के आनंद में साम्य स्थापित कर सके।

एक ही ग्रंथ में हरिराम जी व्यास के चरित्र से संबंधित यथा संभव सभी सामग्री उपलब्ध करने के लिए इस ग्रंथ में, अन्य महात्माओं की भाँति, व्यास जी के संबंध में भी प्रचलित, चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख कर देना भी अनावश्यक नहीं समझा गया है। यद्यपि इन चमत्कारपूर्ण घटनाओं की ऐतिहासिकता की समीक्षा करना लेखक का उद्देश्य नहीं है, तथापि उन घटनाओं को प्रकट करने वाले उन सूत्रों को भी यथा स्थान प्रदर्शित कर दिया है, जिनके द्वारा उल्लिखित चमत्कारों की घटनाएँ लेखक को सूचित हुई हैं। विवेचना के फल स्वरूप व्यास जी के संबंध की अभी तक प्रचलित धारणाओं में जो संशोधन हुए हैं, उनमें व्यास जी की माता का नाम, पत्नी का नाम, भाई का अस्तित्व तथा वृंदावन को दो बार जाना आदि विषय मुख्य हैं। जिन नवीन बातों को प्रकट किया गया है, उनमें सबसे अधिक परिश्रम व्यास जी के देहांत-काल का निर्णय करने में हुआ है। अभी तक व्यास जी का देहांत काल लेखक की जानकारी में कहीं प्रकाशित नहीं हुआ। कहना न होगा कि व्यास-वाणी का अन्य किसी विवेचन में बहिर्साक्ष्य के रूप में प्रयोग तभी प्रामाणिक रूप से हो सकता है, जब कि व्यास जी का देहांत-काल वैज्ञानिक

आलोचना के आधार पर निर्धारित किया गया हो। जितनी भी महत्वपूर्ण घटनाएँ जीवन-चरित्र के प्रसंग में आती हैं, उनका काल भी यथोपलब्ध सामग्री के अनुसार आलोचना देकर निर्धारित करने की चेष्टा की गई है। इसी प्रसंग के लिए ध्रुवदासजी का जन्म और देहांत-काल की भी समीक्षा की गई है। मीराबाई से भेंट, आराध्य देव श्री युगलकिशोर की गति-विधि भी नवीन उल्लेखों में हैं।

आलोच्य चरित्र की वेशभूषा प्रसंग में अंतर्साक्ष्य और चित्र के अनुसार आकृति और वस्त्रालंकार पर प्रकाश डालकर एक नया सुझाव दिया गया है। जीवन चरित्र संबंधी सभी प्रमुख निर्णय जहाँ तक संभव हो सके हैं, अंतर्साक्ष्य के आधार पर ही स्थापित हुए हैं। बहिर्साक्ष्य और आधुनिक सामग्री को स्वीकार करने में बड़ी सतर्कता बरती गई है और वे उसी दशा में ग्रहण की गई हैं, जब कि अंतर्साक्ष्य से उनका विरोध ज्ञात नहीं हुआ। जनश्रुति को सम्यक् परीक्षण के उपरांत ही प्रयोग में लाया गया है। व्यास जी का व्यवहार और संप्रदाय संबंधी चर्चा वाणी की प्रतिध्वनि के अनुसार चलाई गई है। किंतु इन अध्यायों में बहिर्साक्ष्य का भी बहुत आधार लेना पड़ा है।

नृत्य और संगीत के साधारण विवेचन के साथ संगीतशास्त्र पर व्यास जी का एक ग्रंथ लिखने की सूचना प्रकट की गई है। काव्य नामक अध्याय में वाणी का आलोचनात्मक अध्ययन है। रस और अलंकार की दृष्टि से व्यास जी के काव्य का अध्ययन कर उनकी वाणी के व्यापक दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला गया है।

व्यास जी के संबंध में कुछ सांप्रदायिक और साहित्यिक भ्रांतियों के विवेचन एक अलग ही प्रसंग में प्रस्तुत किये हैं। व्यास-वाणी से गोस्वामी तुलसीदास जी का संकेत ग्रहण करना भी लेखक की अपनी एक नई मौलिक सूझ है।

पहिले इस पुस्तक में 'व्यास जी के जीवन-वृत्तांत की समीक्षा ही प्रस्तुत की गई थी और वाणी के कुछ पदों को उदाहरण स्वरूप देकर ही संतोष कर लिया गया था, परंतु प्रेस में पहुँचने पर इस पुस्तक के संपादक श्री प्रभुदयाल जी मीतल के विशेष आग्रह से समस्त व्यास-वाणी इसमें सम्मिलित की गई, जिसके फलस्वरूप मूलरूपेण दिये गये उदाहरणों की संख्या में कमी करनी पड़ी है। फिर भी विषय की उपयोगिता के अनुसार व्यास-वाणी के संलग्न हो जाने पर भी थोड़े-बहुत पदों को उद्धृत करना आवश्यक ही जान पड़ा। विशेष स्थलों पर उद्धृत किये गये पदांशों के नीचे पद संख्या अंकित करके उसे व्यास-वाणी में उपलब्ध पूरे पद से संबधित कर दिया गया, जिससे आवश्यकता होने पर पूरा पद सुगमता से देखा जा सके।

प्रस्तुत व्यास-वाणी का संपादन लिखित एवं मुद्रित विभिन्न सात प्रतियों में दिये गये पाठ के आधार पर किया गया है। जहाँ पाठ की भिन्नता दृष्टि में आई है, वहाँ उस पाठ को मूल रूप में ग्रहण किया है, जो भावार्थ और संगीत के अनुसार

व्यास जी की रचना-शैली के निकटतम प्रतीत हुआ तथा समस्त पाठान्तरों को पाद टिप्पणी में भी प्रकट कर दिया गया है। साथ ही साथ उन प्रतियों के नाम भी संकेत द्वारा स्वीकृत पाठ की निकटता के क्रम से बतलाये गये हैं, जिनमें वे पाठान्तर उपलब्ध हुए हैं। पाठों की साधारण विभिन्नताएँ इतनी अधिक मिलीं कि उन सब का प्रकट करना एक व्यर्थ का काम समझा गया। अतः उनको लिपिकार की उच्चारण शैली का कारण समझ कर उनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा गया।

वाणी भाग के संपादन में जिन विभिन्न प्रतियों का प्रयोग किया गया है, उनके संकेत और परिचय इस प्रकार हैं—

संकेत — प्रति परिचय

(क) 'रस सिद्धान्त के पद' अनन्य व्यास जी कृत। लिपिकाल संवत् १८८३। इस प्रति में शृंगार रस विहार संबंधी व्यास जी के २५५ पद संकलित हैं।

(ख) 'व्यास जू की बानी सिद्धांत की'। लिपिकाल संवत् १८८८। इस प्रति में सिद्धान्त संबंधी १८८ पद, शृंगार रस संबंधी १० पद तथा साखी के ८६ दोहा हैं।

(ग) 'व्यास जू की बानी'। लिपिकाल संवत् १८९४। इसमें सिद्धान्त के २३६ पद, शृंगार के २७६ पद, समय के ६० पद, रास पंचाध्यायी के १२१ त्रिपदी छंद, तथा साखी के ८६ दोहा, जो 'व्यास जू की चौरासी हित उपदेश' के नाम से दिये गये हैं, उपलब्ध होते हैं। ३३२८ श्लोक के कलेवर की इस व्यास-वाणी का विषय वर्गीकरण भी बहुत सुन्दर है।

(घ) 'व्यास जी की चौरासी'। लिपिकाल संवत् १९१४। इस प्रति में व्यास जी की साखी के ८७ दोहा हैं।

(ङ) 'ब्रजमाधुरी-सार'। श्री वियोगी हरि द्वारा संपादित एवं हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित।

(च) 'श्री व्यास-वाणी' अखिल भारतवर्षीय श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा, वृन्दावन द्वारा संवत् १९९१ में प्रथम बार प्रकाशित।

(छ) 'श्री व्यास-वाणी'। आचार्य श्री राधाकिशोर जी गोस्वामी वृन्दावन द्वारा संवत् १९९४ में प्रकाशित प्रथम संस्करण।

इन प्रतियों के अतिरिक्त अन्य हस्तलिखित वर्षोत्सव तथा कीर्तन-संग्रह (लल्लुभाई छगनलाल देसाई, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित) से भी सहायता ली है।

श्री व्यास-वाणी की इन प्रतियों में संकलित कतिपय रचनाएँ, जिनका और पुष्टि समर्थन प्राप्त नहीं हुआ, एक अलग परिशिष्ट में दी गई हैं। जीवन-चरित्र संबंधी एवं अन्य सिद्धान्तों को प्रमाणित करने में इन प्रतियों के अतिरिक्त कतिपय हस्तलिखित प्रतियों का भी सुलभता के अनुसार उपयोग किया गया है—

आलोचना के आधार पर निर्धारित किया गया हो। जितनी भी महत्वपूर्ण घटनाएँ जीवन-चरित्र के प्रसग में आती है, उनका काल भी यथोपलब्ध सामग्री के अनुसार आलोचना देकर निर्धारित करने की चेष्टा की गई है। इसी प्रसग के लिए ध्रुवदासजी का जन्म और देहात-काल की भी समीक्षा की गई है। मीराबाई से भेट, आराध्य देव श्री युगलकिशोर की गति-विधि भी नवीन उल्लेखो मे है।

आलोच्य चरित्र की वेशभूषा प्रसग मे अतर्साक्ष्य और चित्र के अनुसार आकृति और वस्त्रालकार पर प्रकाश डालकर एक नया सुझाव दिया गया है। जीवन चरित्र सबधी सभी प्रमुख निर्णय जहाँ तक सभव हो सके है, अतर्साक्ष्य के आधार पर ही स्थापित हुए हैं। बहिर्साक्ष्य और आधुनिक सामग्री को स्वीकार करने मे बड़ी सतर्कता बरती गई है और वे उसी दशा में ग्रहण की गई है, जब कि अतर्साक्ष्य से उनका विरोध ज्ञात नहीं हुआ। जनश्रुति को सम्यक् परीक्षण के उपरात ही प्रयोग मे लाया गया है। व्यास जी का व्यवहार और सप्रदाय सबधी चर्चा वाणी की प्रतिध्वनि के अनुसार चलाई गई है। किंतु इन अध्यायो में बहिर्साक्ष्य का भी बहुत आधार लेना पड़ा है।

नृत्य और सगीत के साधारण विवेचन के साथ सगीतशास्त्र पर व्यास जी का एक ग्रथ लिखने की सूचना प्रकट की गई है। काव्य नामक अध्याय में वाणी का आलोचनात्मक अध्ययन है। रस और अलकार की दृष्टि से व्यास जी के काव्य का अध्ययन कर उनकी वाणी के व्यापक दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला गया है।

व्यास जी के सबध में कुछ साप्रदायिक और साहित्यिक भ्रातियों के विवेचन एक अलग ही प्रसग में प्रस्तुत किये हैं। व्यास-वाणी से गोस्वामी तुलसीदास जी का सकेत ग्रहण करना भी लेखक की अपनी एक नई मौलिक सूझ है।

पहिले इस पुस्तक में 'व्यास जी के जीवन-वृत्तात की समीक्षा ही प्रस्तुत की गई थी और वाणी के कुछ पदों को उदाहरण स्वरूप देकर ही सतोष कर लिया गया था, परतु प्रेस में पहुँचने पर इस पुस्तक के सपादक श्री प्रभुदयाल जी मीतल के विशेष आग्रह से समस्त व्यास-वाणी इसमें सम्मिलित की गई, जिसके फलस्वरूप मूलरूपेण दिये गये उदाहरणों की सख्या में कमी करनी पड़ी है। फिर भी विषय की उपयोगिता के अनुसार व्यास-वाणी के सलग्न हो जाने पर भी थोड़े-बहुत पदों को उद्धृत करना आवश्यक ही जान पड़ा। विशेष स्थलों पर उद्धृत किये गये पदाशों के नीचे पद सख्या अकित करके उसे व्यास-वाणी में उपलब्ध पूरे पद से सबधित कर दिया गया, जिससे आवश्यकता होने पर पूरा पद सुगमता से देखा जा सके।

प्रस्तुत व्यास-वाणी का सपादन लिखित एव मुद्रित विभिन्न सात प्रतियों में दिये गये पाठ के आधार पर किया गया है। जहाँ पाठ की भिन्नता दृष्टि में आई है, वहाँ उस पाठ को मूल रूप में ग्रहण किया है, जो भावार्थ और सगीत के अनुसार

भूमिका



हिंदी भक्ति साहित्य के विशाल भवन की आधार-शिला तो निर्गुणोपासक संत कवियों की लोकोपकारी रचनाओं के पुष्ट धरातल पर ही स्थापित हुई है, किंतु उसे यह भव्य रूप प्रदान करने का श्रेय सगुणोपासक भक्त कवियों के आनंददायक काव्य को है। इस कमनीय काव्यामृत की कृष्ण-भक्ति धारा ने व्रजभाषा कवियों के भावोद्यानों को ऐसी संजीवनी प्रदान की है, जिससे वे शताब्दियों तक विपरीत वातावरण के प्रतिकूल प्रहारों को सहन करते हुए भी आज तक अपनी अटूट रूप-छटा के साथ लहलहा रहे हैं!

वृंदावन का कृष्ण-भक्ति साहित्य—

व्रजभाषा के कृष्ण-भक्त कवियों के शिरोमणि महात्मा सूरदास हैं, जिनकी सुविख्यात रचनाओं ने गायकों के कला-प्रदर्शन के गीतों, वैष्णव मंदिरों के कीर्तनों और हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों की पाठ्य पुस्तकों को गौरव और प्रतिष्ठा प्रदान की है। सूरदास के अतिरिक्त वल्लभ संप्रदायी अष्टछाप आदि के अन्य कवियों से भी अब हिंदी संसार भली भाँति परिचित हो चुका है, किंतु वृंदावन स्थित जिन अन्य वैष्णव संप्रदायों—निंबार्क, माध्व, चैतन्य, राधावल्लभीय और हरिदासी आदि—द्वारा हिंदी के कृष्ण-भक्ति साहित्य का प्रायः तीन-चौथाई भाग निर्मित हुआ है, उनके भक्त कवियों के जीवन-वृत्तांत और काव्य-महत्व से हिंदी के विद्वान भी अभी पूर्णतया परिचित नहीं हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में भी इसीलिए उनकी गौरव-गरिमा का यथार्थ मूल्यांकन नहीं हो पाया है।

हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि—

वैष्णव धर्म के पुनरुत्थान और पुनर्जागरण का महान् कार्य मध्य युग में जिन वैष्णव आचार्यों द्वारा हुआ, उनमें से प्रायः सभी के प्रधान केन्द्र वृंदावन में थे और उनमें से अधिकांश ने व्रजभाषा-काव्य के माध्यम द्वारा अपनी विमल 'वाणी' से अधिकारी भक्तों को भक्ति रस का वरदान दिया है। इन आचार्यों में रामानुज, विष्णुस्वामी और मध्व के संप्रदायों का अधिकांश साहित्य संस्कृत में है, किंतु उनके अनुयायियों द्वारा व्रजभाषा में रचा हुआ कृष्ण-भक्ति साहित्य भी उपलब्ध है। चैतन्य संप्रदाय का अधिकांश साहित्य संस्कृत और बंगला भाषाओं में है, किंतु उसके कतिपय अनुयायियों ने व्रजभाषा में भी भक्तिपूर्ण रचनाएँ की हैं। वल्लभ संप्रदाय और निंबार्क संप्रदाय के सिद्धांत ग्रंथ संस्कृत में हैं, किंतु उनके अनेक आचार्यों और उनके अगणित अनुयायी भक्तों का विशाल भक्ति-साहित्य व्रजभाषा में रचा गया है। हित हरिवंश और हरिदास स्वामी का स्वयं अपना तथा उनके साम्प्रदायिक आचार्यों

(अ) हिंदी साहित्य समेलन प्रयाग के सग्रहालय मे सुरक्षित—

१. व्यास जी की वाणी, लिपिकाल सवत् १८६६, ग्रथ संख्या २१३३। १३५२ कलेवर३००० श्लोक। इसमें पदों की वर्णानुक्रमणिका भी लगी है।

२. व्यास की वाणी, लिपिकाल सवत् १६६३, खडित प्रति, ग्रथ सख्या २१३६। १३५३

३ व्यास जी के साधारण पद।

(आ) राजकीय पुस्तकालय, दतिया में सुरक्षित—

४. व्यास जू की बानी, पुस्तक सख्या १५६, लिपिकाल सवत् १८८७—

(इ) श्री राधालाल जी गोस्वामी दतिया के घर सुरक्षित—

५ व्यास-वाणी की हस्त लिखित प्रति, लिपिकाल विहीन।

जिन पदों के आधार पर किसी सिद्धात की स्थापना की गई है, उनके पाठ-भेदों पर भी आवश्यक ध्यान रक्खा गया है और वे यथा स्थान प्रकट भी कर दिये गये हैं। प्रस्तुत ग्रथ में 'खोज रिपोर्ट' से तात्पर्य काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा की गई हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की खोज के विवरण से है।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में विविध हस्तलिखित ग्रथों तथा अप्राप्य प्रकाशित पुस्तकों के अनुशीलन करने की सहायता रीवा नरेश के निजी पुस्तकालय सरस्वती भडार, दतिया के राजकीय पुस्तकालय, हिंदी साहित्य समेलन प्रयाग के सग्रहालय, विन्ध्य प्रदेश के हिस्टोरिकल रिकार्डस् कमीशन तथा इलाहाबाद यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी प्रयाग से विशेष रूप से प्राप्त हुई है। लेखक इनके अधिकारियों को हार्दिक धन्यवाद देता है। श्री रामसेवक बिरथरिया ने अनुक्रमणिका निर्माण आदि कार्यों में सहायता देकर मेरा बहुत समय बचाया है। उनके कार्य का उल्लेख करना भी आवश्यक है।

इस पुस्तक के लिखने में जिन विद्वान लेखकों के ग्रथों से प्रधान सहायता ली गई है, उनके नाम सहायक ग्रथों की सूची में तथा प्रसग वश इस पुस्तक मे भी यथा स्थान प्रकट किये गये हैं। लेखक उन सबका आभारी है। दतिया के श्री स्वामी जी महाराज एव अन्य अनेक सत और विद्वानों ने इस पुस्तक के लिखने में वाछित सहायता दी है।। मैं उन सबके प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इस पुस्तक में प्राचीन तिथियों की उल्लिखित 'वार' के साम्य की परीक्षा करने के हेतु ज्योतिष सबधी गणित कर देने की प्रार्थना को स्वीकार कर डा० माताप्रसाद जी गुप्त ने मुझे अनुगृहीत किया है। इसी प्रकार श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने इस पुस्तक का सपादन करने की कृपा की है। मैं इन विद्वानों का अत्यत आभारी हूँ।

रीवा, व्यास पचमी
सवत् २००६ विक्रमी

विनीत :

वासुदेव गोस्वामी

भूमिका



हिंदी भक्ति साहित्य के विशाल भवन की आधार-शिला तो निर्गुणोपासक संत कवियों की लोकोपकारी रचनाओं के पुष्ट धरातल पर ही स्थापित हुई है, किंतु उसे यह भव्य रूप प्रदान करने का श्रेय सगुणोपासक भक्त कवियों के आनंददायक काव्य को है। इस कमनीय काव्यामृत की कृष्ण-भक्ति धारा ने व्रजभाषा कवियों के भावोद्यानों को ऐसी संजीवनी प्रदान की है, जिससे वे शताब्दियों तक विपाक्त वातावरण के प्रतिकूल प्रहारों को सहन करते हुए भी आज तक अपनी अद्भुत रूप-छटा के साथ लहलहा रहे हैं!

वृंदावन का कृष्ण-भक्ति साहित्य—

व्रजभाषा के कृष्ण-भक्त कवियों के शिरोमणि महात्मा सूरदास हैं, जिनकी सुविख्यात रचनाओं ने गायकों के कला-प्रदर्शन के गीतों, वैष्णव मंदिरों के कीर्तनों और हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों की पाठ्य पुस्तकों को गौरव और प्रतिष्ठा प्रदान की है। सूरदास के अतिरिक्त वल्लभ संप्रदायी अष्टछाप आदि के अन्य कवियों से भी अब हिंदी संसार भली भाँति परिचित हो चुका है, किंतु वृंदावन स्थित जिन अन्य वैष्णव संप्रदायों—निंबार्क, माध्व, चैतन्य, राधावल्लभीय और हरिदासी आदि—द्वारा हिंदी के कृष्ण-भक्ति साहित्य का प्रायः तीन-चौथाई भाग निर्मित हुआ है, उनके भक्त कवियों के जीवन-वृत्तांत और काव्य-महत्व से हिंदी के विद्वान भी अभी पूर्णतया परिचित नहीं हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में भी इसीलिए उनकी गौरव-गरिमा का यथार्थ मूल्यांकन नहीं हो पाया है।

हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि—

वैष्णव धर्म के पुनरुत्थान और पुनर्जागरण का महान् कार्य मध्य युग में जिन वैष्णव आचार्यों द्वारा हुआ, उनमें से प्रायः सभी के प्रधान केन्द्र वृंदावन में थे और उनमें से अधिकांश ने व्रजभाषा-काव्य के माध्यम द्वारा अपनी विमल 'वाणी' से अधिकारी भक्तों को भक्ति रस का वरदान दिया है। इन आचार्यों में रामानुज, विष्णुस्वामी और मध्व के संप्रदायों का अधिकांश साहित्य संस्कृत में है, किंतु उनके अनुयायियों द्वारा व्रजभाषा में रचा हुआ कृष्ण-भक्ति साहित्य भी उपलब्ध है। चैतन्य संप्रदाय का अधिकांश साहित्य संस्कृत और बंगला भाषाओं में है, किंतु उसके कतिपय अनुयायियों ने व्रजभाषा में भी भक्तिपूर्ण रचनाएँ की हैं। वल्लभ संप्रदाय और निंबार्क संप्रदाय के सिद्धांत ग्रंथ संस्कृत में हैं, किंतु उनके अनेक आचार्यों और उनके अगणित अनुयायी भक्तों का विशाल भक्ति-साहित्य व्रजभाषा में रचा गया है। हित हरिवंश और हरिदास स्वामी का स्वयं अपना तथा उनके सांप्रदायिक आचार्यों

और अनुयायियों का प्राय. समस्त साहित्य व्रजभाषा में ही है। इस प्रकार वैष्णव धर्म के विभिन्न सप्रदायों की छत्र-छाया में जो महान् भक्ति -साहित्य व्रजभाषा में निर्मित हुआ है, वह हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है।

भक्ति साहित्य का स्वर्ण काल—

उस युग में श्री कृष्ण की लीला स्थली व्रजभूमि में भक्ति भागीरथी की अनुपम पावन धारा प्रवाहित हुई थी, जिसमें अवगाहन करने के लिए देश के कोने-कौने से जन साधारण ही नहीं, वरन् बड़े-बड़े राजा-महाराजा, पडित-विद्वान, कलाकार-साहित्यकार एव सत-महात्मा गण भी आते थे। उनमें से अनेक अपने धन वैभव, मान-सन्मान और ज्ञान-विज्ञान का थोथा अभिमान छोड़ कर गोवर्धन, गोकुल और वृ दावन की पावन रज में लोटने के लिए साधारण भिक्षुक के वेश में व्रजवास कर अपना अहोभाग्य मानते थे। उन महानुभावों में जो काव्य एव सगीत के ज्ञाता थे, उन्होंने भक्ति-भाव में विभोर होकर व्रज-रस और राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं के लोकोत्तर आनददायक गीत गाये है।

यद्यपि व्रजभाषा भक्ति-काल का वह स्वर्णिम प्रभात था, तथापि अपने महत्व के कारण वही उसका गौरवपूर्ण स्वर्ण काल भी कहा जाता है। कारण यह है कि उस युग में जैसे महान् भक्त कवि हुए, वैसे फिर नहीं हो सके। व्रजभाषा साहित्य के इतिहास की यह बड़ी विचित्र घटना है कि उस काल में व्रज-वास करने वाले जिन भक्त कवियों का नामोल्लेख मिलता है, वे ही इस विषय के सर्वश्रेष्ठ कवि है।

उस समय गोवर्धन और गोकुल में सूरदास, कु भनदास, परमानददास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नददास के अतिरिक्त वल्लभ सप्रदाय के अनेक कीर्तनकार अपूर्व भक्ति-साहित्य का निर्माण कर रहे थे। उसी समय वृ दावन में हित हरिवश और हरिदास स्वामी के अतिरिक्त ध्रुवदास, विहारिनदास, विट्ठल विपुल, सूरदास मदनमोहन, गदाधर भट्ट, श्री भट्ट, हरि व्यास आदि अनेक भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं के काव्य और गान द्वारा व्रजभाषा भक्ति-साहित्य का शृ गार किया था। उनमें व्रज के मूल निवासी तो थोड़े ही थे, किंतु अधिकाश महानुभाव रस रूप श्री राधा-कृष्ण के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण करने के सदुद्देश्य से व्रज में आकर बस गये थे। व्रज के अतिरिक्त अन्य स्थानों में भी उसी काल में कुछ ऐसे भक्त कवि हुए, जो काव्य-महत्व के कारण भक्ति-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ रचयिताओं में माने जाते हैं। गो० तुलसीदास, मीराबाई, नाभादास जैसे महान् व्यक्तित्व के भक्त-कवि उसी काल के आस-पास विद्यमान थे। हिंदी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में भी उसी काल में महत्वपूर्ण भक्ति-साहित्य का निर्माण हुआ था। वह युग निःसदेह समस्त देश में भक्ति-साहित्य का स्वर्ण काल था।

व्यास जी का वृंदावन-आगमन—

जिस समय व्रज के भक्त कवियों का अनुपम काव्य-सौरभ वहाँ के सहज मनोरम वातावरण को अभूतपूर्व रूप से सुवासित करते हुए विभिन्न स्थानों के भक्त जनों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था, उसी समय ओरछा के राज्यगुरु विद्वद्वर हरिराम जी व्यास अपनी जन्मभूमि से वृंदावन जाने के लिए अत्यंत लालायित थे।

व्यास जी का जन्म मार्गशीर्ष कृ० ५ मंगलवार सं० १५६७ वि० को ओरछा (बुंदेलखंड) के एक सभ्रांत सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम सुमोखन शुक्ल था। वे माध्व संप्रदाय के अनुयायी, ओरछा के प्रतिष्ठित नागरिक और वहाँ के राजवंश के गुरु थे। व्यास जी अपने समय के प्रकांड पंडित और धुरंधर विद्वान होने के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थी भी थे। उनको विद्वानों से शास्त्रार्थ कर उनको पराजित करने और उन पर अपनी विद्वता की धाक जमाने की धुन सवार थी। न मालूम किस संस्कार से व्यास जी अपने आरंभिक जीवन में शुष्क वेदांती एवं वाचाल तार्किक हो गये थे, किंतु यह उनका ऊपरी आवरण था। उनके अंतस्तल में माधुर्य भक्ति की निर्मल धारा विद्यमान थी, जिसके प्रखर प्रवाह ने शीघ्र ही उनके ऊपरी आवरण को धो दिया। फलतः व्यास जी थोथे शास्त्रार्थ एवं व्यर्थ के वाद-विवाद को छोड़कर भक्ति मार्ग के सच्चे पथिक बन गये। जन्मभूमि, धन-वैभव और घर-बार आदि सर्वस्व का परित्याग कर वे अकिंचन भिक्षुक के रूप में वृंदावन आ बसे और हित हरिवंश और हरिदास प्रभृति सिद्ध महात्माओं के सत्संग में रह कर वृंदावन-रस-माधुरी का आस्वादन करने लगे।

दीक्षा-गुरु संबंधी मतभेद—

व्यास जी के जीवन विषयक इस महान् परिवर्तन और उनके दीक्षा-गुरु के संबंध में प्राचीन समय से ही कई मत चले आ रहे हैं, जिन्होंने आजकल एक विवाद का रूप धारण कर लिया है। एक मत तो यह है कि व्यास जी ने अपने पिता सुमोखन शुक्ल से माध्व संप्रदाय की दीक्षा प्राप्त की थी, किंतु उनके संशयों की निवृत्ति और माधुर्य भक्ति की प्रेरणा उनके पिता के दीक्षा-गुरु माध्व संप्रदायी संन्यासी माधवदास के उपदेश से हुई थी। जब उनकी भक्ति का झुकाव सखी भाव की उपासना की ओर विशेष रूप से हुआ, तब अपनी आंतरिक प्रेरणा से अथवा संत नवलदास द्वारा हित जी का एक पद सुन कर वे माधुर्य भक्ति के केन्द्र वृंदावन में आ गये और हित हरिवंश और हरिदास स्वामी के सत्संग में रहने लगे। दूसरा अधिक प्रचलित मत यह है कि हित हरिवंश जी की ख्याति सुन कर व्यास जी ने वृंदावन आकर उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए कहा, किंतु उनका एक पद सुन कर वे स्वयं उनके उनके शिष्य हो गये†।

---

† यह जु एक मन, बहुत ठौर करि, कहि कौनैं सचु पायौ।

व्यास जी ने अपनी रचनाओ मे संतो और भक्तो का बड़ा गुण-गान किया है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती और समकालीन अनेक संतो और भक्तों का नामोल्लेख करते हुए उनके प्रति अपनी अपार श्रद्धा ही प्रकट नहीं की है, वरन अपने अज्ञान, भ्रम और संदेह को दूर करने वाले गुरु के समान उनका स्मरण भी किया है। उदाहरणार्थ माधवदास और हित हरिवंश के संबध मे व्यास जी के निम्न लिखित उद्गार देखिये—

श्री माधवदास सरन मैं आयौ।
हौं अजान, ज्यों नारद ध्रुव सों कृपा करी, संदेह भगायौ॥×

(व्यास-वाणी, पद १४, पृ० १६४)

उपदेस्यौ रसिकन प्रथम, तव पाये हरिवंस।
जव हरिवंस कृपा करी, मिटे 'व्यास' के संस॥

(व्यास-वाणी, साखी १००, पृ० ४१४)

व्यास जी कृत इसी प्रकार के विनम्र वचनो से उनके गुरु संबंधी विवाद को वल प्राप्त हुआ है। वास्तविक बात यह है कि व्यास जी ने भक्ति की उस चरम अवस्था को प्राप्त किया था, जिसमें चित्त का अहंकार दूर होकर दैन्य की उपलब्धि होती है। इसी भाव से उन्होंने प्रत्येक भक्त और संत को अपना गुरुदेव बतलाया है—

आदि, अंत अरु मध्य में, गहि रसिकन की रीति।
संत सवै गुरुदेव हैं, 'व्यासहिं' यह परनीति॥

(व्यास वाणी, साखी २, पृ० ४०८)

व्यास जी ने अपनी वाणी में अपने समय के प्रायः सभी संतों और भक्तो का नामोल्लेख करते हुए उनके प्रति अत्यंत आदर सूचक शब्दों का प्रयोग किया है, किंतु हित हरिवंश जी के लिए तो अनेक पदों में उन्होंने गुरु के समान श्रद्धा प्रकट की है। इसीलिए प्रस्तुत ग्रंथ में भी हित जी को व्यास जी का 'सद्गुरु'* स्वीकार किया गया है। जहाँ तक व्यास जी के दीक्षा-गुरु का संबध है, प्रस्तुत ग्रंथ में पुष्ट प्रमाणों से यह सिद्ध किया गया है कि व्यास जी के दीक्षा-गुरु उनके पिता सुमोखन शुक्ल थे। इसके लिए ग्रंथ में व्यास-वाणी के मंगलाचरण और अन्य पदों से उद्धरण दिये गये हैं‡। जो लोग हित हरिवंश जी को व्यास जी का दीक्षा-गुरु मानते हैं, वे भी व्यास-वाणी से ही हित जी के साथ 'गुरु' शब्द का प्रयोग हुआ बतलाते हैं, किंतु लेखक ने प्रामाणिक हस्त लिखित प्रतियों से फोटो-चित्र लेकर यह सिद्ध किया है कि उक्त पदों में 'गुरु' शब्द है ही नहीं†। इस मत के लिए

---

* देखिये पृष्ठ ६६

‡ ,, पृष्ठ ६३

† ,, पृष्ठ ५८, २१

लेखक को किसी पक्ष का आग्रही समझना ठीक नहीं है। उन्होंने निष्पक्ष भाव से इस विषय का स्वस्थ विवेचन किया है।

दीक्षा-गुरु का विवाद इसलिए व्यर्थ है कि इससे हित जी और व्यास जी के पारस्परिक संबधो में कोई न्यूनाधिकता नहीं आती है। व्यास जी ने अनेक पदों में हित जी के प्रति गुरु जैसी श्रद्धा प्रकट की है, अतः यदि हित जी व्यास जी के दीक्षा-गुरु सिद्ध नहीं भी होते हैं, तो इससे हित जी के महत्व की न्यूनता और व्यास जी के महत्व की वृद्धि नहीं होती है।

दीक्षा-गुरु संबधी समस्त उपलब्ध सामग्री की आलोचनात्मक विवेचना करने से ज्ञात होता है कि व्यास जी के पिता सुमोखन शुक्ल ने चैतन्य महाप्रभु के गुरु-भाई माधवदास नामक सन्यासी से माध्व सप्रदाय की दीक्षा प्राप्त की थी और व्यास जी ने अपने बाल्य काल में अपने पिता से उसी संप्रदाय की दीक्षा ली थी। इस प्रकार स्वयं व्यास जी माधवदास के शिष्य न होते हुए भी उनकी शिष्य-परंपरा में आते हैं। इस ग्रथ में व्यास जी कृत एक सस्कृत रचना 'नवरत्न' का उल्लेख किया गया है, जिसे इस ग्रथ के लेखक ने इसकी रचना के समय तक स्वयं नहीं देखा था, किंतु मुझे इसे देखने का अब अवसर मिला है। यदि यह ग्रंथ व्यास जी कृत है, तो इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से अपने को माध्व संप्रदाय की गुरु-परपरा के अंतर्गत माना है। बाल्य काल में माध्व सप्रदाय की दीक्षा लेने पर भी बाद में हित हरिवश द्वारा प्रचलित सखी भाव की माधुर्य भक्ति के प्रति व्यास जी का विशेष आकर्षण हो गया और उन्होंने राधावल्लभीय उपासना-पद्धति स्वीकार कर ली। यही कारण है कि व्यास-वाणी में माध्व संप्रदायी द्वैतवादी दार्शनिक तत्त्वों के साथ-साथ राधावल्लभीय उपासना के तत्त्व विशेष रूप से उपलब्ध होते हैं।

आजकल इस विषय पर कुछ सकीर्ण सांप्रदायिक दृष्टिकोण से विचार किया जाता है, किंतु व्यास जी के समय में भक्ति मार्ग का अनुसरण करने वाले भक्तों की मनोवृत्ति अत्यत उदार थी। वे सांप्रदायिक भेद-भाव से रहित होकर समस्त वैष्णव भक्तों में समान रूप से श्रद्धा रखते थे।

व्यास जी चाहें स्वयं हित हरिवश जी के शिष्य न हुए हों, किंतु ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने अपने एक पुत्र को हित जी के पुत्र वनचद्र जी से दीक्षा दिलाई थी। उनके दूसरे पुत्र किशोरदास का हरिदास स्वामी से दीक्षित होना प्रसिद्ध ही है। इससे ज्ञात होता है कि व्यास जी को सखी भाव के सभी सप्रदायों के प्रति समान रूप से श्रद्धा थी। व्यास जी के वंशजों में आज तक माध्व, राधावल्लभीय और हरिदासी तीनों संप्रदायों की दीक्षा प्रचलित है। ऐसी दशा में व्यास जी के दीक्षा-गुरु संबंधी विवाद का अब अंत हो जाना आवश्यक है।

हरित्रयी—

वृंदावन में स्थायी रूप मे रहने पर व्यास जी की दिनचर्या के मुख्य कार्य अपने आराध्य युगल किशोर जी की सखी भाव से अर्चना करना, भक्तों की सेवा करना और ब्रज-रस का वर्णन करना था। इस कार्यक्रम की पूर्ति के लिए उनके सहयोगी और सहायकों में हित हरिवंश और हरिदास स्वामी मुख्य थे। वृंदावन के इन तीनों भक्त कवियों के पारस्परिक सौहार्द और समान विश्वास के कारण अनेक कवियों और लेखकों ने उनका साथ-साथ नामोल्लेख किया है। हरिवंश, हरिदास और हरिराम व्यास के नामों के आरंभिक शब्द 'हरि' को लेकर इस ग्रंथ के लेखक ने 'हरित्रयी' की एक मौलिक कल्पना की है। सूरदासादि वल्लभ संप्रदायी आठ सुप्रसिद्ध कीर्तनकारों की मंडली 'अष्टछाप' के नाम से प्रसिद्ध है। वृंदावन के अनन्य रसिकों की यह दूसरी मंडली चाहे अष्टछाप के समान सुव्यवस्थित न रही हो, किंतु अपनी धार्मिक मान्यता, उपासना-पद्धति और रहन-सहन की समानता के कारण उसे भी एक मंडली के रूप में समझना सर्वथा उचित ही है। रसोपासक अनन्य रसिकों की इस मंडली को 'रसिकत्रयी' भी कहा जा सकता है।

व्यास जी का महत्व—

व्यास जी अपने समय के परम भक्त, सिद्ध महात्मा और सर्वस्व त्यागी महानुभाव थे। 'मूई नारि, घर संपति नासी। मूँड़ मुड़ाइ भये सन्यासी'—की लोकोक्ति के विरुद्ध वे अपने कुटुंब-परिवार, पुत्र-कलत्र, राजकीय प्रतिष्ठा और विपुल धन-वैभव का परित्याग कर एक निर्धन भिक्षुक की तरह वृंदावन में आकर रहने लगे थे। फिर ओरछा-नरेश महाराज मधुकर शाह के स्वयं आग्रह करने पर भी ओरछा वापिस नहीं गये। सांसारिक प्रलोभनों से सर्वथा मुक्त होकर विरक्त भाव से जीवन व्यतीत करना कोई साधारण बात नहीं है। इस प्रकार का आचरण व्यास जी जैसे विरले ही संत-महात्माओं से संभव है। इससे व्यास जी का महत्व स्वयसिद्ध है, किंतु त्यागपूर्ण जीवन और भक्ति-भावना से भी अधिक उनके महत्व का कारण उनकी अमर 'वाणी' है। भक्त-कवि 'नीलसखी' ने व्यास-वाणी की वंदना करते हुए इसके यथार्थ स्वरूप का कथन किया है। उन्होंने इसे लोक-वेद के भेदों से पृथक् और विधि-निषेध का नाश करने वाली बतलाया है। उन्होंने इस 'वाणी' को विमुख-भंजन के लिए अमोघ शक्ति कहा है, और अनन्य रसिकों के लिए सुख-संतोषप्रद बतलाया है†।

'व्यास-वाणी' में जहाँ ब्रज के भक्त कवियों की भाँति राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ाओं का रसपूर्ण वर्णन हुआ है, वहाँ संत कवियों की तरह अनुभव जन्य लोकोपदेश भी दिया गया है। भक्तों की साधना प्रायः अंतर्मुखी होती है, इसलिए भक्ति-

† द्वितीय खंड के आरंभ में 'व्यास-वाणी की महिमा', पृष्ठ १६०

काव्य की रचना भी भक्तों ने विशेष रूप से स्वातः सुख के लिए की है, किंतु संतों की वाणी में लोकोपकार की भावना अधिक रहती है। व्यास जी की रचनाओं में संत-काव्य और भक्ति-काव्य दोनों के गुण विद्यमान हैं और वे दोनों के समन्वय के सुदृढ़ आधार भी हैं। इस प्रकार व्यास जी का महत्व अन्य भक्त कवियों से अधिक हो जाता है।

व्यास-वाणी—

प्रस्तुत ग्रथ में संकलित व्यास जी की समस्त उपलब्ध रचनाऐं 'व्यास-वाणी' के अंतर्गत ६ परिच्छेदों में विभाजित हैं। इन परिच्छेदों का क्रम और नाम निम्न हैं—

१. सिद्वात, २. शृंगार-रस-विहार, ३. समय के पद,
४. ब्रज-लीला, ५. रास-पचाध्यायी और ६. साखी।

विषयानुसार विभाजन करने से सिद्वात के पद और साखी के दोहे प्राय. एक ही विषय से संबधित हैं, अतः इनको साथ-साथ रखना अधिक समीचीन होता। व्यास-वाणी की अब तक जितनी भी प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, इनमें साखी के दोहे सिद्वात के पदों के साथ ही साथ मिलते हैं। इस प्रकार के दोहों का पृथक संकलन 'व्यास जी की चौरासी' के नाम से भी उपलब्ध होता है।

'साखी' और 'सिद्वात' दोनों में गुरु-महिमा, साधु-स्तुति और भक्त-प्रशसा के साथ ही साथ ढोंगी गुरु, कपटी साधु और झूठे भक्तों की कड़ी निंदा की गई है। व्यास जी ने जहाँ भक्तों के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त की है, वहाँ वैष्णव धर्म के विरोधी शाक्त आदि दुराचारी साधकों की तीव्र भर्त्सना भी है। इस विषय में उक्त 'वाणी' कबीर की रचनाओं से मिलती हुई ज्ञात होती है। व्यास जी की साखी में कुछ दोहे ऐसे भी है, जो साधारण परिवर्तन के साथ कबीर-वचनावली मे भी प्राप्त होते हैं। साखी की रचना कबीर आदि सत कवियों के काव्य की विशेषता है। भक्त कवियों में इस प्रकार की रचना के लिए व्यास जी कदाचित अपवाद हैं। हरि-भक्ति से विमुख और दुराचारी जनों की अत्यत कटु शब्दों में तीव्र निंदा कबीर के पश्चात् यदि किसी भक्त कवि ने की है, तो वह केवल व्यास जी ने ही की है।

ओरछा से वृंदावन जाने पर व्यास जी हरि-भक्तों की सेवा और रसेश्वरी राधिका जी के प्रेमानद में मग्न होकर भक्तिपूर्ण शृंगार के पदों की रचना किया करते थे। उस समय उन्हें अपनी पूर्व मनोवृत्ति के विरुद्ध किसी की निंदा-स्तुति से कोई प्रयोजन न था। व्यास जी ने स्वयं कहा है—

रसिक अनन्य हमारी जाति। ×
......'व्यास' न देत असीस-सराप ॥६३॥

इस प्रकार की रचनाऐं व्यास-वाणी के द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पचम परिच्छेदों में संकलित हैं। ये रचनाऐं शृंगार और शात रसो की हैं। ये विषय व्यास जी को अत्यंत प्रिय थे, अतः इनके सबध की रचनाऐं भी अत्यंत सरस, भावपूर्ण

और हृदयग्राही हुई है। शृंगार रस की रचनाओं में उक्त रस से संबंधित समस्त सामग्री का समावेश है। नख-शिख और ऋतुओं का आकर्षक वर्णन, वेनी-गुहन, आँख मिचौनी, भोजन-विलास, व्रत-रस, गान-रस और सेज्या-विहार की केलि-क्रीड़ाएँ, अभिसार, धीरादि, खंडिता, मान, दूती, रास आदि की रसपूर्ण लीलाएँ, तथा उत्तान शृंगार से संबंधित सुरति विहार, सुरतांत और विपरीत रति तक का विस्तृत कथन इन रचनाओं में उपलब्ध होता है।

व्यास जी की रचनाएँ वृंदावन के अन्य भक्त कवियों की तरह संयोग शृंगारात्मक हैं। उनमें वियोग जन्य वेदना का सर्वथा अभाव है। यदि 'खंडिता' आदि लीलाओं के कारण प्रियतमा के 'मान' करने से संयोग में क्षणिक व्याघात भी होता है, तो विरह नायक को होता है, नायिका को नहीं। सखियों की प्रार्थना पर नायिका श्री राधिका जी नायक श्री कृष्ण के साथ विहार कर उनकी विरह-विकलता को दूर कर देती हैं। इनमें श्री कृष्ण का महत्व कम और राधिका जी का महत्व अधिक दिखलाया गया है। कृष्ण तो राधा के अनुचर हैं, जो उनकी कृपा-कटाक्ष के सदैव अभिलाषी रहते हैं। राधा जी कृपा पूर्वक कृष्ण के साथ नित्य विहार कर उनको कृतकृत्य करती रहती हैं। राधा-कृष्ण की अंतरंग लीलाओं में व्यास जी दासी के रूप में सदैव विद्यमान रहते हैं। वे कभी चिराग दिखलाते हैं†, तो कभी पीकदानी लेकर उपस्थित होते हैं‡।

व्यास-वाणी का क्रम और व्यास जी का रचना-काल—

व्यास-वाणी के विश्लेषण से इसके क्रम और व्यास जी के रचना-काल की एक रूप-रेखा भी निश्चित की जा सकती है। ऐसा ज्ञात होता है कि व्यास जी ने कबीर आदि संत कवियों की वाणी से प्रभावित होकर आरंभ में साखी के दोहों की रचना की। इसके पश्चात् उनसे मिलते हुए सिद्धांत के पद रचे। उन दिनों शाक्त आदि वैष्णव विरोधी साधकों का बड़ा जोर था। उन्होंने साधना के नाम पर वीभत्स दुराचरण भी अपना रखे थे, जिनके कारण वे सदाचारी धर्मप्राण व्यक्तियों की घृणा और निंदा के पात्र हो गये थे। व्यास जी ने अपनी साखी और सिद्धांत विषयक आरंभिक रचनाओं में ऐसे दुराचारी लोगों को अपने वाक्-वाण का लक्ष्य बनाया है। जब व्यास जी में भक्ति-भाव की प्रबलता हुई, तब वे भक्तिपूर्ण पदों की रचना करने लगे। उस समय उनका मन कृष्ण-भक्ति के प्रमुख केन्द्र वृंदावन की ओर आकर्षित होने लगा। उनकी वाणी में ऐसे कितने ही पद मिलते हैं, जिनमें वृंदावन जाने की उनकी प्रबल उत्कंठा व्यक्त हुई है*। ये पद उनके स्थायी रूप से वृंदावन-वास से

---

† समय के पद, सं० ६८० ‡ समय के पद, ९०

* सिद्धांत के पद, सं० २५४ से २६७ तक

पूर्व की कृति ज्ञात होते हैं। इस प्रकार की रचना का समय सं० १६०० के आस-पास समझा जा सकता है।

अंत में व्यास जी के हृदय में वृंदावन-वास की लालसा इतनी बढ़ गई, कि उनका ओरछा में रहना असंभव हो गया। वे सर्वस्व परित्याग कर सं० १६१२ के लगभग स्थायी रूप से ओरछा छोड़ कर वृंदावन में रहने लगे। इस ग्रंथ के लेखक ने अनुमान किया है कि सं० १५९१ के लगभग वे एक बार पहले भी वृंदावन जा चुके थे। वृंदावन में स्थायी रूप से रहने पर उन्होंने ब्रज-रस और राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ा संबंधी शृंगार रस के पदों की रचना की। इस प्रकार की रचनाएँ उनके अंत समय तक होती रहीं, अतः इनका रचना-काल सं० १६०० से १६६९ तक समझा जा सकता है।

व्यास जी को संतों और भक्तों की सेवा और उनके सत्संग में अत्यंत आनंद का अनुभव होता था। ऐसा ज्ञात होता है कि अपने अंतिम काल में उनको उस आनंद से वंचित होना पड़ा। कारण यह था कि उनके अनेक जीवन-साथी और इष्ट मित्र उनके सामने ही इस संसार से चल बसे थे, जिनके वियोग में वे बड़े दुखी रहा करते थे। उनके ऐसे कई पद† उपलब्ध हैं, जिनमें उनकी उस समय की मानसिक वेदना व्यक्त हुई है।

इन पदों में स्वर्गीय भक्तों के नामोल्लेख से महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है। इनसे जहाँ व्यास जी के देहावसान-काल का निर्णय होता है, वहाँ उक्त भक्तों के अंतिम समय की सीमा भी निर्धारित होती है। व्यास जी कृत एक ऐसा पद भी उपलब्ध है, जिसके अंतिम चरण से उनके अंत काल का बोध होता है। इस ग्रंथ के लेखक ने व्यास जी के देहावसान काल का निर्णय करते समय इस पद का कदाचित इसलिए उपयोग नहीं किया, कि इसके संदर्भ से किसी निश्चित काल का संकेत नहीं मिलता है। फिर भी यह पद व्यास जी की अंतिम रचना होने की संभावना के कारण महत्वपूर्ण है। इस पद का कुछ अंश इस प्रकार है—

वेद भागवत स्याम बतायौ।×

जहाँ भक्त सब जात, तहाँ तें अजहूँ कोउ न आयौ।

'व्यास' हिं बिदा करौ करुना करि, समाचार लै आयौ॥१५९॥

यद्यपि व्यास-वाणी का अधिकांश भाग शृंगार रस से संबंधित है, जो अपनी भक्ति-भावना और काव्य-कुशलता के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण भी है, तथापि इसमें शृंगारपूर्ण भक्ति-काव्य की साधारण परिपाटी का ही अनुसरण किया गया है। किंतु सिद्धांत के पदों और साखी के दोहों में कतिपय विषय ऐसे भी हैं, जिन पर व्यास जी के व्यक्तित्व की छाप विशेष रूप से अंकित हुई है। इन विषयों का संक्षिप्त विवेचन आवश्यक है।

---

† साधु विरह के पद, सं० २२ से २७ तक

और हृदयग्राही हुई हैं। शृंगार रस की रचनाओं में उक्त रस से संबंधित समस्त सामग्री का समावेश है। नख-शिख और ऋतुओं का आकर्षक वर्णन, वेनी-गुहन, आँख मिचौनी, भोजन-विलास, व्रत-रस, गान-रस और सेज्या-विहार की केलि-क्रीड़ाएँ, अभिसार, धीरादि, खंडिता, मान, दूती, रास आदि की रसपूर्ण लीलाएँ, तथा उत्तान शृंगार में संबंधित सुरति विहार, सुरतांत और विपरीत रति तक का विस्तृत कथन इन रचनाओं में उपलब्ध होता है।

व्यास जी की रचनाएँ वृंदावन के अन्य भक्त कवियों की तरह संयोग शृंगारात्मक हैं। उनमें वियोग जन्य वेदना का सर्वथा अभाव है। यदि 'खंडिता' आदि लीलाओं के कारण प्रियतमा के 'मान' करने से संयोग में क्षणिक व्याघात भी होता है, तो विरह नायक को होता है, नायिका को नहीं। सखियों की प्रार्थना पर नायिका श्री राधिका जी नायक श्री कृष्ण के साथ विहार कर उनकी विरह-विकलता को दूर कर देती हैं। इनमें श्री कृष्ण का महत्व कम और राधिका जी का महत्व अधिक दिखलाया गया है। कृष्ण तो राधा के अनुचर हैं, जो उनकी कृपा-कटाक्ष के सदैव अभिलाषी रहते हैं। राधा जी कृपा पूर्वक कृष्ण के साथ नित्य विहार कर उनको कृतकृत्य करती रहती हैं। राधा-कृष्ण की अंतरंग लीलाओं में व्यास जी दासी के रूप में सदैव विद्यमान रहते हैं। वे कभी चिराग दिखलाते हैं†, तो कभी पीकदानी लेकर उपस्थित होते हैं‡।

व्यास-वाणी का क्रम और व्यास जी का रचना-काल—

व्यास-वाणी के विश्लेषण से इसके क्रम और व्यास जी के रचना-काल की एक रूप-रेखा भी निश्चित की जा सकती है। ऐसा ज्ञात होता है कि व्यास जी ने कबीर आदि संत कवियों की वाणी से प्रभावित होकर आरंभ में साखी के दोहों की रचना की। इसके पश्चात् उनसे मिलते हुए सिद्धांत के पद रचे। उन दिनों शाक्त आदि वैष्णव विरोधी साधकों का बड़ा जोर था। उन्होंने साधना के नाम पर वीभत्स दुराचरण भी अपना रखे थे, जिनके कारण वे सदाचारी धर्मप्राण व्यक्तियों की घृणा और निंदा के पात्र हो गये थे। व्यास जी ने अपनी साखी और सिद्धांत विषयक आरंभिक रचनाओं में ऐसे दुराचारी लोगों को अपने वाक-बाण का लक्ष्य बनाया है। जब व्यास जी में भक्ति-भाव की प्रबलता हुई, तब वे भक्तिपूर्ण पदों की रचना करने लगे। उस समय उनका मन कृष्ण-भक्ति के प्रमुख केन्द्र वृंदावन की ओर आकर्षित होने लगा। उनकी वाणी में ऐसे कितने ही पद मिलते हैं, जिनमें वृंदावन जाने की उनकी प्रबल उत्कंठा व्यक्त हुई है*। ये पद उनके स्थायी रूप से वृंदावन-वास से

---

† समय के पद, सं० ६८० ‡ समय के पद, ९०

* सिद्धांत के पद, सं० २९४ से २९७ तक

पूर्व की कृति ज्ञात होते हैं। इस प्रकार की रचना का समय स० १६०० के आस-पास समझा जा सकता है।

अंत में व्यास जी के हृदय में वृंदावन-वास की लालसा इतनी बढ़ गई, कि उनका ओरछा में रहना असंभव हो गया। वे सर्वस्व परित्याग कर स० १६१२ के लगभग स्थायी रूप से ओरछा छोड़ कर वृंदावन में रहने लगे। इस ग्रंथ के लेखक ने अनुमान किया है कि सं० १५६१ के लगभग वे एक बार पहले भी वृंदावन जा चुके थे। वृंदावन में स्थायी रूप से रहने पर उन्होंने ब्रज-रस और राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ा संबंधी शृंगार रस के पदों की रचना की। इस प्रकार की रचनाएँ उनके अंत समय तक होती रहीं, अतः इनका रचना-काल सं० १६०० से १६६६ तक समझा जा सकता है।

व्यास जी को संतों और भक्तों की सेवा और उनके सत्संग में अत्यंत आनंद का अनुभव होता था। ऐसा ज्ञात होता है कि अपने अंतिम काल मे उनको उस आनंद से वंचित होना पड़ा। कारण यह था कि उनके अनेक जीवन-साथी और इष्ट मित्र उनके सामने ही इस संसार से चल बसे थे, जिनके वियोग में वे बड़े दुखी रहा करते थे। उनके ऐसे कई पद† उपलब्ध हैं, जिनमें उनकी उस समय की मानसिक वेदना व्यक्त हुई है।

इन पदों में स्वर्गीय भक्तों के नामोल्लेख से महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है। इनसे जहाँ व्यास जी के देहावसान-काल का निर्णय होता है, वहाँ उक्त भक्तो के अंतिम समय की सीमा भी निर्धारित होती है। व्यास जी कृत एक ऐसा पद भी उपलब्ध है, जिसके अंतिम चरण से उनके अंत काल का बोध होता है। इस ग्रंथ के लेखक ने व्यास जी के देहावसान-काल का निर्णय करते समय इस पद का कदाचित इसलिए उपयोग नहीं किया, कि इसके संदर्भ से किसी निश्चित काल का संकेत नहीं मिलता है। फिर भी यह पद व्यास जी की अंतिम रचना होने की संभावना के कारण महत्वपूर्ण है। इस पद का कुछ अंश इस प्रकार है—

वेद भागवत स्याम बतायौ। ×

जहाँ भक्त सब जात, तहाँ तें अजहूँ कोऊ न आयौ।

'व्यास'हिं विदा करौ करुना करि, समाचार लै आयौ ॥१५६॥

यद्यपि व्यास-वाणी का अधिकांश भाग शृंगार रस से संबंधित है, जो अपनी भक्ति-भावना और काव्य-कुशलता के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण भी है, तथापि इसमें शृंगारपूर्ण भक्ति-काव्य की साधारण परिपाटी का ही अनुसरण किया गया है। किंतु सिद्धांत के पदों और साखी के दोहों में कतिपय विषय ऐसे भी हैं, जिन पर व्यास जी के व्यक्तित्व की छाप विशेष रूप से अंकित हुई है। इन विषयों का संक्षिप्त विवेचन आवश्यक है।

---

† साधु विरह के पद, स० २३ से २७ तक

शाक्त-निंदा—

व्यास जी ने अपनी 'वाणी' में शाक्त मतावलंबियों की बड़ी तीव्र निंदा की है। ऐसा ज्ञात होता है कि उनके समय में शाक्त संप्रदाय की तांत्रिक साधना का विकृत रूप अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। उस समय के शाक्तों ने अपनी कुत्सित उपासना में मद्य, मांस और व्यभिचार को सिद्धि-प्राप्ति के साधन मान लिये थे, जिनके कारण वे समस्त सात्विक साधकों की अरुचि और घृणा के पात्र बन गये थे। वैष्णव धर्माचार्यों को अपने मत के प्रचार के साथ ही साथ उन पथ भ्रष्ट साधकों की पोल खोलना भी आवश्यक हो गया था। वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है कि वल्लभाचार्य जी ने अनेक स्थानों पर शाक्तों और शैवों को शास्त्रार्थ में पराजित कर उनको वैष्णव धर्म की शिक्षा एवं दीक्षा दी थी। यहाँ पर प्रसंग वश शाक्त धर्म के संबंध में संक्षिप्त रूप से लिखा जाता है।

वैदिक कर्मकांड के विरुद्ध अति प्राचीन काल में जो धर्म प्रचलित हुए, उनमें जैन, बौद्ध, शैव और शाक्त प्रमुख हैं। मौलिक सिद्धांतों की दृष्टि से ये सभी धर्म उच्चादर्शों पर आधारित हैं और इनकी कुछ अपनी विशेषताएँ भी हैं। जैन धर्म तपस्या प्रधान, बौद्ध धर्म सदाचार प्रधान तथा शैव और शाक्त धर्म तांत्रिक पद्धति प्रधान हैं। इन सभी धर्मों ने वेदाचार को निम्न कोटि का मान कर ब्राह्मणों के प्रभुत्व को प्राय. अस्वीकार किया है।

शाक्त धर्म में वैदिक, वैष्णव, गाणपत्य, सौर, शैव और शाक्त नामक आचार होते हैं, जो एक दूसरे से क्रमश. श्रेष्ठ माने गये हैं। शाक्तों के मतानुसार वैदिक आचार सब से निम्न कोटि के और शाक्त आचार सर्वोच्च कोटि के हैं। शाक्त आचार भी वामाचार, दक्षिणाचार, सिद्धांताचार और कौलाचार नामक चार प्रकार के होते हैं। इनमें कौलाचार अवधूत मार्ग से संबंधित है। तांत्रिक और अवधूत में यह अंतर होता है कि तांत्रिक पहिले बहिरंग उपासना द्वारा सिद्धि प्राप्त करता हुआ कुंडलिनी शक्ति की उपासना में लगता है, जब कि अवधूत आरंभ से ही कुंडलिनी शक्ति की साधना करता है।

आरंभ में ये सभी मत उच्च आदर्शों को लेकर चले थे, किंतु अनधिकारी और पथ भ्रष्ट साधकों ने इन सबको विकृत कर दिया—किसी को कम और किसी को अधिक। सदाचार प्रधान बौद्ध धर्म के महायान संप्रदाय की वज्रयानी शाखा कामुकता को प्रश्रय देने वाले कुत्सित वामाचार का केन्द्र बन गई। इसी प्रकार शैव और शाक्त धर्मों के अंतर्गत भी ऐसे अनेक पथ प्रचलित हुए, जिनकी वीभत्स तांत्रिक उपासना अखाद्य-भक्षण और विषय-वासना को प्रोत्साहन देने लगी। इस विचार-धारा के साधकों का विश्वास था कि कामनाएँ दबाने से कभी दबती नहीं हैं। वे बार-बार उभर कर चित्त में क्षोभ उत्पन्न करती हैं, जिससे सिद्धि-प्राप्ति में बाधा

उपस्थित होती है। इसलिए समस्त कामनाओं का उपभोग करना आवश्यक है, ताकि चित्त की चंचलता और उसका क्षोभ दूर होकर अपेक्षित सिद्धि शीघ्र प्राप्त हो सके। इसी मत की पुष्टि में 'गुह्य समाज तंत्र' में लिखा है—'शीघ्र सिद्धि प्राप्त करने का सरल उपाय कठिन नियमों का पालन नहीं है, वरन् समस्त कामनाओं का उपभोग करना है।'

इस प्रकार धार्मिक साधना में विषय-भोगों का प्रवेश हुआ, जिनके कारण उक्त पंथों ने नाना प्रकार के दुराचरणों को अपना लिया। उनके वे दुराचार सात्विक प्रकृति के सदाचारी संतों और वैष्णव भक्तों को असहनीय हुए। उन्होंने उनका बल पूर्वक विरोध किया। कबीर के कितने ही दोहों में शाक्तों की निंदा और वैष्णवों की प्रशंसा की गई है। उन्होंने कहा है—

चंदन की कुटकी भली, नाँ बंबूर की अवराँउ।
वैस्नौ की छपरी भली, नाँ सापत का बड़ गाँउ ॥१॥
कबीर धनि ते सुंदरी, जिनि जाया वैस्नौ पूत।
राम सुमरि निरभै हुवा, सब जग गया अऊत ॥७॥
सापत बाँभण मति मिलै, वैस्नौ मिलै चँडाल।
अंक माल दे भेटिये, मानौं मिले गोपाल† ॥६॥

कबीर शाक्तों के इतने विरुद्ध थे कि उन्होंने उनको कुत्ता और सूअर तक कहने में संकोच नहीं किया है—

साकत सुनहा दूनों भाई। एक नींदै एक भौंकत जाई ॥*
साकत ते सूकर भला, सूचा राखै गाँव।
बूडा साकत बापुड़ा, वैसि समरणी नाँव ॥

व्यास-वाणी में भी शाक्तों के लिए अत्यंत कटु शब्दों का प्रयोग हुआ है। व्यास जी के शाक्त-विरोधी होने का एक विशेष कारण भी है। जिन दिनों वे अपनी जन्म-भूमि ओरछा में थे, उन दिनों वहाँ पर शैव-शाक्त आदि वैष्णव विरोधी तत्वों का प्राबल्य था। व्यास जी का घराना परंपरा से वैष्णव मतावलंबी था। व्यास जी स्वयं आस्तिक वैष्णव ही नहीं, वरन् राधा-कृष्ण के अनन्य उपासक भी थे। ऐसा ज्ञात होता है कि व्यास जी के कुटुंब-परिवार के कतिपय व्यक्ति चाहे शाक्त न रहे हों, किंतु व्यास जी के समान अनन्य वैष्णव नहीं थे। तत्कालीन ओरछा नरेश भारतीचंद संभवतः शाक्त ही था। जब व्यास जी की पुत्री के विवाह का आयोजन हुआ, तो व्यास जी उस अवसर पर अपने इष्टदेव की पूजा और साधुओं तथा भक्तों

---

† कबीर ग्रंथावली (ना० प्र० सभा) पृ० ५२-५३

* ,, ,, (,,) प्रस्तावना, पृ० १७

को भोजन कराना चाहते थे, किंतु उनके घर वालों के अंध विश्वास और संभवतः भारतीचंद के बल-प्रयोग से व्यास जी की इच्छा के विरुद्ध राधा-कृष्ण के स्थान पर गणेश आदि देवों की पूजा की गई और संतों और भक्तों के स्थान पर शाक्तों को भोजन कराया गया। इस घटना से व्यास जी को हार्दिक दुःख हुआ। उन्होंने अपनी 'वाणी' में घर वालों के इस आचरण पर खेद प्रकट किया है और कहा है कि ऐसी पुत्री तो पेट में ही क्यों न मर गई, जिसके कारण उनके अनन्य धर्म में दाग लगा—

हमारे घर की भक्ति घटी।
उपजे नाती-पूत वहिर्मुख, बिगरी सबै गटी ॥२८८॥
मरैं वे, जिन मेरे घर गनेस पुजायौ।
जे पदार्थ संतन के काजें, ते सारे सकतन नें खायौ॥
'व्यासदास' कन्या पेटहिं क्यों न मरी, अनन्य धर्म में दाग लगायौ ॥२८६॥

इस घटना से व्यास जी इतने दुखी हुए कि वे ओरछा छोड़ कर वृंदावन चले गये और वहाँ से फिर वापिस नहीं आये। व्यास जी का मत है कि स्त्री और भाई-बंधु शाक्त हों, तो उनको शत्रु के समान समझना चाहिए। उनके संग से नर्क-वास निश्चित है†। उन्होंने कहा है कि चाहें मार्ग में ही पड़ा रहना पड़े, किंतु शाक्तों के गाँव में भी नहीं जाना चाहिए। उन्होंने कबीर के समान एक शाक्त ब्राह्मण की अपेक्षा एक वैष्णव चांडाल को अच्छा बतलाया है। उन्होंने शाक्तों को शूकर-कूकर की उपमा देते हुए* उनका मुँह काला करने तक को कहा है—

करि मन, साकत कौ मुँह कारौ।
साकत मोहि न देख्यौ भावै, कहा बूढौ, कहा बारौ ॥२६१॥

सच्चे भक्तों की प्रशंसा और ढोंगियों की निंदा—

व्यास जी को सच्चे संतों और भक्तों के प्रति अपार श्रद्धा थी। उन्होंने अपनी वाणी में पूर्ववर्ती और समकालीन अनेक भक्तों का खूब गुण-गान किया है$। उन्होंने अनेक संतों और भक्तों का नामोल्लेख करते हुए उनको अपना वास्तविक कुटुंबी कहा है। वे भक्तों को अपने माता-पिता, भ्राता, दामाद, बहनेऊ ही नहीं, वरन् देवी, देवता और परमेश्वर तक मानते थे‡।

---

† सिद्धांत के पद, सं० २८३, साखी सं० १४२, १३८

* साखी, सं० १३४, १३६, १४१

$ सिद्धांत के पद, सं० ५ से २० तक

‡ ,, ,, सं० २१ से २२ तक

जहाँ उन्होंने सच्चे भक्तों की अत्यधिक प्रशंसा की है, वहाँ तामसी वृत्ति के ढोंगी भक्तों की भरपूर निंदा भी की है‡। उनका मत है कि जब तक वासनाएँ विद्यमान है, तब तक घर छोड़ कर वृंदावन-वास करना वृथा है। उन्होंने कनक-कामिनी मे अनुरक्त माला-तिलकधारी ढोंगी भक्तों की खूब खिल्ली उड़ाई है*।

वे सच्चे भक्तो के आगमन पर अपार सुख और हरि-विमुखों के आने पर घोर दु.ख का अनुभव करते थे। उनका मत था कि भक्त के आने से करोड़ों तीर्थों मे स्नान करने से भी अधिक सुख होता है और हरि-विमुखों के आने पर साँप-बीछुओं के काटने से भी अधिक पीड़ा होती है§।

हरि-भक्ति की तुलना में जनेऊ और जाति की हीनता—

उच्च वर्ण के हिंदुओं को जनेऊ और जाति का बड़ा अभिमान होता है; किंतु व्यास जी उच्च कुल के ब्राह्मण होते हुए भी इससे मुक्त थे। वे हरि-भक्ति की तुलना में जनेऊ और जाति को महत्वशून्य ही नहीं, वरन् व्यर्थ भी समझते थे। उन्होंने हरि-भक्ति के बिना जनेऊ को यम का फंदा बतलाया है†। व्यास जी के विषय में यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने रास में राधिका जी के स्वरूप का नूपुर टूट जाने पर उसे अपना जनेऊ तोड़ कर बाँध दिया था!

उन्होंने उच्च जातीयता का मिथ्या अभिमान छोड कर भगवान् की सच्ची भक्ति करने का उपदेश दिया है। उन्होंने एक हरिभक्त भंगी को भक्ति रहित लाखों पंडितों और करोड़ो कुलीनों से बढ कर कहा है। उन्होंने बतलाया है कि ब्राह्मण अपनी कुलीनता के अभिमान में भक्ति नहीं कर पाते हैं। वे स्वय भूले हुए और सोये हुए हैं, किंतु वे दूसरों को मार्ग दिखलाने और जाग्रत करने की धृष्टता करते हैं§।

विषय-वासना और कनक-कामिनी का त्याग—

भक्त कवियों की प्रतीकात्मक शृंगारिक रचनाओं से अपरिचित व्यक्तियों को कभी-कभी उनमे विषय-वासना की गंध आने लगती है! यह इसलिए होता है कि वे लोग उन महात्माओं की उपासना-पद्धति और धार्मिक मान्यताओं के मर्म को भली भाँति नहीं समझ पाते हैं। जो भक्त-कवि समस्त सासारिक विषय-भोगों का परित्याग कर विरक्त भाव से जीवन व्यतीत करते थे, उनके द्वारा रचित राधा-कृष्ण की केलि-क्रीडा संबंधी प्रतीकात्मक शृंगारिक रचनाओं से लौकिक विषय-

---

‡ सिद्धांत के पद, स० १२८, १२९, १४०

* ,, ,, स० ११६, २८०, २९४

§ ,, ,, स० १२३, १२४, १४६

† ,, ,, स० १०४, २१४

§ साखी के दोहे, स० २०, २३, सिद्धांत के पद, स० २१२

वासना का कोई संबंध नहीं है। शृंगारिक प्रतीकों का वर्णन तो निर्गुणोपासक संत कवियों ने भी किया है, किंतु इनसे उनका अभिप्राय परमात्मा की एकांत भाव से भक्ति करना ही है। कबीर कृत 'घूँघट का पट खोल रे, तोहि पीव मिलेंगे।' अथवा, 'नदिया किनारे बालम मोर रसिया, दीन घूँघट-पट टारि'—आदि रचनाओं से कोई उन्हें कामी कहने की मूर्खता नहीं कर सकता है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि परमात्मा सब प्रकार के पापियों को क्षमा कर सकते हैं, किंतु कामियों को नहीं—'*और गुनह हरि बकस सी, कामी डार न मूल*§।'

भक्त कवियों की उत्तान शृंगारिक रचनाएँ भी अनन्य रसिकों की लौकिक वासनाएँ शमन करने में समर्थ होती हैं। व्यास जी के मतानुसार अनन्य रसिक वे हैं, जिनमें विषय-विकार न हो। इसीलिए उन्होंने अनन्य व्रत का पालन करना खाँड़े की धार पर चलने के समान कहा है, जहाँ तनिक भी चूक होने पर ही सँभलना कठिन हो जाता है†। उन्होंने हरि-भक्ति के लिए विषय-वासना और कनक-कामिनी का त्याग आवश्यक बतलाया है। उनका मत है कि विषय-वासना से आच्छादित हृदय में भगवान् का निवास नहीं हो सकता। जहाँ काम, कामिनी और कंचन का वास है, वहाँ भगवान् स्वप्न में भी नहीं रह सकते हैं‡। उन्होंने विषयों से मुक्ति दिलाने वाले व्यक्ति को ही साधु बतलाया है। उन्होंने यहाँ तक कहा है कि चाहें अग्नि-भक्षण और विष-पान तक करना पड़े, किंतु विषयी लोगों का मुख भूल कर भी नहीं देखना चाहिए*। इस प्रकार के विचार वाले परम विरक्त भक्त कवियों की शृंगारिक रचनाओं का लौकिक वासनाओं से क्या संबंध हो सकता है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

छूआ-छूत और महाप्रसाद—

हरि-भक्ति में ठाकुर जी के महाप्रसाद का बड़ा महत्व है। व्यास जी जहाँ हरि भक्तों में जाति-कुजाति और छूआछूत का विचार नहीं करते थे, वहाँ प्रत्येक हरि-भक्त से महाप्रसाद लेने में भी उनको कोई संकोच नहीं होता था। कहते हैं, एक बार उन्होंने वृंदावन के किसी भंगी से प्रसाद ले लिया था। यद्यपि यह किंवदंती बहुत प्रसिद्ध है, तथापि इसका प्रामाणिक पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं है। व्यास-वाणी में इस विषय से संबंधित कई वचन मिलते हैं, जिनके आधार पर यह समझा जा सकता है कि इस प्रकार की कोई घटना हुई अवश्य थी। इस संबंध में व्यास जी कृत 'साखी' के निम्न दोहे भी द्रष्टव्य हैं—

---

§ कबीर-ग्रंथावली, पृष्ठ ४०

† सिद्धांत के पद, सं० ६८, १००, ६५

‡ ,, ,, सं १६६, १७२, १६४

* ,, ,, सं० २२२, २१६

स्वान प्रसादै छुइ गयौ, कौवा गयौ विटारि ।
दोऊ पावन 'व्यास' कें, कह भागौत विचारि ॥६५॥
'व्यास' रसिक जन ते वडे, व्रज तजि अनत न जाँय ।
वृंदावन के स्वपच लौं, जूठनि मांगैं खाँय ॥२४॥
'व्यास' मिठाई विप्र की, तामैं लागै आग ।
वृंदावन के स्वपच की, जूठनि खैयै माँग ॥२५॥

हरि-भक्ति और महाप्रसाद में छूआछूत का परित्याग कर व्यास जी ने प्रचलित सामाजिक नियमों के विरुद्ध जो क्रांतिकारी मार्ग ग्रहण किया था, उसके कारण रूढ़ि-पंथियों द्वारा उनको अपमान और तिरस्कार भी सहन करना पडा, किंतु वे अपने मार्ग से तनिक भी विचलित नहीं हुए। जब लोगो ने उनके सामने ब्राह्मणत्व और धर्माधर्म की दुहाई दी, तब व्यास जी ने निर्भीकता से कहा—

'व्यास' हिं ब्राह्मन जिन गनौ, हरि-भक्तन कौ दास ।
राधावल्लभ कारनैं, सह्यौ जगत - उपहास ॥२६॥
जासों लोग अधर्म कहत हैं, सोई धर्म है मेरौ ।
लोग दहिने मारग लाग्यौ, हौंव चलत हौं डेरौ ।×
जिनकी ये सब छोति करत हैं, तिनही कौ हौं चेरौ ॥२३०॥

उच्चादर्श की बात करना बड़ा सरल है, किंतु उसे व्यवहार में लाना विरले ही महापुरुषों से संभव है। ध्रुवदास जी ने व्यास जी के संबंध में ठीक ही कहा है—

कहनी करनी करि गयौ, एक व्यास इहिं काल ।
लोक-वेद तजिकैं भजे, श्री राधावल्लभ लाल ॥
प्रेम मगन नहिं गन्यौ कछु, वरनावरन-विचार ।
सबनि मध्य पायौ प्रगट, लै प्रसाद रस-सार ॥

प्रस्तुत ग्रंथ—

अंत मे इस ग्रंथ की रचना और इसके संपादन के संबंध में भी दो शब्द कहने है। मेरे द्वारा संपादित 'व्रज-साहित्य माला' में नायिकाभेद और षट्ऋतु विषयक रीति कालीन ग्रंथों के अतिरिक्त कई भक्ति कालीन ग्रंथ भी प्रकाशित हुए हैं, किंतु वे अष्टछाप, विशेष कर सूरदास, से संबंधित हैं। व्रजभाषा भक्ति-साहित्य में सूरदासादि अष्टछापी कवियों के पश्चात् वृंदावन के भक्त कवियों का ही सर्वोपरि महत्व है, किंतु खेद है, उनसे संबंधित सर्वांगपूर्ण ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए। मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी कि हित हरिवंश, हरिदास स्वामी और श्री हरिराम व्यास के जीवन-वृत्तांत और काव्य संकलन संबंधी ग्रंथ प्रस्तुत किये जावें। रीवा निवासी श्री वासुदेव जी गोस्वामी से यह सूचना प्राप्त कर मुझे स्वभावत. ही अत्यंत

हर्ष हुआ कि उन्होंने हरिराम जी व्यास पर एक शोधपूर्ण ग्रंथ की रचना की है, जिसे वे 'व्रज-साहित्य-माला' में प्रकाशित कराना चाहते हैं। इस माला में अभी तक मेरे ग्रंथ ही प्रकाशित हुए हैं, किंतु अब अपने विषय से संबंधित इस उच्च कोटि की रचना को सुसंपादित रूप मे प्रस्तुत कर मैंने अत्यंत आनंद का अनुभव किया है।

इस ग्रंथ में पहले व्यास जी के जीवन-वृत्तांत और काव्य की समीक्षा ही थी, किंतु मेरे सुझाव से इसमें उनकी समस्त रचनाओं का संकलन भी दे दिया गया है। इससे ग्रंथ का आकार बहुत बढ़ गया है, किंतु यह व्यास जी के संबंध में सर्वांगपूर्ण भी हो गया है। इस ग्रंथ के लेखक ने व्यास जी की रचनाओं का संकलन अत्यंत शीघ्रता में किया था, अतः संपादन के समय पाठ-भेद और अनुक्रमणिका आदि के लिए व्यास-वाणी की समस्त उपलब्ध प्रतियों को दुबारा देखना आवश्यक हो गया। इस कार्य में जो परिश्रम हुआ, वह इसके संतोषजनक निर्माण को देखते हुए नगण्य है। व्यास जी की रचनाओं के संकलन में 'व्यास-वाणी' की २ मुद्रित और ४ हस्त लिखित प्राचीन प्रतियों के अतिरिक्त 'व्रज-माधुरी-सार' और पुष्टि संप्रदायी वर्षोत्सव एवं कीर्तन के संग्रहों से भी सहायता ली गई है। कीर्तन-संग्रहों मे व्यास जी के कितने ही पद मिलते हैं। एक पद 'व्यासदास' की छाप का ऐसा मिलता है, जो पुष्टि संप्रदायी भावानुकूल होने से व्यास जी कृत नहीं समझा गया (देखिये, कीर्तन संग्रह, भाग ३, पृ० ४)। अतः कीर्तन संग्रहों से पद संकलित करते समय विशेष सावधानी से काम लेना पड़ा है। पदों का क्रम और शीर्षक निश्चित करने में प्राचीन प्रतियों से बड़ी सहायता मिली है, किंतु साखी के दोहों का क्रम और उनके शीर्षक स्वयं लेखक को ही निश्चित करने पड़े हैं।

इस ग्रंथ के लेखक श्री व्यास जी के वंशज हैं, अतः उनको अपने गौरवशाली पूर्वज के प्रति श्रद्धा और ममत्व होना स्वाभाविक है, फिर भी उन्होंने शोधकोचित पक्षपात रहित समीक्षा संबंधी अपने कर्त्तव्य का भली भाँति पालन किया है। यह ग्रंथ लेखक के कई वर्षों के खोजपूर्ण अध्ययन का फल है, जिसमें प्राचीन एवं प्रामाणिक सामग्री के अनुसंधान एवं परीक्षण द्वारा व्यास जी के जीवन-वृत्तांत और उनके काव्य की समीक्षा की गई है। मुझे विश्वास है, इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ से हिंदी साहित्य की समृद्धि होगी और इससे अन्य भक्त कवियों पर भी इसी प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत करने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

अग्रवाल भवन,
मथुरा, माघ शु० १२ सं० २००९

—प्रभुदयाल मीतल

विषय-सूची

प्रथम खंड

जीवन-वृत्तांत और काव्य-समीक्षा



प्रथम अध्याय : युग परिचय

द्वितीय अध्याय : अध्ययन के सूत्र

तृतीय अध्याय : जीवन-चरित्र

चतुर्थ अध्याय : व्यवहार

पंचम अध्याय : चमत्कार

षष्ठ अध्याय : संप्रदाय

सप्तम अध्याय : नृत्य और संगीत

अष्टम अध्याय : काव्य

नवम अध्याय : अन्य प्रासंगिक विवेचन

द्वितीय खंड

वाणी-संकलन



प्रथम परिच्छेद : सिद्धांत

द्वितीय परिच्छेद : शृंगार-रस-विहार

सप्तम अध्याय : नृत्य और संगीत

अष्टम अध्याय : काव्य

नवम अध्याय : अन्य प्रासंगिक विवेचन

द्वितीय खंड



वाणी-संकलन

★

प्रथम परिच्छेद : सिद्धांत

द्वितीय परिच्छेद : शृंगार-रस-विहार

तृतीय परिच्छेद : समय के पद

चतुर्थ परिच्छेद : व्रज-लीला

षष्ठ परिच्छेद : साखी

परिशिष्ट

चित्र-सूची





सहायक ग्रंथों की सूची



दी के हस्तलिखित ग्रंथ—

१. श्री व्यास जी की वाणी (विभिन्न नामों से उपलब्ध) लिपिकाल संवत् १८८३, १८८७, १८८८, १८६४, १८६६, १६१४, १६६३ तथा दो प्रतियों का लिपि काल अज्ञात। विशेष विवरण प्राक्कथन में।

*२. नाभादास : भक्तमाल

*३. प्रियादास : भक्तमाल पर भक्ति-रस-बोधिनी टीका

४. भगवत रसिक . वाणी

*५. भगवत मुदित: सेवक-चरित्र तथा रसिक-अनन्य-माल

६. उत्तमदास: रसिक-अनन्य-माल (हितपरिचयी) खडित प्रति.

*७ श्री व्यास-जन्मोत्सव की वधाई, संग्रह, लिपिकाल संवत् १६४२

*८. गुरु-शिष्य-वंशावली

६. श्री हित हरिवश जी की वधाई

१०. हंसराज वख्शी : सनेह सागर, लिपिकाल १८६३

हिंदी के प्रकाशित ग्रंथ—

१. श्री व्यास-वाणी, अ० भा० श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा, वृंदावन द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण; सं० १६६१

२. श्री व्यास-वाणी; श्री हरिराम 'व्यास' वंशोद्भव आचार्य श्रीराधा-किशोर गोस्वामी द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण, संवत् १६६४

३. वियोगी हरि : व्रजमाधुरी सार

*४. प्रतीतराय लक्ष्मणसिंह : श्री लोकेन्द्र व्रजोत्सव

*५. ध्रुवदास : भक्त-नामावली

*६ माताप्रसाद गुप्त : तुलसी सदर्भ

७. वेनीमाधव दास : मूल गोसांई चरित

८. रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास

६. रामकुमार वर्मा : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

१०. परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की संत-परंपरा

११. प्रभुदयाल मीतल : अष्टछाप-परिचय

१२. द्वारकादास परीख व प्रभुदयाल मीतल : सूर-निर्णय

१३. रामरतन भटनागर : हिन्दी भक्ति-काव्य

१४. व्रजरत्नदास द्वारा अनुवादित : मआसिरुलउमरा

१५. दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय

१६. शिवशंकर मिश्र : भारतवर्ष का धार्मिक इतिहास

*१७. रीवा नरेश महाराज रघुराजसिंह : भक्त माला (राम-रसिकावली)
१८. भक्त-सौरभ, गीताप्रेस
१९. गोपालप्रसाद शर्मा श्री हित-चरित्र
२०. चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस, मथुरा)
२१. चौरासी वैष्णवन की वार्ता (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई)
२२. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई)
२३. गोस्वामी तुलसीदास : कवितावली
२४ श्री स्वामी जी दर्शन शास्त्र संग्रह
२५. गौरीशंकर द्विवेदी : बुंदेल-वैभव
२६. सूरसागर (श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई)
२७. पद्मावती 'शबनम' मीरा एक अध्ययन
२८. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (ना०प्र० सभा, काशी)
२९. कल्याण मासिक पत्र का भक्त-चरितांक

संस्कृत—

जयदेव . गीतगोविंदम्

गुजराती—

१. श्री हित-सुधासागर

बंगला—

१. पुलिनविहारी दत्त : वृंदावन-कथा
२. लालदास : भक्तमाल

अंग्रेजी—

1. Elliot & Dowson, History of India, as told by its own Historians.
2 Shri Ram Sharma Religious Policy of Mughals
3 Orchha State Gazetteer
4 Panna State Gazetteer
5 Reports on the Search of Hindi Manuscripts for the years 1905, 1906-08, 1909-11, 1912-14, 19,7-19, 1920-22, 1923-25.
6. Sir George A Grierson B A., B C S The Modern Vernacular Literature of Hindustan
7 Maurice Vinternitz, Ph. D A History of Indian Literature translated from the original German by Mrs S Ketkar
8 Shakti Sangam Tantra (Preface written by Binayatosh Bhattacharya)
9 Gazetteer of Mathura
10 F S Growse B C S. · Mathura District Memoir.

* इन ग्रंथों का रचनाकाल सबधी विवेचन अध्ययन के सूत्र नामक प्रसग में देखिये।

प्रथम खंड

जीवन-वृत्तांत और काव्य-समीक्षा

★

व्यास जी के संबंध में—

काहू के आराध्य मच्छ, कच्छ, सूकर, नरहरि ।
वावन, परसाधरन, सेतुवंधनहुँ सैल करि ॥
एकन कें यह रीति, नेम नवधा सों लायें ।
सुकल समोखन-सुवन, अचुत गोत्री जु लडायें ॥
नौगुनौ तोरि नूपुर गुह्यौ, महत सभा मधि रास के ।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति व्यास के ॥

—नाभादास जी

वर किसोर दोउ लाडिले, नवल प्रिया नव पीय ।
प्रगट देखियतु जगत में, रसिक व्यास के हीय ॥
कहनी, करनी करि गयौ, एक व्यास इहि काल ।
लोक वेद तजिकैं भजे, राधावल्लभ लाल ॥
प्रेम मगन नहिं गन्यौ कछु, वरनावरन विचार ।
सवनि मध्य पायो प्रगट, लै प्रसाद रस-सार ॥

—ध्रुवदास जी

व्यास भक्त से भक्त हैं, संतन अति सुख देत ।
मन कर, तन कर, बचन कर, परे बिपिन के खेत ॥

—ललितमोहन देव जी

निंबारक मत विदित, प्रेम कौ सारहि जान्यौ ।
जुगल केलि रस-रीति, भलैं करि इन पहिचान्यौ ॥
सखी भाव अति चाव, महल के नित अधिकारी ।
पिय हू सों बढि हेत, करत जिन पै निज प्यारी ॥
जग दान चलायौ भक्ति कौ, ब्रज सरवर जल जलज खिलि ।
जान्यौ वृंदावन-रूप, हरिदास, व्यास, हरिवस मिलि ॥

—भारतेन्दु हरिश्चद्र जी

भक्त - सिरोमनि व्यास, ओरछा नगर निवासी ।
श्री हरिवस प्रसंस सिष्य. हित - धाम बिलासी ॥
अनुरागी रस मसौ, रंगीलौ राधा - पी कौ ।
विधि-निषेध मन त्यागि, पान किये घूँट अमी कौ ॥
राधाबल्लभ सेइ, निगम की कानि न राखी ।
ब्रज विहार पद गाय, कही अति साँची साखी ॥
रसिकानन्य अनन्य व्यास, जय आनँद-रासी ।
श्री ब्रजचंद - चकोर, राधिका - चरन-उपासी ॥

—वियोगीहरि जी

महात्मा श्री हरिराम जी व्यास



जन्म : सं० १५६७ वि०, मार्गशीर्ष कृ० ५, देहावसान : सं० १६६६ के लगभग.

भक्त-कवि व्यास जी

प्रथम अध्याय

युग-परिचय



१. व्यासकालीन राजनैतिक परिस्थिति—

मलखान सिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र रुद्रप्रताप संवत् १५५८ मे बुंदेलखंड के राज सिंहासन पर बैठे। उस समय बुंदेलखंड की राजधानी झाँसी से तीस मील उत्तर की ओर स्थित गढ़ कुंडार नामक नगरी थी। भारत साम्राज्य उस समय लोदी वंश से शासित हो रहा था। संवत् १५४६ से १५७४ तक सिकदर लोदी के राजत्व काल के पश्चात् इब्राहीम लोदी का शासन प्रारंभ हुआ। संवत् १५८३ में इब्राहीम लोदी को पराजित कर बाबर ने मुगल साम्राज्य की नींव भारतवर्ष मे डाली।

विदेशियों के आक्रमण तो सैकड़ों वर्षों से प्रारंभ हो ही चुके थे। इससे देश में अशाति का वातावरण उपस्थित रहता था। बाबर के भारत पर आक्रमण एव इतिहास प्रसिद्ध पानीपत के प्रथम युद्ध (संवत् १५८३ वि) से जो गडबड़ो फैली, उससे बुंदेलखड नरेश रुद्रप्रताप ने अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार करने का मौका पाया। वैसे तो उन्हे पहिले ही सिकदर और इब्राहीम लोदी से भी लड़ाइयाँ लड़नी पडी थीं, किंतु उस समय जो देशव्यापी हलचल हुई, उससे अपनी सीमाओं को सुरक्षित रखने के लिए उन्हे बहुत सतर्क रहना पड़ता था। शासन-प्रबध में उन्हें अपने ज्येष्ठ पुत्र भारतीचद का पूर्ण सहयोग था ही। संवत् १५८७ वि० में बाबर की मृत्यु हो गई और दिल्ली के राजसिंहासन पर हुमायूं आसीन हुआ। महाराज रुद्रप्रताप उसी वर्ष ओरछा होकर निकले। पुण्यसलिला वेत्रवती के तट पर स्थित इस नगरी ने अपने रूप-लावण्य से उन्हें मोहित किया। वहाँ की प्राकृतिक शोभा तथा तत्कालीन राजनैतिक हलचलों को ध्यान मे रखकर घने वन मे स्थित उस नगरी को उन्होंने बुंदेलखड

के विशाल राज्य की राजधानी बनाने का सकल्प किया। वैशाख सुदी १३ संवत् १५८८ वि० को शुभ मुहूर्त† मे ओरछा को बुंदेलखंड की राजधानी निश्चित करके एक राजभवन के निर्माण का श्री गणेश हुआ।

महाराज रुद्रप्रताप जैसे ही वीर थे, वैसे ही धर्मात्मा भी थे। उनके साथ उनके दूसरे पुत्र मधुकरशाह विशेष रूप से रहा करते थे। इस कारण महाराज रुद्रप्रताप के साथ भ्रमण करने मे उन्हे भी उस समय के अनेक साधु-सतों के दर्शन करने तथा उपदेश सुनने का विशेष अवसर मिला। सवत् १५८८ वि० मे एक सिंह के पंजा से गौ को बचाने में रुद्रप्रताप का स्वर्गवास हो गया। यद्यपि उन्होने सिंह को मार कर गौ की रक्षा कर ली, तथापि सिंह द्वारा उन पर किये गये भयकर आघातो से उनके प्राण न बच सके।

महाराज रुद्रप्रताप के नौ पुत्र थे। उनमे से ज्येष्ठ पुत्र श्री भारतीचद बुंदेलखंड के राज सिंहासन पर सवत् १५८८ मे आसीन हुए। उसी समय शेरशाह सूरी का अभ्युदय हुआ। सवत् १५९६ में मुगल सेना को उसने परास्त किया और हुमायूं को हार कर भागना पडा।

जिस राजभवन की नीव सवत् १५८८ वि० में महाराज रुद्रप्रताप द्वारा ओरछा मे डाली गई थी, वह १५९६ वि० मे पूर्ण रूप से तैयार हो गया। उधर शेरशाह की दृष्टि भी बुंदेलखंड पर थी, अत गढ़ कुंडार से राज्य के वे सब विभाग ओरछा मे भेज दिये गये, जो भवनों की असुविधा से अब तक वहाँ न जा सके थे।

राजा भारतीचद को भी बुंदेलखंड की रक्षा के लिए शेरशाह के पुत्र इस्लामशाह से लडाई लडनी पड़ी‡। शेरशाह की मृत्यु के उपरांत दिल्ली के राजसिंहासन पर संवत् १६०२ से १६०९ तक इस्लामशाह ने राज्य किया और उसके पश्चात् मुहम्मद आदिलशाह तथा सिकंदरशाह हुए, जिनको परास्त कर संवत् १६१२ से हुमायूं ने पुन दिल्ली का

† देखिये 'ओरछा गजेटियर', पृष्ठ १७

‡ भरतखड मडन भए, तिनके भारतिचद।
देस रसातल जात जिन, फेरयो ज्यों हरिचद ॥१९॥
सेरसाह असलेम के, उर साली समसेर।
एक चतुर्भुज ही नयौ, ताकौ सिर तिहि बेर ॥२०॥
—कवीन्द्र केशवदास कृत 'कविप्रिया', पृष्ठ ६

सिंहासन प्राप्त कर लिया। लगभग ६ माह पश्चात् ही उसी संवत् में हुमायूं का देहांत हो जाने के कारण १४ वर्ष की अल्पावस्था में ही अकबर भारत के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ।

उधर संवत् १६११ वि० में महाराज भारतीचंद की भी मृत्यु हो गई। उनके कोई संतान न थी, अत: उनकी मृत्यु के उपरांत उनके छोटे भाई मधुकरशाह ओरछे के राजसिंहासन पर आसीन हुए।

मधुकरशाह को मुगल सम्राट की शाही सेना का भी कई बार सामना करना पड़ा। उन लड़ाइयों में मधुकरशाह के पुत्र होरिलराव तथा रतनसेन भी मारे गये। विरक्ति भाव अधिक बढ़ जाने के कारण महाराज मधुकरशाह ने अपने जीवन काल में ही वैशाख शुक्ला ३ संवत् १६५० को अपने ज्येष्ठ पुत्र रामशाह का राज्याभिषेक कर दिया। यह उनके अन्य पुत्र वीरसिंहदेव को रुचिकर न हुआ। उन्हें बड़ौनी (दतिया जिला) जागीर में दी गई। उसी वर्ष संवत् १६५० को आश्विन सुदी ११ को मधुकरशाह का स्वर्गवास हो गया। रामशाह ने शांति पूर्वक ही शासन करना चाहा, किंतु पारिवारिक एकता के अभाव में वह संभव न था। उनके भाइयों ने ही राज्य के कितने स्थानों को अपने व्यक्तिगत अधिकार में ले लिया। सबसे अधिक विरोध था वीरसिंहदेव का। सम्राट अकबर भी वीरसिंहदेव के व्यवहार और कार्यों से रुष्ट थे।

सम्राट अकबर की हिंदुओं के साथ तुष्टीकरण की धार्मिक नीति थी, जिसे विदेशी मुसलमान पसंद न करते थे। उन्होंने शाहजादा सलीम को उल्टी-सीधी बातों से बहकाकर उसके द्वारा एक विद्रोह खड़ा कर दिया, जिससे सम्राट और शाहजादे में मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया। सलीम को संदेह था कि प्रधान मंत्री अबुलफजल उसके विरुद्ध बादशाह के कान भर कर उसको उत्तराधिकार से वंचित करना चाहता है। इस कारण उसने अबुलफजल को मरवा डालने का विचार किया।

वीरसिंह ने इसका बीड़ा उठाया। शाहजादा सलीम ने भी उन्हें वचन दिया कि अनुकूल अवसर पर वे इसका प्रत्युपकार करेंगे। सं० १६५९ (१२ अगस्त सन् १६०२ ई०) में वीरसिंह ने अबुलफजल को मार डाला। इस समाचार से अकबर को बड़ा दु:ख हुआ। उसने वीरसिंह को पकड़ने के लिए एक सेना भेजी तथा राजा रामशाह को भी उस कार्य में सहायता करने के लिए आज्ञा दी। बुंदेलखंड के घने जंगलों में वीरसिंह छुप गये और इधर-उधर अज्ञात रूप से रहने लगे। सं० १६६२ में

अकबर की मृत्यु हो जाने पर सलीम भारत-सम्राट हुआ। उसने जहाँगीर की उपाधि धारण की और वीरसिंह की इच्छानुसार शीघ्र ही स० १६६२ में उन्हें ओरछे के राजसिंहासन पर बैठाया। रामशाह ने उसका निष्फल विरोध किया। सम्राट ने रामशाह को चंदेरी और बानपुर का राज्य, जो उस समय मुगल साम्राज्य का ही भाग था, दे दिया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अकबर और सलीम (जहाँगीर) में प्रेम-भाव नष्ट हो चुका था। जहाँगीर का ज्येष्ट पुत्र खुसरो भी अकबर के जीवनकाल में ही इस बात के लिए प्रयत्न कर चुका था कि वह उसका उत्तराधिकारी बने। इस कारण अब उसे भय हुआ कि कहीं जहाँगीर उससे बदला न ले। अतएव जहाँगीर के सिंहासन पर बैठते ही वह मार्ग में लूट मार करता हुआ मथुरा से होकर पंजाब की ओर भागा। उसने नगरों को उजाड़ा और लोगों को तरह तरह के कष्ट पहुँचाये, किंतु उस विद्रोह का शीघ्र ही दमन कर दिया गया। स० १६८४ तक जहाँगीर ने शासन किया।

जहाँगीर की मृत्यु के ३-४ माह पूर्व ही वीरसिंह का भी देहांत हो चुका था। उन्होंने मथुरा के विश्रामघाट पर ८१ मन सोने की तुला का दान किया था। यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने माघ सुदी ५ स० १६७५ को एक ही मुहूर्त में ५२ भवन आदिकों की नींव डलवाई थी†। उनमें केशवदेवजी का मंदिर* मथुरा, जहाँगीर महल ओरछा, पुराना महल दतिया आदि मुख्य हैं। महमूद गजनवी ने स० १२७४ में २० दिन तक मथुरा और पास के ग्रामों को नष्ट-भ्रष्ट किया। उसी प्रकार सुल्तान सिकंदर लोदी ने सं० १५५७ में मथुरा को पूरी तरह बर्बाद किया था। स० १७२६ में औरंगजेब द्वारा मथुरा, वृंदावन तथा अन्य धार्मिक स्थानों के देवालयों का भयंकर विध्वंस हुआ। धार्मिक विद्वेष के इस कुफल से बचाने के लिए उस समय के धर्मप्रिय हिन्दू नरेश यहाँ की सिद्ध और प्रसिद्ध देव-मूर्तियाँ अपने राज्यों में ले गये और वहाँ उनके मंदिर बनवाये।

† देखिये 'ओरछा स्टेट गजेटियर', पृष्ठ २३

* तेतीस लाख रुपया व्यय करके वह मंदिर बना था, जो स० १७२६ में औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता का शिकार हुआ।

—'The Religious policy of the Mughals'
By Shri Shri Ram Sharma

२. धार्मिक वातावरण—

शाक्त संप्रदाय की सृष्टि तो वैदिक काल ही मे हो चुकी थी, किंतु इसकी तंत्रोक्त उपासना में वैदिक उपासना से भिन्नता आ गई। भिन्न-भिन्न आचारों के कारण शाक्त सात श्रेणियों मे विभक्त हैं। भगवती को सतुष्ट करने के लिए पशुबलि इस सम्प्रदाय में अधिक प्रचलित है। इनमे वामाचारियों के समुदाय ने सबसे अधिक उग्रता धारण की और उसके द्वारा कुछ इस प्रकार के आचारों का प्रचार हुआ, जो पवित्र नहीं कहे जा सकते थे। जैन और बौद्ध धर्मों में नियमों की कठोरता, योग-साधना और काया-कष्ट का आधिक्य था। विष्णुस्वामी ने इन दोनों से भिन्न एक ऐसे धर्म की आवश्यकता अनुभव की, जिसमें न काया-कष्ट हो, न भ्रष्टाचार। उन्होंने विष्णु के नाम-स्मरण को मोक्ष का साधन बतलाया। उनका उपदेश ब्राह्मणों तक ही सीमित था, अत उनके संप्रदाय का प्रचार अधिक न हो पाया।

सवत् ८४५ वि० की वैशाख शुक्ला ५ को स्वामी श्री शंकराचार्य जी का जन्म हुआ। उस समय बौद्ध धर्म का अधिक प्रचार था। उन्होंने शास्त्रार्थ में बौद्धों को परास्त कर अद्वैत सिद्धांत का प्रतिपादन किया। साधारण जन समाज मे अद्वैत मार्ग को पूर्ण रूप से समझने की अक्षमता जान कर स्वामी शंकराचार्य ने ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हुए भी कर्म और भक्ति द्वारा ईश्वरोपासना का उपदेश दिया और वैदिक धर्म रक्षा की। उन्होंने ब्रह्मसूत्र, भगवत् गीता और दशोपनिषद् आदि पर ब्रह्मविद्या प्रतिपादक भाष्यों की रचना की। उनके उपदेश से वर्ण व्यवस्था का दृढ़ संगठन हुआ और बौद्ध धर्म लुप्तप्राय हो गया। उनके पश्चात् उनके शिष्यों ने उपदेश देने का काम चालू रक्खा, परंतु इसमे पीछे से कितने ही पंथ हो गये, जो अब तक चले आते हैं।

शकराचार्य के समय में विष्णुस्वामी की गद्दी पर बिल्वमगल थे, जिन्हें सवत् ८६६ में शंकराचार्य के किसी शिष्य ने शास्त्रार्थ मे पराजित कर दिया था। तब से वैष्णव संप्रदाय क्षीण होने लगा तथा शंकराचार्य और उनके शिष्यों के उद्योग से शाकर सम्प्रदाय की उन्नति होने लगी।

स्वामी रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत किंवा श्री संप्रदाय की स्थापना कर वैष्णव संप्रदाय का जीर्णोद्धार किया। उन्होंने जीवात्मा और परमात्मा में भेद बतलाया। ब्रह्म को अद्वैत मानते हुए भी वे उसे

केवल नहीं, किंतु विशिष्ट मानते थे। अद्वैत मत से ब्रह्म को ज्ञान रूपी और जगत् को मायामय किंवा अज्ञान रूपी गिना है। ज्ञान ममता मे अज्ञान का होना असंभव बताकर रामानुज ने अद्वैत को विशिष्ट रूप मे स्वीकार किया है। अवतारों को उन्होंने ब्रह्मरूप कह कर राम-कृष्ण की आराधना का उपदेश करते हुए कृष्ण को भी पूज्य माना है। यह सम्प्रदाय भक्तिप्रधान है। उनकी सहज पूजा-विधि से अनेकों स्त्री-पुरुष आकर्षित हुए और उन्होंने उनके सम्प्रदाय को स्वीकार किया। दक्षिण भारत मे इस सम्प्रदाय का विशेष प्रचार हुआ। श्री शंकराचार्य ने सनातन धर्म को प्रतिष्ठित किया था, शास्त्रों के प्रति श्रद्धा जागृत कर दी थी, किंतु शास्त्रीय आचार की ठीक प्रतिष्ठा होकर हिंदू धर्म का पुनरुद्धार श्री रामानुज आचार्य द्वारा ही पूर्ण हुआ।

श्री रामानुजाचार्य की शिष्य परपरा मे श्री राघवानद थे, जिन्होंने रामानद को दीक्षा दी थी। रामानद का जन्म सवत् १३२४ मे प्रयाग मे हुआ था। उन्होंने रामानुजाचार्य की भॉति दीक्षा केवल ब्राह्मणों तक ही सीमिति न रख कर उसका अधिकारी प्रत्येक स्त्री-पुरुष को माना। उनके दार्शनिक सिद्धातों का आधार विशिष्टाद्वैत की मूल बातों मे ही निहित है, परतु मान्यताओ के विचार से रामानुजीय 'श्री सप्रदाय' और रामानदीय 'रामावत सप्रदाय' मे ऐसे भेद हैं, जिनके कारण रामावत सप्रदाय विरक्त लोगों का एक अलग ही स्वतत्र सप्रदाय माना जाने लगा। श्रीरामानुजाचार्य के श्री सप्रदाय मे अष्टाक्षरीय नारायण मत्र का उपदेश किया जाता है, जब कि रामानंदी संप्रदाय में पडक्षरीय राममंत्र की दीक्षा होती है। श्री संप्रदाय के उपास्य देव क्षीरसागर के शेपशायी चतुर्भुज भगवान विष्णु मे साधारण जनता श्रद्धा के भाव तो प्रकट कर सकती थी, किंतु वह उन्हे अपनी पहुँच से दूर ही समझती थी। रामानदी वैरागी सप्रदाय के पूज्य देव श्रीराम हुए, जो अपने लौकिक स्वरूप, वेश, चरित्र, और अपूर्व मानवीय गुणों के कारण भक्तों को अधिक निकट प्रतीत हुए और वे उनमें जटिल सेवा विधियों को छोड़ कर भक्ति भावना से सरल प्रेम का प्रतीक अनुभव कर सके। इस कारण इस सम्प्रदाय का उत्तर भारत में बहुत जल्दी प्रचार हो गया। उसमें सभी वर्णों के स्त्री-पुरुष दीक्षित हुए। पद्मावती (स्त्री), सुरसुरानंद, पीपा जी क्षत्रिय, कबीर जुलाहा, सेना नाई, धन्ना जाट तथा रैदास चमार आदि इनके कृपापात्र शिष्यों में विशेष

प्रसिद्ध हैं। आज असंख्य वैरागी इस संप्रदाय के अनुयायी हैं। निस्संदेह उस संकटपूर्ण समय में देश, धर्म और आर्य जाति की रक्षा करने के लिए स्वामी रामनंद जैसे शक्तिशाली उदार विचार के दिव्य महापुरुप की आवश्यकता थी। उत्तर भारत में उनके सप्रदाय का अधिक प्रचार हुआ। उस समय मुसलमानों के आक्रमण भारत पर कभी के प्रारभ हो चुके थे और वे बलात् अपने धर्म का प्रसार करना चाहते थे। इस कारण हिंदू-मुसलमानों में बड़ा विद्वेप था। इस भेद-भाव को दूर करने और दोनों मे ऐक्य स्थापित करने मे कितने ही मत-प्रवर्तक उस समय से प्रयत्नशील होते रहे। इनमे कबीरदास जी सर्व प्रथम हैं। उन्होंने सूफियों की प्रेम-साधना और नाथ पथी योगियो के शब्द मार्ग, कुडलिनी, जागरण आदि का समन्वय किया। वे मूर्ति-पूजा को नहीं मानते थे। रामानंद जी के कुछ अन्य शिष्यों द्वारा प्रचारित मत-मतांतर भी विभिन्न, जातियों में प्रचलित हुए।

हैदराबाद राज्यांतर्गत बेदर नामक ग्राम मे स० ११७१ विक्रमी मे निम्बार्क संप्रदाय के सस्थापक श्री निम्बार्काचार्य जी का जन्म हुआ था। उन दिनों भारत मे जैन धर्म का अधिक प्रचार बढ़ रहा था। उन्होंने उसका खंडन कर देवालयों मे राधा-कृष्ण की मूर्तियाँ स्थापित कर उनकी पूजा का उपदेश दिया। उन्होंने जीव को ईश्वर के आधीन तथा जगत् को भी सत्य माना। तात्विक रूप से उनका सिद्धांत द्वैताद्वैत कहलाया। उन्होंने श्रीमद्भागवत को ही परमप्रमाण स्वीकार किया। उनके शिष्य केशव भट्ट के अनुयायी विरक्त होते हैं और हरिव्यास देव के अनुयायी गृहस्थ होते हैं, जो हरिव्यासी सप्रदाय के भी कहे जाते हैं।

महाराष्ट्र में नामदेव दर्जी ने सगुण उपासना द्वारा चमत्कार दिखालाया। उनका जन्म स० १३२७ और मृत्यु स० १४०७ माना जाता है। पंढरपुर के विठोवा विष्णु भगवान् के मदिर में भगवद्भजन करते हुए वे अपने दिन बिताते थे। उनकी अनेकों अलौकिक कथाओं का उल्लेख भक्तमाल में आता है। पहिले उन्होंने किसी से दीक्षा ग्रहण नहीं की और अपने आप भगवान की भक्ति मे लीन रहने लगे, किंतु बाद मे एक, नाथपंथी कनफटे के वे शिष्य हो गये थे। उनके समय मे मुसलमान महाराष्ट्र में आ चुके थे। अत. गुरु से दीक्षा प्राप्त करने के उपरात ज्ञान-चर्चा द्वारा वे हिंदू और मुसलमानो मे से भेद-भाव हटाने वाले विचारो का संकेत करने लगे थे।

विक्रम सं १२६५ की माघ शुक्ला सप्तमी को मद्रास के मंगलूर जिले के उडूपी क्षेत्र मे कुछ दूर वेलज्जिग्राम मे श्रीमध्वाचार्य का जन्म हुआ। उन्होंने स्थान-स्थान पर शास्त्रार्थ करके भक्ति मार्ग की स्थापना की। वे जीव को मुक्ति ज्ञान मे न मान कर केवल भगवत् प्रसाद से मानते थे। इनका द्वैत-सिद्धात शांकर मत से ठीक विपरीत सा हो गया। आचार्य मध्व ने जीव की नित्य प्रथक् सत्ता का प्रतिपादन किया, जिससे उपासना, शास्त्र, परलोक, कर्म आदि सब का पोषण हुआ। भागवत मत के लगभग सभी अन्य सिद्धात कुछ विलक्षणता से मध्वमत मे माने जाते हैं। बंगाल के चैतन्य देव भी इसी सिद्धात के मानने वाले थे। उनका आविर्भाव काल विक्रम संवत १५४२ और गोलोक वास सं० १५६० माना जाता है। वे श्रीमद्भागवत को ही ब्रह्मसूत्र का भाष्य मानते थे। वे गोरांग महाप्रभु के नाम से प्रसिद्ध हुए। कीर्तन करते-करते वे प्रेमोन्मत्त हो उठते थे। श्रीचैतन्य के शिष्य श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी और श्री जीव गोस्वामी ने उनके उपदेशों के अनुरूप ग्रथों का निर्माण किया। श्री महाप्रभु ने भक्ति तथा श्री कृष्ण-कीर्तन की जो धारा प्रवाहित की, वह आज भी अनेक जीवों को पावन कर रही है।

वैशाख कृष्ण ११ सं० १५३५ विक्रमी को श्री वल्लभाचार्य जी का जन्म हुआ। ग्यारह वर्ष की अवस्था मे ही काशी मे माधवेन्द्र पुरी से उन्होंने शास्त्राध्ययन पूर्ण कर लिया था। वहाँ से वे गोवर्द्धन चले गये और फिर कुछ समय बाद दक्षिण भारत मे भ्रमणार्थ गये। उन दिनों विजयनगर के राजा कृष्णदेव की सभा में अद्वैतवादी विद्वानो, शैवों, शाक्तों और वैष्णव मत के आचार्यों मे शास्त्रार्थ हो रहा था। उन्होंने वैष्णव पक्ष से अपने विपक्षियों को शास्त्रार्थ द्वारा पराजित करने मे बडा योग दिया और विष्णुस्वामी के उच्छिन्न मठ की पुन प्रतिष्ठा की। उन्होंने परंपरागत धर्म सिद्धांतों मे अपने विचारों को सम्मिलित कर पुष्टिमार्ग की स्थापना की और अपनी गद्दी गोकुल में रक्खी। वे शुद्धाद्वैत सिद्धांत के प्रतिष्ठापक हुए। इसके अनुसार कार्य-कारण रूप जगत् ब्रह्म ही है। वह न मायिक है और न भगवान से भिन्न। वल्लभ-सम्प्रदाय में श्री कृष्ण के बाल स्वरूप की प्रधान उपासना है।

आषाढ़ शुक्ला ३ संवत् १५८७ को श्री वल्लभाचार्य जी का गोलोक वास हो गया। तदनंतर उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी उनके उत्तराधिकारी हुए। किंतु वे कुछ ही दिनों जीवित रहे और उनके निधन

के कुछ समय पश्चात् श्री वल्लभाचार्य जी के द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ जी ने पुष्टिमार्ग को गद्दी ग्रहण की। उन्होंने श्री वल्लभाचार्य के सिद्धांतों पर भाष्य लिखा तथा उनके और अपने शिष्य वर्ग में से आठ उत्तम कवियों को चुन कर अष्टछाप की स्थापना की। अष्टछाप के इन कवियों में सूरदास, परमानंददास और नंददास मुख्य हैं।

इधर मुसलमान सूफी फकीरों की प्रेममार्गी शाखा विरह को प्रधानता देती आ रही थी। वियोगी होना और अपने प्रियतम की खोज में भटकने का गौरव सूफियों ने प्रकट किया। उन्होंने ईश्वर के विरह को ही भक्त की प्रधान सपत्ति माना और विरह को दुर्लभ वस्तु कहा—

'कोटि माहिं विरला जग कोई। जाहि सरीर विरह दुख होई॥'

सूफी संतों ने कहानी और काव्यों द्वारा अपने सिद्धांतों का प्रचार किया। ऐसे ही समय में हरित्रयी (अर्थात्-श्री हरिवंश जी गोस्वामी, श्री हरिदास जी स्वामी और श्री हरिराम जी व्यास) ने राधाकृष्ण के संयोग को प्रधानता देकर मिलन-सुख-सर्वस्व के सिद्धांत पर उपासना को केन्द्रित कर रसमय साहित्य का सृजन किया। उन्होंने सखी-भाव से राधिका जी की उपासना की, जिनकी कृपा से कृष्ण का प्रसाद मिल सकता है। विषय विमोहित जीव काम को प्रेम मान कर पाप-पंक मे फँस जाते हैं। प्रेम दिव्य स्वर्गीय सुधा है, जिसके रसास्वादन का अनुभव उन्होंने किया। यथार्थ में यही दिव्य प्रेम काम का नाश कर सकता है। यह उपासना गोपियों के प्रेमादर्श पर प्रचलित हुई, इस कारण इसमें रास-लीला का भी समावेश हुआ। वृंदावन धाम की महिमा का उन्हे अनुभव हुआ। भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र अपनी उत्तरार्ध भक्तमाल में लिखते हैं—

निंबारक मत विदित, प्रेम कौ सारहिं जान्यौ।
जुगल केलि-रस रीति, भलै इनकर पहिचान्यौ॥
सखी-भाव अति चाव, महल के नित अधिकारी।
पिय हू सों वढ़ि हेत, करत जिन पै निज प्यारी॥
जग दान चलायौ भक्ति कौ, व्रज सरवर जल जलज खिलि।
जान्यौ वृंदावन रूप 'हरिदास, व्यास, हरिवंस' मिलि॥

परम ज्ञानी उद्धव ने भी गोपियों से प्रेम की दीक्षा लेकर गोपी-भाव ग्रहण किया था। गोपियों के मन, प्राण सब कुछ श्री कृष्ण के हैं। वे श्रीकृष्ण के सिवा अन्य किसी को नहीं जानतीं। उनका जीवन श्रीकृष्ण-सुख के लिए है। माधुर्य-भाव की इस अनन्य उपासना मे केवल श्रीकृष्ण (ब्रह्म) को पुरुष और समस्त सृष्टि को स्त्री माना गया है।

इस संबंध मे उसी काल का एक आख्यान बहुत ही प्रसिद्ध है। वृंदावन के जीव गोस्वामी किसी स्त्री का मुख नही देखते थे। भक्ताग्रगण्या मीराबाई जब वृंदावन गई और वे गोस्वामीजी से भेंट करने पहुँची, तो उक्त कारण से जीव गोस्वामी ने उनसे मिलना स्वीकार नही किया। मीराबाई ने उनके पास यह प्रश्न भेजा कि क्या श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कोई और पुरुष भी है? यदि नहीं, तो एक स्त्री को दूसरी स्त्री से मिलने में क्या संकोच है? इस प्रश्न का जीव गोस्वामी से उत्तर न बन पडा और वे शीघ्र ही मीराबाई से मिलने के लिए बाहर आ गये। मीराबाई कांता भाव से श्रीकृष्ण की पूजा करती थीं।

स्वामी हरिदास जी लभगभ मे २५ वर्ष की अवस्था में वृंदावन आये। युगल-स्वरूप के उपासक और निकुंज-लीला के प्रेमी श्री स्वामी जी के ठाकुर श्री कुंजविहारी जी हैं। वे व्रज के अन्य स्थानों से संबंधित कृष्ण की अपेक्षा वृंदावन विहारी की आराधना करते थे, क्यो कि श्रीकृष्ण की लीलाओं मे व्रज के अन्य स्थानो मे माता-पिता आदि के संयोग से प्रिया और प्रियतम मे कुछ समय के लिए वियोग रहता है। इस प्रकार की भावना से माधुर्य रस मे वे पगे थे। प्रसिद्ध गायक तानसेन के गुरु वही थे और बादशाह अकबर वेश बदल कर उनका संगीत सुनने आया था।

श्री हितहरिवंशजी सं० १५९०† मे वृंदावन आये। श्री राधावल्लभ जी की मूर्ति वहाँ पधरा कर उन्होंने श्री हितराधावल्लभीय संप्रदाय को खड़ा किया। स्वकीया-परकीया, विरह-मिलन एव स्व-पर-भेद रहित नित्य विहार रस ही हितहरिवंश जी का इष्ट तत्व है।

यद्यपि श्रीहरिराम व्यासजी द्वारा भी हरिव्यासी संप्रदाय का स्थापित होना कहा जाता है, तथापि लेखक की सम्मति के अनुसार उन्होंने कोई निज का संप्रदाय नहीं चलाया। इस विषय का विवेचन इसी पुस्तक मे 'भ्रांतियो का निराकरण' नामक प्रसंग में किया गया है।

उस समय के कृष्ण पूजा के संप्रदाय-प्रवर्तकों ने केवल साधन अथवा भक्ति और पूजा-विधि पर ही अधिक बल दिया, दार्शनिक सिद्धांत पक्ष में उन्होंने संकेत मात्र ही किया था। अखिल भारतीय श्री हितराधावल्लभीय वैष्णव महासभा वृंदावन द्वारा प्रकाशित व्यास-वाणी की प्रस्तावना में तथा श्रीहित सुधासागर (गुजराती) की विज्ञप्ति मे श्रीहिताचार्य का सिद्धांत 'सिद्धाद्वैत' लिखा गया है। संप्रदाय प्रवर्तक अथवा उनके

† कोई कोई उनका वृंदावन आगमन काल सं० १५६५ वि० मानते है।

समकालीन भक्तों और अनुयायियों द्वारा सांप्रदायिक दार्शनिक सिद्धांतों पर विवेचनात्मक ग्रंथ न होने के कारण इस वाद का स्पष्टीकरण नहीं होता। और यही कारण है कि ऐसे सम्प्रदायों को कभी-कभी उनके पूर्ववर्ती अनुरूप दार्शनिक सिद्धांतों के अंतर्गत ही मान लिया जाता है।

विक्रम की १६ वीं और १७ वीं शताब्दी में भारत पर मुसलमानों का शासन था, तथा इतने अधिक धर्म और मत-मतांतरों का यहाँ प्रचलन था कि उनका सूक्ष्म परिचय देना भी असंभव सा है। किंतु उस समय को वैष्णव धर्म और हिंदी साहित्य के सृजन की दृष्टि से देखने पर स्वर्ण युग कहा जा सकता है। वृंदावन में अनेकों भक्तों ने अपनी उपासना के द्वारा मानव हृदय पर अधिकार किया। उनकी साधना का एक अंग पद-रचना भी हो गया। इससे उनकी वाणी के द्वारा हिंदी साहित्य की भी अपार श्री-वृद्धि हुई।

यद्यपि जन साधारण को संस्कृत का ज्ञान न था, तब भी पहिले के धर्म-प्रचारक अपने सिद्धांतों के प्रतिपादन में ग्रंथों की रचना संस्कृत में ही करते चले आते थे। हिंदी भाषा में ग्रंथ लिखना उस समय के विद्वान अपने स्वाभिमान के विरुद्ध समझते थे†। इससे जन साधारण में

‡ रीवा नरेश महाराजा विश्वनाथसिंह (राज्यकाल सं० १८६० से सं० १९११ तक) द्वारा किये गये वेदांत सूत्र पर राधावल्लभीय भाष्य लेखक ने रीवा नरेश के सरस्वती भंडार (बस्ता नं० १४, पुस्तक संख्या ५१) में देखा है। पुष्पिका में 'राजाबहादुर' शब्द के प्रयोग से उसका रचना काल सं० १८६० के पूर्व का सिद्ध होता है। २३३ पत्र संख्या (लगभग ५८०० श्लोक) के कलेवर के इस ग्रंथ पर इस विषय के विद्वानों का ध्यान आकर्षित होना चाहिये। इस ग्रंथ की सं० १९०४ में लिपिबद्ध एक प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है—'इति श्रीमद्भगवतावतार वेदार्थ निर्णायक श्रीमद् वेद-वेदांताचार्य श्रीमद्वेदव्यास कृत वेदांत सूत्राणा सिद्धि श्री महाराजधिराज श्री महाराजा श्री राजा श्री राजाबहादुर श्री सीतारामचन्द्र कृपापात्राधिकारी श्री विश्वनाथसिंह जू देव कृत श्री राधावल्लभीयमत प्रकाशक भाष्ये चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थ पाद. ४ चतुर्थाध्यायश्च सिद्ध (ज्येष्ठ शुक्ल ६ स १९०४)।'

† हिंदी साहित्य के आचार्य महाकवि केशवदास जी ने कविप्रिया (रचनाकाल सं० १६५८ वि०) में अपने लिए भाषा कवि होने में हीनता व्यक्त की है—

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास।
भाषा-कवि भो मंदमति, तेहि कुल केसवदास॥

—दूसरा प्रभाव दोहा ॥१७॥

उनके सिद्धांतों का पूर्ण रूप से प्रचार नहीं हो पाता था। किंतु उस युग के वैष्णव संतों ने मधुर गेय पदों द्वारा आनंदकंद श्रीकृष्ण और उनकी आल्हादिनी शक्ति श्री राधिका जी की रूप-माधुरी का गान कर जनता को अपनी ओर आकृष्ट किया। उन्होंने अपने सिद्धांत और उपदेशों को भी पदों और दोहों आदि स्मरणीय छंदों में तत्कालीन लोक भाषा में ही प्रकट किया।

गीत-गोविंद के रचयिता महाकवि जयदेव द्वारा प्रेम संगीत की जिस सरिता का उद्गम १२वीं शताब्दी में प्रकट हुआ था, उसमें रस-मग्न कर देने के लिए १६ वीं और १७ वीं शताब्दी के भक्त कवियों ने सब कुछ छोड़कर प्रेम नदी के प्रवाह को बढ़ाने में अपने मधुर गीतों द्वारा पूर्ण योग दिया। उन भक्तों ने प्रेम तत्व का बडे विस्तार के साथ निरूपण किया और वे स्वयं उसमें इतने मग्न हो गये कि उनको संसार की किसी अन्य स्थिति का ध्यान ही न रहा। इसका प्रधान कारण था भक्ति के आलंबन के लिए श्री कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति का चुनाव।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम के उपासक भक्त उनके मर्यादित चरित्रों के चित्रण में आदर्श और अनुकरणीय व्यवहार की लीलाओं का गान कर चरित्र-निर्माण की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करते थे। महाकवि तुलसीदास उनमें शिरोमणि हैं।

किंतु जहाँ कृष्ण-भक्ति शाखा के भक्त कवियों पर आचार्य रामचंद्र जी शुक्ल आदि द्वारा साधारणतया यह दोषारोपण किया गया है कि वे अपने रंग में मस्त रहने वाले जीव थे, तुलसीदास के समान लोक संग्रह का भाव उनमें न था†, वहाँ श्री हरिराम जी व्यास के लिए उन्होंने लिखा है कि 'इनकी रचना परिमाण में भी बहुत विस्तृत है और विषय भेद के विचार से भी अधिकांश कृष्ण भक्तों की अपेक्षा व्यापक है। ये श्री कृष्ण की बाल लीला और शृंगार लीला में लीन रहने पर भी बीच बीच में संसार पर भी दृष्टि डाला करते थे। इन्होंने तुलसीदास जी के समान खलों, पाखंडियों आदि का भी स्मरण किया है और रस गान के अतिरिक्त तत्व निरूपण में भी ये प्रवृत्त हुए हैं‡।

† हिंदी साहित्य का इतिहास (शुक्ल) पृष्ठ १६४

‡ हिंदी साहित्य का इतिहास (शुक्ल) पृष्ठ १९०

३. सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति—

तेरहवीं शताब्दी से भारत पर मुसलमानों का शासन प्रारंभ हो गया था। उन्होंने राज सत्ता के वल पर अपने धर्म का प्रचार किया। हिंदुओं के मदिरो और मूर्तियों को तोड़ तथा उन्हे वलात् अथवा भौतिक सुविधाओं एव प्रलोभनो से अपने धर्म परिवर्तन के लिए वाध्य कर उन्होंने अपने धर्मानुयायियों की सख्या मे तो वृद्धि की, किंतु वे नये मुसलमान अपनी हिंदू रीति-रिवाजों पर पूर्ववत् चलते रहे। हिंदुओं पर इस प्रकार के अत्याचारों ने शासक और शासित में प्रेम भाव ही उत्पन्न न होने दिया। विवशता के पाश मे फँसे हुए उन निस्सहाय प्राणियों को केवल भगवान् का भरोसा था। वे मंदिरों मे उनके उत्सव के गीत गाकर आनंद तो मना लेते थे, पर हृदय मे उत्साह और गौरव को स्थान न था।

मुगलों का साम्राज्य स्थापित होने पर कुछ समय के लिए यह धर्मांधता कम हो गई। काव्य, सगीत, ललित कलाओ की उन्नति होने लगी। विलास की ओर भी जन-रुचि वढ़ी। उसे रोकने के लिए तत्कालीन नेता और आचार्यों को सतर्क होना पडा।

मुसलमानों मे जाति-पाँति का वधन न था। किंतु हिंदुओं मे व्यवसाय और स्थान के आधार पर जो जातियाँ रूढिगत वन गई थीं, उन्होंने अपना-अपना एक ऐसा संगठित रूप धारण कर लिया था कि उससे किसी व्यक्ति का वहिष्कृत कर दिया जाना ही कठिनतम दंड था†। अपनी ही जाति एवं उपजाति के अंतर्गत विवाह सवंध की पारिधि थी, और वाल विवाह की प्रणालो प्रचलित थी। सती-प्रथा पर समाज को गौरव था। उत्तरी भारत के गृहस्थ लोग नगे सिर वाहर जाना असभ्यता मानते थे। कन्या की अपेक्षा पुत्र-जन्म पर विशेप आनदोत्सव किया जाता था।

प्रतिष्ठित मुसलमानों के घर पर्दा की प्रथा के अनुकरण तथा सत्ताधारियो द्वारा वलात् सतीत्व नष्ट कर देने की आशंका से वचने के लिए हिंदुओं मे भी पर्दा प्रथा आ घुसी।

ब्राह्मणों का प्रभाव कम नहीं हुआ था। त्यागी ब्राह्मण सिले हुए वस्त्र व्यवहार मे नहीं लाते थे। उनके प्रति जनता की श्रद्धा थी। पद्रहवीं

---

† "सव तें कठिन जाति अपमाना।"

—गोस्वामी तुलसीदास

और सोलहवीं शताब्दी मे भारत मे मुगल साम्राज्य के स्थापित हो जाने पर हिंदुओं को कुछ शांति मिली। उनकी सामाजिक व्यवस्था में कोई अंतर नहीं आया। अकबर के समय में जिन्होंने इस्लाम को स्वीकार किया, उन्होंने भय से नहीं, वरन् अधिकाशत भौतिक उन्नति की आशा और प्रलोभन से। विलासता के प्रति आकर्षण भी एक इसका एक कारण बना।

४. साहित्यिक वायु-मंडल—

भक्ति-काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना गया है। सतों की निर्गुण ब्रह्मोपासना तथा भक्तों की साकार पूजा ने जिस साहित्य का निर्माण किया, उससे धर्म, दर्शन, काव्य एवं लोक-जीवन सभी पुष्ट हुए। भक्ति के साथ-साथ काव्य-कला की महत्वपूर्ण निधि उसी काल मे एकत्रित हुई। अनपढ़ व्यक्ति और महान् दार्शनिक तत्ववेत्ता सभी भक्ति और तत्सबधी काव्य में केवल रसलीन ही नहीं हुए, वरन् उन्होंने स्वय उसकी वृद्धि मे यथा शक्ति योग दिया।

नामदेव, कबीर और रैदास आदि की सत-वाणी, कुतबन और मलिक मुहम्मद जायसी आदि सूफी कवियों की प्रेम-गाथाओं को बड़े चाव से सुना गया था। १६ वीं और १७ वीं शताब्दी मे गोस्वामी तुलसीदास जी जैसे रामभक्ति-काव्य के आदर्श प्रणेता, सूरदास आदि कृष्ण-प्रेम सगीत के साहित्य-सागर साकार उपासना के भावों से भक्तों को आनंदित करने लगे। हिंदी के प्रेमियों को अभी तक उस युग के पूरे साहित्य का आवश्यक परिचय ही नहीं हो पाया है। साम्प्रदायिक व्यवस्थाओं के अतर्गत सामुदायिक रूप से उस युग की 'अष्टछाप' नाम से एक व्यवस्थित मडली की सूचना तो मिलती है, किंतु यह भी अनुमान किया जा सकता है कि एक दूसरे के अधिक निकट संपर्क मे रहने वाले भक्त कवियों की भी स्वाभाविक रूप से संगठित कुछ ऐसी मडलियाँ रही होंगी, जिनकी गोष्ठियों से समय को साहित्य-सृजन के लिए प्रेरणा मिली। भक्ति, संगीत और काव्य के अधिकारी तीन प्रमुख महात्माओं की मंडली का, जिसे हम 'हरित्रयी' कह सकते हैं, उसी समय आविर्भाव हुआ था।

५. हरित्रयी—

गीत गोविंद के प्रणेता भक्त कवि जयदेव ने जिस सगीत लहरी को विक्रम की १२ वीं शताब्दी में उठाया था, उसकी गूँज ब्रजभाषा कवियों द्वारा ४-५ सौ वर्ष के अनंतर प्रतिध्वनित हुई। १६ वीं शताब्दी में श्री बल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग की स्थापना की, और अपने संप्रदाय में

श्री कृष्ण के बाल स्वरूप की उपासना को प्रधान रूप से प्रतिष्ठित किया। उनके शिष्यों मे कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्णदास अच्छे कवि और संगीतज्ञ थे। श्री वल्लभाचार्य जी के परमधाम गमन के उपरांत सवत् १६०२ मे उनके पुत्र गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी ने श्रीनाथ जी की आठ झाँकियों मे नियमित कीर्तन के लिए उक्त चार कवियों मे अपने चार शिष्य कवि और सम्मिलित कर अष्टछाप की स्थापना की†। अष्टछाप के उन कवियों ने हिंदी साहित्य को रस पूर्ण बनाने मे महत्वपूर्ण योग दिया, किंतु अष्टछाप के वे सदस्य मनोनीत थे।

पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त कृष्णोपासना के अन्य संप्रदाय वाले ऐसे कितने ही भक्त कवि थे, जिनकी काव्य-रचना के लिए हिंदी साहित्य चिर ऋणी रहेगा। जिस प्रकार अष्टछाप की एक व्यवस्थित मडली निर्धारित कर दी गई थी, वैसी योजना अन्य सम्प्रदायों मे प्रकट रूप से नहीं पाई जाती, तथापि श्री ठाकुर जी की सेवा और उत्सवो में गायन के लिए सभी सम्प्रदायों के भक्त कवि अपने मधुर स्वरों में पद-गान करते थे। कृष्ण भक्ति साहित्य के उन प्रणेताओं मे हरिवंश गोस्वामी, हरिराम व्यास, हरिदास स्वामी, ध्रुवदास, गदाधर भट्ट, श्री भट्ट, सूरदास मदनमोहन एव मीराबाई आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री हित हरिवशजी गोस्वामी कृष्ण की वशी के अवतार माने जाते हैं। उनकी सरस एवं प्रौढ़ पद रचना है भी बड़ी मधुर और हृदय को आनंदित कर देने वाली। उनके काव्य से पता चलता है सगीत पर भी उनका अच्छा अधिकार था। उन्होंने श्री कृष्णोपासना की एकमात्र माधुर्य भक्ति को बताने वाला श्री हित राधावल्लभीय मार्ग को प्रकाशित किया तथा अपने समय के कवियो को राधा की प्रधानता देने वाले साहित्य के सृजन मे प्रोत्साहित किया। उनके अनेक शिष्य हुए, जिन्होंने उनके सिद्धातों के अनुसार विचारधारा को व्यक्त कर मधुर साहित्य के विस्तार को बढ़ाया।

उस समय कृष्ण-पूजा के सभी सम्प्रदायों मे श्रीमद् भागवत के अनुसार माधुर्य भाव की उपासना का समावेश हो चुका था, तथापि यह मानना होगा कि राधा को उपासना क्षेत्र में श्रीकृष्ण से अधिक महत्व देने वाले विचारों का प्रचार उन्होने ही सम्यक् रीति से किया एव साहित्यकारों और भक्तो को इस प्रकार के साहित्य-सृजन के लिए प्रोत्साहित किया।

---

† 'अष्टछाप परिचय', पृष्ठ ३४

वल्लभाचार्य जी द्वारा भी मधुर भक्ति को पुष्टिमार्ग में मान्य तो कहा गया था, किंतु उनकी प्रधान उपासना बालकृष्ण की ही थी। अतएव अष्टछाप के कवियों पर तत्कालीन माधुर्य साहित्य के लिए हरित्रयी का भी कुछ प्रभाव स्वीकार करना पडेगा।

वल्लभ सम्प्रदायी वार्ताओं में पुष्टिमार्गीय भक्तों के चरित्र गौरव पूर्ण रीति से कहे गये हैं। चौरासी वैष्णवन की वार्ता से भी हितहरिवंश जी एवं हरिदास जी आदि द्वारा अष्टछाप के वयोवृद्ध कवि कुंभनदास को राधा संबंधी पद-गान के लिए प्रोत्साहित किये जाने की सूचना प्राप्त होती है†।

महात्मा हरिदास स्वामी स्वयं एक उच्च श्रेणीके कवि थे, किंतु इससे भी अधिक थे वे संगीतज्ञ। अकबरी दरबार का सर्वश्रेष्ठ गायक

---

† "और एक समय वृंदाबन के संत महंत कुंभनदास जी सों मिलिवे कों श्री गिरिराज पै आये। सो यासों आये जो जाने, जो इनसों श्री ठाकुर जी साक्षात् बोलत हैं। और कुंभनदास जी श्री स्वामिनी जी की बधाई गावे हैं, तासों इनसों मिलि कें पूछें जो श्री स्वामिनी जी को वर्नन हमहू किये हैं। देखें जो कुंभनदास जी कैसौ वर्नन करत हैं? सो यह विचारि कें हरिवंस, हरिदास प्रभृति महंत-स्वामी आय कुंभनदास जी सों मिलि के पूछे जो कुंभनदास जी तुमने जुगल स्वरूप के कीर्तन किये हैं, सो हमने तिहारे कीर्तन बहौत सुने, परि कोई श्री स्वामिनी जी कौ कीर्तन नाहीं सुन्यौ, तासों आपु कृपा करिके कोई पद श्री स्वामिनी जी कौ सुनावो। तब कुंभनदास जी ने श्री स्वामिनी जी कौ एक पद करिके उनकों सुनायौ पद—राग रामकली—'कुंवरि राधिके! तुव सकल सौभाग्य सीवा, या बदन पर कोटि सत चंद वारि डारों।' यह पद कुंभनदास जी ने गायौ सो सुनिकें श्रीवृंदावन के संत महंत बहौत प्रसन्न भये। और कहे जो हमने श्री स्वामिनी जी के पद बहौत किये हैं। तामें चंद्रमा आदि की उपमा बहौत दी हैं। परि कुंभनदास जी! तुमने तो सत-कोटि चंद्रमा वारि डारें हैं। तासों कुंभनदास बी कों श्री स्वामिनी जी आगें जगत में कोऊ उपमा देने योग्य नाही [दीमत] सो या प्रकार अद्भुत स्वरूप कौ वर्नन किये हैं। ता पाछें कुंभनदास जी सों विदा होय के सिगरे वृंदाबन में आये। सो ये कुंभनदास जी किसोर भावना, लीला रस में मग्न रहते। सो ऐसे कृपापात्र भगवदीय हैं।"

—**चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस, मथुरा) के अंतर्गत अष्टसखान की वार्ता पृष्ठ ७५-७६**

तानसेन के यह संगीत गुरु थे। उनके सगीत की कीर्ति सुनकर अकबर वादशाह का भेष वदल कर तानसेन के साथ उनके दर्शनार्थ आना वडी प्रसिद्ध घटना है। वे अत्यंत निस्पृह और सिद्ध भक्त प्रसिद्ध हैं। माधुर्य-भाव की उपासना को लेकर उन्होंने भी साधना का एक मार्ग प्रदर्शित किया, जो वाद में हरिदासी संप्रदाय कहलाया।

स्वामी हरिदास जी ने वड़े उत्कृष्ट भावों से पूर्ण पदों को लिखा। उनके पद राग-रागिनियों की संगीत लहरी के द्वारा झकृत हुए थे।

हरिराम व्यास ने किसी सम्प्रदाय की स्थापना तो नहीं की, किंतु अपने आदर्श आचरण द्वारा रसिकानन्य धर्म की रीति को पुष्ट वनाया। उन्होंने अपने सगीतमय काव्य से न केवल उपासना और सद्व्यवहार की शिक्षा दी, वरन् हिंदी साहित्य की वृद्धि करने में एक महत्वपूर्ण योग दिया। लोक कल्याण की भावना से ओतप्रोत उनका काव्य मर्यादा और माधुर्य का साथ-साथ निर्वाह करता है। एक ओर तो वे राधाकृष्ण की विहार लीला का आनंद लेते हैं और दूसरी ओर ससार के दोषों को भी दूर करने में संलग्न हैं। भाषा, भाव और कला की दृष्टि से भी उनका काव्य प्रौढ़ है। उनकी शिष्य परपरा में भी अनेकों कवि हुए, जिन्होंने हिंदी साहित्य की श्री वृद्धि की।

व्यास जी को रास लीला से विशेष प्रेम था और वृंदावन में रासोत्सव की योजनाओं में उनका मुख्य स्थान था। इस प्रकार नाट्य, सगीत, नृत्य, काव्य आदि ललित कलाओं के वे ज्ञाता थे। उनके देव नामक एक शिष्य ने 'देव माया प्रपंच नाटक' की रचना की, जो ६ अंकों में समाप्त हुआ†। हिंदी के नाटकों में कदाचित् यह सर्व प्रथम नाटक है।

व्यास-वाणी में एक पद है, जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा ललिता सखी से मानिनी राधा को मनाने के लिए निवेदन किया गया है। इस कथन में राधा और कृष्ण के मिलन से उनके तीन भक्तो को आनंद प्राप्ति का सुंदर सकेत है—

ललिता ! राधाहिं नैकु मनाइ दै।
तेरे तीन जाचकनि, पाँच पदारथ वेगि गनाइ दै॥

ये 'तीन जाचक' हैं कौन ? निस्संदेह हरिवंश गोस्वामी, हरिदास स्वामी और स्वय हरिराम व्यास, जिनकी वाणी के कितने ही पदों मे

† खोज रिपोर्ट १९०४ ई०, सूचना सख्या ३५.

वल्लभाचार्य जी द्वारा भी मधुर भक्ति को पुष्टिमार्ग मे मान्य तो कहा गया था, किंतु उनकी प्रधान उपासना बालकृष्ण की ही थी। अतएव अष्टछाप के कवियों पर तत्कालीन माधुर्य साहित्य के लिए हरित्रयी का भी कुछ प्रभाव स्वीकार करना पडेगा।

वल्लभ सम्प्रदायी वार्ताओं मे पुष्टिमार्गीय भक्तों के चरित्र गौरव पूर्ण रीति से कहे गये है। चौरासी वैष्णवन की वार्ता से भी हितहरिवंश जी एव हरिदास जी आदि द्वारा अष्टछाप के वयोवृद्ध कवि कुंभनदास को राधा सबधी पद-गान के लिए प्रोत्साहित किये जाने की सूचना प्राप्त होती है† ।

महात्मा हरिदास स्वामी स्वय एक उच्च श्रेणीके कवि थे, किंतु इससे भी अधिक थे वे सगीतज्ञ । अकबरी दरबार का सर्वश्रेष्ठ गायक

---

† "और एक समय वृंदावन के सत महत कुंभनदास जी सों मिलिवे कों श्री गिरिराज पे आये। सो यासो आये जो जाने, जो इनसो श्री ठाकुर जी साक्षात् बोलत हैं। और कुंभनदास जी श्री स्वामिनी जी की बधाई गाये है, तासों इनसों मिलि कें पूछें जो श्री स्वामिनी जी को वर्नन हमहू किये हैं। देखें जो कुंभनदास जी कैसो वर्नन करत हैं? सो यह विचारि कें हरिवंस, हरिदास प्रभृति महत-स्वामी आय कुंभनदास जी सों मिलि के पूछे जो कुंभनदास जी तुमने जुगल स्वरूप के कीर्तन किये हैं, सो हमने तिहारे कीर्तन बहौत सुने, परि कोई श्री स्वामिनी जी कौ कीर्तन नाहीं सुन्यौ, तासों आपु कृपा करिके कोई पद श्री स्वामिनी जी कौ सुनावो। तब कुंभनदास जी ने श्री स्वामिनी जी कौ एक पद करिके उनकों सुनायौ पद—राग रामकली—'कुंवरि राधिके! तुव सकल सौभाग्य सीवा, या बदन पर कोटि सत चंद वारि डारों।' यह पद कुंभनदास जी ने गायौ सो सुनिकें श्रीवृंदावन के सत महत बहौत प्रसन्न भये। और कहे जो हमने श्री स्वामिनी जी के पद बहौत किये हैं। तामें चद्रमा आदि की उपमा बहौत दी हैं। परि कुंभनदास जी! तुमने तो सत-कोटि चद्रमा वारि डारें हैं। तासों कुंभनदास जी कों श्री स्वामिनी जी आगें जगत में कोऊ उपमा देने योग्य नाही [दीसत] सो या प्रकार अद्भुत स्वरूप कौ वर्नन किये हैं। ता पाछें कुंभनदास जी सों विदा होय के सिगरे वृंदावन में आये। सो ये कुंभनदास जी किसोर भावना, लीला रस में मग्न रहते। सो ऐसे कृपापात्र भगवदीय हैं।"

—चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस, मथुरा) के अतर्गत अष्टसखान की वार्ता पृष्ठ ७५—७६

तानसेन के यह संगीत गुरु थे। उनके संगीत की कीर्ति सुनकर अकबर बादशाह का भेष बदल कर तानसेन के साथ उनके दर्शनार्थ आना बड़ी प्रसिद्ध घटना है। वे अत्यंत निस्पृह और सिद्ध भक्त प्रसिद्ध हैं। माधुर्य-भाव की उपासना को लेकर उन्होंने भी साधना का एक मार्ग प्रदर्शित किया, जो बाद में हरिदासी संप्रदाय कहलाया।

स्वामी हरिदास जी ने बड़े उत्कृष्ट भावों से पूर्ण पदों को लिखा। उनके पद राग-रागिनियों की सगीत लहरी के द्वारा झंकृत हुए थे।

हरिराम व्यास ने किसी संप्रदाय की स्थापना तो नहीं की, किंतु अपने आदर्श आचरण द्वारा रसिकानन्य धर्म की रीति को पुष्ट बनाया। उन्होंने अपने सगीतमय काव्य से न केवल उपासना और सद्व्यवहार की शिक्षा दी, वरन् हिंदी साहित्य की वृद्धि करने में एक महत्वपूर्ण योग दिया। लोक कल्याण की भावना से ओतप्रोत उनका काव्य मर्यादा और माधुर्य का साथ-साथ निर्वाह करता है। एक ओर तो वे राधाकृष्ण की विहार लीला का आनंद लेते हैं और दूसरी ओर ससार के दोषों को भी दूर करने में सलग्न हैं। भाषा, भाव और कला की दृष्टि से भी उनका काव्य प्रौढ़ है। उनकी शिष्य परंपरा में भी अनेकों कवि हुए, जिन्होंने हिंदी साहित्य की श्री वृद्धि की।

व्यास जी को रास लीला से विशेष प्रेम था और वृंदावन में रासोत्सव की योजनाओं में उनका मुख्य स्थान था। इस प्रकार नाट्य, सगीत, नृत्य, काव्य आदि ललित कलाओं के वे ज्ञाता थे। उनके देव नामक एक शिष्य ने 'देव माया प्रपंच नाटक' की रचना की, जो ६ अंकों में समाप्त हुआ†। हिंदी के नाटकों में कदाचित् यह सर्व प्रथम नाटक है।

व्यास-वाणी में एक पद है, जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा ललिता सखी से मानिनी राधा को मनाने के लिए निवेदन किया गया है। इस कथन में राधा और कृष्ण के मिलन से उनके तीन भक्तों को आनद प्राप्ति का सुंदर सकेत है—

> ललिता ! राधहिं नैकु मनाइ दै।
> तेरे तीन जाचकनि, पाँच पदारथ वेगि गनाइ दै॥

ये 'तीन जाचक' हैं कौन ? निस्संदेह हरिवंश गोस्वामी, हरिदास स्वामी और स्वय हरिराम व्यास, जिनकी वाणी के कितने ही पदों में

---

† खोज रिपोर्ट १९०४ ई०, सूचना सख्या ३५.

पूर्वोक्त दोनो भक्ताचार्यों के कवित्व, सगीत और भक्ति-भाव का स्मरण किया गया है। इससे प्रकट है कि रसिको की यह 'हरित्रयी' सामूहिक रूप से भक्ति, काव्य और संगीत को मधुर प्रेरणा दे रही थी। गुरु-शिष्य-वशावली मे भक्ति को प्रकट करने के लिए इन तीनों महात्माओं के जन्म धारण करने की बात लिखी है—

आयसु सीस जु धार कै, अस रूप धर लीन ।
हरिवंसी, हरिदास जी, प्रगटे व्यास प्रवीन ॥

'लोकेन्द्र ब्रजोत्सव' मे भी तीन ,रसिक से इन्हीं तीन भक्तों का अभिप्राय स्पष्ट किया गया है—

इक दिन गए रास मंडल में, रसिक तीन ही सगहिं ।
श्री स्वामी हरिदास, दूसरे हित हरिवस उमगहिं ॥
तीजे व्यास गए, तिन पाछे दास किसोर सिधारे ।
देखौ रहस, भयौ सुख अदभुत, करुणासिंधु निहारे ॥

भारतेन्दु बाबू हरिश्चद्र ने इन्ही तीन भक्तो की उपासना-साम्य को प्रकट करते हुए कहा है कि—

जग दान चलायौ भक्ति कौ, व्रज सरवर जल जलज खिलि ।
जान्यौ वृंदावन रूप हरिदास, व्यास, हरिवस मिलि ॥

—उत्तरार्द्ध भक्तमाल

भगवत रसिक ने अपनी 'भक्त-नामावली' मे इन्हे एक ही क्रम मे स्मरण किया है। नाभादास जी की 'भक्त माल' में भी उक्त तीनों भक्तों के परिचयात्मक स्वतंत्र छप्पय एक ही क्रम में लिखे गये हैं। इस प्रकार के अन्य ग्रथों मे भी हम यही संकेत पाते हैं कि माधुर्य-भाव की प्रचारिका इस 'हरित्रयी' में एक स्वाभाविक मेल था तथा इसके द्वारा भक्ति काव्य मे महत्वपूर्ण साहित्य की वृद्धि हुई। हरित्रयी के सदस्य अपने समय के सर्वोत्कृष्ट कवि और सगीतज्ञों में से थे। उपर्युक्त 'अष्टछाप' और 'हरित्रयी' के वर्गों के अतिरिक्त अन्य भक्त कवि भी व्यक्तिगत रूप से साहित्य कोष को सरस रचनाओं से भर रहे थे ।

द्वितीय अध्याय

अध्ययन के सूत्र



यों तो प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में कितने ही ग्रंथों से सहायता ली गई है, परंतु इस अध्याय में केवल उन ग्रंथों के परिचय दिये गये हैं, जो या तो बहुत प्राचीन और अप्रकाशित हैं या व्यास जी संबंधी चर्चा उनमें किसी न किसी महत्वपूर्ण विषय पर प्राप्त होती है। कहना न होगा कि ऐसे ग्रंथों के रचना-काल की सम्यक् जानकारी उनमें दिये गये साक्ष्य के मूल्य को अंकित करने मे अपना प्रमुख स्थान रखती है। इसी ध्येय से इन ग्रंथों के रचना-काल पर भी विचार प्रकट किये गये हैं।

साथ ही ग्रंथ की मान्यता के संबध मे भी प्रसंग वश जो सामग्री दृष्टि मे आ पडी है, उसकी भी थोडी-बहुत चर्चा यथा स्थान कर दी गई है।

१. भक्तमाल (श्री नाभादास कृत)—

श्री नाभादास जी रामानदी सम्प्रदाय के वैष्णव थे। उनका वास्तविक नाम नारायणदास था और वे जाति के डोम थे। उन्होंने भक्तमाल मे १९७ छप्पय भक्तों के चरित्र वर्णन में लिखे हैं[1]। यद्यपि भक्तमाल में, उसके रचनाकाल का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, तथापि खोज रिपोर्ट सन् १९१७-१९ की सूचना संख्या ११७ मे इस ग्रंथ का रचना-काल संवत १६५२ लिखा गया है। आचार्य रामचंद्र जी शुक्ल भी इसका रचना-काल संवत् १६४२ के पश्चात् मानते हैं[2] और लिखते हैं कि श्री नाभादास जी सवत् १६५७ के लगभग वर्तमान थे, तथा गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु[3] के बहुत पीछे तक जीवित रहे। अत श्री नाभादास जी श्री व्यास जी के समकालीन थे और अपने जीवन के उत्तर-काल में वृंदावन मे रहते थे।

---

[1] ये छप्पय सख्या एक निजी प्राचीन हस्तलिखित प्रति के अनुसार है। हिंदी साहित्य के इतिहास में छप्पय संख्या ३१६ प्रकट की गई है।

[2] देखिये 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ १४७

[3] सवत् १६८०

पूर्वोक्त दोनों भक्ताचार्यों के कवित्व, संगीत और भक्ति-भाव का स्मरण किया गया है। इससे प्रकट है कि रसिकों की यह 'हरित्रयी' सामूहिक रूप से भक्ति, काव्य और संगीत को मधुर प्रेरणा दे रही थी। गुरु-शिष्य-वंशावली में भक्ति को प्रकट करने के लिए इन तीनों महात्माओं के जन्म धारण करने की बात लिखी है—

आयसु सीस जु धार कै, अस रूप धर लीन।
हरिवंसी, हरिदास जी, प्रगटे व्यास प्रवीन ॥

'लोकेन्द्र ब्रजोत्सव' में भी तीन रसिक से इन्हीं तीन भक्तों का अभिप्राय स्पष्ट किया गया है—

इक दिन गए रास मंडल में, रसिक तीन ही संगहिं।
श्री स्वामी हरिदास, दूसरे हित हरिवंस उमगहिं ॥
तीजे व्यास गए, तिन पाछै दास किसोर सिधारे।
देखौ रहस, भयौ सुख अदभुत, करुणासिंधु निहारे ॥

भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र ने इन्हीं तीन भक्तों की उपासना-साम्य को प्रकट करते हुए कहा है कि—

जग दान चलायौ भक्ति कौ, ब्रज सरवर जल जलज खिलि।
जान्यौ वृंदावन रूप हरिदास, व्यास, हरिवंस मिलि ॥

—उत्तरार्द्ध भक्तमाल

भगवत रसिक ने अपनी 'भक्त-नामावली' में इन्हें एक ही क्रम में स्मरण किया है। नाभादास जी की 'भक्त माल' में भी उक्त तीनों भक्तों के परिचयात्मक स्वतंत्र छप्पय एक ही क्रम में लिखे गये हैं। इस प्रकार के अन्य ग्रंथों में भी हम यही संकेत पाते हैं कि माधुर्य-भाव की प्रचारिका इस 'हरित्रयी' में एक स्वाभाविक मेल था तथा इसके द्वारा भक्ति काव्य में महत्वपूर्ण साहित्य की वृद्धि हुई। हरित्रयी के सदस्य अपने समय के सर्वोत्कृष्ट कवि और संगीतज्ञों में से थे। उपर्युक्त 'अष्टछाप' और 'हरित्रयी' के वर्गों के अतिरिक्त अन्य भक्त कवि भी व्यक्तिगत रूप से साहित्य कोष को सरस रचनाओं से भर रहे थे।

द्वितीय अध्याय

अध्ययन के सूत्र



यो तो प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में कितने ही ग्रंथों से सहायता ली गई है, परंतु इस अध्याय मे केवल उन ग्रथों के परिचय दिये गये हैं, जो या तो बहुत प्राचीन और अप्रकाशित हैं या व्यास जी संबंधी चर्चा उनमें किसी न किसी महत्वपूर्ण विषय पर प्राप्त होती है। कहना न होगा कि ऐसे ग्रंथों के रचना-काल की सम्यक् जानकारी उनमे दिये गये साक्ष्य के मूल्य को अंकित करने में अपना प्रमुख स्थान रखती है। इसी ध्येय से इन ग्रंथों के रचना-काल पर भी विचार प्रकट किये गये हैं।

साथ ही ग्रंथ की मान्यता के संबध में भी प्रसंग वश जो सामग्री दृष्टि मे आ पड़ी है, उसकी भी थोड़ी-बहुत चर्चा यथा स्थान कर दी गई है।

१. भक्तमाल (श्री नाभादास कृत)—

श्री नाभादास जी रामानंदी संप्रदाय के वैष्णव थे। उनका वास्तविक नाम नारायणदास था और वे जाति के डोम थे। उन्होंने भक्तमाल में १९७ छप्पय भक्तों के चरित्र वर्णन मे लिखे हैं[1]। यद्यपि भक्तमाल में उसके रचनाकाल का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, तथापि खोज रिपोर्ट सन् १९१७-१९ की सूचना संख्या ११७ में इस ग्रथ का रचना-काल संवत् १६५२ लिखा गया है। आचार्य रामचंद्र जी शुक्ल भी इसका रचना-काल संवत् १६४२ के पश्चात मानते हैं[2] और लिखते हैं कि श्री नाभादास जी संवत् १६५७ के लगभग वर्तमान थे, तथा गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु[3] के बहुत पीछे तक जीवित रहे। अत. श्री नाभादास जी श्री व्यास जी के समकालीन थे और अपने जीवन के उत्तर-काल में वृंदावन मे रहते थे।

---

[1] ये छप्पय सख्या एक निजी प्राचीन हस्तलिखित प्रति के अनुसार है। हिंदी साहित्य के इतिहास मे छप्पय संख्या २१६ प्रकट की गई है।

[2] देखिये 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ १४७

[3] सवत् १६८०

भक्तमाल के प्रसिद्ध टीकाकार प्रियादास जी(सवत १७६९) ने लिखा है कि गोस्वामी तुलसीदास जी नाभादास जी से वृंदावन मे आकर मिले†। मूल गोसाईं चरित के अनुसार भी यह मिलन संवत १६४९ मे वृंदावन में हुआ था‡।

२. भक्त-नामावली—

भक्त नामावली में श्री व्यास जी से सबंधित तीन दोहे कहे गये है, किंतु उसके रचयिता श्री ध्रुवदास जी¶ ने उसमे ग्रथ का रचना-काल नहो दिया है। इससे उन दोहों का श्री व्यास जी के जीवन चरित्र ज्ञात करने मे उपयोग करने के लिए हमे उक्त ग्रथ का रचना-काल निर्णय करना आवश्यक हो जाता है।

श्री ध्रुवदास जी के ऐतिहासिक वृत्त का कोई पता नहीं चलता। उनकी ग्रथावली का एक सग्रह कानपुर निवासी राधावल्लभीय सेवक लाला लक्ष्मणदास जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री मदनगोपाल जी द्वारा सन् १९३१ ई० में द्वितीयवार प्रकाशित किया गया था। इस प्रकाशन की भूमिका में प० रामरत्न 'रत्नेश' सनाढ्य ने श्री ध्रुवदास जी को श्री हितहरिवंश

---

† "कासी जाय वृंदावन आय मिले नाभा जू सो" कवित्त सख्या ५०८

‡ सोधि सकल तीरथ थपे, किए त्रय मास निवास।
मिले पिहानी के सुकुल, सुकुल, सवत् लगु उनचास ॥७१॥

× × × ×

वृंदावन मे तहँतें जु गये। सुठि राम सुघाट पै वास लये॥
बड़ धूम मच्यौ सुनि सत धुरे। मुनि दरसन कों नरनारि जुरे॥
स्वामी नाभा ढिग गये ते, किय बहुत सनमान।
उच्चासन पधराय सुनि, पूजे सहित विधान ॥७२॥
विप्र सत नाभा सहित, हरि दरसन के हेत।
गये गुसाईं मुदित मन, मोहन मदन निकेत ॥७३॥

—मूल गुसाईं चरित, पृष्ठ २८, २९

¶ श्री श्यामसुंदरदास जी अपने प्रसिद्ध ग्रथ 'हिंदी भाषा और साहित्य' में लिखते हैं कि 'इनके (श्री हितहरिवंश जी के) शिष्यों में ध्रुवदास और व्यास जी प्रधान हुए, जिनकी रचनाओ से हिंदी की पर्याप्त श्री-वृद्धि हुई।'

—देखिये पृष्ठ ३२८

जी के तृतीय पुत्र श्री गोपीनाथ जी का शिष्य लिखा है, तथा श्री हित ध्रुवदास जी को संवत् १६०० मे अपने गुरुदेव श्री गोपीनाथ जी की आज्ञा से श्री देववननगर (देवबंध) से श्री वृंदावन धाम आकर निवास करना प्रकट किया है। किंतु उस लेख में सं० १६०० का निर्देश किस आधार पर है यह नहीं वतलाया गया। ध्रुवदासजी के असली नाम का भी पता नहीं है। यह कहा जाता है कि उनमें पांच वर्ष की अवस्था मे ही भगवद्भक्ति के प्रति लगन उत्पन्न हो गई थी और तभी उन्होंने घर छोड़ दिया था। अल्पायु से ही इस वैराग्य के कारण उनका ध्रुवदास नाम पड़ा। यदि इस किंवदंती के साथ उक्त सं० १६०० का मिलान किया जावे तो उनका जन्म सं० १५६५ के लगभग वैठता है।

श्री वियोगी हरि जी उनका जन्म स० १६५० के लगभग अनुमान करते हैं†, किंतु यह असंभव है, क्यों कि श्री ध्रुवदास जी ने अपने रसानंद नामक ग्रंथ मे उसका रचना काल यही संवत् १६५० स्पष्ट रूप से प्रकट किया है§—

"रसानद याकौ नाम कहावैं। कहत सुनत आनंद रस पावं॥
सवत् सौ षोडस पचासा। बरनत जस ध्रुव जुगल विलासा* ॥"

श्री ध्रुवदासजी ने ४२ ग्रंथों के अतिरिक्त फुटकर पद्य भी लिखे जो उनकी पद्यावली के नाम से श्री बयालीस लीला के परिशिष्ट रूप में संकलित किये गये हैं। उनके केवल पॉच ही ग्रंथों मे रचना काल का सवत् उपलब्ध है, अत शेप ३८ ग्रंथों मे से कुछ तो अवश्य ही रसानन्द के पूर्व लिखे गये होंगे।

रसानद की १८१ वीं चौपाई में श्री ध्रुवदास जी ने लिखा है कि "यह रस तौ मन ही मे राखो। भक्ति हीन सो कबहूँ न भाषो॥" इस प्रकार का उल्लेख एक वयस्क और अनुभव पुरुष से ही अपेक्षित है। इससे यह परिणाम निकलता है कि रसानद लीला की स० १६५० मे रचना के पूर्व श्री ध्रुवदास जी ने काफी समय तक रचनाभ्यास किया था। इसके साथ ही उनके दूसरे ग्रथ "रहस्य-मंजरी" के रचना-काल

† ब्रजमाधुरी सार, पृष्ठ १५६-१६०

§ खोज रिपोर्ट सन् १६०६-११ मे भी श्री ध्रुवदास जी कृत रसानन्द का रचना काल संवत् १६५० सूचित किया गया है।

* बयालीस लीला में सकलित 'रसानद लीला' पृ० २६६ से उद्धृत।

स० १६६८ पर दृष्टि रखते हुए उनका जन्म संवत १५६५ के और अधिक पूर्व अनुमान करने मे संकोच होता है, क्यों कि इस अनुमान से भी "रहस्य-मंजरी" उनकी १०३ वर्ष की आयु मे लिखी गई रचना ठहरती है, जो साधारणतया कठिन है। फिर भी रचना-काल के इन प्राप्त उल्लेख और वर्णन की प्रौढ़ता के कारण उनका जन्म स० १६१० वि० के पूर्व तो मानना ही होगा।

जिन पॉच ग्रंथों मे रचना-काल का उल्लेख मिलता है, उनसे सबधित उद्धरण† नीचे दिये जाते हैं—

१—रसानंद (संवत् १६५०)

रसानद याकौ नाम कहावे । कहत सुनत आनद रस पावे ॥
सवत् सौ पोडस पचासा । बरनत जस ध्रुव जुगल विलासा ॥

२—प्रेमवाली (संवत् १६७१)

हित ध्रुव भई प्रेमावली, सुनत जुगल दरसाहिं ।
सोलह से इकहतरा, श्री वृंदावन मांहिं ॥

इस दोहा से ध्रुवदास जी का वृंदावन मे निवास भी सिद्ध होता है।

३—सभा मडल (संवत् १६८१)

मडल सभा सिंगार, सोलह से इक्यासिया ।
सकल रसनि कौ सार, हित ध्रुव बरनै जथा मति ॥

४—श्री वृंदावन सत* (संवत् १६८६)

सोलह सै ध्रुव छयासिया, पून्यौ अगहन मास ।
यह प्रबंध पूरन भयौ, सुनत होत अघ नास ॥

५—रहस्य मंजरी‡ (संवत् १६६८)

सहस्त्र सै द्वै ऊन अरु अगहन पछि उज्यार ।
दो चौपाई कहे ध्रुव, इकसत ऊपर चार ॥

---

† ये सभी उद्धरण बयालीस लीला से लिये गये हैं।

* खोज रिपोर्ट सन् १६०६-११ में 'श्री वृंदावन सत' का रचना-काल सवत् १६८२ प्रकट किया गया है। लेखक के सग्रहालय में प्राचीन हस्तलिखित दो प्रतियाँ इस ग्रथ की हैं। उनमें से एक प्रति के अनुसार रचना-काल स० १६५७ तथा दूसरी के अनुसार स० १६५८ वि० है।

‡ 'रहस्य मजरी' का रचना-काल खोज रिपोर्ट सन् १६०६-११ में भी यही प्रकट किया गया है।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि श्री ध्रुवदासजी का कविता-काल संवत् १६५० से लेकर संवत् १६६८ के समय तक से कम नहीं है। साधारणतया १६३० विक्रमी से १७०० तक उनका कविता-काल माना ही जाना चाहिए और इस प्रकार उनका निधन-काल सवत् १७०० के लगभग आता है, जो 'रहस्य मंजरी' के रचना-काल संवत् १६६८ के दो वर्ष उपरात अनुमानित किया गया है। श्री रामचंद्र शुक्ल ध्रुवदास जी के विषय मे लिखते हैं—

'ये हित हरिवंश जी के शिष्य स्वप्न मे हुए थे। इसके अतिरिक्त इनका कुछ जीवन-वृत्त नहीं प्राप्त हुआ है। ये अधिकतर वृंदावन मे ही रहा करते थे। इनकी रचना वहुत ही विस्तृत है। नाभा जी के भक्त-माल के अनुकरण पर इन्होंने भक्त नामावली लिखी है, जिसमे अपने समय तक के भक्तों का उल्लेख किया है। इनकी कई पुस्तकों मे संवत् दिये हैं, जैसे सभामंडली १६८१, वृंदावनसत १६८६ और रसमंजरी १६६८, अतः इनका रचना काल १६६० से १७०० तक माना जा सकता है*।'

ज्ञात होता है कि रसानंद लीला के रचना-काल की सूचना न होने के कारण ही आचार्य शुक्ल जी ने इनका रचना-काल संवत् १६६० से १७०० तक अनुमान किया है, जो उपयुक्त नहीं है।

श्री वियोगी हरि के मत से श्री ध्रुवदास जी ने अपनी भक्त-नामावली मे सं० १७३५ तक के भक्तों का वर्णन किया है और इस आधार पर वे उनका गोलोक वास सवत् १७४० के लगभग मानते हैं। किंतु ऊपर लिखे गये तर्क के आधार पर उनका जन्म संवत् १५६५ वि० के लगभग मान लेने पर उनका निधन-काल भी स० १७०० वि० के लगभग ही मानना ठीक होगा। इन अनुमानों पर भी उनकी आयु १०५ वर्ष हो जाती है। जिन भक्तों की प्रसिद्धि श्री वियोगी हरि जी के अनुसार १७३५ मे हुई, उनकी भक्ति का ज्ञान श्री ध्रुवदास जी को प्रारंभिक अवस्था मे ही हो गया होगा, और तभी भक्त-नामावली में उनके नामों का समावेश कर दिया गया होगा। इससे इतना अवश्य प्रकट होता है कि भक्त-नामावली श्री ध्रुवदास जी द्वारा लिखे गये ग्रथों मे अंतिम काल की रचनाओं में से एक है। जिन ग्रथों मे सवत् दिये गये हैं, उनमें सबसे अंतिम रचना-काल संवत् १६६८ है। अत. उक्त विवेचन के अनुसार इसी संवत् के लगभग भक्त नामावली के रचना-काल का अनुमान करना चाहिए।

---

* हिंदी साहित्य का इतिहास (शुक्ल) पृष्ठ १६४

श्री पद्मावती शबनम द्वारा रचित "मीरा, एक अध्ययन" नामक पुस्तक में भी भक्त-नामावली का रचना-काल सवत १६६८ वि० माना गया है$, किंतु ऐसा प्रकट करने का उसमें कोई आधार नहीं बतलाया गया। श्री वृंदावन-आगमन के समय से ही ध्रुवदास जी श्री हित जी महाराज के ही स्थान पर रहे और वहीं उन्होंने शरीर त्याग किया†। प्राचीन ग्रंथों में ऐसा लेख मिलता है कि श्री हित जी जब वृंदावन आये तो उनको मंदिर और निवास आदि के लिए भूमि देने के लिए व्रजवासियों ने एक तीर कमान देकर यह कहा कि जहाँ तक आपका तीर जाय, उतनी भूमि आप ले लें। वह तीर चीर घाट तक गया‡। इससे श्री ध्रुवदास जी का चीर घाट के आसपास ही रहना प्रकट होता है, और श्री व्यास जी भी चीरघाट पर रहते थे, जिसका उल्लेख स्वयं उन्होंने अपनी वाणी में किया है*।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ध्रुवदास जी व्यास जी के न केवल समकालीन कवि और महात्मा थे, वरन् वे व्यास जी के बहुत ही निकट संपर्क में रहते थे, जिसके कारण उनकी श्री व्यास जी के विषय में प्रकट की गई सम्मति उत्तम कोटि का प्रमाण स्वीकार करने योग्य है।

३. रसिक अनन्य माल (भगवत् मुदित जी कृत)—

हस्त लिखित हिंदी पुस्तकों की खोज रिपोर्ट सन् १६०६-११ में नोटिस संख्या २३ (सी) पर भगवत मुदित जी कृत रसिक अनन्य माल की

$ देखिये 'मीरा, एक अध्ययन' (लोक सेवक प्रकाशन, बनारस) पृष्ठ ७३ तथा पृ० २१४

† "ध्रुवदास जी महाराज इस ग्रंथ के परिपूर्ण होने पर श्री रासमंडल में, जहाँ श्री हितहरिवंश चंद्र महाप्रभु जी महाराज की नाम-सेवा मूर्ति विराजमान है वाईं ओर के वृक्ष में यह महात्मा भी सदेह लीन हुए है।" —भूमिका श्री व्यालीस लीला

‡ इतही पुराने भवन तें, चीर घाट लौं जानि।
जहँ लौं सर पहुँची तहाँ, मंडल कुंज प्रधान॥
—"रसिक अनन्य माल" उत्तमदास कृत।

* नंद वृषभान के हम भाट। ×
बढ़ौ वस हरिवंस 'व्यास' कौ वास चीर के घाट॥

सूचना दी गई है। खोज मे प्राप्त इस ग्रंथ का लिपिकाल संवत् १८७४ है, और उसमे ग्रंथ के रचना-काल का कोई संकेत नहीं है। किंतु उक्त खोज रिपोर्ट मे रसिक अनन्य माल के जो उद्धरण दिये गये हैं, वे श्री भगवत मुदित जी कृत 'रसिक अनन्य माल' के न होकर उत्तमदास जी द्वारा रचित दूसरी 'रसिक अनन्य माल' के हैं† । इतना अवश्य है कि भगवत मुदित जी ने भी एक 'रसिक अनन्य माल' नामक ग्रंथ की रचना की थी तथा उसमें श्री हित हरिवंश जी और उनके शिष्यो के चरित्रों का वर्णन है। नाम और विषय की एकता के कारण खोज रिपोर्ट में इस संबंध में दी गई सूचना मे यह भ्रम हुआ ज्ञात होता है। अस्तु। खोज रिपोर्ट सन् १९०९-११ के नोटिस संख्या २३ (बी) पर 'सेवक चरित्र' नामक ग्रंथ की सूचना है, जिसके प्रारंभिक अंश के उद्धरण में "अथ श्री सेवक जू कौ चरित्र लिख्यते। श्री भगवत मुदित जू कृत।" लिखा है। इसी ग्रंथ की पुष्पिका है—'इति श्री रसिक अनन्य माल मध्ये श्री भगवत मुदित जू सेवक चरित्र वर्णन।'

इसके अतिरिक्त रीवा नरेश के पुस्तकालय 'सरस्वती भंडार' में एक हस्तलिखित सचित्र 'सेवक वाणी की रसमोहनी टीका' की प्रति (पुस्तक संख्या ३-४९) देखने का सौभाग्य लेखक को प्राप्त हुआ। इस प्रति के प्रारंभ में ही श्री भगवत मुदित जी कृत सेवक चरित्र का वर्णन समाप्त होता है। उस स्थान पर समाप्ति इस प्रकार अंकित है— "इति श्री रसिक अनन्य मालाया श्री भगवत मुदित जी कृत सेवक चरित्र संपूर्ण।"

उक्त दोनों सेवक चरित्र एक से ही हैं तथा प्रतियाँ प्राचीन है। इससे भगवत मुदित जी कृत 'रसिक अनन्य माल' नामक ग्रंथ की रचना भी सिद्ध है। प्रस्तुत निबंध में श्री भगवत मुदित जी कृत 'रसिक अनन्य-माल' पर ही विचार करना अभिप्रेत है* ।

---

† उत्तमदास जी द्वारा रचित 'रसिक अनन्य माल' की एक खंडित प्राचीन हस्त लिखित प्रति लेखक के निजी संग्रह में है। इस ग्रंथ का रचना-काल संवत् १७८९ के लगभग कहा जाता है। इस ग्रंथ से खोज रिपोर्ट मे लिये गये प्रारंभिक उद्धरण का मिलान होता है।

* इस ग्रंथ की संवत् १७८९ के लिपिकाल की एक प्रति बाबा श्री बैजनाथ जी वृंदावन के पास सुरक्षित बतलाई जाती है। लेखक को एक नवीन हस्त लिखित प्रति बाबा श्री विशाखाशरण जी वृंदावन के समीप देखने का सौभाग्य मिला है।

श्री नाभादास जी ने अपनी भक्तमाल ‡ में भगवत मुदित जी पर भी एक छप्पय लिखा है, जो इस प्रकार है—

कुंजविहारी केलि सदा अभ्यंतर भासै ।
दंपति सहज सनेह प्रीति पर नित परकासै ॥
अननि भजन रसरीति पुष्ट मारग करि देखी ।
बिधि निषेध बल त्यागि पागि रति हृदय बिसेखी ॥
माधव सुत संमत रसिक, तिलक दाम धरि सेव लिय ।
भगवत मुदित उदार जस, रस रसना आस्वाद किय ॥

भगवत मुदित जी सूजा के दीवान थे । उनकी एक रचना, प्रबोधानंद सरस्वती के 'श्री वृंदावन महिमामृत' के एक शतक का संस्कृत से ब्रजभाषा में पद्यानुवाद, प्रकाशित भी हो चुकी है † । इसकी पुष्पिका मे भगवत मुदित जी ने अपनी टीका का सवत् १७०७ विक्रमी का इस प्रकार उल्लेख किया ‡—

"संवत् दस पै सात सै, अरु सात वरस है जान ।
चैत मास में चतुरवर, भाषा कियौ वखान ॥"

इससे भगवत मुदित का रचना-काल संवत् १७०७ के आस-पास प्रत्यक्ष ही है । नाभा जी की भक्तमाल में उनका उल्लेख और संवत् १७०७ के प्राप्त इस रचना-काल से यह कहा जा सकता है कि भगवत मुदित जी व्यास जी के समकालीन थे । प्रियादास जी की भक्तमाल टीका से इनका वृंदावन में निवास करना भी प्रकट है ।

'रसिक अनन्यमाल' के मंगलाचरण में श्री कृष्ण चैतन्य को प्रणाम किया गया है—

"प्रणवौ श्री चैतन्य वर, नित्यानंद स्वरूप ।
श्री हरिवंस प्रताप बल, वरनौं कथा अनूप ॥"

---

‡ रचना-काल संवत् १६५२ वि० के लगभग ।

† बंशीदास कामा वाले द्वारा प्रकाशित ।

‡ खोज रिपोर्ट सन् १९१२–१४ नोटिस सख्या २१ मे भी श्री भगवत मुदित कृत वृंदावन शतक की सूचना और संवत् १७०७ रचना-काल प्रकट किया गया है । खोज रिपोर्ट में वर्णित इस ग्रंथ का लिपिकाल सवत् १८१८ वि० है ।

जे आए हरिवंस पथ, सिद्ध भए जु अनन्य ।
भगवत तिनकी परिचई, वरनौं होंहुं सुधन्य ॥

श्री व्यास जी का चरित्र वर्णन भी श्री कृष्ण चैतन्य की वंदना से प्रारंभ होता है—

"प्रणऊँ श्री चैतन्य, सकल सुखन की रास ।
व्यास चरित गायौ चहौं, होत हिए उल्लास ॥"

इससे प्रकट है कि वे गौडीय संप्रदाय के उपासक थे तथा उनकी श्रद्धा श्री हित हरिवंश जी में भी अधिक थी । ऊपर लिखे गये वृत्तांत से उनका व्यास जी के समकालीन होने का प्रमाण मिलता है ।

४. चौरासी वैष्णवन की वार्ता—

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' नामक ग्रंथ व्रजभाषा गद्य में लिखा गया है । इसके रचयिता श्री वल्लभाचार्य के पौत्र और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चौथे पुत्र श्री गोकुलनाथ जी (संवत् १६०८ से संवत् १६९७) कहे जाते हैं । श्री प्रभुदयाल जी मीतल के मतानुसार यह वार्ता वर्तमान रूप में गोकुलनाथ जी के पौत्र हरिराय जी (संवत् १६४७—१७७२) के द्वारा लिखी गई है और उसका मूलरूप वे प्रवचन हैं, जो गोकुलनाथ जी द्वारा कथित हुए थे † । इसी से ये वार्ताएँ गोकुलनाथ जी द्वारा रचित कही जाती हैं । इससे प्रकट है कि वार्ताकार व्यास जी के समकालीन भी थे ।

वार्ता में वल्लभाचार्यजी के शिष्यों का वृत्तांत दिया हुआ है । उनके शिष्यों में से चार कवि सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास और कुंभनदास व्रजभाषा के प्रसिद्ध अष्टछाप में सम्मिलित हैं । उन चार कवियों में से प्रथम तीन के गोलोक-वास पर व्यास जी ने अपने पदों में विरह की भावना प्रकट की है ।

५. भक्तमाल की रस-बोधिनी टीका—

श्री नाभादास जी की भक्तमाल पर संवत् १७६९ विक्रमी में प्रियादास जी ने कवित्तों में एक टीका लिखी, जिसमें नाभादास जी द्वारा वर्णित संतों के चरित्रों का अधिक स्पष्टीकरण करने के प्रयत्न के साथ-साथ उन्हीं संतों के अन्य चरित्रों के वर्णन का भी समावेश किया गया है ।

† देखिये 'अष्टछाप परिचय', पृष्ठ ८८—८९.

इस रस बोधिनी टीका मे व्यास जी का चरित्र छै कवित्तो मे कहा गया है। व्यास जी के जीवन चरित्र का अध्ययन करने के लिए उनकी वाणी तथा समकालीन कवियो की रचनाओं के पश्चात, सूचनाओ की प्राचीनता की दृष्टि से, इस टीका का स्थान काफी ऊँचा है।

भक्ति रस-बोधिनी टीका के रचयिता प्रियादास जी, महाप्रभु कृष्ण चैतन्य के सम्प्रदाय के अनुयायी थे ।†। अपनी टीका का रचना-काल † उन्होंने निम्न लिखित कवित्त मे प्रकट किया है—

"नाभा जू की अभिलाष पूरन लै कियौ मै,
ताकी साखी प्रथम सुनाई नीकी गाइ कै ।
भक्ति विस्वास जाके ताही कों प्रकास कीजे,
भीजे रंग हियौ, लाजे तनहि लडाइ कै ॥
संवत् प्रसिद्ध दस सात सत उनहत्तर,
फालगुन मास वदी सप्तमी विताइ कै ।
नारायनदास सुखरासि भक्तमाल लैकै,
प्रियादास उर वसौ रही छाइ कै ‡ ॥"

६. श्री व्यास जन्मोत्सव की बधाई—

श्री हित राधावल्लभीय महासभा द्वारा प्रकाशित व्यास-वाणी के वक्तव्य मे श्री व्यासजी के जन्म सवत् के प्रमाण मे एक सोरठा और एक दोहा दिया गया है*, जिन्हे उस वक्तव्य में किसी जुगलकिशोर नामक कवि की रचना कही गई है। यह कौन से जुगलकिशोर थे, इसका परिचय वहाँ नहीं दिया गया। जिस ग्रथ से इन उद्धरणों को वक्तव्य मे लिया

---

† अपनी टीका के मगलाचरण मे उन्होंने लिखा है—"महाप्रभु कृष्ण चैतन्य मन हरन जू के चरन कौ ध्यान मेरे नाम मुख गाइये ।"

† संवत् १७६६

‡ प्रस्तुत ग्रथ में रस बोधिनी टीका के उद्धरण एक हस्तलिखित प्रति के अनुसार है।

* "सुभ सत परगट जान, सरसठ ता ऊपर अधिक ।
ता सवत में आन, प्रगट भए श्री व्यास जी ॥"
"मार्गशीर्ष वदि पचमी, बार लग्न ग्रह योग ।
स्वाभाविक अनुकूल है, कीनों विधि सजोग ॥"

गया है, उसका लिपिकाल वि० संवत् १८९० है। अत. इस सोरठा-दोहा का रचनाकाल अनिवार्य रूप से सवत् १८९० के पूर्व का ही सिद्ध होता है। ये सोरठा और दोहा श्री व्यास जन्मोत्सव की जन्म वधाई मे इन पक्तियों के लेखक को भी प्राप्त हुए हैं। राजकीय पुस्तकालय दतिया, तथा निजी संग्रहालय मे श्री व्यास जन्मोत्सव की वधाइयों की जो हस्तलिखित प्रतियाँ मुझे देखने को मिली हैं, उनमे लिपिकाल अभी तक केवल एक ही प्रति मे उपलब्ध है। इस ग्रंथ में प्रारंभ से पत्र ४६ तक तो श्री व्यास जन्मोत्सव की वधाई है, और तदनंतर पृष्ठ ३११ तक वर्षोत्सव के पद लिखे गये हैं। पृष्ठ ३११ पर दी गई पुष्पिका इस प्रकार है—

"मिती माह कृष्ण ७ भौम संवत् १९४२ शक १८०७ मुकाम दिलीप नगर, लिख्यतं प० श्री तिगुनाइक नन्ने जू जो वांचे सुनै ताको नित्य सीताराम। पोथी प० श्री गुसाईं वानपुर वारे‡ कन्हैयालाल जू की श्री जानकी वल्लभाय नमः राम।"

ग्रंथ के मगलाचरण में श्री व्यास वाणी का ही एक पद "जै जै श्री सुकलवस उदित भयौ" दिया गया है। इसके अतिरिक्त इसमे २६ गीत और हैं, जो निम्नाकित कवियों की रचनाएँ हैं—

१.	प्रेमदास	१२	गीत	४, ५, ६, ७, ८, १०, १४, १६, १९, २०, २१, २७,
२.	कन्हैयालाल	३	गीत	१५, १७, १८,
३	हित हरिलाल	२	गीत	२४, २६,
४.	किशोरदास	२	गीत	९, ३३,
५.	रामकिशोर	१	गीत	१२,
६	दुलारेलाल	१	गीत	१३,
७.	हित गुपाल	१	गीत	२३,
८	व्रजजीवन	१	गीत	२५,
९.	वल्लभदास	१	गीत	२,

‡ लेखक के पूर्वज प० मदनमोहन गोस्वामी दलीपनगर, वर्तमान दतिया, मे सवत् १९१५ विक्रमी से बानपुर में आये थे। अतः वे और उनके वशज दतिया मे बानपुर वाले गुसाईं के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्हीं पं० मदनमोहन गोस्वामी के पुत्र का नाम कन्हैयालाल गोस्वामी था, जो पद-रचना मे अपना उपनाम 'कन्हर' प्रयोग करते थे।

१०　धीरज अलि　१　गीत　३,
११.　गरीबदास　१　गीत　११,

विचाराधीन जिस सोरठा और दोहा का उद्धरण श्री हित राधावल्लभीय महासभा वृंदावन द्वारा प्रकाशित व्यास वाणी के वक्तव्य में दिया गया है, उसका उल्लेख श्री व्यास जन्मोत्सव की वधाई में भी आया है। उस वधाई मे ४४ छंद हैं, जिसमें से सवंधित अंश उद्धृत किये जाते है—

सुकल कुल ढाडी हौं द्विजराज ।
अनुभव वल तुअ पुत्र जन्म की कथा कहौं महराज ॥ १ ॥
वंदौं श्री गुरु-राधिका-कृष्ण चरन सिर नाइ ।
व्यास जन्म वरनन करत, सुन कलि-कलुप नसाइ ॥ २ ॥×

सुभ सत पंद्रह जान, सरसट ता ऊपर अधिक ।
ता संवत में आन, प्रगट भए श्री व्यास जी ॥ ३८ ॥
मारग वदि की पचमी, बार लग्न ग्रह योग ।
स्वाभाविक अनुकूल है, कीनो विधि संजोग ॥ ३९ ॥×

जनम वधाई गाइ कें, पूजी मन की आस ।
'जुगल' 'प्रेम' रस सिंधु में, मीन होइ तव 'दास' ॥ ४६ ॥

संभवत उक्त ४३ वें छद में प्रयुक्त जुगल शव्द से ही कथित वक्तव्य में उक्त गीत को जुगलकिशोर की रचना वताई गई है। किंतु मेरे विचार से इस गीत के रचयिता का नाम प्रेमदास है। प्रेम और दास दोनों शव्द भी इस ४३ वें छंद मे प्रयुक्त हैं।

अपने इस मत की पुष्टि के लिए हमें उक्त वधाईयों में उपलब्ध ऐसे ही अन्य गीतों में कवि के उपनाम देने की शैली को सूक्ष्मता पूर्वक देखना पडेगा। अत व्यास जन्मोत्सव की वधाई में संकलित गीतों से ये उद्धरण उपस्थित किये जाते हैं —

१ *श्री 'प्रेम' प्रभु पद में परायन कियौ बरनन 'दास' ।*
२. *बरनन कीनौ जथा मति 'जुगल' 'प्रेम' प्रभु 'दास' ॥* (पृष्ठ १९)
३. *'जुगल' चरन में 'प्रेम' वसत नित ।* (पृष्ठ २९)
४ *'प्रेमदास' तब लै बलाइ कर धरि अँगुरी चटकाई ॥* (पृष्ठ ३२)
५ *'प्रेम' सहित देविका जु सुनि भरी पुत्र के मोद ।* (पृष्ठ ३३)

६. व्यासवंस अवतंस 'प्रेम' 'प्रभुदास' यही जिय जाँचै ॥
'जुगल' चरन रति रहै निरंतर, संतन में मन राँचै ॥ (पृष्ठ ६)
७. 'जुगल' 'प्रेम' रस सिंधु में मीन होइ तब 'दास' । (पृष्ठ १४)
८. यह जु बधाई मनभाई मैं परम 'प्रेम' सुख पावौं ॥ (पृष्ठ १५)
९. व्यास वंस अवतंस 'प्रेम' प्रभु 'दास' उमग जस गावै । (पृष्ठ २१)
१०. 'जुगल' 'प्रेम' कौ वारिधि उमगौ ॥ (पृष्ठ ३०)
११. श्री व्रजपति जस नाम सुमिर नित 'प्रेम' बधाई पाई जू ॥ (पृष्ठ ३३)
१२. 'दास प्रेम' सुत व्यास सुजस युत रीझ बधाई पावै । (पृष्ठ ४६)

इन पदों के छाप वाले उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने 'प्रेम' शब्द का सभी पदों में प्रयोग किया है तथा 'दास' शब्द को भी अधिकतर स्थान दिया ही है। छंद की गति को ध्यान में रख कर 'प्रेम' और 'दास' एक साथ न आ सकने के कारण 'प्रेम प्रभुदास' आदि प्रकार से नाम प्रयुक्त हुआ है। 'जुगल' का प्रयोग आराध्यदेव के लिए हुआ है, जिसका स्पष्टीकरण तीसरे और छठवें उद्धरणों से हो ही जाता है।

चौथे उद्धरण में तो 'प्रेमदास' नाम बिल्कुल स्पष्ट है। इसी प्रकार बारहवाँ उद्धरण भी 'प्रेमदास' ही नाम प्रकट करता है। इससे हित राधावल्लभीय महासभा द्वारा प्रकाशित व्यास वाणी के वक्तव्य में व्यास जी की जन्म तिथि प्रकट करने वाले सोरठा और दोहा कथित युगलकिशोर के रचित न होकर प्रेमदास की रचना निश्चित होते हैं। प्रेमदास जी के विषय में कुछ विशेष पता तो नहीं चलता, किंतु उनके ही पदों के अंतःसाक्ष्य † से यह सिद्ध है कि वे व्यासवंशी गोस्वामी थे।

नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९०६-०८ की खोज रिपोर्ट में 'हरिवंश चौरासी की टीका और अरिल्ले' नामक ग्रंथों के रचयिता एक प्रेमदास का संवत् १७९१ के लगभग वर्तमान रहना प्रकट किया गया है। संभव है कि श्री व्यास जन्मोत्सव की बधाई में संकलित बारह गीतों के, जिनमें विचाराधीन सोरठा और दोहा भी सम्मिलित हैं, रचयिता यही प्रेमदास हों, जो श्री हितहरिवंश जी के मतानुयायी थे।

---

† "व्यास वंस अवतंस प्रेम प्रभु दास यही जिय जाँचै ।" तथा—
"व्यास वंस अवतंस प्रेम प्रभु दास उमग जस गावै ।"

प्रेमदास जी द्वारा रची गई बधाइयों के अतिरिक्त जिन अन्य बधाइयों से व्यास जी के जीवन-चरित्र संबधी ऐतिहासिक सूचनाओं की पुष्टि होती है, उनमे गरीबदास, वल्लभदास, धीरजलाल, रामकिशोर, दुलारेलाल और हित हरिलाल जी के नाम उल्लेखनीय हैं।

गरीबदास—वे व्यास जी की चौथी पीढ़ी में बड़े भक्त कवि थे। उनके संबंध मे एक यह अलौकिक घटना कही है कि जब वे राधाष्टमी को बरसाने मे गये और वहाँ प्रेम से जन्म बधाई गाई तो उन्हे श्री स्वामिनी जी ने ही ग्वालिनी का वेष धारण कर पँजीरी का प्रसाद दिया था। एक पद मे उन्होंने लिखा भी है कि 'गरीबदास को दई पँजीरी।'

वल्लभदास—वे व्यासवंशीय गोस्वामी सिंहमन जी के पुत्र थे। व्यास जी से ५ वीं पीढ़ी में होने के कारण उनका आविर्भाव-काल संवत् १७२५ के आस-पास माना जा सकता है।

धीरजलाल—व्यासवंशीय गोस्वामी श्री हीरालाल जी के वे पुत्र थे। वे श्री वृंदावन में ही रहते थे। संवत् १८७६ के पश्चात् और संवत् १८६६ के पूर्व उनका स्वर्गवास हुआ। वे व्यास जी से ८ वीं पीढ़ी में थे।

रामकिशोर—वे उक्त धीरजलाल जी के भाई सदासुख जी के पुत्र थे और संवत् १८७३ में वर्तमान थे।

दुलारेलाल—सखी संप्रदाय के वैष्णव भक्त थे।

हित हरिलाल—खोज रिपोर्ट सन् १६०६-०८ के नोटिस संख्या १५६ पर उनका उल्लेख है। उसमें उनका संवत् १६८७ के लगभग वर्तमान होना बताया गया है। खोज रिपोर्ट में उन्हें श्री हितहरिवंश जी के पुत्र और ध्रुवदास जी के गुरु होना भी लिखा है, जो ठीक नहीं है।

७. निजमत सिद्धांत (श्री महंत किशोरीदास कृत) —

स्वामी हरिदास जी की शिष्य परंपरा में विराजमान श्री पीताम्बर देव जू के कृपापात्र महंत किशोरीदास जी ने इसकी रचना की थी। पीताम्बर देव जी के बड़े गुरु-भ्राता ललितकिशोरी जी के शिष्य ललित-मोहनी दास जी का जन्म संवत् १७८० में हुआ था ‡। अतः इसी के

‡ ललित मोहनी प्रभा सोहनी, आस्विन सुदि दसमी कौ।
कियौ प्रकास सरद जनु चद्रम, बरसायौ सु अमी कौ ॥ ×
संवत् सत्रह सै सु असी कौ, अति प्रमोद कौ दानी ॥
—आचार्योत्सव सूचना, सहचरिशरण कृत

४-६ वर्ष पश्चात् श्री महंत किशोरदास जी का जन्म-समय और संवत् १८८० के लगभग 'निज मत सिद्धांत' का रचना-काल अनुमानित करना चाहिये।

उक्त ग्रंथ के मध्य खंड में यमुना तट पर श्री युगल स्वरूप की होली के अवसर पर श्री स्वामी हरिदास जी के स्थान पर अनेक महात्माओं के, जिनमें व्यास जी भी थे, आगमन और उत्सव मे सम्मिलन का प्रसंग है।

८. राम-रसिकावली (भक्तमाला)—

रीवा नरेश महाराज रघुराजसिंह ने भक्तमाला—रामरसिकावली नामक ग्रंथ की रचना वि० संवत् १६२१ में की। इस ग्रंथ का प्रकाशन भी वि० सवत् १६७१ में खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई द्वारा हो चुका है। इसमें दोहा चौपाइयों में भक्तों के चरित्रों का वर्णन किया गया है।

यद्यपि इसमें व्यास जी के संबंध के लगभग वे ही चरित्र वर्णित हैं, जो श्री प्रियादास कृत भक्ति रस बोधिनी टीका में प्रकट किये गये हैं, तथापि वर्णन की शैली और विस्तार के कारण उल्लिखित घटनाएँ अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई हैं। ज्ञात होता है कि नाभादास की भक्तमाल और उस पर की गई प्रियादास की टीका से कुछ आधार लेकर लोक मे प्रचलित तथा परंपरागत कथाओं को अधिक बोधगम्य करने की दृष्टि से उन्होंने अपने समय की साफ सुथरी भाषा मे उन्हे कवितावद्ध कर दिया है।

९. गुरु-शिष्य-वंशावली—

राजकीय पुस्तकालय दतिया मे एक हस्तलिखित पुस्तक सख्या ११७० है, जिसके प्रारंभ मे लिखा है—'श्री गोपाल जू। अथ श्री व्यास वस की वा सुकल वंस की वा स्वामी वंस की और दिक्षा गुसांई कहाइन लगे तिनकी वसावली लिख्यते'। पुस्तक की पुष्पिका में लिखा है—'इति श्री गुरु सिष्य की वंसावली सपूर्न मिती असुन सुदी ५ संवत् १९३६ लिखत प्रं 'अजुदया प्रसाद की।'

उक्त पुस्तक मे रचनाकाल नहीं दिया गया है, किंतु उसमे दतिया नरेश महाराज भवानीसिंह के १२ वर्ष की अवस्था में हुए यज्ञोपवीत और मंडप के उत्सव का वर्णन किया गया है तथा उनके पुत्र होने की कामना की गई है। श्री महाराज भवानीसिंह का जन्म संवत् १९०२ मे और उनके पुत्र श्री गोविंद सिंह का जन्म संवत् १९४२ मे हुआ था।

अत. पुस्तक का रचना-काल संवत् १६१४ से संवत १६४३ के बीच का लगभग १६२६ सिद्ध है। सवत् १६४७ विक्रमी की लिखी हुई एक 'भगवत रसिक की वाणी' की प्रति में भी लिपिकार का नाम 'प्र अयोध्या प्रसाद कुडरा' मिला है। अतएव 'गुरु-शिष्य-वशावली' के रचयिता का नाम अयोध्या प्रसाद नहीं हो मकता। इस कारण उसके कर्ता का नाम अज्ञात रह जाता है।

इस 'गुरु शिष्य वशावली' मे लगभग ५०० नाम आये हैं। दोहा और सोरठा छदों का ही इसमें प्रयोग किया गया है। पिंगल की दृष्टि से छंदों मे अशुद्धियाँ वहुत अधिक हैं। वंशावली लिखने का अभिप्राय उस समय के दतिया राज्य के प्रधान मंत्री गोस्वामी श्री गरीवदास की कृपाभिलाषा† ही प्रकट होती है, क्यो कि उनको व्यास जी की वशावली मे प्रकट करने के पश्चात रचयिता ने उनके पुत्र होने की कामना प्रकट की है तथा उनका वंश वर्णन करने के लिए पुस्तक में रिक्त स्थान भी छोडा गया है। इसी प्रकार श्री राधालाल, श्री कमलेश और श्री कमलापति के नामोल्लेख करने के पश्चात् उनकी सतति कामना करते हुए पुस्तक में वर्णन करने के लिए रिक्त स्थान छोडा गया है।

इस ग्रथ में व्यास वशवृक्ष की कई शाखाओं में व्यास जी से १६ वीं और २० वीं पीढी तक के नाम दिये गये हैं, जव कि श्री हरिराम व्यास के प्रसिद्ध शिष्य श्री महाराज मधुकर शाह के वंशज श्री महाराज भवानीसिंह का वर्णन उनकी १२ वर्ष की आयु का है, और जव कि उनके पुत्र श्री गोविंदसिंह का जन्म नहीं हुआ था। श्री भवानी सिंह, महाराज मधुकर शाह के वंश की १२ वीं पीढ़ी में थे। अतः गुरु और शिष्य की पीढ़ियों की संख्या में इतनी अधिक विषमता होना भी सदेहजनक है।

संवत् १६४७ विक्रमी की वसत पंचमी को कायस्थ कुलोद्भव कवि प्रतीतराय लक्ष्मणसिंह ने 'श्री लोकेन्द्र ब्रजोत्सव' नामक एक वृहद् ग्रंथ की रचना प्रारंभ की। इस ग्रथ के प्रारंभ में श्री गरीवदास गोस्वामी जी की जो वश परंपरा वर्णित की गई है, वह 'गुरु शिष्य वशावली' में

---

† ग्रथ के प्रारभ मे 'श्री गोपाल जू' लिखा है। गोस्वामी गरीवदास जी के निजी श्री ठाकुर जी का नाम भी 'गोपाल जी' है। अतएव यह अनुमान करना तर्क विहीन न होगा कि उक्त ग्रथ की रचना गोस्वामी गरीवदास के आश्रय मे हुई थी।

वर्णित वंश-परंपरा से भिन्न है। 'गुरु-शिष्य-वंशावली' की रचना के लगभग १८ वर्ष पश्चात् लिखे गये एक ही आश्रय और स्थान के दो कवियों में इस महान् भिन्नता का यही अर्थ लगाया जा सकता है कि 'गुरु-शिष्य-वंशावली' का वंश-विवरण तथा अन्य चरित्र वर्णन परवर्ती लेखक को पूर्णत. ग्राह्य न थे। यद्यपि 'गुरु-शिष्य-वंशावली' का उद्देश्य तो यह नहीं प्रतीत होता, तब भी इसमें व्यास जी के जीवन चरित्र संबंधी प्रचलित कथाएँ थोड़े हेर-फेर से दी गई हैं। वंशावली में वर्णित लगभग ५०० नामों के अखंड तारतम्य और किसी सूत्र का उल्लेख न होने से यही मानना पड़ेगा कि रचयिता ने किंवदंतियों के आधार पर निजी जानकारी के साथ कुछ कल्पना को मिलाकर इस ग्रंथ का सृजन किया है।

१०. श्री लोकेन्द्र ब्रजोत्सव—

इस ग्रंथ की रचना वसंत पंचमी संवत् १९४७ को कायस्थ कुलोद्भव कवि प्रतीत राय द्वारा प्रारंभ होकर भादों सुदि ३ संवत् १९४८ को समाप्त हुई। ग्रंथ का मूल विषय तत्कालीन दतिया नरेश श्री भवानीसिंह जू देव की संवत् १९४७ विक्रमी में की गई ब्रज यात्रा और चित्रकूट यात्रा का वर्णन है। ग्रंथ ५६४२ श्लोकों के कलेवर का है। कवि की वर्णन शैली और विषयों के समावेश से उसकी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है।

तत्कालीन दतिया राज्य के प्रधान मंत्री गोस्वामी गरीबदास के आदेश से इसकी रचना हुई थी, जिसकी स्वीकृति महाराजा भवानीसिंह द्वारा भी दी गई थी और पुरस्कार स्वरूप २०० बीघा भूमि तथा ४००० रुपया कवि को भेंट किये गये थे*।

इस ग्रंथ में व्यास जी की वंशावली का भी वर्णन किया गया है, जिसके अंतर्गत उक्त गोस्वामी गरीबदास जी के पूर्वज द्वारकादास जी के दतिया आने का भी गौरवपूर्ण उल्लेख† इस प्रकार किया गया है—

तनय सिंहमन के ब्रजभूषण दूजे वल्लभदासा।
जिनके दास शिरोमणि दूजे भये 'द्वारकादासा'॥
रचे पंच पद नित्य नवीने हरि अर्पित सुख पाई।
काहू समय सु निकसे घर से दतिया के ढिग आई॥१८३॥

---

* देखिये, पृष्ठ २१३, लोकेन्द्र ब्रजोत्सव।

† देखिये, पृष्ठ १६, लोकेन्द्र ब्रजोत्सव।

ग्राम बाजनी ताल निकट सुख वास कछुक दिन कीनो ।
करत टहल श्री जी की निसिदिन गावत राग प्रवीनों ॥
कढ़े तहाँ ही गुनी आइ कोउ दिल्लीपति के खासे ।
सुन कर गान जाइ निज प्रभु सों वचन सबै परकासे ॥१८४॥

'ह्वै उतकंठित साह' सुमन में तब सुखपाल पठाई ।
'दलपति राय नृपति सों भाषौ' दीजै उन्हे बुलाई ॥
पहुँची आइ पालकी तब तह दयौ ज्वाब सुन लीजै ।
चाकर हम अपने मालिक के गवन कौन विधि कीजै ॥१८५॥

इतने बीच सुग्रह कों आये दलपति राव नृपाला ।
गये द्वारकादास निकट कह दतिया चलिय कृपाला ॥
देख प्रतीति प्रीति भूपति की दतिया नगर सु आये ।
मुरलीधर अरु दास जु हरिजन पुत्र युगल तिन जाये ॥१८६॥

सारांश यह कि उनकी गान कला की प्रशंसा से प्रभावित होकर दिल्लीपति बादशाह ने दतिया नरेश राजा दलपतिराय से द्वारकादास जी को अपने पास बुलाने के लिए कहा। बादशाह के उस निमंत्रण को द्वारकादास जी ने अस्वीकार कर दिया । किंतु जब दतिया नरेश दलपतिराय स्वय ही उनके पास गये और उन्होंने उनसे दतिया चलने के लिए प्रेमपूर्वक आग्रह किया, तो वे उनके साथ दतिया चले आये।

उक्त प्रसंग में दिल्लीपति बादशाह से किसका अभिप्राय है, यह देखने की आवश्यकता पड़ती है। दतिया में दलपतिराय का राज्य संवत् १७४० (सन् १६८३ ई०) से संवत् १७६४ (१७०७ ई०) तक रहा† । इस पूरे काल में दिल्ली के सिंहासन पर औरंगजेब रहा है, जो संगीत और हिंदू भक्तों का कट्टर विरोधी था । उसने किसी भक्त और गायक को उसकी गान विद्या के कारण इतना सम्मान दिया होगा, इसे इतिहास स्वीकार नहीं कर सकता। अतएव उक्त वर्णन कोरी कवि कल्पना ज्ञात होता है।

इस वंशावली में बल्लभदास जी के दो पुत्र कहे गये हैं, एक शिरोमणिदास और दूसरे द्वारकादास । किंतु व्यासवंशीय इन्हीं बल्लभदास जी के वंशज चरखारी राज्य के राजगुरु रहे हैं और उनकी वंशावली में बल्लभदास के पुत्र हीरानंद का नाम पाया जाता है। 'लोकेन्द्र

† देखिये, 'दतिया स्टेट गजेटियर', पृष्ठ ६७

अजोत्सव' के वर्णन में इन हीरानंद का नामोल्लेख ही नहीं किया गया है। किंतु इस विषय की विशेष आलोचना करना अभिप्रेत न होने से उस पर अधिक प्रकाश नहीं डाला जा रहा है[1]।

'लोकेन्द्र ब्रजोत्सव' में श्री व्यास जी के चरित्र का भी वर्णन किया गया है। ग्रंथकार ने अपनी ५२ वर्ष की अवस्था मे इस ग्रंथ को लिखा था तथा उसके पूर्वज दतिया, पन्ना, ओरछा और टीकमगढ़ मे रहते रहे हैं। इन स्थानों में श्री व्यास जी के चरित्रों की चर्चा घर-घर में वंश परंपरा से रक्षित होने के कारण उनका ज्ञान ग्रंथकार को होना स्वाभाविक है।

---

[1] चरखारी नरेश श्री गगासिह जी ने सवत् १९७१ मे 'तुरंग मंगल शालिहोत्र' नामक एक वृहत् ग्रथ की रचना की, जो सवत् १९७२ मे छप भी चुका है। इस ग्रथ के प्रारभ मे रचयिता ने अपने गुरु वश का वर्णन किया है, जिसमे से सबन्धित उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

तिन सुत भगवत दास मे, भये सिंहमन तासु।
तिनके वल्लभदास सुत, नवनितराय सु वासु ॥१६॥
हीरानंद तिनके भये, तिन सुत नंदकिशोर।
कृष्णलाल तिनके सुवन, श्यामलदास बहोर ॥१७॥
सुत श्री श्यामलदास के, श्री हरिमदन सनाम।
भूपति गगासिंह के, श्री गुरु आनंद धाम ॥१८॥

तृतीय अध्याय

जीवन-चरित्र



१. जन्म और माता-पिता—

(१) *जन्म-तिथि*—श्री हरिराम जी व्यास की जयती वृंदावन, दतिया, झाँसी आदि कितने ही स्थानों में प्रति वर्ष मार्गशीर्ष कृष्णा ५ को मनाई जाती है। जयंती का यह उत्सव श्री व्यास पंचमी के नाम से विख्यात है।

'श्री व्यास जू की जन्म वधाई' में जो वधाइयाँ दी गई हैं, उनमे यही जन्मतिथि स्पष्ट रूप से पाई जाती है, जिसे निम्न लिखित उद्धरण व्यक्त करेंगे—

मारग में रस रंग रहौ, प्रगटे श्री हरिराम।
मानों मारग प्रेम कौ, प्रगट कियौ विश्राम॥
कृष्ण पक्ष की पंचमी, मंगल जुत बुधवार।
कृष्ण पक्ष की सहचरी, प्रकटी सुकुल कुमार॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ १६)

मारग मास बिराजै, कृष्ण पक्ष छबि छाजै।
*पंचमी तिथि राजै, सकल दुःख भाजै ॥*वही॥
बुधवार ग्रह जोग सकल अनुकूल हैं॥

—गरीबदास कृत (पृष्ठ २३)

नवयौ मास जब आयौ, जुगल सुख पायौ।
*सखिन मन भायौ, आनंद बधायौ ॥*अहो॥
मारग बदि बुधवार, तिथी पाँचें रुचिर,
तिहिं छिन दाई बुलाई, मुदित मन आई।
*अधिक छबि छाई, फुलेल लगाई ॥*अहो॥
अरुनोदय सुभ घरी, लाल प्रगटित भये॥

—दुलारेलाल कृत (पृष्ठ २७)

सुभ सत पंद्रह जान, सरसठ ता ऊपर अधिक ।
ता संवत में आन, प्रगट भये श्री व्यास जी ॥३८॥
मारग वदि की पंचमी, वार लग्न ग्रह योग ।
स्वाभाविक अनुकूल हैं, कीनों विधि सजोग ॥३६॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ १३)

राजकीय पुस्तकालय, दतिया में सुरक्षित 'व्यास जू की जन्म-वधाई' (पुस्तक संख्या ११५८) एवं 'श्री व्यासोत्सव की वधाई' (पुस्तक संख्या ७०४) नामक हस्तलिखित पोथियों मे अंतिम उद्धरण वाली वधाई मे प्राप्त 'सरसठ' शब्द को स्पष्ट रूप से काट कर 'सत्तर' में परिणत किया गया है, जिससे इन दोनों पोथियों में व्यास जी के जन्म संवत् १५६७ के स्थान पर १५७० के परिवर्तित उल्लेख प्राप्त होते हैं। साथ ही अन्य वधाइयों मे उक्त तिथि को मंगलवार या बुधवार होने की सूचना भी मिलती है । डा० माताप्रसाद जी गुप्त की गणना के अनुसार संवत् १५७० की मार्गशीर्ष कृष्णा ५ को वृहस्पतिवार था। अतएव ज्योतिष गणना के अनुसार जन्म संवत् १५७० सर्वथा अग्राह्य सिद्ध होता है। प्रेमदास जी ने व्यासजी का जन्म मगलवार को होना लिखा है—

मारग असित पचमी, सुभ दिन मंगल लग्न मुहूरत राज ।

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ २१)

डा० माताप्रसाद जी गुप्त ने लेखक की प्रार्थना पर संवत् १५६७ की मार्गशीर्ष कृष्णा ५ का गणित विस्तार पूर्वक करके यह वतलाया है कि संवत् १५६७ में उक्त तिथि मंगलवार को तीन घडी दिन चढ़े तक रही, अतएव इस तिथि-वार की साम्यता की पुष्टि गणित द्वारा भी हो जाती है ।

दुलारेलाल कृत वधाई के उद्धृत अंश में 'अरुनोदय सुभ घरी लाल प्रगटित भये' तथा प्रेमदास कृत एक अन्य वधाई से भी यह सकेत मिलता है कि व्यास जी का जन्म अरुणोदय काल में हुआ था।

श्री द्विजरानी देवि दे विका, तिनकी कूख सिरानी ।
जनु जग जानी सहज अपूरब, पूरब दिस मन मानी ॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ २१)

यह अरुनोदय अर्थात् उषा-काल (किंवा ब्राह्म मुहूर्त) बुधवार के सूर्योदय होने से ठीक पूर्व का समय होने के कारण मगलवार के अंतिम प्रहर का भाग है, किंतु व्यवहार में वह बुधवार का उपाकाल अथवा अरुणोदय समय कहा जाता है। इसी प्रकार व्यावहारिक रूप मे मंगल-वार का अरुणोदय काल से सोमवार की समाप्ति का ब्राह्म मुहूर्त लिया

जा सकता था। इस भ्रांति को दूर करने के लिये प्रेमदास जी ने व्यास जी के जन्म समय को 'मंगल जुत बुधवार' कहकर भी प्रकट किया प्रतीत होता है। ऐसा अनुमान है कि परवर्ती वधाई-कार इस पदांश का अर्थ 'आनंद पूर्ण बुधवार' समझ कर अपनी वधाइयों मे व्यास जी का जन्म दिवस 'बुधवार' ही लिखने लगे।

अखिल भारतवर्षीय श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा, वृंदावन द्वारा संवत् १६६१ में प्रकाशित श्री व्यास-वाणी के 'वक्तव्य' मे श्री व्यास जी का जन्म समय संवत् १५६७ वि० की मार्गशीर्ष वदी पंचमी को प्रकट करने वाले उक्त दोनों छंद एक हस्तलिखित प्रति से, जिसको वैष्णव श्री नवलदास जी, कुशस्थली ने वि० संवत् १८६० मे लिख कर पूरी की थी, उद्धृत किये हैं। उस उद्धरण में भी पाठ 'सरसठ' ही है, अतः राजकीय पुस्तकालय दतिया की दोनो प्रतियों में 'सरसठ' के स्थान पर किये गये 'सत्तर' का संशोधन प्रक्षिप्त और अनधिकृत है।

व्यासवंशीय आचार्य श्री राधाकिशोर जी गोस्वामी, वृंदावन द्वारा प्रकाशित श्री व्यास-वाणी में आचार्य श्री लाडिलीकिशोर गोस्वामी के 'प्राक्कथन' में भी यही जन्म तिथि और संवत् प्रकट किया गया है। 'शक्ति संगम तंत्र' की भूमिका में श्री विनयतोष भट्टाचार्य जी ने व्यास जी का जन्म सन् १५१० ई० (अर्थात् संवत् १५६७ वि०) में लिखा है ‡।

संवत् १६१२ में ४५ वर्ष की अवस्था में व्यास जी के वृंदावन जाने का उल्लेख करने वाले जो लेख उपलब्ध हुए हैं, उन्हें देखने से भी जन्म संवत् १५६७ की पुष्टि होती है। मुख्य लेख ये हैं—

(१) लेखक को एक वंशवृक्ष अपने ही घर के पुराने बस्तों में मिला है, जिसमें व्यास जी से नीचे १०-११ पीढ़ियाँ दी गई हैं। इस आधार पर उस वंशवृक्ष को संवत् १८७५ वि० के पूर्व का माना जाना चाहिये। लेखन शैली और कागज भी इस अनुमान का समर्थन करते हैं। इस वंशवृक्ष के शीर्षक में लिखा है—"व्यास जू के वंश वर्णन की। संवत् १६१२ में व्यास जू बृंदावन गए, अवस्था ४५, सुकल समोखन के इष्ट श्री नृसिंह जू।"

---

‡ Hari Ram Shukla, the founder of Harivyasi Sect of the Vaishnava School belonged to Bundelkhand and was born in the year 1510 A. D

-Preface to Shakti Sangam Tantra, *(Gayakwad Oriental Series Vol. LXI.)*

(२) श्री लोकेन्द्र ब्रजोत्सव (पृष्ठ १५) मे लिखा है—

पैंतालीस वरषें गईं, वृथा जगत सनमान।
तबहीं यह दोहा पढ़ौ, भरी भक्ति विज्ञान॥
व्यास बड़ाई जगत की, कूकर की पहिचान।
प्रीति करे तन चाट है, बैर करे तन हान॥
सोरा सौ बारा संवत में, आए ब्रज सुख लीनों।
रसिक सभा में पायौ आदर, हरिगुन गाइ प्रचीनों॥

(३) जार्ज ए० ग्रियर्सन ने व्यास जी का सन् १५५५ ई० में ४५ वर्ष की अवस्था में वृंदावन जाना लिखा है ‡।

(४) डाक्टर रामकुमार वर्मा भी 'हिंदी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ ७१७ में लिखते हैं कि ४५ वर्ष की अवस्था (संवत् १६१२) में व्यास जी ओरछा छोड़ कर वृंदावन गये।

अतएव श्री व्यास जी का जन्म मार्गशीर्ष कृष्णा ५ बुधवार संवत् १५६७ वि० के दिन अरुणोदय के समय भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों और सूत्रों से संकलित सूचनाओं के आधार पर निर्विवाद सिद्ध होता है। ज्योतिष गणना के अनुसार उक्त तिथि को बुधवार भी था।

(२) *पिता*—व्यास जी के पिता का नाम समोखन शुक्ल था। इसका प्रमाण नाभादास जी की भक्तमाल है; जिसमें व्यास जी के परिचय वाले छप्पय में उन्हें 'सुकल समोखन सुअन' लिखा गया है। अपने पदों में पिता को अभिप्रेत करने के लिए व्यास जी ने 'सुकुल' शब्द का ही प्रयोग किया है †। सामाजिक दृष्टिकोण से पिता को नाम से संबोधित करना संस्कृति के अनुकूल न था। 'कल्याण' के संत अंक में उन्हें 'सुखोमणि' लिखा गया है। 'समोखन' शब्द को संस्कृत रूप देने की दृष्टि से ऐसा किया गया प्रतीत होता है। उपलब्ध वंशावली में भी व्यास जी के पिता का नाम समोखन ही दृष्टिगोचर हुआ है। 'गुरु-शिष्य-वंशावली' मे व्यास जी के पिता का नाम 'समोखन व्यास' लिखा गया है—

‡ Byas Swami alias Hari Ram Sukl of Urchha, in Bundelkhand. In the year 1555 A. D, when he was forty five years of age, he settled in Brindaban

—The Modern Vernacular Literature of Hindustan, Page 28.
(Asiatic Society, Calcutta.)

† 'जो हौं सत्य सुकुल को जायौ' (व्यासवाणी)

प्रगटे देव समान, तासु पुत्र एकहिं भये ।
पुंज तपोनिध जान, नाम समोखन व्यास यह ॥

व्यास जन्मोत्सव की वधाई मे भी व्यास जी के पिता का नाम समोखन शुक्ल ही प्रकट किया गया है—

श्री समोखन सुकल पूछत, विप्र चरन मनाइ ।
कहिये जू जाको भाव-फल, सब जन्मपत्र बनाइ ॥
ग्रह सोधि कै सब विप्र बोले, सुनहु श्री महाराज ।
करिहै जू जग मे 'भक्ति पूरन', भयौ भक्तन राज ॥
सबे "शास्त्र-पुरान-वक्ता व्यास पदवी" पाइ ।
'भक्त भूपन शिष्य करि, गोस्वामी वंस कहाय ॥'

सदा युगलकिशोर चर्वित पात्र सेव दिखाइ ।
गाइ है प्रभु चरित बहुविध, सकल भक्त रिझाइ ॥
नाम है हरिराम, इक मुख गुन गने नहि जाइ ।
विष्णु-परिकर आइ प्रगटौ, धन्य तुम धन माइ ॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ ४)

रहै विसाखा सहर, ओडछें दास हमारौ ।
सुकल समोखन नाम, विप्रवर यह व्रत धारौ ॥ ३२ ॥

उत्तम तुम प्रिय होय, सोइ सुत दीजिये ।
मैं दीनों वर महा, कहा अब कीजिये ॥ ३३ ॥

तबहिं विसाखा जोर हस्त, प्रभु आगै आई ।
जो कछु आयसु भयौ, सोई करि हौं सुखदाई ॥ ३४ ॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ १२)

(३) *जन्म-स्थान*—अंतिम उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमदास जी के वर्णन के अनुसार व्यास जी के पिता सुकल समोखन व्यास जी के जन्म समय के पूर्व ही ओरछा मे ही रहते थे । जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, व्यास जी के जन्म के २० वर्ष पश्चात् स० १५८७ में महाराजा रुद्रप्रताप ने ओरछा को राजधानी के लिए चुना था। किंतु इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि इसके पूर्व ओरछे का कोई इतिहास ही न था। महाकवि चंद वरदाई ने रासो मे 'महोवा खड' के अतर्गत ओरछा समयो † का वर्णन किया है। इस प्रकार ओरछा की प्राचीनता

† देखिये, खोज रिपोर्ट, १६०६–०८, नोटिस १४६ (सी)

बारहवीं शताब्दी विक्रमी के पूर्व की होने का उल्लेख मिलता है। व्यास जी ओरछे के ही प्रसिद्ध रहे हैं। जार्ज ए० ग्रियर्सन ने भी उन्हें ओरछा का लिखा है §। एक प्राचीन चित्र पर भी 'श्री हरिराम व्यास जू ओरछे के' लिखा हुआ उपलब्ध है *। यही सूचना अखिल भारतीय श्री हित राधावल्लभीय महासभा वृंदावन से प्रकाशित 'व्यास वाणी' की प्रस्तावना से भी प्राप्य है, किंतु इसमें ओरछा के इतिहास और भूगोल संबंधी सूचनाएँ भ्रमपूर्ण हैं।

भारत के मानचित्र पर अक्षांश २५° २१' उत्तर तथा देशांतर ७८° ४२' पूर्व पर ओरछा नगरी स्थित है। जी० आई० पी० रेलवे की झाँसी से मानिकपुर की ओर जाने वाली लाइन पर ओरछा पहिला ही स्टेशन है। आचार्य श्री राधाकिशोर जी गोस्वामी वृंदावन द्वारा प्रकाशित 'व्यास वाणी' के प्राक्कथन में भी बुंदेलखंड की तत्कालीन † राजधानी ओरछा को ही जन्म स्थान माना है। अतएव व्यास जी का जन्म स्थान ओरछा ही निश्चित रहता है।

(४) *माता*—व्यास वाणी (श्री राधाकिशोर गोस्वामी द्वारा प्रकाशित) के प्राक्कथन में व्यास जी की माता का नामोल्लेख 'पद्मावती' किया गया है। यह नाम किस आधार पर उक्त निबंध में लिखा गया है, इसका कोई सूत्र नहीं बतलाया गया। संभव है व्यास वाणी के पद 'पद्मावती पति पद सरनम्' का आधार लेकर ऐसा किया गया हो। किंतु उक्त पद में पद्मावती से अभिप्राय 'गीत-गोविंद' के प्रणेता भक्त कवि जयदेव की धर्मपत्नी से है।

व्यास जन्मोत्सव की कई बधाईयों में व्यास जी की माता का नाम देविका या देविका देवी पाया जाता है—

कृष्ण पक्ष की पचमी, मंगल जुत बुधवार।
कृष्ण पक्ष की सहचरी, प्रगटी सुकुल कुमार॥

---

§ 'Modern Vernacular Literature of Hindustan' P 28

* इसी चित्र की प्रतिकृति इस ग्रंथ में संलग्न है। मूल चित्र ग्रंथ-लेखक के ठाकुर श्री नंदकिशोर जी के मंदिर में पूजार्थ सम्मानित है। 'कल्याण' के भक्त-चरितांक में भी यही चित्र प्रकाशित हुआ है।

† व्यास जी के जन्म संवत् १५६७ के समय ओरछा नगरी बुंदेलखंड की राजधानी न थी।

मनो देव की 'देविका', वल्ली सुकृत अनूप ।
अवतारी जेहि कूख में, हरीराम फल रूप ॥×

श्री गुरु आयुस पाइ कें, भक्त चरन रज आस ।
वरनन कीनो यथा मति, जुगल प्रेम प्रभुदास ॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ १५-१६)

श्री द्विजरानी देवि देविका, तिनकी कूख सिरानी ।
जनु जग जानी सहज अपूरव, पूरव दिस मन मानी ॥×

जुगल विहार अहार नित्य, सुखसार रूप यह साजै ।
उदित उदार सुकल कुल दीपक, लखि कलि-कल्मष भाजै ॥
व्यास वस अवतस प्रेम, प्रभुदास उमग जस गावै ।
परम सुहाई, सब मनभाई, रुचिर वधाई पावै ॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ २१)

प्रिय सहचरि मनभाई, परम सुखदाई,
हरि आयस पाई, भवन सुभ आई । —वही

देवि देविका कूख प्रगट भई आइकें ॥ १ ॥

—गरीबदास कृत (पृष्ठ २२)

धन्य देविका कूख यह ।

—रामकिशोर कृत (पृष्ठ २४)

धन्य देविका कूख अमित आनंदनिधि ।

—दुलारेलाल कृत (पृष्ठ २७)

भाग भरी देविका जू लाल कों झुलावै ॥

—हित हरिलाल कृत (पृष्ठ ३८)

'गुरु-शिष्य-वंशावली' में तो यहाँ तक लिखा हुआ है कि सुकल समोखन का विवाह घीमरी ग्राम निवासी ब्रह्मदास ब्राह्मण की देविका नाम्नी कन्या से हुआ था। यद्यपि 'गुरु-शिष्य वंशावली' में दिये गये विवाह संबंधी वृत्तातों की परीक्षा नहीं की गई है, तो भी उसमें व्यास जी की माता का नाम देविका ही प्रकट किया गया है, जो व्यास जन्मोत्सव की वधाई मे उल्लिखित सूचनाओं से साम्य रखती है।

२. नाम, आस्पद और उपाधि—

(१) नाम—हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की खोज रिपोर्ट सन् १९१७-१९ की नोटिस संख्या २०४ में व्यास जी का नाम मोहनदास

लिखा गया है, जो सर्वथा भ्रमपूर्ण है।। श्री व्यास जी का पूर्व नाम हरिराम था, जिसका प्रमाण उनके एक पद के अंत.साक्ष्य से भी प्राप्त होता है। वह पद इस प्रकार है—

पिय के हिय तें तू न टरति री।×

हँसि 'हरिराम व्यास' की स्वामिनि लालहिं अंक भरत री॥

किंतु यह महानुभाव 'व्यास जी' के नाम से ही इतने अधिक प्रसिद्ध हो गये थे, कि अधिकांश लेखकों ने केवल उनकी उपाधि या उपनाम 'व्यास' से ही उनका उल्लेख किया है। श्री नाभादास जी की भक्तमाल, श्रीध्रुवदास जी की भक्त नामावली, चौरासी वैष्णवन की वार्ता आदि अनेक प्राचीन ग्रंथों मे भी इनका वर्णन केवल 'व्यास' के नाम से ही मिलता है। लोकेन्द्र ब्रजोत्सव, गुरु शिष्य वंशावली, तुरग मंगल तथा अनेकों वशावलियो मे इनका नाम हरिराम व्यास लिखा पाया जाता है। व्यास जी के एक प्राचीन एव प्रामाणिक चित्र में भी यही नाम अंकित मिला है।

गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित भक्त सौरभ तथा रीवा नरेश महाराज रघुराजसिंह की रामरसिकावली आदि ग्रंथों में इन्हें 'व्यासदास' के नाम से लिखा गया है। अपने पदों में व्यास जी ने छाप के रूप मे व्यासदास नाम का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया है। निस्संदेह इनका नाम हरिराम था।

(२) आस्पद—श्री हरिराम जी संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। श्री मद्भागवत और पुराणों के वक्ता होने के कारण ही प्रथम वे 'व्यास' उपाधि से विभूपित हुए। तदनतर इसी 'व्यास' उपाधि को उन्होंने कविता

। Vyas Mohan Das was a devotee of Radha Ballabhi sect and lived at Orchha While at Brindaban, he founded a new sect called Hari-Vyasa The only work of his, that has been found, is Vyas ki Bani.

खोज रिपोर्ट का उक्त उल्लेख अशुद्ध है। खोजकर्ता एक ही जिल्द मे योजित दो पृथक ग्रंथो को भूल से एक ही रचयिता के समझ बैठे। एक ग्रंथ है 'व्यास की बानी' और दूसरा 'सनेहलीला'। प्रथम ग्रंथ में व्यास उपनाम और दूसरे मे 'लीला गोकुल गॉव की, गोपीकृष्ण सनेह। जन मोहन जो गावहीं, सो पावे नर देह' आदि दोहों से रचयिता का नाम मोहनदास लेकर और उसके साथ व्यास जी द्वारा हरिव्यासी सप्रदाय को स्थापित करने की प्रचलित भ्रांतिपूर्ण धारणा को मिलाकर ही खोज रिपोर्ट में उक्त अशुद्ध उल्लेख किया गया है।

के लिए उपनाम रूप मे स्वीकार कर लिया। इससे इनका यह उपनाम ही विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया। सनाढ्य ब्राह्मणों मे व्यास नाम की एक अल्ल भी है। सौन्दर्य सागर‡ मे श्री राधालाल गोस्वामी ने कवि वश वर्णन करते हुए लिखा है कि कृष्णदास व्यास के एक मात्र पुत्र रेवाशर्म थोडी आयु पाकर मर गये। तब उन्होंने अपनी कन्या के पुत्र सुकुल समोखन को गोद लिया। इन्हीं सुकुल समोखन के पुत्र हरिराम व्यास और परशुराम हुए। इस प्रकार श्री राधालाल जी गोस्वामी हरिराम व्यास को सनाढ्यों की 'व्यास' अल्ल का प्रकट करते हुए से प्रतीत होते हैं।

व्यास जी ने अपनी वाणी मे कितने ही स्थानों पर अपने पिता का उल्लेख किया है और उन्हें शुक्ल ही कहा है†। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हरिराम के साथ लगा हुआ 'व्यास' अल्ल या आस्पद न होकर उपनाम या उपाधि मात्र है, तथा उनका अल्ल 'शुक्ल' ही है। यदि व्यास जी के पिता समोखन जी शुक्ल के कुल से 'व्यास' अल्ल धारी कुल मे गोद गये होते तो हरिराम जी अपने को 'व्यास' ही लिखते, 'शुक्ल' न लिखते। 'गुरु शिष्य वंशावली' से सुकल समोखन को रेवा शर्म के पुत्र बतलाये गये हैं तथा उनका नाम समोखन व्यास* लिखा है। इसका कारण उस समय मे शुक्ल समोखन की पौराणिक वृत्ति का होना माना जा सकता है। सुकुल समोखन तथा उनके पूर्वज भी पुराणवक्ता होने के कारण व्यास उपाधि से विभूषित रहे हैं। इसके उल्लेख भी कई प्राप्त होते हैं। व्यास वशीय अन्य गोस्वामी जनों के द्वारा रचित पदों में भी इनका शुक्ल वश मे जन्म लेना लिखा है। उन पदों के उद्धरण व्यास जन्मोत्सव की बधाई से दिये जाते हैं—

जय जय श्री गुरु व्यास सुकल कुल अवतरे।

—वल्लभदास कृत (पृष्ठ २)

---

‡ देखिये सवत् १६८५ बसतलाल गोरखराम मुबादेवी, मुबई द्वारा प्रकाशित सौन्दर्य सागर, पृष्ठ ६४–६५

† १ जो हौं सत्य सुकुल कौ जायौ। (व्यासवाणी)

२ पहिले भक्तन के मन निर्मल। ×
जिन्हें सेइ वृन्दावन पायौ व्यास सुकल जन्म फल॥ (व्यासवाणी)

* प्रगटे देव समान, तासु पुत्र एकहिं भये।
पुंज तपोनिध जान, नाम समोखन व्यास यह॥

नमो नमो जय श्री गुरु व्यास ।
सुकल वंस ससि सरद प्रकास ॥
—वीरजअलि कृत (पृष्ट ३)

व्यास जी के समकालीन नाभादास जी ने भी व्यास जी को 'सुकुल समोखन सुवन' लिखा है। विदेशी विद्वानों ने भी इनको शुक्ल ही लिखा है‡। लोकेन्द्र ब्रजोत्सव मे शुक्ल वंश में उत्पन्न श्री हरिराम जी को 'व्यास' उपाधि से विभूषित होने का यही कारण भी प्रगट किया है कि पुराण वक्ता होने से वे व्यास जी कहलाये, और यही सूचना 'व्यास जू के वंस वर्णन' पत्र मे दी गई है।

(२) उपाधि—इसी प्रकार 'गोस्वामी' या 'गुसाई' की उपाधि भी है, जो दीक्षा गुरु को संबोधित करने मे प्रयुक्त होती रही है§। श्री व्यासोत्सव की जन्म बधाई मे भी इस आशय के पद हैं कि पुराण वक्ता होने के कारण श्री हरिराम जी शुक्ल व्यास कहलाये तथा शिष्य बनाने के कारण वे गोस्वामी कहलाये। बधाई मे यह विवेचन श्री व्यासजी के जन्म के समय उनके पिता समोखन शुक्ल का अन्य ब्राह्मणो से व्यास जी के ग्रहादिकों के फल के विषय मे वार्तालाप के रूप मे प्रकट किया गया है—

---

‡ George A Grierson, in his book "Modern vernacular Literature of Hindustan" writes as follows :—
Byas Swami, alias Hari Ram Sukl of Urchha in Bundelkhand fl. 1555 A D

§ आए स्वयं सिद्ध सरजू ते, रामचन्द्र जन-पालक ।
तहाँ भए हैं सुक्ल समोखन, हे सनाढ्य सब लायक ॥
तिनके तनय भए युग सुन्दर, परसुराम हैं एका ।
दूजे हरीराम को जानो देखे शास्त्र अनेका ॥
हरीराम सों मधुकरसा ने, सुने पुरान अठारा ।
पदवी दई 'व्यास' की तिनको, अति ही कर सतकारा ॥
दीक्षा मंत्र हतौ उन हू को, गोस्वामी पद दीनो ।
भए 'गुसाई' व्यासदास, नृप निज चरणोदक लीनों ॥
—लोकेन्द्र ब्रजोत्सव, पृष्ठ ५१

श्री समोखन सुकल पूछत, विप्र चरन मनाइ ।
कहिये जु जाकौ भाव फल, सब जन्मपत्र बनाइ ॥१२॥
यह सोधिकैं सब विप्र बोले, सुनहु श्री महाराज ।
करिहै जु जग में भक्ति पूरन, भयौ भक्तन राज ॥१३॥
सर्व सास्त्र-पुरान-वक्ता, व्यास पदवी पाइ ।
भक्त भूपन सिप्य करि, गोस्वामि वंस कहाइ ॥१४॥
नाम है हरिराम, इक मुख गुन गने नहिं जाइ ।
विष्णु-परिकर आइ प्रगटौ धन्य तुअ धन माइ ॥१५॥

—प्रेमदास कृत (पृष्ठ ४)

उक्त बधाई मे व्यास जी का पूरा नाम हरिराम भी प्रकट हुआ है। व्यास जी ने अपनी वाणी में मंत्रोपदेश करने वाले गुरुओं को 'गुसाईं' पर्यायवाची शब्द से संकेत किया है*। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'गोस्वामी' कोई स्वतंत्र अल्ल न होकर मंत्रोपदेश करने वाले वैष्णव गुरुओं की एक उपाधि विशेष है। इस प्रकार कितने ही विभिन्न गुरु वंश गोस्वामी उपाधि अपने नाम के साथ धारण करते चले आ रहे हैं‡। व्यास जी की वंश परंपरा में उत्पन्न व्यासवंशी गोस्वामी कहलाते हैं, किंतु उनकी वास्तविक अल्ल 'शुक्ल' है। व्यास जी सनाढ्य ब्राह्मण थे, जिसकी पुष्टि उनके वंशजों तथा व्यास-वाणी में वर्णित श्री राधाकृष्ण की विवाह लीला में सनाढ्य ब्राह्मण समुदाय में प्रचलित विवाह प्रणाली के अनुसार वर्णन से भी होती है†।

---

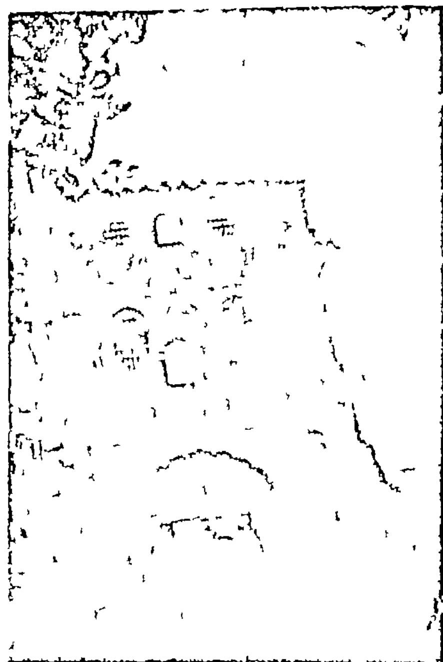
* धर्म दुरयौ कलि दई दिखाई। ×
उपदेसन कौ गुरू गुसाईं, आचरनै अधमाई ॥ (व्यास वाणी)

‡ गोसाईं उपाधि के अधिकारी वे ही साधु माने जाते हैं, जो कतिपय विशिष्ट संप्रदायों में दीक्षित होते हैं। ऐसे संप्रदाय गिनती के पाँच हैं—वृंदावनी, गौडीय, गोकुलस्थ, राधावल्लभी और दशनामी। (देखिये श्री माताप्रसाद जी गुप्त द्वारा रचित 'तुलसी संदर्भ' में 'तुलसीदास नाम के साथ लगे हुए गोसाईं शब्द का रहस्य।' शीर्षक निबंध)

† सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने इन्हे भ्रमवश 'गौड़ ब्राह्मण' लिखा है। देखिये 'दी माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान।' (पृष्ठ २८)



ओरछा में व्यास जी के उपास्य ठाकुर जी का प्राचीन मंदिर



ओरछा में व्यास जी की प्राचीन हवेली

३. खेरा और परिवार—

(१) खेरा—महर्षि वेदव्यास जी की वंश-परंपरा में उत्पन्न देवमणि नामक एक महापुरुष ने व्रजमंडल मे जमुना तट से एक मील की दूरी पर स्थित पिप्पल नामक स्थान पर तपस्या की और सिद्धि प्राप्त हो जाने पर विवाहोपरांत पूर्ववत् पुनः कालपी मे ही गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। देवमणि से आठवीं पीढ़ी नीचे व्यास जी के पिता सुकल समोखन हुए। उन्होंने पिप्पल खेरे को पुनः आबाद किया†।

श्री व्यास जन्मोत्सव की एक बधाई मे भी समोखन जी के पिप्पल खेरे से संबंधित होने की चर्चा की गई है—

बड़े हमारे प्रथम ही, आए आय विवाह।
पिप्पल खेरे में तबहिं, लीनों दान प्रवाह॥

—रामकिशोर कृत (पृष्ठ २४)

सोरम जी के प्रोहित की वही से व्यास वंशवृक्ष की ली गई एक प्रतिलिपि मे भी 'खेरो पीपरी, सहर मथुरा' लिखा है। बधाई के उद्धरण से अनुमान होता है कि पिप्पल अथवा पीपरी मे पहुँचने के उपरांत समोखन जी का विवाह भी वहीं हुआ। 'गुरु शिष्य वंशावली', मे सुकल समोखन द्वारा विंध्यवासिनी देवी की तपस्या करने का उल्लेख किया गया है, जिससे उनका पिप्पल खेरे को छोडना भी अभिप्रेत है।

कोटा राज्य की खानपुर निजामत के एक दीवानी मुकद्मा में 'व्यास वंशी राजगुरु गुसाईयों' का एक कुर्सीनामा पेश हुआ था*। उसमें दी गई एक टिप्पणी के अनुसार समोखन जी शुक्ल के पितामह पुरुषोत्तम व्यास ने तुंगारण्य‡ मे वेत्रवती के तट पर तपस्या की थी। इससे समोखन जी के पूर्वजों का ओरछा मे वेत्रवती के तट पर तपस्या करते हुए वहीं स्थायी रूप से निवास करना प्रकट होता है।

किसी दृढ़ आधार के अभाव मे इस विषय पर निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। व्यास जी ने तो अपनी वाणी मे खेरा 'बरसाना' लिखा है, किंतु उस पद में इस प्रकार की समस्त सूचनाऐं अनयन्ता की द्योतक हैं, न कि ऐतिहासिक तथ्य की—

---

† 'गुरु शिष्य वंशावली' के आधार पर।

* देखिये, मिसिल नंबरी ५०४।६।१४२ म० ८३ मरहुआ २८।१।१६२६ फैसला ३०।८।१६२७।

‡ केसौदास ओरछे के पास-पास तीन कोस, तुंगारण्य नाम बन को बखानत है।'
—कविप्रिया, प्रभाव ७, छंद ७

रसिक अनन्य हमारी जाति ।
कुल देवी राधा, बरसानौ खेरौ, ब्रजवासिन सों पाँति ॥

अस्तु । इतनी संभावना मानकर कि व्यास जी के कोई पूर्वज ब्रज के पिप्पल नामक ग्राम से ओरछा आये थे, हमे सतोष करना पडेगा ।

(२) *भाई*—श्री नवलकिशोरजी विद्यार्थी ने 'भक्त श्रीव्यासदास जी' शीर्षक चरित्र में हरिराम व्यास को सुमोखन शुक्ल का इकलौता पुत्र लिखा है†, जो ठीक नहीं ।

अन्य कितनी ही वंशावलियों में सुमोखन जी शुक्ल के दो पुत्र हरिराम और परशुराम लिखे गये हैं‡। इन वंशावलियो में उक्त दोनों के उल्लेख में क्रम भेद पाये जाते हैं । 'गुरु शिष्य वंशावली' मे हरिराम को ही समोखन जी का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है—

जेठे हैं हरिराम, देव अस तिन सों कहे ।
हैं दोउ एक समान, परसराम लौरे कहे ॥४०॥

व्यास जी के पद के अतर्साक्ष्य से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यास जी अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे । वह पद इस प्रकार है—

मनहिं नचावै विषय-वासना क्यों हिरदै हरि आवै ।
लहुरौ भैया करि विरोध औरनि पै कोहि हँसावै ॥

(३) *बहिन*—एक पद में व्यास जी ने बहिनी और बेटा को संबोधित करके लिखा है‡ । यद्यपि बहिनी संबोधन अन्य स्त्रियों के प्रति भी हो सकता है, किंतु इसके साथ 'भाई' न होकर 'बेटा' शब्द की सन्निधि इस बात के द्योतक हैं कि इन प्रयोगों से परिवार की ही बहिन अभिप्रेत है ।

(४) *पुत्री*—एक दूसरे पद से व्यास जी के एक कन्या होने का भी साक्ष्य मिलता है* । भक्तमाल की प्रियादास जी कृत टीका के ३६१ वें कवित्त में व्यास जी की सुता के विवाह की एक घटना का वर्णन भी किया गया है । पुत्रों को संकेत कर उन्होंने कई पद लिखे हैं$ ।

† देखिये, 'भक्त-सौरभ' पृष्ठ १ (गीता प्रेस, गोरखपुर)

‡ देखिये, 'गुरु शिष्य वशावली', 'लोकेन्द्र ब्रजोत्सव', 'व्यास जू का वस वर्णन पत्र' आदि ।

‡ बहिनी बेटा हरिकों न तजियै ।

* मरैं वे जिन मेरे घर गनेस पुजायौ । ×
'व्यासदास' कन्या पेटहिं क्यों न मरी, अनन्य धर्म में दाग लगायौ ॥

$ भजहु सुत साचे स्याम पिताहि ।

(५) पुत्र—वंशावलियों मे भी व्यास जी के तीन पुत्र पाये जाते हैं। प्रियादास कृत भक्तिरस-बोधिनी टीका (रचनाकाल संवत् १७६६) के ३६४ वें कवित्त मे भी व्यास जी के तीन पुत्र होने की सूचना दी गई है तथा उनमे से एक का नाम भी किशोरदास होना प्रकट किया गया है। शेष दो पुत्रों के नाम उसमे नहीं प्रकट किये गये।

किशोरदास के अतिरिक्त व्यास जी के अन्य दो पुत्रों के नाम सौंदर्य सागर पृष्ठ ६५ मे गोपालदास तथा श्यामदास लिखे गये हैं। श्री छोटेलाल जी गोस्वामी, दतिया द्वारा संगृहीत वंशवृक्ष के एक अर्वाचीन पत्र मे भी यही उल्लेख है। किंतु सौंदर्य सागर के रचयिता श्री राधालाल जी गोस्वामी के द्वारा ही निश्चित रूप से मान्य एक हस्तलिखित वंशवृक्ष में लेखक ने गोपालदास तथा श्यामदास के स्थान पर रासदास तथा विलासदास नामांकित देखे हैं। अन्य और भी जितने वंशवृक्ष विभिन्न स्थानों पर उपलब्ध हुए हैं, उनमें व्यास जी के तीन पुत्रों के नाम रासदास, विलासदास तथा किशोरदास लिखे पाये गये हैं। परीक्षित वंशवृक्षों में से प्राचीनतम पत्र का लिपिकाल संवत् १८७५ के लगभग प्रमाणित हुआ है। 'गुरु शिष्य वंशावली' के अनुसार रासदास, विलासदास मझले पुत्र और किशोरदास छोटे पुत्र थे।

(६) *पत्नी*—आचार्य श्री राधाकिशोर जी गोस्वामी द्वारा प्रकाशित व्यासवाणी के प्राक्कथन मे लिखा है कि 'योग्य अवस्था में एक सुकुलीन ब्राह्मण की पुत्री श्री सुशीला जी के साथ श्री व्यास जी का पाणिग्रहण हुआ।' पता नहीं 'सुशीला' नाम की यह सूचना किस आधार पर दी गई है। 'भक्त सौरभ' में एक सुशीला कन्या से व्यास जी का विवाह कर देना लिखा है, जिसमें 'सुशीला' शब्द संज्ञा न होकर विशेषण के रूप में है। 'गुरु शिष्य वंशावली' में व्यास जी का विवाह बरसाने निवासी दयाराम जी की सुपुत्री गोपी नाम्नी कन्या के साथ होना तथा दयाराम को श्री वृषभानु जी के पुरोहित का वंशज बताया गया है। 'गुरु शिष्य वंशावली' में दी गई विवाह संबंधी सूचनाओं की प्रामाणिकता के संबंध में इतना कहा जा सकता है कि इस वंशावली मे प्रकट व्यास जी की माता का नाम 'देविका' व्यास जन्मोत्सव की विभिन्न कवियों द्वारा रचित कई बधाइयों मे पाया गया है। अतएव व्यास जी की पत्नी का नाम 'गोपी' कदाचित् किसी आधार पर ही 'गुरु शिष्य वंशावली' मे लिखा गया होगा। 'व्यास वाणी' के प्रसंगों मे ज्ञात होता है कि जिन उपदेशों को व्यास जी ने

अपनी पत्नी के प्रति कहा है, उनमे कहीं-कहीं उन्हे वैष्णवदासी करके संबोधित किया है, किंतु यह उनका वास्तविक नाम नहीं है—

"विनती सुनिये वैष्णवदासी ।"

(७) *निष्कर्ष*—उक्त विवेचन से व्यास जी के परिवार मे पत्नी†, एक छोटा भाई, बहिन, पुत्री तथा तीन पुत्रों के होने की सूचना मिलती है।

४. पूर्वज—

'गुरु-शिष्य वंशावली' मे लिखा है कि जमुना तट पर स्थित कालपी नगरी में परासर मुनि द्वारा सत्यवती के गर्भ से अजय शर्मा का जन्म हुआ था। वही अजय शर्मा वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध हुए। वेदव्यास जी की वश-परपरा में उत्पन्न देवमणि नामक एक महापुरुष ने ब्रजमंडल में तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की। देवमणि से लेकर हरिराम व्यास तक वंशावली के नाम और उनके विवाह संबंधी एवं जो कुछ अन्य सूचनाएँ उक्त ग्रथ मे दी गई हैं, वे इस प्रकार हैं—

देवमणि—ब्रजमडल के पिप्पल ग्राम में तपस्या की। विवाहोपरात कालपी में रहे।

कोक—गदौली ग्राम निवासी देवदत्त ब्राह्मण की सुता से विवाह हुआ।

मारकंड व्यास—वन कुंज में बसे। सुहेरी निवासी जसि शर्मा की पुत्री से विवाह हुआ।

सुमन व्यास—अविवाहित रहे तथा अपने अनुज के पुत्र को गोद लिया।

उदयभान व्यास—गदौली ग्राम निवासी पडित राम की कन्या उन्हे व्याही गई।

देवनारायण व्यास—मधुपुरी निवासी हरिशर्मा ब्राह्मण की कन्या व्याही गई।

भोज व्यास‡—गोवर्धन वासी दयादास की कन्या से विवाह हुआ।

---

† वृंदावन कथा (बगला) में पृष्ठ १४२ पर व्यास जी की पत्नी द्वारा पद-रचना की भी सूचना दी गई है।

‡ 'सौन्दर्य-सागर' तथा एक साधारण वशावली में भोज व्यास के पिता का नाम पुरुषोत्तम व्यास लिखा है। उन वशावलियों में व्यास पुरुषोत्तम के ऊपर की पीढियाँ या तो हैं नहीं, या सदिग्ध रूप से वर्णित हैं।

रेवा शर्मा†—मधुपुरी निवासी दुजोन जी की कन्या से विवाह हुआ।

सुकुल समोखन—वीमरी निवासी ब्रह्मदास जी की देविका नामक कन्या से उनका विवाह हुआ। उन्होंने पिप्पल ग्राम को पुन. आबाद किया।

हरिराम व्यास—श्री वृषभानु जी के पुरोहित की वंश परपरा मे उत्पन्न बरसाना निवासी दयाराम जी की गोपी नाम्नी कन्या से इनका विवाह हुआ।

उक्त वंशावली मे वर्णित हरिराम व्यास जी के पूर्वजों के नाम ऊपर की तीन पीढ़ी अर्थात् भोज व्यास तक अन्य दो वंशावलियों से किसी न किसी प्रकार समर्थित हैं। हरिराम व्यास की माता का नाम देविका होने का उल्लेख भी 'व्यास जन्मोत्सव की बधाई' में मिलता है। उसमें सुकुल समोखन के साथ पिप्पल खेरे का लगाव भी मिलता है। शेष सूचनाओं के समर्थन अन्यत्र नही मिले। जिन आधारों पर समर्थन प्राप्त हुए हैं, वे भी निश्चयात्मक रूप से प्रामाणिक नहीं कहे जा सकते। अतएव इतनी पुरानी ऐसी पूर्ण सूचनाओं को कहाँ तक ग्रहण किया जाय, यह नहीं कहा जा सकता। विवाह सबध की जो सूचनाएँ ऊपर दी गई हैं, उनके अतिरिक्त वंशावली मे आये हुए लगभग ५०० नामों में से वे औरों के विषय मे नहीं दी गई हैं।

५. शिक्षा—

व्यास जन्मोत्सव की बधाइयों से प्रकट होता है कि व्यास जी ने समस्त शास्त्रों और पुराणों का अध्ययन किया था‡। उनकी वाणी मे

† कहीं-कहीं यह नाम रेसर्म या रेसरमन रूप में लिखा गया है। उनके पिता का भोज व्यास नाम होने की पुष्टि श्री बाबूलाल जी गोस्वामी दतिया के सौजन्य से दृष्ट एक वशावली से हुई है। सौंदर्य सागर मे रेवा शर्म के पिता का नाम कृष्णदास व्यास, जो भोज व्यास के भाई थे, लिखा है। रेवा शर्म की मृत्यु अल्पायु में मानकर कृष्णदास व्यास द्वारा अपनी कन्या के पुत्र सुकल समोखन को गोद लेने का वहाँ उल्लेख किया गया है। किंतु सोरम जी के प्रोहित की बही, से नकल की गई एक वशावली के आधार पर 'रेशर्म' के समोखन, अर्जुन और मंदीजन नामक तीन पुत्र हुए थे। अतएव 'गुरु शिष्य वशावली' की नामादिकों की सूचनाएं किसी सीमा तक ठीक प्रतीत होती है।

‡ सर्व शास्त्र-पुरान-वक्ता, 'व्यास' पदवी पाय।
भक्त भूषन मिश्र कर, गोस्वामि वंश कहाय॥

व्यक्त दार्शनिक विचारों से पता चलता है, कि वे वेदांत के प्रकांड पंडित थे। वाणी की काव्य-कला, और रागमाला में वर्णित भारतीय नाद के शास्त्रीय विवेचन से उनका काव्य और सगीत पर अधिकारपूर्ण ज्ञान का प्रमाण आज भी उपलब्ध है। परतु व्यास जी की शिक्षा कहाँ और किसके द्वारा हुई इसके सबध में सूचनाएँ अप्राप्य हैं। साधारणतया यही प्रतीत होता है कि उन्होंने ओरछा में ही शिक्षा प्राप्त की। वे बड़े ही प्रसिद्ध शास्त्रार्थी पंडित हुए और अपनी विद्या की धाक जमाने के लिए उन्होंने अनेकों प्रसिद्ध विद्वानों को परास्त किया था।

६. दीक्षा गुरु—

(१) प्रचलित मत—व्यास जी द्वारा हितहरिवंश जी का शिष्यत्व ग्रहण करने की एक मनोरंजक कथा का बहुत प्रचार है। इस कथा का उल्लेख करने वाले ग्रंथों में प्राचीनतम रचना जो उपलब्ध है, वह है संवत् १७०७ वि० में वर्तमान भगवत मुदित जी कृत 'रसिक-अनन्यमाल'। इस ग्रथ में लिखा है कि ओरछा में संत नवलदास जी से व्यास जी ने हरिवंश जी का यह पद सुना—

आजु अति राजत दंपति भोर।
सुरत रंग के रस में भीने, नागर नवलकिसोर॥
अंसनि पर भुज दिए बिलोकत, इंदु बदन बिबि ओर।
करत पान रस मत्त परस्पर, लोचन त्रिषित चकोर॥
छूटी लटनि लाल मन कर्ष्यौ, ये याके चित चोर।
परिरंभन चुंबन मिल गावत, सुर मंदर कल घोर॥
पग डगमगत चलत बन बिहरत, रुचिर कुंज घन खोर।
जै श्री हित हरिवंस, लाल ललना मिलि हियौ सिरावत मोर॥

पद के लालित्य और प्रेम की अलौकिक छटा से व्यास जी मुग्ध हो गये। उनका मन संतों की शरण में जाने के लिए उतावला पहिले से ही हो रहा था। फिर क्या था, 'भगवत दुख विसर्यौ सुनत, नवल वचन सुख सीर। संसै सूलरु भ्रम नस्यौ, निरमल भयौ सरीर।' अब उनकी उत्कंठा श्रीहित जी को गुरु करने के लिए हो गई। वे नवलदास जी के साथ वृंदावन आये† । उस समय श्री हित हरिवंश जी राधावल्लभ जी

† कार्तिक लगत वृंदावन आए। नवल रसिक संग लिए सुहाए॥
—रसिक अनन्य माल

के भोग के लिए अमनियाँ सिद्ध कर रहे थे। व्यास जी ने उसी समय उनसे वार्त्तालाप करना चाहा। आग्रह देख श्री हित जी ने चूल्हे पर से वर्तन उतार कर नीचे रख दिया और तब वे बात करने को उद्यत हुए। यह देख कर व्यास जी ने कहा कि रसोई और बातचीत तो साथ-साथ चल सकती थी। क्यों कि—

"करिवौ-धरिवौ कर के धर्म। कहिवौ-सुनिवौ मुख-श्रुति मर्म॥"

—रसिक अनन्य माल।

इसका उत्तर हित जी ने एक पद में दिया, वह यह है—

यह जु एक मन वहुत ठौर करि कहि कौनें सचु पायौ।
जहँ तहँ विपति जार जुवती लौं, प्रगट पिंगला गायौ॥
द्वै तुरंग पर जोर चढत हठि, परत कौन पै धायौ।
कहिधौं कौन अंक पर राखै, जो गनिका सुत जायौ॥
जै श्री हित हरिवंस प्रपंच वंच सब. काल व्याल कौ खायौ।
यह जिय जानि स्याम-स्यामा-पद-कमल संग सिर नायौ॥

इस उपदेश को सुनते ही व्यास जी ने शिष्य बनने की अभिलाषा प्रकट की ‡। तब हित जी ने—

श्रद्धा लखि निज मंत्र सुनायौ। भयौ व्यास के मन कौं भायौ॥

—रसिक अनन्य माल ('भक्त सौरभ' से उद्धृत)

‡ To indicate the fervour of his passionate love for his divine mistress Harivans assumed the title of Hit ji and is popularly better known by his name than by the one, which he received from his parents His most famous disciple was Vyas ji of Orchha, whom various legends are reported. On his first visit to the Swami, he found him busy in cooking, but at once propounded some knotty theological problem The sage without any hesitation solved the difficulty, but first threw away the whole of the food he had prepared with the remark that no man could attend properly to two things at once. Vyas was so struck by this procidure, that he then and there enrolled himself as his disciple.

—Mathura District Memoir, Page 199

भगवत मुदित जी कृत 'सेवक चरित्र'‡ में भी ऐसा लिखा है कि गौड देशांतर्गत गढा ग्राम के निवासी चतुर्भुजदास और सेवक जी जब दीक्षा लेने का विचार कर रहे थे, तब उनके समीप कुछ रसिक उपासकों की मंडली आई और उसने उन्हें श्री हित हरिवंश जी की प्रशंसा सुनाई तथा यह भी बतलाया कि नवलदास जी के साथ व्यास जी भी श्री हित जी के पास पहुँच गये हैं। व्यास जी जैसे प्रसिद्ध पंडित के विषय में इस चर्चा को सुन कर चतुर्भुजदास और सेवक जी में श्री हित जी के प्रति विश्वास बढ़ गया।

अब 'रसिक अनन्य-माल' में जो हित जी से व्यास जी द्वारा दीक्षा ग्रहण करना लिखा है, उसका काल इसी ग्रंथ के अन्य प्रसंग को दृष्टि में रखते हुए क्या ठहरता है, इस पर भी दृष्टि डालना आवश्यक हो जाता है*। कार्तिक शुक्ला १३ संवत् १५९० वि० को श्री हित हरिवंश जी वृंदावन आये थे †। 'रसिक-अनन्य माल' में वर्णित श्री पूरनदास और परमानंददास के वार्तालाप की इस चौपाई से कि—"यह जु एक मन कौ पद गायौ। व्यासहिं कह्यौ सु अर्थ बतायौ॥" से यह लक्षित होता है कि व्यास जी को राजा परमानंददास जी से पूर्व ही दीक्षा मिल चुकी थी। इस वार्तालाप के अनिश्चित कालोपरांत संवत् १५९२ की भादों सुदी ९ को परमानंददास जी को स्वप्न द्वारा दीक्षा प्राप्त हुई ‡‡। इस प्रकार इस वर्णन से व्यास जी को कार्तिक शुक्ल १३ संवत् १५९० से भादों सुदी ९ संवत् १५९२ के बीच किसी समय दीक्षा देने का काल ठहरता है। व्यास जी के चरित्र में लिखा है कि—"कार्तिक लगत वृंदावन आये। नवल रसिक

---

‡ रीवा नरेश के सरस्वती भंडार में 'सेवक वाणी' सचित्र रस मोहिनी टीका के प्रारंभ में भगवत मुदित जी कृत सेवक चरित्र संलग्न है। बस्ता नं० ३, पुस्तक नं० ४९।

* गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'भक्त-सौरभ' मे दिये गये व्यासदासजी के चरित्र में दीक्षा काल संवत् १६०० वि० के लगभग कार्तिक मास इंगित किया गया है। यह चरित्र भी 'रसिक अनन्यमाल' के आधार पर लिखा गया है।

† इस तिथि के विषय में मतभेद है। बहुत से विद्वान संवत् १५६५ के पूर्व श्री हिताचार्य का वृंदावन में आगमन प्रकट करते हैं।

‡‡ पंद्रह सै बानवै भादौं सुद। नवमी दीक्षा लई भई मुद॥

—रसिक अनन्यमाल (परमानंददास जी का चरित्र)

संग लिए सुहाए ॥" उपरोक्त दोनों सीमाओं में कार्तिक मास संवत् १५६० और १५६१ में ही संभव हो सकता है। संवत् १५६० के कार्तिक की समाप्ति के समय तो स्वयं हित जी ही वृंदावन आये †। अतः 'कार्तिक लगत' वाला पदांश सं० १५६१ के कार्तिक के लिए ही उपयुक्त बैठता है।

इस विवेचन के अनुसार 'रसिक अनन्यमाल' के आधार पर व्यास जी का हित हरिवंश जी से दीक्षा लेना और उसका काल कार्तिक संवत् १५६१ प्रकट होता है। किंतु यहाँ पर स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि 'रसिक अनन्यमाल' में व्यास जी का दीक्षा-काल उनके ही प्रसंग में नहीं दिया गया है, तथा ग्रंथ का उद्देश्य किसी प्रामाणिक इतिहास लिखने का न होकर श्री हित हरिवंश जी की महिमा का कथन मात्र था। अतएव यह भी संभव है कि पूर्वापर प्रसंग पर ध्यान न देकर श्री हिताचार्य के होने वाले शिष्यों के चरित्रों में व्यास जी जैसे उद्भट विद्वान् की चर्चा कर दी गई हो।

आचार्य श्री रामचंद्र शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा तथा श्री वियोगी हरि* आदि विद्वानों ने तो ओरछा नरेश महाराज मधुकर शाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यास जी का स० १६२२ के लगभग श्री हित हरिवंश जी का शिष्यत्व ग्रहण करने का काल प्रकट किया है। किंतु इन लेखक महानुभावों ने यह नहीं बतलाया कि उनकी इस सूचना का आधार क्या है। बहिर्साक्ष्य के आधार पर किसी सूचना को स्वीकार कर लेने के पूर्व हमें अंतर्साक्ष्य की समीक्षा कर लेना है।

(२) *उक्त मत के कथित अंतर्साक्ष्य की समीक्षा*—अखिल भारतवर्षीय श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा वृंदावन द्वारा प्रकाशित श्री व्यास वाणी की प्रस्तावना में उदाहरण रूप से कुछ प्राचीन

---

† श्री हित जी का वृंदावन आगमन काल 'श्री हित चरित्र' एवं 'श्री हित सुधासागर' के 'वितान' के अनुसार कार्तिक शुक्ला १३ संवत् १५६५ माना जाता है।

* श्री वियोगी हरि जी ने वीरसिंह देव द्वारा अकबर के विश्वासपात्र मंत्री अबुलफजल के वध की घटना के पश्चात् व्यास जी का ओरछा से वृंदावन जाना तथा महाराजा मधुकर शाह द्वारा उन्हें मनाने और उनका वृंदावन न छोड़ने का उल्लेख किया है। किंतु अबुलफजल का वध सन् १६५९ में हुआ था, जिसके ९ वर्ष पूर्व ही मधुकर शाह का देहांत हो चुका था। अतएव इस वर्णन की ऐतिहासिक संगति नहीं है। —देखिये 'व्रज माधुरी सार' पृष्ठ ६४

एवं अर्वाचीन ग्रंथों का नामोल्लेख करते हुए उनमें व्यास जी के जीवन पर प्रकाश डालने वाले वृत्तांत तथा निश्चित रूप से श्री हित हरिवंशाचार्य महाप्रभु के प्रिय शिष्यों में व्यास जी की गणना किये जाने का उल्लेख है। इसमें व्यास जी द्वारा श्री हिताचार्य का शिष्यत्व ग्रहण करने की वह प्रचलित कथा तो है ही, जिसमें 'यह जु एक मन बहुत ठौर करि कहु कौने सचु पायौ' वाले श्री हित जी के पद का प्रसंग आता है, साथ ही व्यास जी की तथाकथित रचनाओं के कुछ ऐसे उद्धरण दिये गये हैं, जिनके द्वारा व्यास जी श्री हित जी के शिष्य सिद्ध होते हैं। उन उद्धरणों की विवेचना नीचे दी जाती है—

प्यारी श्री वृंदावन की धूर।
राधे जू रानी, मोहन राजा, राज सदा भरपूर॥
कनक कलस करुआ महमूदी, खासा व्रज कमलन की चूर।
व्यासहिं 'गुरु हरिवंश' बताई, अपनी जीवन मूर॥

—व्यास वाणी (राधावल्लभीय) पृष्ठ ज.

उक्त पद यथावत उसी व्यास वाणी (राधावल्लभीय) के मूल भाग मे भी नहीं है, जिसकी प्रस्तावना मे वह उद्धृत किया गया है। 'प्यारी श्री वृंदावन की धूर' के स्थायी का कोई पद प्रकाशित व्यास वाणी की दोनों प्रतियों में मुझे नहीं मिला। हाँ, यही पद भिन्न स्थायी और थोडे से पाठांतर के साथ सभी प्रतियों में इस प्रकार उपलब्ध होता है—

मैदा मिश्री मुहरें मेरें, श्री वृंदावन की धूरि।
जहाँ राधा रानी, मोहन राजा, राज रह्यौ भरिपूर॥
कनक कलस करुआ महमूदी, खासा व्रज कमरनि की चूरि।
'व्यासहिं' हित हरिवंश बताई, अपनी जीवन मूरि॥

—व्यास वाणी (राधावल्लभीय) पृष्ठ ६

उक्त पद से स्पष्ट होगा कि जहाँ व्यास वाणी के मूल में 'हित हरिवंश' है, वहाँ प्रस्तावना में 'गुरु हरिवंश' उद्धृत किया गया है। व्यास वाणियों की विभिन्न प्रतियों मे उक्त पद में 'हरिवंश' के साथ पूर्ववर्ती शब्द इस प्रकार पाये जाते हैं—

(क) हित हरिवंश—१. व्यास वाणी (राधावल्लभी) पृ० ६
२. व्यास वाणी (लिखित स० १८६४) पृष्ठ ४
३. व्यास वाणी (लिखित स० १८८८.) पृष्ठ २
४. व्यास वाणी (लिखित सं० १६६३)
हिंदी साहित्य संमेलन में सुरक्षित ग्रंथ संख्या २१३६-१३५३, पद संख्या ११

सं० १८८८ में लिपिबद्ध व्यास-वाणी की हस्त लिखित प्रति में

गुरु संबंधी उल्लेख—

मैदमूदोषासाकुजकमरनकीमूरि॥ व्यासहितदे
तहरिवंशवताईआपनीजीवनिमूरि॥ ७३॥ मन

दीनोमोहनलालरिझायो॥ सूतोहुतौवि
बैमंदिरमैश्रीधरहरजगायो॥ भवतोव्यास

सैकैकहतभागवतविचारि॥ ७५॥ इतिश्रीव्या
सजकीबानीमहारससानोपरमप्रेमभक्ति
मंगलकरनीपरमउपदेससिद्धांतकीसाषीसं
पूर्णसमाप्तः॥ शुभंभ्यात॥माहवदि१४सं
वत १८८८ मु: दलीपनगरसुभंमंगलददातम

(१) श्री हित हरिवंश जी का उल्लेख [मूल प्रति पृ० २]

(२) गुरु संबंधी उल्लेख [मूल प्रति पृ० ५५]

(३) लिपि-संवत् का उल्लेख [मूल प्रति पुष्पिका]

स० १८६४ में लिपिबद्ध व्यास-वाणी की हस्त लिखित प्रति में

गुरु संबंधी उल्लेख—

सकल धाम हमूंदी ब्रजकवरनका चूर ॥ व्यास
हि हित हरिवंसतजी अपनी जीवनमूर ॥ १६ ॥

रनराधा मनुदीनो मोहनलालनि जायो ॥ सू
तो हतो विषमंदिर मे श्री गुरदेव जगायो ॥ च्या

सी पद संपूर्ण ॥ इति व्यासजू की बा
नी संपूर्ण ॥ संवत १८६४ ॥ बुधवा
र ॥ चैत्र सुक्ल ॥ ७ ॥ बुधे ॥ ता दिने

(१) श्री हित हरिवंश जी का उल्लेख [मूल प्रति पृ० ४]

(२) गुरु संबधी उल्लेख [मूल प्रति पृ० १]

(३) लिपि-संवत् का उल्लेख [मूल प्रति की पुष्पिका]

(ख) श्री हरिवंश—१. व्यास वाणी (श्री राधाकिशोर गोस्वामी) पृ. ३०
२. व्यास वाणी (लिखित स० १८६६) हिंदी साहित्य
संमेलन में सुरक्षित ग्रंथ संख्या २१३३–१३५२
पृष्ठ १६ पद ४

यद्यपि 'हितहरिवंश' अथवा 'श्री हरिवंश' पाठ ग्रहण करने पर 'हरिवंश' के साथ 'गुरु' शब्द का प्रयोग नहीं रह जाता, तथापि व्यास जी के द्वारा यह स्वीकार किया जाना इस पद से भी सिद्ध है कि उन्हें श्री हित हरिवंश जी ने अपने जीवन के मूल तत्व को बतलाया था।

(२) इस संबंध में दूसरा उद्धरण है—

अब हम वृंदावन धन पायौ।
चरन सरन राधे मन दीनौ, 'श्री हरिवंश' बतायौ॥
सोयौ हुतौ विषय मंदिर में, 'हित गुरु टेर' जगायौ।
अब तौ 'व्यास' विहार विलोकत, सुक नारद मुनि गायौ॥

इसके दूसरे चरण में जहाँ 'श्री हरिवंश बतायौ' है, वहाँ मूल ग्रंथ में इसके विपरीत 'मोहनलाल रिझायौ' पाठ है, जो अन्य प्रकाशित तथा प्रयुक्त हस्त लिखित प्रतियों से समर्थित है। अत: 'श्री हरिवंश बतायौ' पाठ प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। फिर एक ही छंद में पास-पास दो बार हित जी के नाम का प्रयोग भी उपयुक्त नहीं है। तीसरे चरण का 'हित गुरु टेर जगायौ' पाठ केवल व्यास वाणी (राधावल्लभीय पृष्ठ ८४) से तो मिलता है, किंतु अन्य प्रयुक्त व्यास वाणियों में यह पाठ नहीं पाया जाता। तीनों प्रतियों अर्थात् व्यास वाणी (श्री राधाकिशोर गोस्वामी, पृष्ठ ७३) लिखित १८६४ वि० पृष्ठ १ तथा लिखित १८८८ पृष्ठ ५५ के अनुसार 'श्री गुरु टेरि जगायौ' पाठ है, अत: 'गुरु' के साथ 'हित' शब्द की सन्निधि सिद्ध नहीं होती है।

(३) प्रस्तावना के तीसरे उद्धरण का दोहा—

राधावल्लभ इष्ट लख्यौ, 'गुरु मिले हरिवंश'।
व्यास बास बनराज कौ, करि छोड्यौ सब संत॥

न तो व्यास वाणी (राधावल्लभीय) के मूल भाग में ही पाया जाता है और न व्यास वाणी की अन्य प्रयुक्त प्रतियों में ही यह है। अतएव जब तक यह व्यास जी की कृति सिद्ध न हो, इसे क्षेपक मानना होगा।

इस प्रकार समस्त उद्धरणों की समीक्षा से यह प्रकट होता है कि वे या तो व्यास वाणी के ही सर्वमान्य अंग नहीं हैं, अथवा उनमें ऐसा परिवर्तन हुआ है, जिसमें श्री हित हरिवंश जी के नाम के साथ 'गुरु' शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर हो सके। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह उद्धरण व्यास वाणी की उसी प्रति के अनुसार भी खरे नहीं उतरते, जिसकी प्रस्तावना में उनका प्रयोग हुआ है।

अ० भा० श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा वृंदावन द्वारा प्रकाशित व्यास वाणी मे निम्न लिखित पद तथा दोहा ऐसे हैं, जो हिताचार्य के प्रति व्यास जी का शिष्यत्व प्रकट करते हैं, किंतु इनमें कोई भी प्रयुक्त व्यास वाणी की प्रकाशित एवं लिखित अन्य प्रतियों मे नहीं पाये जाते—

(१)

जय जय श्री हरिवंश, हंस हंसिनि लीला रति।
जय जय श्री हरिवंश, भक्ति में जाकी दृढ मति॥
जय जय श्री हरिवंश, रटत श्री राधा राधा।
जय जय श्री हरिवंश, सुमिरि नासै भव बाधा॥
व्यास आस (हित) हरिवंस की, सु जय जय श्री हरिवंस।
चरन सरन मोहीं सदा, रसिक प्रसंस प्रसंस॥

(२)

एक पकौरी सब जग छूट्यौ।
जप, तप, ब्रत, संजम करि हारे, नैकु नहीं मन टूट्यौ॥
माया रचित प्रपंच कुटुंबी, मोह-जाल सब छूट्यौ।
व्यास गुरु (हित) हरिवंस कृपातें, बसिवनराज प्रेम-रस लूट्यौ॥

(३)

व्यास भक्ति कौ फल लह्यौ (श्री) वृंदावन की धूरि।
हित हरिवंस प्रताप तें, पाई जीवन मूरि॥

(४)

कोटि-कोटि एकादसी, महा प्रसाद कौ अंस।
व्यासहिं यह परतीति है, जिनके गुरु हरिवंस॥

अतएव जहाँ व्यास जी के गुरु निर्णय करने का संबंध है, इन पदों का साक्ष्य रूप में प्रयोग न करना ही साधारणतया ठीक होगा, जब तक कि इनको व्यास जी की रचना होना निर्विवाद रूपेण स्वीकार न कर लिया जाय।

(३) एक शंका—श्री हरिराम व्यास वंशोद्भव आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी द्वारा प्रकाशित व्यास वाणी मे श्री लाड़िलीकिशोर जी गोस्वामी की ओर से प्रस्तुत प्राक्कथन में व्यास जी को हित जी का शिष्य स्वीकार न करके उन्हें उनके पिता समोखन जी शुक्ल द्वारा ही दीक्षा दिया जाना प्रकट किया गया है। इसमे वतलाया गया है कि एक ओर तो श्री व्यास वाणी मे ऐसे अनेक पद हैं, जिसमे श्री हरिदास जी तथा श्री हरिवंश जी के प्रति व्यास जी ने सखा भाव प्रदर्शित किया है तथा दूसरी ओर व्यास वाणी के मंगलाचरण तथा अन्य स्थलो पर भी गुरु रूप मे व्यास जी द्वारा उनके पिता सुकुल जी का उल्लेख हुआ है। यह शंका भी उत्पन्न की गई है कि जब ओरछा ही मे श्री नवलकिशोर जी व्यास जी को प्रकट हो गये थे, तब आप्तकाम व्यास जी को श्री हिताचार्य जी की दीक्षा की क्या आवश्यकता थी।

(४) प्रचार—इस संबंध मे एक वात यह भी ध्यान देने योग्य है कि विशिष्ट महात्माओं और विद्वानों को अपने प्रांत, संप्रदाय, जाति आदि को प्रकट करने और तत्संबंधी साहित्य सृजन करने की परिपाटी सैकडों वर्षों से चली आ रही है, जिसके कारण इतिहास के सही रूप का निर्णय करना कठिन हुआ है। श्री महंत किशोरदास जी द्वारा रचित ग्रंथ 'निजमत सिद्धांत' (संवत् १९६८ मे प्रकाशित) के अवसान खंड पृष्ठ १२९ पर यह वर्णन है कि जयगोपाल और उदयचंद वनियाँ पहिले हित कुल के वडे सेवक थे, परंतु वाद मे वे टट्टीस्थान के रसिकदेव जी के शिष्य हो गये थे। इससे तत्कालीन श्री हित सेवाधिकारी रूपलाल जी क्रुद्ध हुए और उन्होंने आगरे वाले हरिजी वनियाँ से एक पोथी 'रसिकमाल' की लिखाई, जिसमें हरिदास स्वामी को हित जी का शिष्य[1] वताया और उसकी अनेक प्रतिलिपियाँ सेवकों के पास भिजवाईं। इस अपराध से हरिजी मल कुष्ट से ग्रसित हुआ। वह रसिकदेव की शरण आया और अपना गुप्त अपराध कह कर प्रकट किया।

इस कथा के दुहराने का केवल इतना ही उद्देश्य है कि संप्रदायवाद की संकीर्णता से इस प्रकार के शिष्यत्व का प्रचार अथवा उसकी

---

1 उत्तमदास कृत (सं० १७८९ के लगभग) 'रसिक अनन्य माल (हित परिचई) मे भी लेखक को स्वामी हरिदास जी के प्रसंग मे यही उल्लेख मिला है, यथा—

तब प्रगटे श्री कुंजविहारी। पुष्ट सरीर दरस छवि न्यारी॥
श्री हित जी के मत अनुसार। सेवत निरन्तर नित्य विहार॥ इत्यादि।

अमान्यता के संबंध की दलबंदियों के कारण वास्तविकता का पर्दा तोड़ने में व्यर्थ की उलझनें उत्पन्न हो गई हैं। अतएव व्यास वाणी के अन्तर्साक्ष्य को ही हमें अधिक निकट से देखकर उसका उचित उपयोग करना होगा।

(५) *व्यास जी के गुरु संबंधी विचार*—व्यास जी की विचार-धारा से प्रकट होता है कि वे एक ही गुरु मे दृढ़ विश्वास रखने वाले थे। किसी सम्प्रदाय विशेष में आर्थिक लाभ की दृष्टि से लोगों को प्रविष्ट होते देख वे उनकी हँसी उड़ाते थे—

दिन द्वै लोग अनन्य कहायौ।
धन लगि नट कौ भेष काछि कें, फिरि पाँचनि में आयौ॥
'सिगरे विगरे अगनित गुरु करि', सब कौ जूठौ खायौ।
इत व्यौहार, न उत परमारथ, वीचहिं जनम गमायौ॥
खौं खोदी ऊसर वैवे कों, चोढ भैंस लै साड मुल्यायौ।
'गनिका कौ सुत पितहिं पिंड दै, काकौ नाम लिवायौ॥
अंधरहि नाँचि दिखायौ, जैसे, बहरहिं गाइ सुनायौ।
चढ़ि कागद की नाव नदी कहि, काहू पार न पायौ॥
प्रीति न होहि बिना परतीतिहिं, सब संसार नचायौ।
सहज भक्ति बिनु 'व्यास' आस करि, घर ही माझ मुसायौ॥

उक्त पद में 'गनिका कौ सुत पितहिं पिंड दै काकौ नाम लिवायौ' के द्वारा यह व्यंजना की गई है कि जिस प्रकार गणिका के पुत्र को उसके पिता का निश्चय न रहने के कारण पिंड दान में पिता के नाम कथन में भ्रम बना रहता है, वही दशा उन व्यक्तियों की रहती है, जो दृढ़ सिद्धात के न होकर एक गुरु पर विश्वास नहीं कर पाते। इसी से तो अगणित गुरुओं से दीक्षा लेने को उन्होंने विगडने का कारण माना है।

एक ही गुरु की सेवा और सत्संग से वे स्वपच के लिए भी मोक्ष सरल मानते थे। गुरु और गोपाल को समान मान कर वे भगवत्प्राप्ति के लिए गुरु की कृपा होना अनिवार्य कहते थे। एक गुरु में दृढ़ श्रद्धा न रखने वाले को उन्होंने 'गणिका सुत' के उदाहरण से व्यक्त किया है। वही उदाहरण इस विषय पर लिखे गये इस पद में दुहराया गया है—

जैसे गुरु तैसे गोपाल।
हरि तौ तब ही मिलि हैं, जब ह्वै श्री गुरु होहिं कृपाल॥×
सत संगति गुरु की सेवा करि, सुपचहिं करत निहाल
'व्यासदास' खिजियै गुरु जुग-जुग, मिटत नहीं उर-साल॥

(६) गुरु सुकुल सम्बोधन—व्यास वाणी के मंगलाचरण में जो वंदना की गई है, उसमें गुरु के लिए 'सुकल' का प्रयोग मिलता है। यथा–

'वंदे श्री सुकल पद पंकजन'

इससे व्यास जी के गुरु 'सुकुल' होने का प्रमाण मिलता है। पहिले बतलाया जा चुका है कि व्यास जी ने 'सुकल' आस्पदीय कुल में जन्म लिया था। व्यासवंशी गोस्वामियों में अद्यावधि अपने पिता से ही दीक्षा-मंत्र प्राप्त करने की परंपरागत प्रथा चली आती है। इससे भी यही प्रकट होता है कि व्यास जी ने अपने पिता से दीक्षा मंत्र प्राप्त किया था। व्यास वाणी के अन्य ऐसे स्थलों पर जहाँ गुरु वंदना की गई है, वहाँ 'गुरु सुकुल' का ही उल्लेख मिला है।

व्यास वाणी दो भागों में विभक्त है—प्रथम 'सिद्धांत' और द्वितीय 'शृंगार रस'। 'सिद्धांत भाग' का मंगलाचरण ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। 'शृंगार रस भाग में श्री गुरुमंगल विषयक जो पद है, उसमें कई बार 'गुरु सुकुल' का उल्लेख हुआ है। यथा—

जय जय 'श्री गुरु सुकल' वस उदित भयौ।
उग्यौ है जस भान तिमिर जग कौ गयौ ॥×
जय जय श्री गुरु सुकुल भक्ति हित अवतरे।
कर्म ज्ञान कौं छाँडि प्रेम पथ अनुसरे ॥×
जय जय श्री गुरु सुकल सहचरी प्रिया की।
सदा बसें नव कुंज चाह लखि पिया की ॥×
जय जय श्री गुरु सुकल मोहि सर्वसु दयौ।
उरझि प्राननि प्रान निवारत सुख हयौ ॥×

इसमें भी 'सुकुल' का गुरु होना स्पष्ट है। इतना ही नहीं बल्कि 'जय जय श्री गुरु सुकल सहचरी प्रिया की' से स्पष्ट हो जाता है कि सखी भाव की जो उपासना-पद्धति व्यास जी ने ग्रहण की, उसे उन्होंने मूल रूप में अपने पिता सुकल जी से प्राप्त की थी।

इसके अनंतर मंगलाचरण का दूसरा पद देखिये—

वंदे श्री राधा-रमनमुदार'।
श्री गुरु सुकल सहचरी ध्याऊं, दंपति-सुख-रस-सार' ॥×

इसमें भी श्री गुरु सुकल को सहचरी कह कर सखी भाव की उपासना में उन्हीं से दीक्षित होने का संकेत किया गया है। यहाँ पर यह

संदेह उपस्थित किया जा सकता है कि व्यास जी के पिता के अतिरिक्त भी तो अन्य सुकल † का अभिप्राय हो सकता है। परंतु हमारी इस शंका का समाधान भी अंतर्साक्ष्य से ही हो जाता है। व्यास जी ने कहा है कि हमारे घर की भक्ति में कमी आ गई। इस घर में भक्ति विरोधी पुत्र ‡ पौत्रों के जन्म लेने से सर्वस्व ही बिगड़ गया, क्यों कि अभक्त पुत्र पिता के लिए घातक होता है। भक्तों का विरोध होने से ही मेरे गुरु सुकल की भी मृत्यु हुई। सतयुग स्वरूप उन्हीं श्री सुकल की मैं भी संतान हूँ। आदि।" इस प्रकार से जिस पद में उन्होंने गुरु के साथ 'सत्य सुकल' * शब्द का प्रयोग किया है, उसी में उपलब्ध पूर्वापर प्रसंग से उन्हीं गुरु सुकल का व्यास जी के पिता होना भी प्रकट हो रहा है। पूरा पद इस प्रकार है—

हमारे घर की भक्ति घटी।
उपजे नाती-पूत बहिर्मुख, बिगरी सबै गटी॥
सुत जो भक्त न भयौ, तो पिता कौ गरी कटी।
भक्त बिमुख भए मम गुरु सत्य सुकलहूँ मीचु ठटी † ॥

---

† सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'दी माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' में (पृष्ठ २६ पर) भ्रमवश 'शुक्ल' आस्पदीय कुल में ही हित हरिवंश का जन्म होना लिखा है। किंतु हित जी 'मिश्र' थे, जैसा श्री सेवक-वाणी में स्पष्ट रूप से लिखा उपलब्ध है।

‡ सुकल समोखन के छोटे पुत्र व्यास जी के विरोधी थे, जिसका उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है—

"मनहिं नचावै विषय वासना क्यों हिरदै हरि आवै।×
लहुरौ भैया करि विरोध औरनि पै मोहिं हँसावै॥"

* 'गुरु शिष्य वंशावली' में लिखा है कि समोखन जी शुक्ल अपने आदर्श सत्य व्यवहार के कारण सत्य सुकल के उपनाम से प्रसिद्ध थे। यद्यपि व्यास वाणी में अन्य स्थलों पर भी जैसे "जो हौं सत्य सुकल कौ जायौ" 'सत्य सुकल' का प्रयोग हुआ है, किंतु वहाँ सत्य शब्द विशेषण का भी काम करता है। अतएव यह निश्चयता के साथ नहीं कहा जा सकता, कि यहाँ सत्य संज्ञा है या विशेषण।

† घर में गणेश पूजन के कारण मानी हुई मृत्यु का एक उल्लेख व्यास जी की साखी में भी है—

"रसिक अनन्य कहाय कें, पूजे गृह गन्नेस।
'व्यास' क्यों न जिनके सदन, यम गन करैं प्रवेस॥"

ता सतयुग तें हीं कलिजुग उपज्यौ, काम क्रोध कपटी ।
माला तिलक दग कों मेरें हरि नाम सीस पटी ॥
कृष्ण नचाएँ तृष्णा के मैं कीनी आरभटी ।
किहिं कारन हरि 'व्यासहिं' दीन्हीं, वृंदावनहिं तटी ॥(व्या०२८८)

अतएव हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि व्यास जी ने अपने पिता समोखन जी शुक्ल से ही दीक्षा-मंत्र प्राप्त किया था।

(७) *श्री माधवदास में श्रद्धा*—पुलिनविहारी दत्त जी ने व्यास जी को 'श्री माधव' नामक एक सन्यासी से मंत्रोपदेश पाना लिखा है §। अन्य बंगाली लेखक भी इसकी पुष्टि करते हैं। लालदास कृत भक्तमाल में भी व्यास जी को माध्व संप्रदाय में श्री माधव द्वारा दीक्षित किया जाना लिखा है †। व्यास जी के स्वरचित 'नवरत्न' नामक सस्कृत ग्रंथ में 'माधव' के करुणापात्र होने का व्यास जी द्वारा ही वर्णन किया जाना कहा जाता है। किंतु लेखक को 'नवरत्न' की कोई प्रति देखने को उपलब्ध नहीं हुई। व्यास जी के पिता सुकल समोखन जी उक्त 'माधव जी' के शिष्य माने जाते हैं *, और सुकल समोखन द्वारा व्यास जी के दीक्षित होने पर 'श्री माधव जी' की शिष्य-परंपरा में व्यास जी आ ही जाते हैं। माधवदास जी द्वारा व्यास जी के सदेह दूर होने का उल्लेख उनके एक पद से भी प्राप्त है, जो इस प्रकार है—

---

§ "बुंदेलखंड अंतर्गत ओरछा वा ऊर्च्चा ग्रामे हरिराम व्यास नामे एक जन ब्राह्मण वास करितेन। तिनि माधवेन्द्र पुरीर शिष्य श्री माधव नामक एक जन सन्यासीर निकट मंत्र ग्रहण करिया वैष्णव धर्मे दीक्षित हइयाछिलेन।"

—'वृंदावन कथा', एकादश परिच्छेद, (बंगला) पृष्ठ १३६

† "श्री मन्माधवेन्द्र पुरी गोस्वामीर ।
शिष्य श्री माधव नाम शिष्य शातधीर ॥
तॉर शिष्य भील हरिराम ये गोसाइ ।
अतएव तार वंश माध्वी सम्प्रदाइ ॥
श्रीमन् व्यास कृष्ण वैष्णव सेवन ।
विने नाहि माय जाति कुटुंब मोचन ॥

—लालदास कृत 'भक्तमाल' (बंगला) पृष्ठ ७२१

* देखिये, आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी द्वारा प्रकाशित व्यास वाणी के प्राक्कथन, पृष्ठ ५

श्री माधवदास-सरन मैं आयौ ।
हौं अजान ज्यों नारद ध्रुव सौ, कृपा करी संदेह भगायौ ॥
जिनहि चाहि गुरु सुकल तज्यौ, वपु फिरकैं दरसन पायौ ।
मो सिर हाथ धरौ करुना करि, प्रेमभक्ति-फल पायौ ॥
हरिवंसी, हरिदासी सों मिलि, कुंज-केलि-रस गाय सुनायौ ।
गुरु, हरि, साधु, नाम, वन, जमुना, महाप्रसाद रसालय भायौ ॥
जातें सहज प्रिया-प्रीतम बस, कलजुग वृथा गँवायौ ।
मनसा, वाचा और कर्मना, 'व्यास' हिं स्याम बतायौ ॥ (१४)

उक्त पद से प्रकट होता है कि व्यास जी की माधवदास जी मे पूर्ण आदर-भावना थी और व्यास जी के कतिपय संदेहों का उन्होंने निवारण किया था। इतने कथन के साथ ही वे इसी पद मे 'गुरु सुकल' कह कर स्थिति को स्पष्ट कर देते हैं। हरिवंश जी और हरिदास जी से मिल कर कुंज-केलि-रस का गान करना आदि कथन भी इस पद में मिल जाते हैं। अतएव माधवदास जी के प्रति प्रकट की गई शरणापन्नता उनमें श्रद्धा भाव तो सिद्ध करती है, दीक्षा ग्रहण का भाव नहीं, क्यों कि 'संदेह भगायौ' पदांश से यह प्रकट है कि उन्होंने अपनी शकाओं के उचित समाधान ही उनसे प्राप्त किये थे । माधवदास जी के शिष्य व्यास जी के पिता एव गुरु सुकल समोखन थे, इस कारण उक्त प्रसग स्वाभाविक है।

जैसा प्रकट किया जा चुका है, श्री माधवदास सन्यासी थे । *व्यास जी सन्यासी से भक्ति की दीक्षा लेना ही पसंद न करते थे* । उनके इस पद से यह स्पष्ट है—

गुरु गोविंद एक समान ।×
सन्यासी पै मंत्र सुनत हैं, ते कब भक्त कहावत ॥
गुरु गाड़े चेला लै बारे, दोऊ पंथ तुरंत भये ।
उत संन्यास न इतहिं भक्ति फल, खल नर बीचहिं बीच गये ॥(व्या० २)

ऐसी दशा में व्यास जी का माधवदास जी से दीक्षा लेना प्रकट नहीं होता, यद्यपि वे उनकी शिष्य-परंपरा में आते हैं।

(८) *वृद्धावस्था में गुरु का नाम-संकेत*—व्यास वाणी की श्री राधाकिशोर ली गोस्वामी द्वारा प्रकाशित प्रति में महाप्रसाद की स्तुति के पद 'हमारी जीवन मूरि प्रसाद' का अंतिम चरण है 'श्री गुरु सुकल प्रताप व्यास यह रस पायौ अनहाद ।' सवत् १८६४ की हस्त लिखित प्रति

में 'श्री गुरु सुकल प्रताप 'व्यास' यह रस पायौ अनहाद' पाठ है। किंतु व्यास वाणी (राधावल्लभीय प्रकाशन) में पाठ बिल्कुल ही भिन्न है 'व्यास प्रीति परतीति रीति सो जूठनि ते गुन नाद।' यही पाठ संवत् १८८८ वि० की एक लिखित प्रति में भी पाया जाता है। इस पाठ में 'गुरु' का प्रयोग ही नहीं है, परंतु पूर्वोक्त प्रकार की शब्द-योजना व्यास जी के एक अन्य पद में भी पाई जाती है, जिसका अंतिम चरण सभी प्रयुक्त प्रतियों में एक सा पाया जाता है—

श्री वृंदावन में मंजुल मरिवौ।×
श्री गुरु सुकल प्रताप 'व्यास' रस, प्रेमसिंधु उर भरिवौ॥(व्या.१२२)

उक्त पद की टेक से यह व्यास जी की वृद्धावस्था की रचना अनुमानित की जा सकती है और इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनकी वृद्धावस्था के प्राप्त उल्लेखों में भी गुरु का नाम सुकल मिलता है।

(६) *साधुओं में सद्गुरु भाव*—जहाँ व्यास जी एक ही गुरु के अनुगामी थे, वहाँ उनका उदार हृदय सभी साधुओं में आदर भाव बनाए रखता था। वे जिस किसी संत में आदर भाव प्रकट करते, उसमें प्रौढ़ वर्णन शैली के बल से अपार श्रद्धा स्थापित कर दिखाते थे। परवर्ती आलोचकों ने इस श्रद्धा से वर्ण्य संतों में व्यास जी के गुरु होने का आरोप कर दिया है। गीत गोविंद के प्रणेता जयदेव की वंदना व्यास जी से सुनिये—

पद्मावति-पति-पद सरनम्।
कुंजकेलि कविराज मुकुटमनि, रसिक अनन्यनि आभरनम्॥
श्री हरिवंश हंस मुख सुखमय, वचन रचन दुख जल तरनम्।
श्री जयदेव 'व्यास' कुल वंदित, ब्रज जुवती नट नृत करनम्॥ (८)

महाप्रभु श्री कृष्ण चैतन्य के शिष्य श्री रूप और सनातन गोस्वामियों की स्तुति में कहे गये उनके एक पद से वे उनके भी अनुगामी से प्रतीत होने लगते हैं—

जय जय मेरे प्रान सनातन-रूप!
अगतिन की गति दोऊ भया, जोग-जग के कूप॥ (व्या. १५)

परंतु वास्तव में बात यह कि जैसा व्यास जी ने अपनी साखी में कहा है, वे सभी संतों को गुरुदेव मानते थे। आदि से अंत तक रसिकों की प्रणाली का अनुसरण करना ही उनका कर्तव्य था। वे कहते हैं कि—

आदि अंत अरु मध्य में, गहि रसिकन की रीति ।
संत सबै गुरुदेव हैं, व्यासहिं यह परतीति ॥

किंतु वे भक्ति का उपदेश न तो सन्यासियों से ही और न कर्मकांडी गृहस्थों से ही लेना पसंद करते थे। उनका प्रेम रसिक भक्तों से था। जहाँ एक ओर वे कहते हैं' कि 'सन्यासी पै मत्र सुनत हैं, ते कब भक्त कहावत', वहाँ दूसरी ओर उनके वचन हैं—

कर्मठ गुरु सकल जग बाँध्यौ करम-घरम उरझाए ।
काका-बाबा घर गुरु कीनें, घर ही कान फुकाए ॥ ×
प्रभुता रहत न तन के नाते, कोटिक ग्रंथ सुनाए ।
बडे कुलीन विद्या अभिमानी, सुता-पिता लपटाए ॥(व्या० २८५)

घर ही में दीक्षा लेने से शरीर-सबंध के कारण मोहवश गुरु का उपयुक्त सम्मान न होने तथा उनकी उचित सेवा न करने से भक्ति नहीं आ पाती। गुरु का आदर्श ही उनके सामने यह था—

'सोई गुरु जो साधु सिखावै'।

(१०) *हित हरिवंश और हरिदास जी में श्रद्धा-भाव*—व्यास वाणी में श्री हित हरिवंश जी तथा स्वामी श्री हरिदास जी का नाम बहुत बार आता है। जहाँ शब्द योजना की कोमलता के कारण श्री हिताचार्य जी वंशी के अवतार माने गये, वहाँ अपने सगीत की अद्वितीय साधना के फल स्वरूप तानसेन के संगीत-गुरु स्वामी हरिदास जी आज तक संत-शिरोमणि प्रसिद्ध हैं। उपासना क्षेत्र में भी वे ललिता सखी के अवतार माने जाते हैं। उन अनन्य रसिकों से व्यास जी विशेष प्रभावित थे। इस ध्वनि को प्रकट करने वाले कई पद उनकी वाणी में मिलते हैं।

व्यास जी की रासपचाध्यायी से यह प्रकट होता है कि यद्यपि उनके गुरु तो श्री सुकल समोखन जी थे, जिनकी कृपा से उन्होंने भक्ति भागवत को समझने की क्षमता प्राप्त की, तथापि वे श्री हित हरिवंश और श्री हरिदास जी के पद-चिह्नों पर चलने की कामना और उन दोनों महात्माओं को प्राप्त धाम में ही निवास करने की याचना अपनी आराध्य देवी राधारानी से करते रहे—

कह्यौ भागवत सुक अनुराग, कैसै समुझै बिनु बडभाग ।
श्री गुरु सुकुल कृपा करी ॥ ×
हरिवंशी हरिदासी जहाँ , मोहि करुना करि राखो तहाँ ।
नित्य बिहार अधार दै ॥ (७५६)

इससे प्रकट होता है कि श्री हित हरिवंश जी और स्वामी श्री हरिदास जी ने जिस पथ को ग्रहण किया था, उसी पर व्यास जी चले जा रहे थे। अपने समय के वे दोनों बड़े ही प्रभावशाली महात्मा थे और माधुर्य भाव की निकुंज उपासना को प्रधानता देकर वे नवीन संप्रदायों के प्रवर्तक हुए। श्री हितहरिवंश जी की विद्वत्ता, सरस पद-रचना और उपासना पद्धति का इन पर प्रभाव पड़ा अवश्य ही प्रतीत होता है, जिसके कारण वे उनको सद्गुरु† के रूप में सन्मान देते हुए दिखाई पड़ते हैं। श्री हिताचार्य के तिरोधान पर कहे गये विरह के पद में व्यास जी ने उनकी रसिकता, श्री राधिका जी में प्रेम, रचना-चातुर्य और उनके वृंदावन माधुर्य के वर्णन की स्मृति कर चिंता प्रकट करते हुए उन्हें सरस रीति को चलाने वाला माना है—

हुतौ रस रसिकनि कौ आधार।
बिनु हरिवंशहिं सरस रीति कौ कापै चलि है भार ॥ (व्या० २४)

श्री हित जी की स्तुति में उन्होंने लिखा था—

नमो नमो जै श्री हरिवंश।
रसिक अनन्य, वेनु-कुल मंडन, लीला-मानसरोवर-हंस ॥
नमो जयति-जै श्री वृंदावन सहज माधुरी रास बिलास प्रसंस।
आगम निगम अगोचर. श्री राधे चरन सरोज 'व्यास' अवतंस ॥ (१०)

(१०) *श्री हित हरिवंश जी द्वारा पथ-प्रदर्शन*—व्यास जी की साखी के अनेकों दोहों से स्पष्ट रूप से लक्षित हो जाता है कि वे श्री हित जी में सबसे अधिक श्रद्धा भाव रखते थे। उनको वे सद्गुरु मानते थे—

उपदेस्यौ रसिकन प्रथम, तब पाये हरिवंश।
जब हरिवंश कृपा करी, मिटे 'व्यास' के संस ॥
मोह मया के फंद बहु 'व्यास' हि लीनों घेरि।
श्री हरिवंश कृपा करी, लीनौं मोकौं टेरि ॥
श्री हरिवंश कृपा बिना, निमिष नहीं कहुँ ठौर।
'व्यासदास' की स्वामिनी, प्रगटी सब सिरमौर ॥
स्वामिनि प्रगटी सुख भयौ, सुर पुहपन बरषाय।
हित हरिवंश प्रताप, वे निले निसान बजाय ॥

---

† दीक्षा-गुरु के अतिरिक्त साधना में जिन अनुभव लब्ध महात्माओं की सहायता ली जाती है, उन्हें सद्गुरु कहते हैं। सद्गुरु की योग्यता पर ही शिष्य की सफलता निर्भर है। उचित मार्ग न पाकर साधक पथभ्रष्ट भी हो सकता है।

'व्यास' आस हरिवंश की तिनही के बडभाग ।
वृंदावन की कुंज में सदा रहत अनुराग ॥
राधावल्लभ 'व्यास' कौ इष्टमित्र, गुरुदेव ।
श्री हरिवंश प्रगट कियौ, कुंज महल रस भेव ॥

(१२) *श्री हरिदास स्वामी का प्रभाव*--स्वामी श्री हरिदास जी के प्रति भी वे विशेष श्रद्धा रखते थे और उनकी अनन्यता पर मुग्ध थे। उनके पदों में स्वामी श्री हरिदास जी का नामोल्लेख लगभग सभी स्थलों पर श्री हित हरिवंश जी के पश्चात् हुआ है। जितने अधिक स्थलों पर व्यास जी ने उक्त दोनों महात्माओं का नामोल्लेख किया है, उतना अन्य किसी का नहीं। इससे प्रकट है कि श्री हरिदास जी की उपासना, काव्य और सबसे अधिक उनके संगीत का इन पर अच्छा प्रभाव था। टट्टी स्थान के साम्प्रदायिक ग्रथों में भी व्यास जी की चर्चा बहुत आती है। इस प्रकार के एक ग्रथ 'निजमत-सिद्धात' में व्यास जी के द्वारा स्वामी हरिदास जी को सद्गुरु मानने† का भी प्रसंग कई स्थलों पर आया है। व्यास जी ने उनकी स्तुति में लिखा था—

अनन्य नृपति श्री स्वामी हरिदास ।
श्री कुजबिहारी सेये बिनु जिन, छिन न करी काहू की आस ॥ (व्या. वा. १२)

अनेकों साधुओं के विरह में कहे गये उनके एक पद का स्थायी चरण है—'विहारहिं स्वामी बिनु को गावै'। इससे पता लगता है कि वे उनके गान पर विशेष मुग्ध थे, जो स्वाभाविक ही है। क्यो कि एक ओर तो सगीत के शास्त्रीय विद्वान व्यास जी और दूसरी ओर तानसेन के संगीत गुरु संसार प्रसिद्ध स्वामी श्री हरिदास जी ।

(१३) *विवेचना*—अन्य कितने ही साधुओं में व्यास जी ने अपनी श्रद्धा प्रदर्शित की है। वास्तव में वे संत मात्र में गुरु-भावना रखते थे, किंतु श्री हित हरवंश जी में उनकी सद्गुरु भावना अत्यधिक थी। स्वामी हरिदास जी में भी उनकी श्रद्धा थी। उनके दीक्षा गुरु उनके पिता समोखन जी सुकल ही थे, जिनकी उन्होंने अपनी वाणी के पदों में प्रसगानुसार कितने ही स्थलों पर वंदना की है।

अपने पिता द्वारा दीक्षित सखी भाव की उपासना के उपदेश पर वे चलते रहे। सखी भाव की उपासना का केन्द्र वृंदावन था, जहाँ से

† श्री स्वामी हरिदास की लखी व्यास जू रीति ।
ता दिन सद्गुरु भाव धरि, उपजी अधिक प्रतीति ॥ (निजमत सिद्धातसार)

हित हरिवंश जी, स्वामी हरिदास जी एवं चैतन्य संप्रदायी साधुओं द्वारा इस उपासना-पद्धति का विशेप रूप से प्रचार किया जा रहा था। यह सत्संग व्यास जी को कदाचित संवत् १५६१ से उपलब्ध हुआ और हित हरिवंश जी की विद्वता, काव्य-रचना एवं भजन-रीति का तभी से उन पर ऐसा प्रभाव पडा कि वे उन्हें गुरुवत् ही मानने लगे।

व्यास जी और हित जी की उपासना-पद्धति में समानता थी ही तथा हित हरिवंश जी वृंदावन में श्री राधावल्लभ जी को प्रतिष्ठित कर सखी भाव की प्रधान उपासना राधावल्लभीय संप्रदाय के नाम से प्रचारित कर रहे थे। इन परिस्थितियों मे समान विचार वाले सभी महात्माओं को अपने उद्देश्य की सफलता के लिए एक भाव से आचरण करना स्वाभाविक था।

हित हरिवंश जी की महिमा को वर्णन करने वाले चरित्रों में व्यास जी को उनका शिष्य प्रकट किया जाता है, जिसका प्राचीनतम प्राप्त उल्लेख भगवत् मुदित (संवत् १७०७ में वर्तमान) की 'रसिक अनन्य माल' में पाया जाता है। 'रसिक अनन्य माल' के अनुसार व्यास जी का हित हरिवंश जी से दीक्षा ग्रहण करना तथा पूर्वापर प्रसंगों की संगति से उसका काल संवत १५६१ बैठता है, जिसकी व्यास वाणी के 'गुरु सुकल' के अनेकों उल्लेखों से केवल इतनी संगति बैठती है कि जहाँ व्यास जी अपने पिता को गुरु रूप में स्मरण करते है, वहाँ हरिवंश जी तथा हरिदास जी में भी अपार आदर भाव प्रकट करने लगते हैं। वृद्धावस्था में लिखे गये पद में भी व्यास जी ने 'सुकल' के लिए 'गुरु' शब्द का प्रयोग किया है। यदि व्यास जी संवत् १५६१ में, जब कि उनकी अवस्था २४ वर्ष की थी, हित हरिवंश जी से दीक्षा ले चुके होते, तो निश्चय ही वे 'गुरु सुकल' न लिखते, क्यों कि हित हरिवंश जी 'सुकल' नहीं थे, 'मिश्र' थे[1]। इस कारण भगवत मुदित जी की रसिक अनन्य माल का वर्णन ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में स्वीकार करने के लिए संकोच होता है।

---

[1] 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पृष्ठ १८० देखिये। हिताचार्य की गद्दी पर सुशोभित उनके वंशज गोस्वामिगण 'मिश्र' होना समर्थित करते हैं। श्री हित हरिवंश जी के बाल चरित के वर्णन में उत्तमदास जी ने अपनी 'रसिक अनन्य माल' (हित परिचर्या, पृष्ठ ४) में उन्हें मिश्र लिखा है—

मिश्र नाम में रूप निहारे। ताते दुगुन नन्द हमारे॥

(१४) *हित हरिवंश जी का निधन-काल*—व्यास जी की वृंदावन जाने की उत्कंठा संवत् १६१२ तथा उसके अत्यंत निकट पूर्व में बहुत प्रबल थी। 'कब मिलिहैं वे सखी-सहेली, हरिवंशी हरिदासी' एवं 'अब न और कछु करने, रहने हैं वृंदावन। मिलिहैं हित ललितादिक दासी, रास में गावत सुनि मन।' आदि जैसे कथनयुक्त पद उसी समय ओरछा में की हुई उनकी रचनाएँ हैं। हरिवंश जी जैसे प्रसिद्ध महात्मा के निधन की सूचना वृंदावन से बुंदेलखंड की राजधानी ओरछा में, जहाँ साधु-संतों का आवागमन सदैव ही बना रहता था, पहुँचने के लिए अधिक समय की आवश्यकता न थी। फलतः संवत् १६०६ में हित जी का निधन होना मान लेने पर उस घटना की व्यास जी के उक्त वर्णन से संगति नहीं मिलती। हित जी के निधन पर व्यास जी द्वारा कहे गये विरह के पद में 'जिन बिनु दिन-छिन सतजुग बीतत सहज रूप आगार †' आदि कथन में जिस प्रकार के भावोद्गार हैं, उनसे उस समय व्यास जी का हित जी के समीप ही वृंदावन में होना प्रकट होता है, जो सं० १६१२ के पूर्व संभव नहीं है। हिंदी साहित्य के इतिहासकार भी श्री हिताचार्य का संवत् १६०६ में निधन नहीं मानते और अपने मत की पुष्टि में लिखते हैं कि ओरछा नरेश महाराज मधुकर शाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यास जी संवत् १६२२ के लगभग आपके शिष्य हुए थे ‡। इस सूचना के आधार का पता लेखक के यथेष्ट पूछताछ एवं अन्य प्रयत्न करने पर भी न लग सका। फिर भी हित हरिवंश जी की कुंज-लाभ-तिथि लेखक के विचार से भी संवत् १६०६ के कई वर्षों बाद ठहरती है। क्यों कि वृद्धावस्था में रचित व्यास जी के एक पद से उक्त संवत् के बाद भी हित हरिवंश जी की उपस्थिति प्रकट होती है। वह पद है—

राधे जू अरु नवल स्यामघन, बिहरत बन-उपबन वृंदावन।×
हरिवंशी हरिदासी बोलीं, नहिं सहचरि समाज कोऊ जन।
'व्यासदासि' आगे ही ठाढी, सुख निरखत बीते तीनों पन॥ (५६१)

'बीते तीनों पन' का कथन निस्संदेह रूप से व्यास जी द्वारा संवत् १६०६ के बहुत बाद का होना चाहिये, क्यों कि उस समय तो वे

---

† पद—"हुतौ रस रसिकन कौ आधार।" (व्या० २४)

‡ देखिये, शुक्ल जी के 'हिंदी साहित्य का इतिहास', डा० रामकुमार वर्मा के 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' तथा श्री वियोगी हरि के 'ब्रज माधुरी सार' में 'हित हरिवंश' का परिचय।

केवल ४२ वर्ष के ही थे। इससे इस अवस्था में उनसे तीसरा पन अर्थात् वृद्धावस्था के बीत जाने का आत्मोल्लेख करने की आशा न करनी चाहिये। संवत् १६२२ के पश्चात् हित हरिवंश जी की उपस्थिति अवश्य ही रही होगी, क्यों कि उस समय व्यास जी की अवस्था ५५ वर्ष की ही थी और हित हरिवंश जी के सन्मुख व्यास जी का 'सुख निरखत बीते तीनों पन' वाला कथन अपनी ५५ वर्ष से अधिक ही अवस्था में अनुमानित होता है। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों के उक्त वर्णन का आधार कुछ भी रहा हो, किंतु संवत् १६२२ में हित जी की उपस्थिति व्यास वाणी के साक्ष्य से भी प्रकट हो जाती है। उक्त वर्णन में भी हित हरिवंश जी तथा हरिदास जी की ओर से भी व्यास जी अपने लिए 'सहचरि' संबोधन का प्रयोग करते हैं, तथा नम्रता युक्त शब्दों में 'व्यासदासि' कह कर उत्तर देते हैं। तात्पर्य यह है कि व्यास जी के वृद्धावस्था में रचित उक्त पद में भी हरिवंश जी एवं हरिदास जी के साथ परस्पर वैसी ही आदर-भावना व्यक्त होती है, जो उनकी संवत् १६१२ के पूर्व में रचित पदों में पाई जाती है।

(१५) *समन्वय*—इस विवेचना से प्रतीत होता है कि सं० १५६१ के लगभग जब कि राधावल्लभीय सम्प्रदाय का प्रचार तेजी पर था, व्यास जी प्रथम बार वृंदावन आये। उनके हृदय में भक्ति का अंकुर पहिले ही उत्पन्न हो चुका था। हित जी से मिलने के समय उनके "यह जु एक मन बहुत ठौर करि " पद का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे सब विषयों की चिंता छोड़ कर भक्ति की ओर एकाग्रता से लग गये। वे वृंदावन एवं अन्य तीर्थों की यात्रा कर ८-६ वर्षों में घर लौटे और ओरछा में ही अपने पिता द्वारा दीक्षित युगल मंत्र की साधना में लीन हो गये। यहाँ उन्हें हित जी के आदर्श ने और भी दृढ़ बना दिया।

पिता एवं गुरु सुकुल समोखन की मृत्यु के उपरांत संवत् १६१२ में वे वृंदावन गये और अनन्य रसिक मंडली में सम्मिलित होकर युगलकिशोर की उपासना प्रेम भाव से करने लगे। हित हरिवंश जी एक सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। उनके नित प्रति बढ़ते हुए शिष्यों के समुदाय में रहने वाले व्यास जी भी उनसे गुरुवत् श्रद्धा रखते थे। साधना मार्ग में वे व्यास जी के सहायक थे ही, कदाचित् इन्हीं परिस्थितियों में हित जी की महिमा-वर्णन करने वालों ने व्यास जी को उनसे दीक्षा लेना भी लिख दिया।

व्यास जी के दीक्षा-गुरु उनके पिता सुकल समोखन थे और हित हरिवंश जी उनके सद्गुरु थे, जिनके उपदेश ने व्यास जी को भक्ति की ओर एकाग्र किया था। वृंदावन में स्थायी रूप से निवास कर लेने पर उन्हें अपनी साधना में हित हरिवंश जी से विशेष सहायता प्राप्त हुई। साखी के दोहों और कुछ पदों मे इस प्रकार के संकेत मिलते भी हैं, जो समुचित स्थानों पर प्रकट कर दिये गये हैं।

हित हरिवंश जी मे उक्त प्रकार की गुरु भावना होने के उल्लेख प्राप्त होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने हित जी से मंत्रोपदेश भी प्राप्त किया था। वृद्धावस्था मे रचित व्यास जी के पदो मे भी पारस्परिक समान प्रेमभाव सा ही प्रकट हो रहा है। ऐसी स्थिति मे हरिवंश जी को व्यास जी का प्रधान सद्गुरु ही मानना होगा। उनके दीक्षा-गुरु सुकल ही रहे। राधावल्लभीय उपासना मे केवल माधुर्य भाव की अनन्य साधना बताई गई है। इस संप्रदाय की अनन्यता के आदर्शानु-सार कदाचित् उन्होंने 'साँचे साधु जु रामानंद' वाला पद, जिसमे 'रामावत संप्रदाय' के साधुओं को प्रशंसा की गई है और जिस पद के प्रसंगों का वर्णन करने के लिए कोई तात्कालिक घटना भी उस समय नहीं थी, न लिखा होता। यह पद भी व्यास जी की वृद्धावस्था की रचना है और उसी में उपलब्ध हित हरिवंश जी के विना अपने जीवन पर क्षोभ के उल्लेख से वह निस्संदेह रूप से हित जी के देहांत के पश्चात् ही लिखी हुई सिद्ध होती है। इसी प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ मे गोस्वामी तुलसीदास जी का संकेत प्रसंग में दिया गया व्यास जी का 'करो भैया साधुन ही सों संग' वाला पद संवत् १६२५ के पूर्व की रचना नहीं हो सकती।

व्यास जी का राधावल्लभीय संप्रदाय के प्रचार में पूरा सहयोग था। ज्ञात होता है कि एक ही दीक्षा-गुरु में अटल श्रद्धा रखने के विचार से उन्होंने हित जी से दीक्षा तो ग्रहण नहीं की, परंतु उनकी प्रतिपादित माधुर्य भक्ति उन्हें मान्य हुई। कहा जाता है कि उन्होंने अपने तिलक में भी माध्व, राधावल्लभीय और हरिदासी संप्रदायों की विशिष्टताओं के द्योतक विंदु एवं रूपों का भी समावेश किया था। व्यासवंशी गोस्वा-मियों में अपने पिता अथवा परिवार के काका आदि गुरु जन से ही दीक्षा ग्रहण करने की परंपरागत प्रथा प्रचलित होने पर भी व्यास जी के वंशजों में माध्व, राधावल्लभीय और हरिदासी संप्रदायों की उपासनाएँ प्रचलित हैं‡, जो व्यास जी की उक्त प्रकार की भावनाओं की ओर संकेत करती हैं।

‡ 'माधुर्य उपासना के संप्रदायों में समान श्रद्धा' शीर्षक लेख अन्यत्र देखिये।

७. भक्ति का उदय—

युवावस्था के प्रारंभ में ही व्यास जी ने अनेकों प्रसिद्ध पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया था। दिग्विजय करने के लिए वे जहाँ कहीं किसी पंडित की प्रसिद्धि सुनते, वहीं जा पहुँचते और उनसे शास्त्रार्थ कर अपनी विद्या की यश-पताका फहराते। इसी आकांक्षा को लिए हुए वे काशी जी पहुँचे। शास्त्र-चर्चा में वहाँ भी उनकी उत्कृष्टता रही। कहा जाता है कि श्रावण मास में बड़े विधि-विधान से उन्होंने विश्वनाथ जी का अभिषेक कराया। उसी रात उन्होंने स्वप्न में देखा कि एक वृद्ध ब्राह्मण उनसे कह रहा है कि 'विद्या की पूर्णता तो भगवत् भक्ति में है। कृष्ण की प्रधान सखी विशाखा जी के तुम अवतार हो। इससे विद्या का विवाद छोड़ कर भक्ति का प्रचार करो। यही तुम्हारा कर्तव्य है।†'

चर्म चक्षु खुलते ही व्यास जी के ज्ञान चक्षु भी खुल गये। उन्होंने स्वप्न के उस आदेश पर बड़ी गंभीरता के साथ विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि काशी में तो सदाशिव की ही सब माया है। उन्हीं का यह उपदेश है। धन्य हो, प्रभु! जो निद्रा से तुमने मुझे जगा दिया। तुरंत ही उन्होंने ओरछा को प्रस्थान किया और वे भक्ति-भावना से श्री राधा-नंदकिशोर की आराधना में लग गये। भक्तों के चरित्र गाना, श्रीमद्भागवत की कथा कहना और भक्ति की श्रेष्ठता का प्रचार करना ही उनकी मुख्य दिनचर्या हो गई।

जो व्यास जी शास्त्रार्थ में विजयी होने में अपना गौरव समझते थे, वे अब अनुभव करने लगे कि वाद-विवाद के लिए ही विद्या पढ़ना व्यर्थ है। उसका उपयोग तो 'भक्ति का रसास्वादन करना' होना चाहिए—

> बादि सुख स्वाद, के काज पंडित पढ़त।
> व्यास जग, भक्ति रस, कहैं नहि भागवत,
> कहा कनक-कामिनि विदि निसिदिन रटत॥ (व्या० वा० २०७)

उस समय वे तीर्थाटन करने के लिए उत्सुक थे। ब्रज की सुधि तो उन्हें सदैव ही रहती थी। वे सत्संग में अपना समय बिताते थे। जो

---

† व्यास जी के विविध चरित्र-लेखों में इसी प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। व्यास वाणी में साधुओं की स्तुति में जिन नामों के उल्लेख हैं, उनमें से अधिकांश ऐसे हैं, जिनका काशी में प्रधान केन्द्र रहा था। उन संतों की महिमा व्यास जी ने काशी में विशेष रूप से सुनी होगी। इससे उनका काशी जाना प्रकट होता है।

साधु ओरछा में आते, उनका सत्कार करते। उसी अवसर पर श्री हित हरिवंश जी के शिष्य संत नवलदास जी भी ओरछा पहुँचे और व्यास जी के अतिथि हुए‡।

८. तीर्थ-यात्रा और पर्यटन—

(१) *काशी*—व्यास जी की काशी यात्रा के पूर्वोक्त उल्लेख से पाया जाता है कि वह यात्रा तीर्थाटन की दृष्टि से न होकर शास्त्रार्थ करने के निमित्त की गई थी। उस यात्रा ने व्यास जी की मनोवृत्ति मे आश्चर्य-जनक परिवर्तन कर दिया। शास्त्रार्थी पडित के स्थान पर अब वे भक्त थे।

(२) *वृंदावन*—सत नवलदास के साथ व्यास जी के प्रथम वार वृंदावन जाने का समय सभवत संवत् १५६१ का कार्तिक मास था†।

(३) *जगदीश और व्रज*—'गुरु शिष्य वंशावली' मे व्यास जी की जगदीश-यात्रा करने जाने की भी सूचना दी गई है तथा यह भी प्रकट किया गया है कि वहाँ उन्होंने माधवदास जी से मंत्र लिया और उन्हे अपना गुरु वनाया। यह वही भक्त माधवदास जी थे, जिन्होंने जगदीश

---

‡ ओरछे के राजगुरु श्री व्यास जी बड़े भारी पडित और स्मार्तधर्मावलवी थे। उनके चरित्र में लिखा है कि साक्षात् शिव जी उनसे प्रसन्न हो गये थे। इसी से श्री हित जी के परम कृपापात्र नवलदास जी से उनका सत्सग हो गया था।

—'श्री हित चरित्र' पृष्ठ ५०

† 'कल्याण' के भक्त-चरिताक पृष्ठ ३७६ पर 'श्री व्यास दास जी' शीर्पक भक्त चरित्र में यह काल सवत् १५६१ का कार्तिक मास प्रकट किया गया है। 'कल्याण' सपादक श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार के मतानुसार उक्त भक्त चरित्र में मेरे 'अनन्य रसिक श्री हरिराम व्यास' शीर्षक एक विस्तृत निवध की कुछ प्रधान बाते दी गई हैं। इस निवध में मैंने व्यास जी का ओरछा से प्रथम बार वृंदावन जाने का यही समय प्रकट किया था। गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'भक्त सौरभ' में 'भक्त श्री व्यासदास जी' के जीवन चरित्र में इस यात्रा का काल वि० सवत् १६०० के लगभग कार्तिक मास लिखा गया है। इससे प्रकट होता है कि 'कल्याण' में श्री 'व्यासदास जी' शीर्पक भक्त चरित्र के सपादक को मेरे द्वारा प्रकट किया गया वृंदावन-यात्रा का काल सवत् १५६१ मान्य हुआ है, क्यों कि उक्त लेख में अन्य प्रसग 'भक्त सौरभ' के अनुसार दिये गये हैं। जिस तर्क पर यह समय निश्चय किया गया था, उसका विवेचन इसी पुस्तक के 'दीक्षा गुरु' प्रसग मे दिया गया है।

की सेवा करके उन्हें प्रसन्न कर लिया था। वाणी में उपलब्ध मथुरा, वृंदावन, गोकुल, बरसाना, रावल, गोवर्धन आदि ब्रज के स्थानों के उल्लेख और वर्णनों से यह तो निस्संदेह कहा जा सकता है कि उन्होंने ब्रज-भूमि के स्थानों में काफी भ्रमण किया था।

(४) *भ्रमण*—ऐसी जनश्रुति है कि उन्होंने चारों धाम की यात्रा की थी। उनके विस्तृत पर्यटन करने का संकेत वाणी के इस पद में भी प्राप्त है—

हरि सों कीजै प्रीति निबाह।
कपट किएँ नागर नट जानत, सबके मन की थाहि॥
मैं फिरि देख्यौ लोक चतुर्दश, निरस परस्पर आहि। (व्या० २०५)

(५) *द्वारका*—चौरासी वैष्णवन की वार्ता में व्यास जी द्वारा मीराबाई के घर पर जाने का उल्लेख है। अनुमान होता है कि व्यास जी उस समय साधुओं के एक दल के साथ द्वारका की यात्रा में मीराबाई के घर मेड़ता होते हुए गये होंगे।

(६) *चारों धाम*—श्री वृंदावन-महिमा के प्रसंग में सब तीर्थ और धामों में फिर आने का व्यास जी ने साधारण रूप से उल्लेख किया है—

देखौ श्री वृंदाविपिन प्रभाउ।
सब तीरथ धामनि फिरि आवत, देखत उपजत भाउ॥ (व्या० ५६)

९ मीराबाई से भेंट—

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में दी गई कृष्णदास अधिकारी की वार्ता के अंतर्गत व्यास जी का उल्लेख पाया जाता है। उक्त वार्ता के प्रथम प्रसंग से निम्नलिखित उद्धरण दिया जाता है—

"सो वे कृष्णदास शूद्र एक बेर द्वारिका गये हुते। सो श्री रणछोर जी के दर्शन करिकें वहाँ ते चले। सो आवत मीराबाई के गाँव* आये। सो वे कृष्णदास मीराबाई के घर गये। वहाँ हरिवंश व्यास आदि दै विशेष सब वैष्णव हुते। सो काहू कों आये आठ दिन, काहू कों आये दश दिन, काहू कों आये पन्द्रह दिन भये हुते। तिनकी बिदा न भई हुती। और कृष्णदास नें तो आवत ही कही जो हूँ तो चलूँगो। तब मीराबाई नें कही जा बैठौ। तब कितनेक मोहोर श्रीनाथ जी को देन लागी। सो

* मीराबाई का पीहर 'मेड़ता' नामक ग्राम था, जिसका कि उन्होंने अपने कई पदों में उल्लेख किया है। यथा—'पीहर मेड़ता छोड़ा अपना' आदि।

कृष्णदास नें न लीनी और कह्यौ जो तू श्री आचार्य जी महाप्रभून की सेवक नाहीं होत ताते तेरी भेट हम हाथ ते छूवेगे नाहीं। सो ऐसे कहि के कृष्णदास वहाँ ते उठि चले। सो जब आगे आये तब एक वैष्णव नें कह्यौ जो तुमने श्रीनाथ जी की भेट नाहीं लीनी। तब कृष्णदास ने कह्यौ जो भेट की कहा है परि मीराबाई के यहाँ जितने सेवक बैठे हुते तिन सबन की नाँक नीची करिकें भेट फेरी है इतने इकठौर कहाँ मिलते। यह हू जानेंगे जो एक बेर शूद्र श्री आचार्य जी महाप्रभून कौ सेवक आयौ हुतौ तानें भेट न लीनी तो तिनके गुरु की कहा बात होयगी† ।"

उक्त प्रसंग में 'हरिवश व्यास आदि' में हरिवंश की सन्निधि के कारण 'व्यास' से निर्विवाद रूपेण हमारे चरित्र-नायक हरिराम व्यास ही अभिप्रेत हैं। यद्यपि वार्ता-कार का उद्देश्य श्री वल्लभाचार्य के शिष्यों का गौरव बढाना था, तथापि इससे इतनी सूचना तो प्राप्त होती है कि व्यास जी सुप्रसिद्ध मीराबाई के गाँव मे उनके अतिथि हुए थे तथा कृष्णदास अधिकारी ने उन पर अपना प्रभाव जमाने का प्रयत्न किया था‡। वार्ता में मीराबाई के घर पर एकत्रित हुए वैष्णवों को विदाई के लिए १०-१५ दिन तक प्रतीक्षा के रूप में ठहरे रहने का उल्लेख किया गया है। व्यास जी ने भी अपने एक पद में विदाई की दृष्टि से आये हुए भक्त रूप धारी भिखारियों की हँसी उडाई है। देखिये—

भक्त ठाडे भूपनि के द्वार।
उझकत, मुकत, पौरियन डरपत, गाय-बजाय सुनावत तार।
कहियौ धाय थवाइत प्रोहित, हमहि गुदरवी खार।
छिन-छिन करत बिदा की विनती, उपजत कोटि बिकार॥ (व्या०१३१)

उक्त पद के तीसरे चरण में धाय द्वारा भी विदा के लिए सिफारिश कराने के उल्लेख से अनुमान किया जा सकता है कि इस पद रचना के लिए किसी रानी से विदाई (धन) चाहने वाले भक्त वेश धारियों की दशा को देख कर ही व्यास जी की वाणी से वह प्रस्फुटित हुआ हो, क्यों कि धाय स्त्री होती है और विदाई के लिए स्त्रियों द्वारा संदेश भेजने का प्रसग मीराबाई आदि के प्रति अधिक उपयुक्त हो सकता है। कहने

---

† देखिये, 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' पृष्ठ ३४२ (बबई सस्करण)

‡ साधुओं के विरह में कहे गये पद में व्यास जी ने कृष्णदास का नामोल्लेख करते हुए उनके निधन पर इस प्रकार शोक प्रकट किया है—

'कृष्णदास बिन गिरधर जू कों को अब लाड़ लड़ावै।' (व्या० २६)

का तात्पर्य यह है कि वार्ता के उद्धृत प्रसग में विदाई के लिए ठहरे हुए वैष्णवों की जिस दशा का सकेत किया गया है, वही दशा व्यास जी के उक्त पद मे भी बड़े सुंदर ढंग से वर्णित है।

अब हमे विचार यह करना है कि उक्त घटना का काल क्या है। मीरा की भक्ति का प्रकाश उनके पति भोजराज की मृत्यु के पश्चात् हुआ। भोजराज की मृत्यु संवत् १५८० के लगभग मानी जाती है†। श्री व्यासजी प्रथम बार संवत् १५६१ विक्रमी में वृंदावन आये। उस समय से पूर्व उनका श्री हित जी से मिलने का कोई प्रसग ही नहीं आता। अत मीराबाई के घर* उक्त दोनों सतो के जाने का समय सवत् १५६१ के पूर्व नहीं हो सकता।

'मीरा, एक अध्ययन' नामक पुस्तक के पृष्ठ ७० पर सुश्री पद्मावती 'शबनम' लिखती हैं कि "विक्रमी सवत् १५६० या उससे कुछ पूर्व मेवाड़ को त्याग कर मीरा मेढ़ता रहने लगी। मेढ़ता का वातावरण मीरा के बहुत अनुकूल पड़ा, तथापि राजनैतिक कठिनाइयों के उपस्थित होने के कारण मीरा वहाँ शांति पूर्वक न रह सकी और विक्रमी सवत् १५६५ के लगभग मेढ़ता को भी छोड वृंदावन की ओर चल पड़ी। फिर एक दिन वि० सवत् १६०० के लगभग तीर्थ-यात्रा के हेतु वृंदावन से भी द्वारका की ओर चल पड़ती है।"

इसके अनुसार व्यास जो के मीराबाई के घर मेढ़ता में आतिथ्य का काल संवत् १५६१ वि० से सवत १५६५ वि० के बीच ठहरता है, क्यों कि सं० १५६५ के लगभग मेढ़ता को इस प्रकार अंतिम बार छोड़ने पर पुन. मीराबाई को अपने घर वापस लौट आने का कोई उल्लेख ही उपलब्ध नहीं होता।

मीराबाई के पति के सौतेले भाई राणा विक्रमादित्य चित्तौड़ की राजगद्दी पर सवत् १५८८ वि० से संवत् १५९३ वि० तक रहे। अपने जीवन काल में वे मीरा की भक्ति साधना मे सर्वदा बाधाएँ डालते रहे। साधुओं का सत्सग करने में अडचनें पैदा करने के लिए वे अनेक उपाय करते रहे। इससे मीराबाई के घर मेढ़ता में भी साधुओं का इतना जमघट सवत् १५९३ के पश्चात् ही अनुमान करना चाहिये। अत. श्री व्यास जी का मीराबाई के यहाँ अतिथि होने का समय वि० संवत १५९४ के लगभग ठहरता है।

---

† हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ६६६

* मेढता

१०. एक वार फिर ओरछा में—

व्यास जी के वृंदावन निवास के लिए उत्कठा सूचक कितने ही पदों से यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि उनकी रचना के पूर्व वे वृंदावन के दर्शन कर चुके थे और वहाँ के साधुओ से उनका परिचय भी था। उस समय व्यास जी के हृदय में वैराग्य के भाव प्रकट होकर वृंदावन के प्रति प्रेम वढ़ा रहे थे। वे वृंदावन जाकर वहीं वस जाना चाहते थे। उस कार्य से वे विमुखों पर वृंदावन की महिमा का प्रभाव उत्पन्न कर उनकी हँसी उडाते हुए देखना चाहते थे—

वृंदावन कवहिं वसाइ हौ।
कर करुवा, हरवा गुजनि के, कटि कोपीन कसाइ हौ॥
घर, घरनी, करनी कुल की तें, मो मन कवहिं नसाइ हौ।
नाक सकोरि विदोरि वदन, इन विमुखनि कवहि हँसाइ हौ॥ (२५७)

इससे प्रकट होता है कि व्रज तथा अन्य तीर्थों की यात्रा और पर्यटन करने के पश्चात् व्यास जी एक वार पुन' ओरछा मे आकर रहे। ऐसा अनुमान होता है कि लगभग ६ वर्ष भ्रमण करने के उपरांत सवत् १६०० के आस-पास व्यास जी ओरछा वापस आ गये थे और भक्ति-भावना से भगवान् की पूजा करते हुए गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे थे।

११. वेष-भूषा—

(१) *चित्र*—व्यास जी का जो चित्र इस पुस्तक मे दिया गया है, वह उस प्राचीन चित्र की प्रतिकृति है, जो लेखक के देवालय में परंपरा से पूजित है। मधुकर शाह के वशज वानपुर नरेश मर्दनसिंह के परिवार के साथ आये हुए व्यासवंशी गोस्वामी मदनमोहन के साथ स० १६१४ के राजविद्रोह के समय यह चित्र वानपुर से दतिया आया था और तव से, यहाँ भी पूर्ववत् उसकी पूजा का क्रम चलता चला आ रहा है। निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इस चित्र का निर्माण-काल क्या है, किंतु इतना अवश्य है कि वह संवत् १६१४ के वहुत अधिक पहिले का वना है।

'कल्याण' के भक्त-चरितांक में पृष्ठ ४०० के सन्मुख 'भक्त श्री व्यासदास जी' के नाम से प्रकाशित चित्र भी उपरोक्त चित्र की प्रतिलिपि है। इस चित्र के देखने से वृंदावन जैसा स्थान और मुगल कालीन समय का आभास तो मिलता ही है, साथ ही व्यास जी की उन मान्यताओं का

भी इसमें समावेश पाया जाता है, जिनके लिए व्यास जी अधिक प्रसिद्ध रहे। नाभादास जी ने 'उत्कर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति व्यास के' कह कर व्यास जी को तिलक और माला की उत्कर्षता को बढ़ाने वाला तथा भक्तों का प्रेमी माना है।

(२) *माला और तिलक*—व्यास जी ने स्वयं माला और तिलक धारण करने के प्रभावपूर्ण उपदेश दिये †। उनके एक पद से प्रकट होता है कि वे स्वयं भी वृंदावन की रज (गोपी चदन) का तिलक, छाप और श्याम विंदुनी लगाते थे एव माला धारण करते थे। वह पद है—

मोहि वृंदावन रज सों काज ।
माला, मुद्रा, स्याम विंदुनी, तिलक हमारौ साज ॥ (व्या० ८२)

इसी प्रकार का संकेत इस पद से भी मिलता है—

अव हमहूँ से भक्त कहावत ।
माला तिलक स्वाग धरि, हरि कौ नाम वेचि धन लावत ॥ (व्या० २८०)

(३) *वस्त्र*—उस समय धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ ब्राह्मण विना सिले वस्त्र पहिनते थे, इस कारण उनका पहिनावा धोती और पगड़ी था। संभ्रांत घर के व्यक्ति शरीर पर अगोछी भी ओढ़ लेते थे। खंडिता नायिका जैसे एक वर्णन में व्यास जी ने श्रीकृष्ण के अन्य किसी भी वस्त्राभूषण का उल्लेख न कर 'पगिया' का लटकना भर कहा है, जिससे प्रकट होता है कि 'पगड़ी' की ओर उनका विशेष ध्यान था। देखिये—

आजु पिय ! राति न तुम कछु सोये । ×
लटकति सिर पगिया, लट विगलत, सुंदर स्वाग सँजोये ॥ (व्या० ७३२)

उक्त विवेचनों के अनुरूप तत्व प्रस्तुत चित्र में उपलब्ध हैं। इस कारण इसे व्यास जी का प्रामाणिक चित्र माना जा सकता है।

श्री राधाकिशोर जी गोस्वामी वृंदावन द्वारा प्रकाशित व्यास-वाणी में श्री हरिराम व्यास जी का एक रंगीन चित्र है। उसमें व्यास जी की वेश-भूषा के अनुरूप चित्रण तो है, किंतु पृष्ठभूमि से काल का संकेत नहीं होता। उस चित्र की मूल प्रति का परिचय और दर्शन प्रयत्न करने पर भी लेखक को उपलब्ध न हो सका। अतएव उसकी प्राचीनता के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता। दतिया में राधालाल जी गोस्वामी के घर भी व्यास जी का एक चित्र है।

† 'जो तू माला-तिलक धरै' पद देखिये। (व्या० २१८)

(४) *करुआ*—वृंदावन मे व्यास जी की समाधि पर जलपूर्ण मिट्टी का करुआ रक्खा जाता है। उनकी वाणी में भी 'कर लै करुआ कुंज सहायक' जैसे उल्लेखों से प्रकट होता है कि वैराग्य लेने पर वे मिट्टी का करुआ उपयोग में लाते थे।

(५) *पदत्राण*—उनके इस कथन से कि 'कोटि मुकति सुख होत, गोखरू जवै गड़ैं तरवाहिं' पता चलता है कि वे जूता नहीं पहिनते थे।

१२. वैराग्य—

(१) *राज्य संबंध से वितृष्णा*—महाराजा भारतीचंद के राजत्वकाल में सवत् १५९६ वि० मे बुंदेलखड की राजधानी का गढ़कुंडार से ओरछा को स्थानांतरण हुआ *। राजधानी के वन जाने से ओरछा का शांत वातावरण वैभव में परिवर्तित होने लगा। व्यास जी ने स्वय एक वैभव-शाली संपन्न घर में जन्म लिया था, किंतु उनके स्वभाव में वैराग्य था। भगवान की भक्ति और उपासना में उनका समय जाता था।

जब से व्यास जी वृंदावन से लौट कर ओरछा आये थे (संवत् १६०० के लगभग) तभी से उनकी पुन. वृंदावन जाने की लालसा नित प्रति बढ़ती जाती थी। वे अपने भगवान् से प्रार्थना करने लगे कि वे उनके मन में श्री वृंदावन मे ही निवास करने की प्रेरणा उत्पन्न करें—

हम कब होहिंगे ब्रजबासी।
ठाकुर नंदकिसोर हमारे, ठकुराइन राधा सी॥
सखी-सहेली कब मिलिहैं वे, हरिवंसी-हरिदासी।
बंसीबट की सीतल छैंयाँ, सुभग नदी जमुना सी॥
जाकी बैभव करत लालसा, कर मीडत कमला सी।
इतनी आस 'व्यास' की पुजवौ, बृंदाबिपिन-बिलासी॥ (व्या० २५६)

राजा भारतीचंद कदाचित शाक्त थे। उनमें व्यास जी के प्रति श्रद्धा नहीं थी। राजसी ऐश्वर्य में लीन वे व्यास जी को पंडित के नाते अपने राज दरबार का एक सभासद बनाए रखना चाहते थे। परंतु ऐसी संगति का निर्वाह व्यास जी से कब हो सकता था। वे कहने लगे—

---

* देखिये, 'ओरछा स्टेट गजैटियर' पृष्ठ १८

मन मेरे तजियै राजा-संगति ।
स्यामहिं भुलवत दाम-काम बस, इन बातनि जैहै पति ।
विषयनि के उर क्यों आवत हरि, पोच भई तेरी मति ॥
सुख कहँ साधन करत अभागो, निसि-दिन दुख पावत अति ।
'व्यास' निरास भये विनु, भगति बिना न कहूँ गति ॥(व्या० ११६)

(२) *अनन्योपासना में बाधा*—उनका मन तो वृंदावन जाने के लिए पहिले से ही विह्वल हो रहा था। ओरछा में भी वे राधा कृष्ण की अनन्य उपासना में लीन रहते थे। अपने आराध्य देव श्री राधा नदकिशोर में ही वे सब देवताओं को निहित जानते थे। अपनी कन्या के विवाह में गणेश के स्थान पर वे राधाकृष्ण की ही पूजा करना चाहते थे। लोक रीति के विरुद्ध व्यास जी के इस आग्रह को किसी ने भी स्वीकार नहीं किया और उनकी प्रवल इच्छा के विरुद्ध प्रचलित रीति के अनुसार गणेश पूजन किया गया। व्यास जी ने इसे अपना अपमान माना। उन्होंने उन्हे शाप दिया, जिन्होंने उनके घर में गणेश पूजन कराने में उनकी इच्छा के विरुद्ध वलपूर्वक यह कार्य कराया था—

मरें वे जिन मेरे घर गनेस पुजायौ ।
जे पदार्थ संतन के काजें, ते सारे सकतन नें खायौ ॥
'व्यासदास' कन्या पेटहिं क्यों न मरी, अनन्य धर्म में दाग लगायौ ॥ (२८६)

व्यास जी के एक अन्य पद से यह प्रतीत होता है कि उनके घर पर गणेश पूजन कराने में जिन-जिन लोगों ने व्यास जी के विरुद्ध वल का प्रयोग किया था, उन्हें उस घटना के वाद ही उसका अनिष्टकारी फल भोगना पड़ा। इस पद के निम्नलखित अशों पर विचार करने से प्रगट होता है कि व्यास जी के कोप का जिन पर प्रधान लक्ष्य था, उनका वंश आगे नहीं चला—

तौ मेरौ पत साँचौ करि हरि, तुम दारुन दुख पायौ ॥
मो अनन्य के मंदिर में, जिन थापि गनेस पुजायौ ।
तिनकौ वंस वेगि हरि तोरहु, गाइ गूह जिन खायौ ॥
तिहिं मेरौ अपमान कियौ, जिहिं काल हुँकारि बुलायौ ।
जिनकौ खोज न रहौ कहाँ हरि, जिहिं हरि परस छुड़ायौ ॥
जो मैं कह्यौ सोई हरि कीनों, यह परचौ जग पायौ ।
'व्यास' जु वुवै लुनैगो दुख-सुख, यह मत वेद वतायौ ॥

(व्यास वाणी, पृष्ठ २६०)

कोप-भाजन का स्पष्ट नामोल्लेख न होने तथा इस परिस्थिति को ध्यान में रखने से कि ओरछा नरेश भारतीचंद के लिए यह प्रसिद्ध है कि शापित होने के कारण† उनका वश नहीं चला था एवं उनकी मृत्यु सं० १६११ मे हुई थी, लेखक का यह अनुमान है कि राजा भारतीचद ने गरोश पूजन कराने मे व्यास जी के विरुद्ध राज-सत्ता का प्रयोग किया था। व्यास जी के छोटे भाई भी उनका विरोध करते थे और हँसी उड़ाते थे‡। किंतु उनके वंश चलने के उल्लेख प्राप्त हैं।

(३) *वृंदावन-गमन*—इस प्रकार व्यास जी के लिए ओरछा का वातावरण प्रतिकूल ही होता गया। सवत् १६१२ वि० में वे वृंदावन चले गये*। उस समय ओरछा के राजा थे प्रसिद्ध भक्त मधुकर शाह, जो व्यास जी के परम प्रिय शिष्य थे। व्यास जी का ओरछा छोड़ना उन्हे रुचिकर न हुआ। कहते हैं कि पहिले उन्होंने अपने मंत्री को व्यास जी के लिवा लाने को भेजा, किंतु वह प्रयत्न निष्फल हुआ। तब वे स्वय ही जी को ओरछा वापस लाने के लिए वृ दावन गये। किंतु व्यास जी अब वृंदावन छोड कर अन्यत्र नहीं जाना चाहते थे, अतएव उन्होंने राजा मधुकर शाह$ को समझा बुझाकर वापस कर दिया। प्रियादास जी लिखते हैं कि व्यास जी को वृंदावन छोड़ कर अन्यत्र जाने की वात से ही चिढ़ उत्पन्न हो गई थी—

आए गृह-त्याग वृंदावन अनुराग करि,
गयौ हियौ पाग होइ न्यारौ तासों खीजियै।
राजा लैन आयौ पै जाइवौ न भायौ,
श्री किसोर उरझायौ मन सेवा मति भीजियै॥

—भक्ति रस बोधिनी टीका (कवित्त सख्या ३५६)

† तिन्हें साप हुव सिद्ध कौ, चलौ न तातें बस।
तब भ्राता मधुसाह भे, नृपति मुकुट अवतस॥ (लोकेन्द्र ब्रजोत्सव, पृष्ठ २०)

‡ मनहिं नचावै विषय वासना क्यों हिरदै हरि आवै।×
'लहरौ मैया करि विरोध औरनि पै मोहि हँसावै॥'

* Byas swami alias Hari Ram Sukl of Urchha in Bundelkhand. In the year 1555 A D. when he was forty five years of age, he settled in Brindaban
(The Modern Vernacular literature of Hindustan)

$ व्यास वाणी के कई पदो मे मधुकर शाह का नामोल्लेख है, जिससे प्रकट होता है कि वे व्यास जी के पूर्ण कृपापात्र थे।

वृंदावन न छोडने का भाव व्यास जी के इस पद में भी है—

सुधारयौ हरि मेरौ परलोक ।
श्री वृंदावन में कीन्हौं दीन्हौं हरि अपनौ निज ओक ॥
माता कौ सौ हेत कियौ हरि, जानि आपनौं तोक ।
चरन धूरि मेरे सिर मेली, और सवन दै रोक ॥
ते नर राक्षस, कूकर, गदहा, ऊँट, वृषभ, गज, बोक ।
'व्यास' जु वृंदावन तजि भटकत, ता सिर पनहीं ठोक ॥ (व्या०२३६)

वृंदावन पहुँचने के पूर्व भी व्यास जी भक्ति में इतने विह्वल हो जाते थे कि उसमें तन्मय होकर अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ वे नृत्य करते थे। उनमें भक्तों के प्रति अपार श्रद्धा थी। भक्तों की जूठन उनके लिए प्रसाद थी। किंतु उनके इस अलौकिक प्रेम को ओरछा निवासी उस समय न परख सके और व्यास जी पर अनेकों दोषों का आरोपण किया गया‡, जिसके फलस्वरूप उन्हें ओरछा त्याग देना पड़ा। उनके निम्न-लिखित वचन उसी स्थिति को प्रकट करते हैं—

मोसौ पतित न अनत समाइ ।
याही तें मैं वृंदावन कौ, सरन गह्यौ है आइ ॥
बहुतनि सों मैं हित करि देख्यौ, अनत न कहूँ खटाइ ।
कपटि छाँड़ि मैं भक्ति कराई, दारा सुतनि नचाइ ॥
भक्त पुजाये लीला करि, सब ही की जूंठनि खाइ ।
ता ऊपर विरचे सब मो सों, कोटि कलंक लगाइ ॥
अजहूँ दाँत पन्हैया गहि, तिनहू के चाटौ पाइ ।
तौ न तिन्हें परतीत 'व्यास' की, सत छाँडै पत जाइ ॥ (व्या. २८१)

तब उनमें पूर्ण वैराग्य भर चुका था। वे जाति-पाँति के सब बंधनों को त्याग कर आशीर्वाद तथा शाप देने वाली दोनों शैलियों से दूर हो चुके थे। कृष्ण नाम की माला जपना और वृंदावन में वास करना ही उनकी वृत्ति थी, जैसा वे स्वय कहते हैं—

---

‡ कहते हैं कि ओरछा में व्यास जी ने अपने ठाकुर जी का शरदोत्सव किया था। उस उत्सव में जब वे सपत्नीक नृत्य में मग्न हो रहे थे, तब उनके प्रिय शिष्य ओरछा नरेश महाराजा मधुकर शाह भी श्री ठाकुर जी के सन्मुख नृत्य करने लगे। जन साधारण को उनका यह व्यवहार राजकुलोचित प्रतीत न हुआ। भय वश लोग उनसे तो कुछ कह न सके, किंतु व्यास जी को वे अनेक प्रकार के दोष देने लगे। इसका चमत्कारपूर्ण वर्णन कई ग्रंथों में पाया जाता है।

रसिक अनन्य हमारी जाति ।
कुलदेवी राधा, बरसानौ खेरौ, ब्रजवासिन सों पाँति ॥
गोत गोपाल, जनेऊ माला, सिखा सिखँडि, हरिमंदिर भाल ।
हरि गुन नाम वेद धुनि सुनियतु, मूँज पखावज, कुस करताल ॥
साखा जमुना, हरिलीला षट् कर्म, प्रसाद प्रानधन रास ।
सेवा विधि-निषेध, जड संगनि, वृत्ति सदा वृंदावन वास ॥
सुमृत भागवत, कृष्न नाम सध्या, तर्पन गायत्री जाप ।
बंसी रिष, जजमान कल्पतरु, 'व्यास' न देत असीस-सराप ॥ (६३)

वृंदावन के प्रति प्रेम और धाम की महिमा को प्रकट करने वाले, जैसे सरस पद व्यास जी ने कहे हैं, वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं। देखिये—

धनि-धनि बृंदाबन की धरनि ।
अधिक कोटि बैकुंठ लोक तें, सुक-नारद मुनि वरनि ॥ (व्या० ४०)

तथा

रुचत मोहि बृंदावन कौ साग ।
कंद-मूल, फल-फूल जीवका, मैं पाई बड भाग ॥ (व्या० ८१)

१३. आराध्य देव श्री युगलकिशोर जी—

व्रजवासी होने की उत्कंठा सूचक पद में व्यास जी ने गाया था—

हम कब होंहिगे ब्रजवासी ।
ठाकुर नंदकिसोर हमारे, ठकुराइन राधा सी ॥ (व्या० २५६)

जब वे व्रजवासी हो गये और वहीं अपने श्री विग्रह को प्रतिष्ठित कर चुके, तब वे अपने ठाकुर जी का परिचय इस प्रकार प्रकट करते हैं, जिससे न केवल 'श्री युगलकिशोर जी' के नाम की ही सूचना मिलती है, वरन् व्यास जी की उपासना-पद्धति पर भी पूरा प्रकाश पड़ता है—

नंद बृषभान के दोऊ वारे ।
बृंदाबन की सोभा सपति, रति-सुख के रखवारे ॥
गोरी राधा, कान्ह साँवरे, नख-सिख अंग लुभारे ।
बोलत, हँसत, चलत, चितवत, छबि बरनत कविकुल हारे ॥
धीर समीर तीर जमुना के, कुंज कुटीर सँधारे ।
बिबिध बिहारहिं बिहरत दोऊ, सहज स्वरूप सिंगारे ॥
रसिक अनन्य मंडली मंडन, प्रानन हूँ तें प्यारे ।
जुगलकिसोर 'व्यास' के ठाकुर, लोक-वेद तें न्यारे ॥ (व्या० ६६५)

व्यास जी द्वारा रचित श्री युगलकिशोर जी की आरती का पद इस प्रकार है—

आरती कीजै जुगलकिसोर की।
नख-सिख अंग बलैया लीजै, साँझ दुपहर भोर की॥
भूपन पट नागरि नट अदभुत, चितवनि चंचल कोर की।
'व्यास दासि' छवि नैननि फबि रही, अंचल चंचल छोर की॥

(व्या० वा० ४०१)

व्यास जी ने वृंदावन में श्री युगलकिशोर जी का एक सुंदर तथा विशाल मंदिर बनवाया था। वह मंदिर लाल पत्थर का था†। उसके भग्नावशेष अब भी पुरानी कला का स्मरण दिलाने के लिए व्यास घेरा वृंदावन में विद्यमान हैं।

युगलकिशोर जी की इस मूर्ति का प्रादुर्भाव माघ शुक्ला ११ संवत् १६२० के दिन वृंदावन मे हुआ था‡। आजकल यह मूर्ति पन्ना विंध्यप्रदेश में प्रतिष्ठित है*।

वृंदावन से पन्ना मे इस मूर्ति के आने का काल कुछ लोग औरंगजेब द्वारा वृंदावन के मंदिरों पर आक्रमण का समय बतलाते हैं। किंतु यह दो दृष्टियों से ठीक नहीं है। एक तो औरंगजेब द्वारा ब्रज पर आक्रमण के समय (सवत् १७२६) तक प्रसिद्ध वीर छत्रसाल का अभ्युदय ही नहीं हुआ था, जिनके आधार पर यह कल्पना की जाती है, और दूसरे संवत् १७६५ वि० के बाद तक श्री युगलकिशोर जी का वृंदावन धाम में विराजमान रहने का एक कथन भी उपलब्ध है। श्री भगवत रसिक जी (जन्म संवत् १७६५ के लगभग‡) ने वृंदावन की प्रसिद्ध सात देव-मूर्तियों का वर्णन किया है और उनमें व्यास जी के श्री युगलकिशोर जी का भी उल्लेख है। वृंदावन में निवास करने के लिए आकर्षण का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

---

† इस मदिर के ऊपरी हिस्से में ईंटों का बना हुआ गोल गुम्बज था तथा सामने जगमोहन और रासमडल लाल पत्थर के बने हुए थे।

—वृंदावन कथा (बंगला) पृष्ठ १४०

‡ देखिये 'व्यास वाणी' का प्राक्कथन, पृष्ठ २३

* पन्ना में जे जुगलकिसोरा। पूजैं तिन्हें व्यास उठि भोरा॥

—राम-रसिकावली, पृष्ठ ७७०

‡ हिंदी साहित्य का इतिहास (शुक्ल), पृष्ठ ३११

प्रथम दरस गोविंद, रूप के प्रान-पियारे।
दूजे मोहन मदन, सनातन सुचि उर धारे॥
तीजे गोपीनाथ, मधू हँसि कंठ लगाये।
चौथे राधारमन, भट्ट गोपाल लडाये॥
पाँचे हित हरिवंस, किये बस वल्लभ-राधा।
छटये जुगलकिसोर, व्यास सुख दियौ अगाधा॥
साते श्री हरिदास के, कुंजविहारी हैं तहाँ।
'भगवत रसिक' अनन्य मिलि, वास करहु निधिवन जहाँ†॥

अतएव यवन उत्पीडन के समय श्री युगलकिशोर जी का वृंदावन से आगमन का संबंध, औरंगजेब के काल से नहीं हो सकता। लेखक का अनुमान है कि मुसलमानों द्वारा ब्रज पर अत्याचार की जनश्रुति के आधार पर औरंगजेब का समय कल्पित कर लिया गया है। यवन उत्पीडन की जनश्रुति के सहारे यह अनुमान किया जा सकता है कि संवत् १८१४ में जब अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण द्वारा मथुरा वृंदावन का भयंकर विध्वंस हुआ, उसी समय इन श्री मूर्तियों को वृंदावन से लाया गया होगा। इस अनुमान की पुष्टि इस कारण और भी हो जाती है कि युगलकिशोर जी का मंदिर पन्ना में महाराजा हिंदुपत ने बनवाया था‡। वे पन्ना के राज सिंहासन पर संवत् १८१५ से संवत् १८३३ तक रहे। कहा जाता है कि वृंदावन से यह मूर्ति पहिले जैतपुर§ में आई और वहाँ से फिर पन्ना‡।

इससे प्रकट है कि व्यास जी बड़े प्रेम भाव से श्री राधाकृष्ण की मूर्ति की पूजा करते थे और उनके पूज्य देव का नाम था युगलकिशोर।

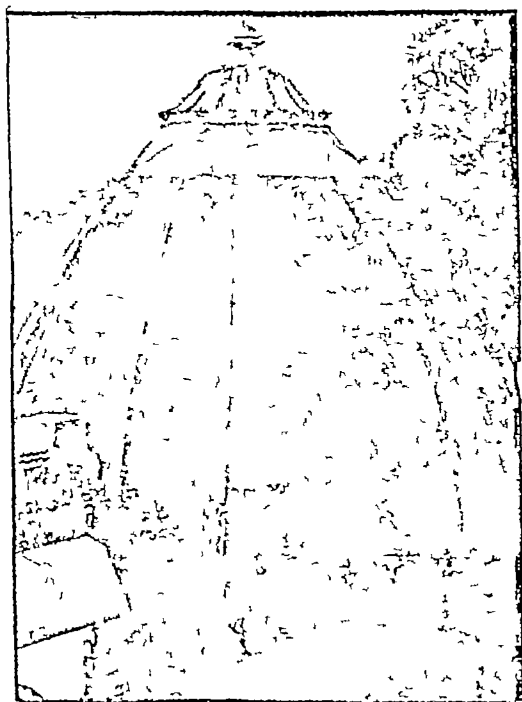
---

† श्री भगवतरसिक की वाणी की हस्तलिखित प्रति (लिपिकाल संवत् १९४७) के पृष्ठ ३३ से उद्धृत।

‡ देखिये, 'पन्ना स्टेट गजेटियर', पृष्ठ १७४

§ सन् १८५७ के राज-विद्रोह के फल स्वरूप जैतपुर राज्य ब्रिटिश भारत में लीन कर लिया गया था।

‡ पन्ना नगर में श्री युगलकिशोर जी का विशाल मंदिर है। इसके अतिरिक्त वहाँ के राजमहलों में पूजित नवलकिशोर जी भी व्यास जी द्वारा अर्चित ठाकुर जी कहे जाते हैं।



व्यास-घेरा, वृंदावन में व्यास जी के उपास्य देव

श्री युगलकिशोर जी का प्राचीन मंदिर

प्रथम दरस गोविंद, रूप के प्रान-पियारे।
दूजे मोहन मदन, सनातन सुचि उर धारे॥
तीजे गोपीनाथ, मधू हँसि कंठ लगाये।
चौथे राधारमन, भट्ट गोपाल लडाये॥
पाँचे हित हरिबंस, किये बस वल्लभ-राधा।
छटये जुगलकिसोर, व्यास सुख दियौ अगाधा॥
साते श्री हरिदास के, कुजविहारी हैं तहाँ।
'भगवत रसिक' अनन्य मिलि, वास करहु निधिबन जहाँ†॥

अतएव यवन उत्पीडन के समय श्री युगलकिशोर जी का वृंदावन से आगमन का संबध, औरगजेब के काल से नहीं हो सकता। लेखक का अनुमान है कि मुसलमानों द्वारा व्रज पर अत्याचार की जनश्रुति के आधार पर औरंगजेब का समय कल्पित कर लिया गया है। यवन उत्पीडन की जनश्रुति के सहारे यह अनुमान किया जा सकता है कि सवत् १८१४ में जव अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण द्वारा मथुरा वृंदावन का भयकर विध्वंस हुआ, उसी समय इन श्री मूर्तियों को वृंदावन से लाया गया होगा। इस अनुमान की पुष्टि इस कारण और भी हो जाती है कि युगलकिशोर जी का मदिर पन्ना में महाराजा हिंदुपत ने वनवाया था‡। वे पन्ना के राज सिंहासन पर सवत् १८१५ से सवत् १८३३ तक रहे। कहा जाता है कि वृ दावन से यह मूर्ति पहिले जैतपुर§ मे आई और वहाँ से फिर पन्ना‡।

इससे प्रकट है कि व्यास जी वड़े प्रेम भाव से श्री राधाकृष्ण की मूर्ति की पूजा करते थे और उनके पूज्य देव का नाम था युगलकिशोर।

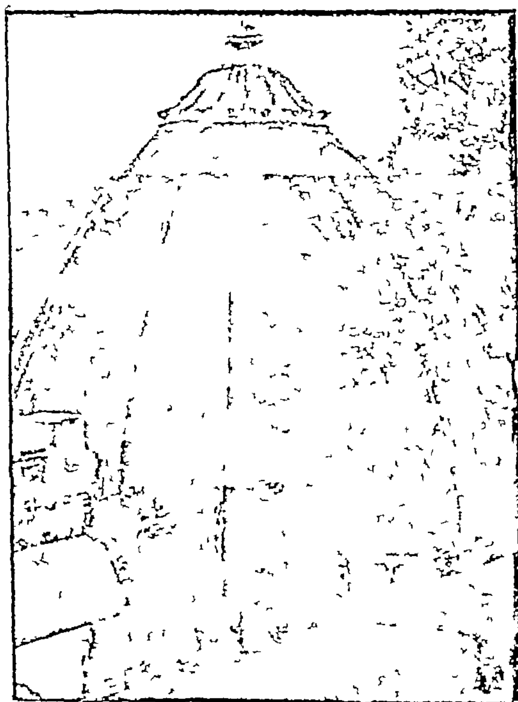
---

† श्री भगवतरसिक की वाणी की हस्तलिखित प्रति (लिपिकाल सवत् १९४७) के पृष्ठ ३२ से उद्धृत।

‡ देखिये, 'पन्ना स्टेट गजेटियर', पृष्ठ १७४

§ सन् १८५७ के राज-विद्रोह के फल स्वरूप जैतपुर राज्य ब्रिटिश भारत में लीन कर लिया गया था।

‡ पन्ना नगर में श्री युगलकिशोर जी का विशाल मदिर है। इसके अतिरिक्त वहाँ के राजमहलों में पूजित नवलकिशोर जी भी व्यास जी द्वारा अर्चित ठाकुर जी कहे जाते हैं।



व्यास-घेरा, वृंदावन में व्यास जी के उपास्य देव

श्री युगलकिशोर जी का प्राचीन मंदिर

१४. अकबर बादशाह का मिलन—

'गुरु शिष्य वंशावली' में चमत्कारपूर्ण रीति से वर्णित एक घटना में अकबर का व्यास जी से मिलना अभिप्रेत है। अकबर का तानसेन के साथ वृंदावन मे व्यास जी के परम स्नेही स्वामी हरिदास के दर्शन करना प्रसिद्ध ही है। अतएव उस यात्रा मे उसका व्यास जी से मिलना भी ठीक जचता है। विशेष कर इसलिए और भी कि व्यास जी और स्वामी हरिदास जी की अभिन्न प्रीति थी, तथा अकबर के पूरे राजत्व काल में व्यास जी वृंदावन में ही रहे।

अकबर की धार्मिक जिज्ञासा तथा उदार वृत्ति दीन इलाही मत के चलाने (अर्थात् संवत् १६३२ वि०*) समय से पूर्व बहुत प्रबल थी। उस समय वह तत्व को समझने के लिए सतों और भक्तों से अधिक मिलता था तथा उनके प्रवचनों को बड़ी उत्सुकता पूर्वक सुनता था। उसी समय मे वह अजमेर बहुधा जाया करता था। अपने राजत्व काल के १६ वे, २० वे तथा २१ वे वर्ष में (संवत १६३१ से १६३३ तक) प्रति वर्ष वह आगरा से अजमेर गया†।

किंतु एक तो अकबर के मथुरा वृंदावन जाने के समय में बहुत मतभेद है और दूसरे 'गुरु शिष्य वशावली' के उल्लेखों को पूर्णतया प्रामाणिक नहीं माना गया है, इस कारण इस घटना और समय पर पूर्ण रीति से कुछ नहीं कहा जा सकता। मथुरा गजैटियर मे अकबर का सवत १६२७ में वृंदावन के गोस्वामियों से भेट करने का उल्लेख है। सभव है उसी समय अकबर व्यास जी से भी मिला हो‡।

---

* अकबर ने सन् १५७५ (सवत् १६३२) में दीन इलाही मत की स्थापना की थी। (देखिये भारत का धार्मिक इतिहास, पृष्ठ ३१०)

† अकबरनामा 'नवलकिशोर प्रेस लखनऊ' फारसी के अनुसार।

‡ Indeed in 1570 (=1727 V S) the fame of the Vrindaban Gosains had spread so far abroad that the emperor himself was induced to pay them a visit Here he was taken blind folded into the secred enclosure of the Nidhiban, the actual Brinda grove to which the town owes its name, and so marvellous a vision was revealed to him that he was fain to acknowledge the place as holy ground The attendant Rajas expressed a wish to erect a series of buildings more worthy of local divinity and and having attained the cordial support of the sovereign built the four celebrated temples of Govind Deva, Gopi Nath, Jugal Kishore and Madan Mohan in honour of the event. —*Gazettier of Muttra* (*Page 191*)

१५. संपत्ति का विभाजन—

(१) *प्रकार*—अपने सामने ही व्यास जी ने अपनी संपत्ति का तीनों पुत्रों में विचित्र प्रकार से विभाजन किया।

उन्होंने उसके तीन† भाग किये—

१ युगलकिशोर जी की सेवा, २ धन, मकान, ३. छाप तिलक, माला।

दो पुत्रों ने क्रमश. श्री युगलकिशोर जी की सेवा और धन-धाम लिये तथा तीसरे श्री किशोरदास जी के हिस्से में माला और तिलक आया। तब श्री व्यास जी ने किशोरदास को स्वामी श्री हरिदास जी का शिष्य कराया‡। प्रियादास जी ने लिखा है--

भये सुत तीन, बाँट निपट नवीन कियौ,
एक ओर सेवा, एक ओर धन धरयौ है।
तीसरी जु ठौर स्याम बुंदिनी औ छाप धरी,
करी ऐसी रीति, देखि बडौ सोच परयौ है॥
एक नें रुपैया लये, एक नें किसोर जू कों,
श्री किसोरदास, भाल तिलक लै करयौ है।
छापे दिये स्वामी हरिदास निस रास कीनों,
वही रास ललितादि गायौ, मन हरयौ है॥

--भक्तिरस-बोधिनी टीका ३६४

महाराजा रघुराजसिंह ने युगलकिशोर जी की सेवा किशोरदास जी को उक्त विभाजन में मिलना लिखा है—

गयौ साधु सुमिरत जगदीसा। व्यास करन लागे सुत हीसा॥
एक ओर धरि हरि-सेवकाई। एक ओर छापा पधराई॥
एक ओर धरि धन अरु बासा। कह्यौ लेइ जो जाकरि आसा॥
इक धन लियौ, द्वितीय हरि-सेवा। तीजौ लिय छापा गुनि देवा॥
युगलकिसोर लियौ सेवकाई। सो हरिदास सिष्य ह्वै आई॥
बिचल्यौ ब्रजमंडल बडभागी। नाम किसोर नाम-अनुरागी॥

—राम-रसिकावली, पृष्ठ ७७१–७७२

---

† एक ठौर श्री युगलकिसोरा। एक ठौर धन करि एक ठौरा॥
छाप-तिलक माला इक कानी। बोले व्यास सुतन तें बानी॥

—निज मत सिद्धात, मध्यखड, पृष्ठ ११२

‡ वे स्वामी श्री हरिदास जी के प्रसिद्ध बारह शिष्यों में से एक थे।

किंतु श्री महंत किशोरदास जी कृत 'निजमत सिद्धांत' में किशोरदास जी द्वारा तिलक छाप लेने का वर्णन है। यह ग्रथ स्वामी हरिदास जी तथा उनके शिष्यों के चरित्र का ही वर्णन करने के निमित्त उसी गद्दी के महंत द्वारा लिखा गया है तथा 'भक्तमाल' की भक्तिरस बोधिनी टीका से भी इसी सूचना का मिलान होता है, अतएव श्री किशोरदास जी द्वारा तिलक और माला को ही पाना माना जाना चाहिये।

व्यास जी ने एक पद में जहाँ आराध्य देव के लिए 'कुंजविहारी', जो श्री स्वामी हरिदास जी के ठाकुर जी का भी नाम है, संज्ञा का प्रयोग किया है, वहाँ माला और तिलक अंगीकार करने के महत्व का भी कथन किया है—

जो तू माला-तिलक धरै ।
तौ या तन मन व्रत की लज्जा, और निवाह करै ॥
करि वहु भाँति भरोसौ, हरि कौ भवसागर उतरै ।
मनसा, वाचा और कर्मना, तृन करि गनतु घरै ॥
सती न फिरत घाट ऊपर तें, सिर सिंदूर परै ।
'व्यासदास' की कुंज विहारी, प्रीति न कहूँ विसरै ॥ (व्या०२१८)

यदि उक्त पद-रचना की पृष्ठभूमि में, वर्णित घटना का प्रभाव हो तो किशोरदास जी द्वारा माला तिलक ग्रहण करने के अंतःसाक्ष्य का भी इससे आभास मिलता है।

(२) *समय*—संपत्ति के विभाजन संवधी वर्णन में हमें समय के दो संकेत मिलते हैं। श्री युगलकिशोर जी की मूर्ति को एक पुत्र द्वारा प्राप्त करना तथा किशोरदास का स्वामी हरिदास का शिष्य विभाजन के उपरांत ही होना, ऐसे सूत्र हैं, जिनसे हम सपत्ति के विभाजन का काल श्री युगलकिशोर जी के प्रादुर्भाव संवत् १६२० और स्वामी हरिदास जी का देहावसान काल संवत् १६३२ के वीच मे मान सकते हैं। इस आधार पर संवत् १६२६ के लगभग संपत्ति का विभाजन किया जाना अनुमानित होता है।

१६. देहांत काल—

(१) *अंतिम सीमा*—श्री ध्रुवदास जी ने, जो व्यास जी के न केवल समकालीन ही थे, वरन् उनके समुदाय में ही वृंदावन में निवास करते थे, 'भक्त-नामावली' में व्यास जी संवंधी ३ दोहा लिखे हैं। इस पुस्तक मे भी 'भक्त-नामावली' के शीर्षक मे श्री ध्रुवदास जी का निधन-

काल स १७०० के लगभग तथा 'भक्त-नामावली' का रचना-काल सवत् १६६८ वि० के आसपास माना गया है। 'भक्त-नामावली' में लिखे गये व्यास जी संबंधी दोहों से यह निस्संदेह सिद्ध है कि उसकी रचना होने के पूर्व ही व्यास जी का देहात हो गया था†। अत यह निष्कर्म स्वाभाविक है कि संवत् १६६८ के पूर्व व्यास जी ने निकुंजलीला में प्रवेश किया था।

(२) *काल सूचक स्पष्ट उल्लेख*—श्री व्यास जी के जीवन चरित्र संबंधी जितने भी प्रकाशित तथा हस्तलिखित लेख आदि पढ़ने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को प्राप्त हुआ, उनमे से 'गुरु-शिष्य-वशावली' को छोड़ कर और किसी भी ग्रंथ मे उनके देहात-काल का उल्लेख करने वाली सूचना प्राप्त नहीं हुई। उक्त ग्रथ मे व्यास के देहांत काल का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि शरीर-त्याग करते समय व्यास जी ने यह पद गाया था—

धनि तेरी माता, जिन तू जाई।
ब्रज-नरेस बृषभान धन्य, जिहिं नागरि कुंवरि खिलाई॥
धन्य श्री दामा भैया तेरौ, कहत छबीली बाई।
धन्य बरसानौ, हरिपुर हू तें ताकी बहुत बडाई॥
धन्य स्याम बडभागी तेरौ, नागर कुँवर सदाई।
धन्य नंद की रानी जसुदा, जाकी बहू कहाई॥
धन्य कुंज सुख पुंजन, बरसत तामैं तू सुखदाई।
धन्य पुहुप-साखा-द्रुम-पल्लव, जाकी सेज बनाई॥
धन्य कल्पतरु बंसीवट, धनि वर बिहार रह्यौ छाई।
धनि जमुना जाकौ जल निर्मल, अचवत सदा अघाई॥
धन्य रास की धरिनी, जिहिं तू रुचि कै सदा नचाई।
धन्य बंसीबट जगत प्रसंसी, राधा नाम रटाई॥
धन्य सखी ललितादिक, निसिदिन निरखत केलि सुहाई।
धन्य अनन्य 'व्यास' की रसना, जेहि रस-कीच मचाई॥ (व्या ७६)

तत्पश्चात्—*यह पद गाय सुनायकै, सबन सुनाई बात।*
बेग महल कों जात हौं, करो कृपा अब तात॥
जेठ सुकिल एकादसी, सोमवार दोइ जाम।
सोरहसै नवासी साल में, व्यास पधारे श्री हरिधाम॥

---

† कहनी-करनी करि गयौ, एक व्यास इहिं काल।
लोक-वेद तजिकै भजे, (श्री) राधा-वल्लभलाल॥

इस प्रकार इस ग्रंथ में व्यास जी की निधन-तिथि स० १६८६ की जेष्ठ शुक्ला ११ सोमवार प्रकट की गई है तथा समय भी दोपहर का बतलाया गया है। खोज रिपोर्ट सन् १६१२-१४ के पृष्ठ २६० पर व्यासजी का आविर्भाव काल (सवत् १६८५ विक्रमी, सन् १६२८ ई०) के लगभग प्रकट किया गया है।

(३) *दीर्घायु के अंतर्साक्ष्य*—व्यास जी का जन्म संवत् १५६७ मे हुआ था। अतः सं० १६८६ में उनका देहांत मानने पर उनकी अवस्था १२२ वर्ष ठहरती है। परंपरागत किंवदंतियों के अनुसार भी व्यास जी दीर्घायु थे। परंतु उनके दीर्घायु प्रसिद्ध होने पर भी विना निश्चित आयु जाने, १२२ वर्ष की अवस्था मानने के लिए कुछ आधार भी होना चाहिये। व्यास जी ने अपने कितने ही पदों में अपनी वृद्धावस्था के ऐसे संकेत दिये हैं, जिससे उन्हें दीर्घायु मानने मे संदेह नहीं रहता—

देखि सखी खेलत नागरि नट।
अदभुत बात कहत नहिं आवै, क्रीडा करत चढ़े वंसीवट। ×
यह रस 'व्यासदासिहिं' न उबीठत, जदपि 'सेत भई सिर की लट' ॥(४४६)

इसी प्रकार—

राधे जू अरु नवल स्याम घन, विहरत बन-उपवन वृंदावन ।×
'व्यासदासि' आगैं ही ठाढी, सुख निरखत बीते तीनों पन ॥ (व्या०५६१)

आयु के ढलने का संकेत उनके इस पद मे भी प्राप्त है—

'विहरत राधा कुंज लसी री ।×
यह छवि 'व्यास' सेष-चतुरानन, बरनत वैस खसी री ॥ (व्या० ५८२)

यद्यपि उक्त उद्धरण उनकी दीर्घायु का संकेत करने के लिए सहायक हैं, तथापि 'गुरु-शिष्य-वंशावली' में प्रकट किया गया निधन सं० १६८६ को किसी कसौटी पर कसे विना ही स्वीकार कर लेना उचित न होगा। ध्रुवदास जी की 'भक्त-नामावली' मे किये गये उल्लेख से व्यास जी का निधन उसके रचना-काल सं० १६६८ के लगभग से पूर्व होना निश्चित हो जाता है। 'गुरु-शिष्य वंशावली' से प्राप्त निधन संवत् भी उक्त काल मे ६ वर्ष पूर्व का है, फिर भी इससे और भी पूर्व की घटनाओं की परीक्षा करना शेष रह जाता है।

(४) *असंगति*—व्यास जी की समाधि का निर्माण वीरसिंह देव ने कराया था‡। बादशाह जहाँगीर की मृत्यु (२८ अक्टूबर १६२७ ई०) के

‡ देखिये 'लोकेन्द्र ब्रजोत्सव', पृष्ठ २१, २२

तीन-चार माह पूर्व ही सं० १६८४ में वीरसिंह देव का निधन हुआ§। अतएव व्यास जी का देहात काल सं० १६८४ के पश्चात् नहीं माना जा सकता। तदनुसार 'गुरु-शिष्य-वंशावली' में प्रकट किया गया व्यास जी का देहात काल सं० १६८६ ऐतिहासिक दृष्टि से मान्य नहीं है।

इस संवत् मे ज्येष्ठ शुक्ला ११ को सोमवार भी ज्योतिष गणना के अनुसार नहीं था। अत. हमें प्रस्तुत विषय पर विचार करने के लिए अन्य घटनाओं का आश्रय लेना पड़ेगा।

(५) *उपस्थिति काल*—श्री व्यास जी ने अपने समकालीन कितने ही साधु-संतों के निधन हो जाने पर उनके विरह से जनित हृदयोद्गारों को अपनी वाणी मे व्यक्त किया है। इस प्रकार के कितने ही पदों में से एक यह है—

बिहारहिं 'स्वामी' बिनु को गावै ।
बिनु 'हरिवंसहिं', राधावल्लभ को रसरीति सुनावै ॥
'रूप-सनातन' बिन को बृंदाविपिन माधुरी पावे ।
'कृष्णदास' बिन गिरधर जू कों, को अब लाड लडावै ॥
'मीराबाई' बिन, को भक्तनि पिता जानि उर लावै ।
स्वारथ परमारथ 'जैमल' बिन, को सब बंधु कहावै ॥
'परमानददास' बिन, को अब लीला गाइ सुनावै ।
'सूरदास' बिन पद रचना कों, कौन कविहिं कहि आवै ॥
और सकल साधन बिन, को कल-काल कटावै ।
'व्यासदास' इन बिनु, को अब तन की तपन बुझावै ॥ (व्या०२६)

स्वामी श्री हरिदास जी का निकुंज गमन काल, उन्हीं की शिष्य-परंपरा में दीक्षित महंत किशोरदास जी द्वारा रचित 'निजमत-सिद्धांतसार' में इस प्रकार दिया हुआ है—

सम्वत् पद्रासै सैंतीसा । भादव प्रिया जन्म जब दीसा ॥
बरस पचीस ग्रहामधि बासा । सत्तर विरकत विपिन निवासा ॥
पॉच घाटि सत वर्ष लों, इच्छा बिग्रह धारि ।
सकल सुखन कौ सार रस, महामधुर विस्तारि ॥

—मध्य खड, पृष्ठ १८५

उक्त उद्धरण के अनुसार स्वामी श्री हरिदास जी का जन्म संवत् १५३७ और कुंज गमन काल संवत् १६३२ है। 'निजमत सिद्धांतसार' में स्वामी

§ देखिये, ओरछा गजैटियर, पृष्ठ २४

हरिदास जी के अंतर्धान के समय संवत् १६३२ वि० में श्री व्यास जी एवं उनके पुत्र श्री किशोरदास जी का उनके समीप ही उपस्थित होने का भी उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

चहुँदिसि द्वादस शिष्य सुहाए। श्रीमत व्यासदास हूँ आए ॥ ×
ज्यो दामिनि घन तें उदित, उलटि तहाँ मिलि जाय।
त्यों अपने निज रूप मधि, श्री हरिदास समाय ॥

श्री हित हरिवंश जी का कुंजलाभ-काल उनके वंशज गोस्वामी गण संवत् १६०६ मानते हैं*। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार उनका कुंजलाभ-काल संवत् १६२२ से १६४० वि० के बीच में है†। रूप गोस्वामी सनातन गोस्वामी के अनुज थे। उनका जन्म संवत् १५४६ विक्रमी मे हुआ था। उन्होंने संवत् १५८२ में 'विदग्ध माधव' और संवत् १५६७ में 'हरि-भक्ति-रसामृत' ग्रंथों की रचना की। संवत् १६२० मे उनका देहांत हो गया§। सनातन गोस्वामी जी का निधन काल भी संवत् १६२० के ही लगभग अनुमान किया जाता है। श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने अपने ग्रंथ 'अष्टछाप-परिचय' में कृष्णदास का देहावसान संवत् १६३६ में होना माना है। 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' मे डाक्टर रामकुमार जी वर्मा लिखते हैं कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र के कथानानुसार मीराँ की मृत्यु संवत् १६२० से १६३० तक मानना उचित है। राजस्थान के इतिहासकार मीराबाई की मृत्यु संवत् १६०३ में मानते हैं। जयमल की मृत्यु इतिहासकारों द्वारा संवत् १६२७ मे मानी जाती है। परमानंद दास तथा सूरदास जी के गोलोक वास का समय डा० दीनदयालु जी गुप्त ने अपने 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय' नामक ग्रंथ मे १६४० वि० और १६३८-३६ वि० क्रमश: सिद्ध किया है। श्री प्रभुदयाल जी मीतल क्रमश: संवत् १६४१ तथा संवत् १६४० को उक्त घटनाएँ मानते है।

संतों के निधन काल संबंधी इन सूचनाओं से संवत् १६४० के पश्चात् व्यास जी का अस्तित्व निर्विवाद सिद्ध है।

श्री नाभादास जी ने अपनी 'भक्तमाल' में श्री व्यास जी के लिए निम्नलिखित छप्पय कहा है—

---

* श्री हित-सुधा-सागर का विज्ञान भाग (गुजराती संस्करण)

† हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १८०–१८१

§ 'कल्याण' संत अंक, पृष्ठ ४३६

काहू के आराध्य, मच्छ कछ सूकर नरहरि ।
बावन परमाधरन, सेतुबधनहू सैल करि ॥
एकन कें यह रीति, नेम नवधा सो लायें ।
सुकुल समोखन-पुवन, अचुत गोत्री जु लड़ायें ॥
नौगुनौ तोरि नूपुर गुह्यौ, महत सभा मधि रास के ।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति व्यास के ॥

श्री नाभादास जी का जीवन-काल श्री श्यामसुंदरदास जी के मत से सवत् १६४२ से सवत् १६८० तक है† । डाक्टर रामकुमार वर्मा के मत से श्री नाभादास जी का आविर्भाव काल सवत् १६५७ माना जाता है* । श्री रामचद्र शुक्ल लिखते हैं—"ये सवत् १६५७ के लगभग वर्तमान थे और गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु के बहुत पीछे तक तक जीवित रहे । इनका प्रसिद्ध ग्रथ 'भक्तमाल' संवत् १६४२ के पीछे बना‡ ।"

श्री नाभादास जी द्वारा लिखित व्यास जी के सबध में उक्त छप्पय से वर्तमान कालिक वर्णन प्रकट होता है । इससे भक्तमाल की रचना के समय§ सवत् १६५२ वि० में उनका जीवित होना आवश्यक है । श्री वियोगीहरि जी लिखते हैं कि व्यास जी का रचना-काल १६१८ से १६५५ तक माना जाता है‡ । इस कथन के ध्वन्यात्मक अर्थ से व्यास जी का देहावसान काल संवत् १६५५ प्रकट किया गया प्रतीत होता है । किंतु उक्त सूचना का कोई आधार नहीं बतलाया गया, इससे उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

(६) *गोस्वामी तुलसीदास द्वारा परिस्थिति का सकेत*—व्यास जी के समकालीन एवं हिंदी साहित्य के प्राण गोस्वामी तुलसीदास जी का कविता-काल सवत् १६११ से १६८० विक्रमी तक माना जाता है । उनके 'कवितावली' नामक ग्रंथ में तत्कालीन परिस्थति को प्रकट करने वाले भी कुछ सकेत हैं—

† 'हिंदी भाषा और साहित्य', पृ० ३१५
* हि० सा० का आलोचनात्मक इतिहास, (वर्मा) पृष्ठ ५४०
‡ हि० सा० इतिहास (शुक्ल) पृष्ठ १४७
§ खोज रिपोर्ट सन् १६१७:१६ की नोटिस सख्या ११७
‡ ब्रज माधुरी सार, पृ० ६४

'खेती न किसान कों', भिखारी कों न भीख, वलि-
वनिक कों वनिज, न चाकर कों चाकरी ।
'जीविका विहीन' लोग सीधमान सोच वस,
कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाइ, का करी ?'
वेद हू पुरान कही, लोक हू विलोकियत,
साँकरे सवै, पै राम रावरे कृपा करी ।
'दारिद - दसानन दवाई दुनी' दीन - वंधु !
'दुरित दहन' देखि 'तुलसी' हहा करी ॥९७॥

'खेती न किसान कों' पदांश से प्रकट होता है कि देश की यह स्थिति अनावृष्टि आदि कारण से उत्पन्न हुई थी । जीविका विहीन होने से लोग यह न समझ पाते थे कि वे कहाँ जावें और क्या करें । दरिद्रता रूपी रावण के संकट से मुक्ति दिलाने के लिए तुलसीदास जी दीनवंधु राम से प्रार्थना करते थे । पेट के लिए लोग वेटा और वेटी भी वेचने लगे थे और जलवृष्टि के लिए व्याकुल हो गये थे, जिसका उल्लेख कवितावली के कवित्त में इस प्रकार है—

किसवी, किसान कुल, वनिक, भिखारी, भाट,
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी ।
पेट ही कों पढत, गुन गढत, चढत गिरि,
अटत गहन गन अहन अखेट की ॥
ऊँचे-नीचे करम, धरम - अधरम करि,
पेट ही कों पचत, वेचत वेटा वेटकी ।
'तुलसी' वुझाई एक राम घनस्याम ही तें,
आगि वड़वागि तें वड़ी है आग पेट की ॥९६॥

अंतिम पंक्ति से यह स्पष्ट है कि जलवृष्टि के लिए लोग कामना करते थे, क्यों कि तुलसीदास जी कहते हैं कि भूख रूपी अग्नि तो केवल एक भगवान् राम रूप श्याम मेघ के द्वारा वुझाई जा सकती है, वादलों से यदि पानी वरस भी जाय, तव भी क्या होने का । इससे उस समय अनावृष्टि का संकेत मिलता है, जिसके फल स्वरूप लोगों को ऊँचे-नीचे कर्म करने पड़े, यहाँ तक कि वेटा और वेटी वेचने की स्थिति आगई । देश की तत्कालीन दीन दशा से प्रभावित होकर कवि ने अपने हृदयोद्‌गार प्रकट किये हैं, अतः इन छंदों के रचना-काल के समय की संकटकालीन परिस्थिति का उनसे वोध होता है ।

कवितावली में मीन की सनीचरी[1] और रुद्रबीसी[2] का उल्लेख आता है। अतः उक्त दोनों का मेल ज्योतिष के अनुसार के देखने पर उसके रचना-काल पर प्रकाश पड़ता है। गोस्वामी तुलसीदास जी के समय में मीन की सनीचरी दो बार पडी। प्रथम तो चैत्र सुदी सं० १६४० से ज्येष्ठ सं० १६४२ तक और द्वितीय चैत्र सुदी सं० १६६६ से ज्येष्ठ सं० १६७१ तक। किंतु रुद्रबीसी का समय स० १६६५ से १६७५ तक होने का कारण दूसरी मीन की सनीचरी, जो सं० १६६६ से प्रारभ हुई, उससे मेल खाती है[3]। 'कवितावली मे गोस्वामी तुलसीदास जी के अतिम समय का निर्देश करने वाले कवित्त भी सग्रहीत होने के कारण यह उनकी अतिम रचना मानी जाती है और अनुमान किया जाता है कि उसका सपादन उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके किसी शिष्य ने किया होगा। उसमे वर्णित स्फुट छदों की रचना एक ही समय मे न होकर एक विस्तृत समय मे हुई थी। डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं—"कवितावली सम्यक् ग्रंथ के रूप मे न होकर समम-समय पर लिखे गये कवित्तों के संग्रह रूप मे है। यदि वेणीमाधव दास का प्रमाण न माना जावे तो कवितावली के कुछ कवित्तों का रचना-काल स० १६६६ के लगभग ठहरता ही है[4]। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इसका रचना-काल मोटे तौर पर संवत् १६६५ से १६८० के लगभग माना है[5]। अतएव पूर्वोक्त दोनों कवित्तों में जिस परिस्थिति का आभास मिलता है, वह स० १६६५ के लगभग या उसके बाद की होगी।

(७) *व्यास-वाणी से समान संकेत*—व्यास जी के एक पद से भी इसी प्रकार की परिस्थिति का आभास मिलता है। अतः यह अनुमान असंगत न होगा कि जिस समय (लगभग १६६५ वि०) गोस्वामी तुलसीदास जी 'कवितावली' के उन कवित्तों का सृजन कर रहे थे, उसी

[1] एक तो कराल कलि काल सल मल, तामैं—
कोढ में की खाज, सो सनीचरी है मीन की।
—कवितावली (उत्तर काड) १७७

[2] बीसी विश्वनाथ की, विवाद बड़ो वारानसी,
बूझियै न गति ऐसी सकर-सहर की।
—कवितावली (उत्तर काड) १७०

[3] Indian Antiquary vol XXII, page 97.

[4] हि सा का आ० इतिहास (वर्मा) पृष्ठ ४४७

[5] तुलसी सदर्भ, पृष्ठ ३७

के आसपास व्यास जी भी उस पद के द्वारा उन्हीं कारणो से अपने जीवन पर क्षोभ प्रकट कर रहे थे। व्यास जी का वह पद निम्नलिखित है—

अब साँचौ ही कलिजुग आयौ।
पूत न कह्यौ पिता कौ मानत, करत आपनौ भायौ॥
बेटी बेचत संक न मानत, दिन-दिन मोल बढ़ायौ।
याही तें बरषा मंद होत है, पुन्य तें पाप सवायौ॥
मथुरा खुदति, कटत बृंदावन, मुनि जन सोच उपायौ।
इतनौ दुख सहिवे के काजैं, काहे कों 'व्यास' जिवायौ॥ (व्या०२६३)

उक्त पद-रचना की पृष्ठ-भूमि मे निम्न लिखित स्थिति व्यक्त हैं—

१—कलियुग का प्रभाव।
२—पुत्रों का पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर मनमानी करना।
३—निर्भय होकर बेटी बेचना। बेटी के अथवा अन्य सामग्री के मूल्य में नितप्रति उत्तरोत्तर वृद्धि।
४—वर्षा की कमी।
५—मथुरा का खुदना और वृंदावन का कटना। तथा—
६—उस समय के जीवन से मृत्यु को श्रेयस्कर समझना।

(८) *ऐतिहासिक समर्थन*—कलियुग के धर्म-विरुद्ध प्रभाव से दुखी होकर सभी सत-महात्माओं ने प्रत्येक समय क्षोभ प्रकट किया है। इसी प्रकार पुत्रों की ओर से पिता की आज्ञा का उल्लघन भी उपालभ का कारण बना रहा है। अतएव वर्गीकृत दो स्थितियाँ किसी काल के निर्णय मे सहायता प्रदान नहीं करतीं। दिन प्रति मूल्य बढ़ने से अनावृष्टि जन्य परिस्थिति तथा शाति-भंग का अव्यवस्थित युग प्रतिबिंबित होता है। यदि उक्त पद मे बेटी बेचने के मूल्य में ही नित्य-प्रति सवाई वृद्धि करने का अर्थ समझा जावे, तो भी यह नीच कर्म मनुष्य उस दशा में करने को उद्यत हुए होंगे, जब उनके प्राणों पर आ बीती होगी। अत्यत पतितो की बात तो और ही है। अब भारत के राजनैतिक इतिहास का आधार लेकर व्यास जी के इस पद का काल निर्णय करना है। व्यासजी का जन्म सं० १५६७ विक्रमी है। उस समय से लेकर सं० १६८४ के बीच दिल्ली और आगरा के राजसिंहासन पर निम्नलिखित सम्राट् हुए है—

१. सिकंदर लोदी—संवत् १५४६ से १५७४ तक
२. इब्राहीम लोदी—सवत् १५७४ से १५८३ तक
३. बाबर—संवत् १५८३ से १५८७ तक

४. हुमायूँ—संवत् १५८७ से १५९६ तक
५ शेरशाह सूरी—संवत् १५९६ से १६०२ तक
६. इस्लाम शाह—सवत् १६०२ से १६०९ तक
७. मुहम्मद आदिल शाह
८. तथा सिकंदर शाह } सवत् १६०९ से १६१२ तक
९. हुमायूँ (फिर से लगभग छ: माह)—सवत् १६१२ से १६१२
१०. अकबर—संवत् १६१२ से १६६२ तक
११ जहाँगीर—संवत् १६६२ से १६८४ तक

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में सिकंदर लोदी के शासन काल (संवत् १५४६ से १५७४) में ब्रज भूमि की पूरी तरह बर्बादी हुई थी, किंतु उस दुर्घटना का काल संवत् १५५७ है, जब कि व्यास जी का जन्म भी नहीं हुआ था। उसके बाद इब्राहीम लोदी के काल से लेकर हुमायूँ के समय (संवत् १६१२) तक मुगल भारत पर अपना शासन स्थापित कर उसे दृढ करने में लगे रहे। उस काल मे व्यास जी की अवस्था ४६ वर्ष से अधिक न हुई थी तथा आलोच्य पद में कथित परिस्थिति का कोई प्रसिद्ध उल्लेख इतिहास मे नहीं पाया जाता है, अतएव संवत् १६१२ के पश्चात् की ऐतिहासिक घटनाओं पर ही सूक्ष्मता से विचार करना शेष रह जाता है। कहना न होगा कि व्यास जी ओरछा से अंतिम बार संवत् १६१२ में ही वृंदावन आये थे और तब से उन्होंने वृंदावन को नहीं छोड़ा था।

सवत् १६१२ में अकबर का राजत्व-काल प्रारंभ होता है, जो धार्मिक सहिष्णुता के लिए प्रसिद्ध रहा है। उसके राजत्व काल में ऐसी कोई घटना नहीं मिलती, जिसमें 'मथुरा का खुदना और वृंदावन का कटना' वाले कथन का मिलान किया जा सके। किंतु 'वर्षा मंद होने' का उल्लेख और अनावृष्टि के फल स्वरूप जनता को अनेक प्रकार के कष्टों का प्रामाणिक इतिहास उस समय का उपलब्ध है*।

* The district (Muttra) was in early days extremely sensitive to the effects of drought, especially in the cis-Jumna tract, and though the extention of irrigation has had the effect of securing a very large portion of it, it by no means enjoys immunity from famines There are no records of the state of the district during the great calamities of earlier days, such as occurred in 1645, 1631 and 1601, but as in each case Delhi appears to have been a centre of distress, Mathura is certain not to have escaped

—*Gazetteer of Muttra, Page 60*

अकवरनामा में अकवर के ४१ वे वर्ष के शासन-विवरण का जो लेख है, उसमें प्रकट किया गया है कि 'इस वर्ष वर्षा वहुत ही थोडी हुई और चावल का भाव वहुत ही तेज हो गया। दैवी प्रभाव प्रतिकूल हो रहे थे और ज्योतिषी दुर्भिक्ष और मँहगी की भविष्यवाणी कर रहे थे। दयालु हृदयी सम्राट ने अनुभवी अधिकारियों को दीन और कगालों को प्रतिदिन भोजन देने के लिए सभी दिशाओं में भेजा* ।

अकवर के राजत्व-काल का ४१ वाँ वर्ष संवत् १६५३ विक्रमी था। उसी समय का विवरण 'जव्तुत्तवारीख' मे निम्न प्रकार से दिया गया है—

"सन् १००४ हिजरी में समस्त भारतवर्ष भर में वर्षा का अभाव रहा†। और लगातार तीन-चार वर्षों तक एक भयंकर दुर्भिक्ष का कोप रहा। वादशाह ने आज्ञा दी कि सभी नगरों मे भिक्षा वाँटी जावे और नवाव फरीद वुखारी ने, जिनको कि भिक्षा वँटने के कार्य पर नियत्रण और व्यवस्था करने की आज्ञा दी गई थी, जनता के आम दुःख को दूर करने के लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न किया। राज्य की ओर से भोजन देने की व्यवस्था की गई और दीन जनों की रक्षा के लिए सेना वढ़ाई गई। उस काल की भयकरता मे एक प्रकार की प्लेग ने और भी योग दिया और पूरे घरों और नगरों को खाली कर दिया—कुटियों और ग्रामों का तो कहना ही क्या है! अन्न तथा भयंकर क्षुधा की आवश्यकताओं की कमी के फल स्वरूप मनुष्य ने जो जी में आया, खाया। सड़कें और गलियाँ लाशों से भर गई थीं और उनके हटाने मे कोई सहायता नहीं दी जा सकती‡"।

---

* "Forty first year of the Reign of Akbar.

In this year there was little rain and the price rose high Celestial influences were unprofiteous and those learned in the stars announced dearth and scarcity The kind hearted Emperor sent experienced Officers in every direction to supply food every day to the poor and destitute." Page 94.

History of India as told by its own Historians, Vol VI (Elliot & Dowson)

† हिजरी सन् १००४=विक्रमी सवत् १६५३

‡ History of India, as told by its own Historians
Vol. VI, Page 193 (Elliot & Dowson)

पुनि व्यास-समाधी तहँ बनाय । इक बाग फुटल्ला अब कहाय ।
इक रम्य बगीची व्यासदास । वह गई जमुन में चिन्ह पास ॥५१॥
इतने श्री बृंदावन माहीं । हैं अस्थान प्रगट ये आहीं ॥
अब सुनियें मथुरा अस्थाना । मंदिर केसवदेव बखाना ॥५६॥
घाट अक्रूर दिवालौ सुंदर । बनवायौ बिरसिंह पुरंदर ॥६५॥

—लोकेन्द्र ब्रजोत्सव, पृष्ठ २१-२२

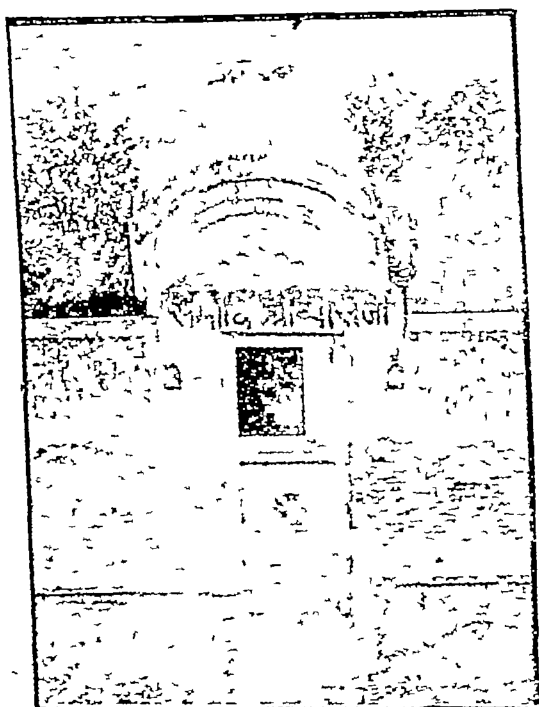
'मआसिरुल उमरा' में वीरसिंह देव बुंदेला के वृत्तांत मे लिखा है—"दतिया का राजमहल इन्हीं का बनवाया है, जिसके चारों ओर ३४ फुट ऊँची दीवार दी गई है। इसके बनने में लगभग नौ वर्ष लगे थे और ३५ लाख से अधिक रुपये व्यय हुए थे* ।"

(१०) *निष्कर्ष*—दतिया मे यह राजमहल अब भी अच्छी दशा मे वर्तमान है और पुराने महल (Old place) के नाम से प्रसिद्ध है। किंतु इस विशाल भवन के किसी भी द्वार में किंवाड नहीं लगे हैं तथा उसका एक भाग अपूर्ण है। इससे प्रकट होता है कि वीरसिंह देव की मृत्यु होते ही इस पर आगे निर्माण कार्य जारी न रहा। वीरसिंह देव का निधन सवत् १६८४ मे हुआ। उस सवत् में से 'मआसिरुल उमरा' मे दिया गया ६ वर्ष का निर्माण समय घटा देने पर भवन की नींव डालने का सवत् १६७५ ही निकलता है, जिससे ओरछा स्टेट गजेटियर में दी गई नींव डालने की तिथि माघ सुदी ५ सवत् १६७५ की पुष्टि प्राप्त होती है। उन ५२ भवनादिकों में जिनकी नींव एक ही समय सवत् १६७५ में डाली गई थी, 'व्यास जी की समाधि' की भी गणना है, जिसका उल्लेख 'लोकेन्द्र ब्रजोत्सव' में भी किया गया है। अतएव श्री व्यास जी का निकुंजलीला-प्रवेश माघ सुदी ५ संवत् १६७५ के पूर्व निश्चित्त होता है।

यह पहले ही प्रकट किया जा चुका है कि व्यास जी संवत् १६६३ के पश्चात् वर्तमान थे। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने सवत् १६६६ के आसपास, जब कि उनकी आयु १०२ वर्ष के लगभग होगी, निकुंज-लीला में प्रवेश किया।

---

* 'मआसिरुल उमरा' (फारसी) का हिंदी अनुवाद, भाग १ पृष्ठ ३६६



ओरछा-नरेश वीरसिंह देव द्वारा निर्मित—
वृंदावन में व्यास जी की समाधि



दतिया का पुराना महल [ओरछा-नरेश वीरसिंह देव द्वारा निर्मित]

चतुर्थ अध्याय

व्यवहार



१. भक्तों का आदर—

नाभादास जी के शब्दों मे व्यास जी के आराध्य 'भक्त' ही थे। उन्होंने 'भक्त इष्ट अति व्यास के' लिखा है। व्यास जी ने अपनी वाणी में भी अनेक स्थलों पर ऐसे पद लिखे हैं, जिनसे उनकी भक्तों के प्रति अपार श्रद्धा प्रकट होती है। यथा—

मेरैं भक्त हैं देई देऊ।
भक्तनि जानौ, भक्तनि मानौ, निज जन मोहि वतेऊ॥×
'व्यासदास' के प्रान जीवन-धन, हरिजन वाल-वड़ेऊ॥ (व्या० २२)

(१) *वरात के स्थान पर साधु-मंडली*—भक्तमाल की भक्तिरस-वोधिनी टीका (संवत् १७६६) में श्री प्रियादास जी ने व्यास जी द्वारा साधु-सतों के सत्कार करने के कई आख्यानों को प्रकट किया है। निम्न लिखित कवित्त से ऐसे दो प्रसंग सामने आते हैं--

सुता कौ विवाह भयौ, वड़ौ उत्साह किये,
नाना पकवान सव नीके कै वनाइ हैं।
भक्तनि की सुधि करी, खरी अखरी मति,
भावना करत भोग सुखद लगाइ हैं॥
आय गये साधू सो वुलाय कही पावो जाय,
पोटनि वँधाई चाउ कुजनि पठाइ हैं।×

—भक्तिरस-वोधिनी टीका ३६१

व्यास जी की कन्या का विवाह था। वड़े उत्साह के साथ वरात के स्वागत की तैयारियाँ हो रही थीं। अनेक प्रकार की मिठाइयाँ तथा नमकीन व्यंजनों को वनाया गया था। उस पक्वान्न को देख-देख कर व्यास जी का हृदय लालायित हो उठा कि कहीं भक्तों को यह सव भोजन परोसा जाता तो कितना अच्छा होता! उन्होंने श्री ठाकुर जी को अमनियाँ समर्पण किया ही था कि साधुओं की एक मंडली वहाँ होकर निकली। व्यास जी ने तुरंत ही उस साधु मडली को आमंत्रित कर भोजन कराया तथा जो साधु अपने स्थान पर से न आ सके, पोटली वाँध-वाँध कर

पक्वान्न उनके निवास की कुंजों मे भेज दिया। हरिभक्तों के सामने वे अपने नातेदारों के स्वागत की चिंता नहीं करते थे।

(२) *विनोद पूर्ण आग्रह*—संतों का सत्संग जिस प्रकार भी हो उन्हे प्राप्त करना अभीष्ट था। प्रियादास जी के उक्त कवित्त के अंतिम चरण के एक पदांश "सत संपुट में चिरिया दै हित सों वसाए हैं" में व्यास जी की विनोद भरी तबियत तथा सत-प्रेम की अनोखी कथा मिलती है। एक संत मंडली जब व्रज से अन्यत्र जाने लगी और व्यास जी की अनेक विनय पूर्वक आग्रहो को उसने न माना, तब उन्हे एक खेल सूझा। चुपके से उन्होंने साधुओं के ठाकुर जी उठा लिये और उनके स्थान पर उसी संपुट में एक चिड़िया रख दी। ऐसा कर चुकने पर उन्होंने पुनः साधुओं से कहा कि यदि आप हमारी अनुमति के बिना जायेंगे तो आपके ठाकुर जी उडकर के यहीं आजायेंगे। संत-मंडली को जाना तो था ही, वह चली गई। कुछ दूरी पर जब उन संतों ने स्नान करके पूजार्थ श्री ठाकुर जी के सपुट को ज्योंही खोला* कि उसमें से एक पक्षी वृंदावन की ओर उड गया। श्री विग्रह तो वहाँ थे ही नहीं। तब साधुओं को व्यास जी के वचन याद आये। वे वृंदावन की ओर लौट पडे। उनके पुन' आजाने पर व्यास जी वहुत प्रसन्न हुए और उनके ठाकुर जी उन्हें देकर संतों की सेवा करने लगे।

इस घटना का वर्णन महाराज रघुराजसिंह के शब्दों में इस प्रकार है—

इक दिन साधु बहुत घर आये। सादर तिनकों व्यास टिकाये॥
जान लगे, तब बोले व्यासा। ब्रज तजि करहु अनत कत बासा॥
साधु कहे रहिहैं हम नाँहीं। हमरे राम अनत अब जाहीं॥
रमे राम ब्रज महँ कह व्यासा। तदपि साधु नहिं टिके अबासा॥
तब तिनको ठाकुर लै लीन्हों। संपुट महँ विहंग धरि दीन्हों॥
बहुरि व्यास कह साधुन काहीं। उड़ि ऐहैं ठाकुर ब्रज माहीं॥
साधु जाय कछु दूर नहायौ। खोलत संपुट खग उडि आयौ॥
मुरिकें साधु मानि विस्वासा। अचल कियौ तुलसीबन बासा॥

—रामरसिकावली, पृष्ठ ७७१

---

* परपरागत सूचना के आधार पर यह घटना भतरौंड़ पर हुई कही जाती है। भतरौंड वृंदावन से कुछ दूर मथुरा की ओर है।

इस प्रकार साधुओं के सत्संग से व्यास जी को प्रगाढ़ प्रेम था। हरि-विमुखों से वे दूर भागते थे। यदि कहीं उनका संग ऐसे लोगों से पड़ गया तो उन्हे बड़ा दुःख होता था। भगवान् से उन्होंने नम्रतापूर्वक यह प्रार्थना भी की कि उनको हरि-विमुखों को न देखना पड़े—

जो दुख होत विमुख घर आयें।
ज्यों कारौ लागै कारी निसि, कोटिक बीछू खायें॥×
वाके दरसन परस मिलत ही, कहत 'व्यास' यों नायें॥ (व्या०१४६)

जैसे हरि-विमुखों से उन्हे दुःख होता था, वैसे ही भक्तों का स्वागत करने मे व्यास जी को अपार सुख प्राप्त होता था। वे साधु-मिलन के सामने विश्व की सारी संपत्ति को तुच्छ मानते थे। उनके हृदयोद्गार इस बात को प्रकट करने के लिए हमें उपलब्ध हैं—

जो सुख होत भक्त घर आयें।
सो सुख होत नहीं बहु संपति, बाँझहि बेटा जायें॥×
सो सुख होत न रंच 'व्यास' कों, लंक-सुमेरहिं पायें॥ (व्या०१५३)

(३) *पंक्ति-भेद का संदेह*—एक दिन संतों की पंक्ति मे बैठे हुए व्यास जी भी प्रसाद पा रहे थे और व्यास जी की पत्नी परोस रही थीं। दूध परोसने में दैवयोग से व्यास जी के पात्र में दूध के ऊपर की मलाई एक बारगी ही गिर पड़ी। व्यास जी ने उसे अपनी स्त्री द्वारा पंक्ति-भेद माना और उन्हे साधु-सेवा से अलग कर दिया। संतो ने व्यास जी से उनकी निर्दोषता प्रकट की। उनकी पत्नी ने भी अनेक अनुनय-विनय की और कहा कि मैं किस प्रकार आप को विश्वास दिला सकती हूँ कि यह मलाई मैंने जान बूझ कर आप को नहीं परोसी है। व्यास जी ने विचार किया कि स्त्रियों को आभूषण बहुत प्रिय होते हैं। इससे परीक्षा लेने के लिए उन्होंने कहा कि यदि तुम अपने समस्त आभूषणों को बेचकर साधुओं का भंडारा कर दो तो मुझे विशवस हो। उन्होंने तुरंत ही वैसा कर दिया। तब व्यास जी ने उन्हें साधु-सेवा करने का अवसर दिया। भक्तमाल के टीकाकार श्री प्रियादास जी ने इस घटना का वर्णन निम्न लिखित कवित्त द्वारा किया है—

संत सुख दैन बैठे संग ही प्रसाद लैन,
परोसत तिया सब भाँतिन प्रवीन है।
दूध बरताइ लै मलाई छिटकाई निज,
खीज उठे जान पति पोषत नवीन है॥

सेवा सों छुडाइ दई, अति अनमनी भई,
गई भूख, बीते दिन तीन, तन छीन है।
सब समुझावैं तब दंड कों मनावैं,
अग-आभरन बेंचि साधु जेंवौ यों अधीन है ॥

—भक्तिरस-बोधिनी टीका ३६०

(४) *आतिथ्य की परीक्षा*—अब व्यास जी की भक्तों के प्रति निष्ठा की कीर्ति फैलने लगी। एक महत व्यास जी की परीक्षा लेने के विचार से उनके पास गया। सतों की एक भीड भी उसके पीछे हो ली। महंत ने व्यास जी से कहा—'मैं बहुत भूखा हूँ'। उस समय व्यास जी ठाकुर जी को प्रसाद अर्पण न कर पाये थे। अतएव उन्होंने उक्त अतिथि महंत से थोडा धैर्य धारण करने के लिए प्रार्थना की। महंत जी इसे कब स्वीकार करने वाले थे। चट ही वे व्यास जी को बुरा-भला कहने लगे। किंतु व्यास जी संतों की गालियों का भी आदर करते थे†। महंत के व्यवहार पर ध्यान न देते हुए श्री ठाकुर जी को जल्दी ही अमनियाँ अर्पण कर व्यास जी ने एक पत्तल परोस कर उन अतिथि महत के सामने रखी और प्रसाद पाने की प्रार्थना की। थोड़ा सा ही खाकर महंत जी ने बचे हुए प्रसाद सहित वह जूठी पत्तल वहीं छोड़ दी और यह कह कर उठ गये कि 'इतनी देर में तो मेरी भूख भी मर गई तथा पेट में दर्द होने लगा।' प्रसाद को व्यास जी ने चुपचाप समेट कर पुन मस्तक से लगाया और पत्तल में लगे हुए एक-एक कण को निकाल-निकाल कर वे प्रसन्न होकर खाने लगे*। व्यास जी की प्रसाद में इतनी श्रद्धा और भक्ति देख कर परीक्षक महत गद्‌गद् हो गये और उनके नेत्रों में आँसू भर आये। इस घटना का वर्णन प्रियादास जी ने इस प्रकार किया है—

गयौ भक्त इष्ट अति सुनिकै महंत एक,
लैन कों परीच्छा आयौ सग संत-भीर है।
भूख कों जतावै, बानी व्यास कों सुनावै,
सुन कही भोग आवै, इहाँ मानों हरिधीर है ॥

---

† 'व्यास' बड़ाई और की, मेरे मन धिक्कार।
सतन की गारी भली, यह मेरौ शृंगार ॥

* ऐसै ही बसियै ब्रज-बीथिनि।
साधुन के पनवारे चुन-चुन, उदर पोषियत सीथिनि ॥ (व्या० १८)

तव न प्रमान करी, संक धरी लै प्रसाद,
ग्रास दोइ-चार उठे, मानों भई पीर है ।
पातरि समेटि लई, सीत करि मोकों दई,
पावो तुम और, पाव लिए दृग नीर है ॥

—भक्तिरस-बोधिनी ३६३

भगवान के भक्तों की जूठन और साधुओं की चरण-रज मे अपना प्रगाढ़ प्रेम रखने वाले व्यास जी जाति-पॉति के बंधन को न मान कर भक्ति का आसन बहुत ऊँचा मानने वाले थे । उन्होंने अपनी साखी में कहा है—

'व्यास' कुलीननि कोटि मिलि, पंडित लाख पचीस ।
स्वपच भक्त की पानहीं, तुलै न तिनकौ सीस ॥

५. प्रसाद की पकौरी—

श्री महाप्रसाद की स्तुति में व्यास जी के रचे हुए निम्नलिखित पद प्राप्त होते हैं—

हमारी जीव नमूरि प्रसाद ।
अतुलित महिमा कहत भागवत, मेंटत सव प्रतिवाद ॥ (व्या० २६)

अथवा—*हरि प्रसाद क्यों लेत नारकी ।*
व्याह-सराध अधम जहँ जूठनि, खात फिरत संसार की ॥ (व्या० ३०)

इन विचारों के अनुसार व्यास जी की 'प्रसाद' में पूरी श्रद्धा थी । पतितों को पावन करने वाले प्रसाद मे वे छूतछात का भाव नहीं रखते थे और न भक्ति में जाति-पॉति का बंधन ही उन्हें स्वीकार था । उनकी साखी में भक्ति के लिए इस प्रकार के उपदेश भरे पड़े हैं—

स्वान प्रसादहिं छ्वै गयौ, कौवा गयौ विटारि ।
दोऊ पावन 'व्यास' के, कह भागौत विचारि ॥
'व्यास' जाति तजि भक्ति करि, कहत भागवत टेरि ।
जातिहिं भक्तिहि ना बनै, ज्यों केरा ढिंग बेरि ॥

उपदेश कहने और सुनने मे बड़े सुंदर होते हैं, परंतु उन पर चलने वाले विरले ही महात्मा हो सकते हैं । व्यास जी कोरे उपदेश कथन को ही काम का न मान कर उस पर अनुसरण करने को सार तत्व समझते थे । उन्होंने लिखा है—

'व्यास' न कथनी काम की, करनी है इक सार ।
भक्ति बिना पंडित वृथा, ज्यों खर चंदन भार ॥

व्यास जी ने स्वय ही अपने एक पद मे लिखा है—

जहाँ न संत तहाँ न भागवत, भक्त सुसील अनंत ।
जहाँ न 'व्यास' तहाँ न रास-रस, वृंदावन कौ मत ॥

इससे यह प्रकट होता है कि व्यास जी वृंदावन के रसिकों के इस मत से भली भाँति विज्ञ थे कि बिना उनके रास-लीला में आनंद नहीं आता ।

रास-लीला से संबंधित व्यास जी की एक कथा बहुत ही प्रसिद्ध है और उसकी प्रमाणिकता का साक्ष्य भी उनके समकालीन श्री नाभादास जी देते हैं। शरत्पूर्णिमा की चाँदनी रात में रास-क्रीडा में नृत्य करती हुई रासेश्वरी श्री राधिका जी का नूपुर टूट गया। नूपुर की मनमोहिनी ध्वनि में सहसा विक्षेप पडने से रग में भंग होने को ही था कि व्यास जी ने तुरंत ही अपना जनेऊ तोड कर नूपुर को बाँध दिया* । उन्होंने यह भी कहा कि जिस जनेऊ के भार को उन्होंने जीवन पर्यंत वहन किया है, उसकी सार्थकता आज सिद्ध हुई !

नाभादास जी ने इस घटना को स्पष्ट रूप से भक्तमाल में लिखा है—

नौगुनौ तोरि नूपुर गुह्यौ, महत सभा मधि रास के ।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति व्यास के ॥

भक्तमाल के टीकाकार श्री प्रियादास जी ने इसकी व्याख्या मे लिखा है—

सरद-उज्यारी रास रच्यौ पिय - प्यारी,
तामैं रग चढयौ भारी, कैसे कहिकै सुनाइयै ।
प्रिया अति गति लई, बीजुरी सी कौंध गई,
चकचौंधी भई, छबि मंडल में छाइयै ॥

---

* रीवा-नरेश श्री रघुराजसिह जी ने इस घटना का वर्णन चमत्कार पूर्ण रूप से किया है—

इक दिन व्यास करत रह ध्याना । रच्यौ भावना रास महाना ॥
नृत्य करत वृषभान-दुलारी । लिय गत छिन-छिन प्रभा पसारी ॥
नूपुर घुँघरू टूटि गयौ जब । व्यास जनेऊ तुरि बाँध्यौ तब ॥
सोइ प्रतच्छ राधा चरन, बँध्यौ जनेऊ ताग ।
देखत में ब्रज लोग सब, गने व्यास बड भाग ॥

—'राम-रसिकावली' पृष्ठ ७७१

नूपुर सो टूट छूटि परयौ अनरयौ मन,
तोरिकै जनेऊ करयौ वाही भाँति भाइयै ।
सकल समाज में यों कह्यौ आजु काम आयौ,
ढोयौ है जनम, ताकी बात जिय आइयै ॥२६२॥

यज्ञोपवीत से अधिक महत्व देते थे वे माला को† । व्यास जी ने रास-पचाध्यायी के अतिरिक्त अन्य कितने ही पदों मे रास का सुंदर वर्णन किया है । दो उदाहरण लीजिये—

बन्यौ बन आजु कौ रस रास ।
स्यामा-स्यामहिं नाँचत-गावति, बाढ़्यौ विविध विलास ॥ (६२७)

अथवा—

सुघर राधिका प्रवीन वीना, बर रास रच्यौ,
स्याम संग वर सुधंग तरनि-तनया तीरे ।×
गावति अति रंग रह्यौ, मोपैं नहि जात कह्यौ,
'व्यास' रस-प्रवाह बह्यौ, निरखि नैन सीरे ॥ (४७२)

---

† गोत गुपाल, जनेऊ माला, सिखा सिखंडि, हरिमंदिर भाल ॥

पंचम अध्याय

चमत्कार



लगभग सभी संतों के जीवन-चरित्र मे कुछ न कुछ अलौकिक घटनाओं का समावेश पाया जाता है। उनके चरित्र अलौकिक घटनाओं से पूर्ण तो रहे ही हैं, किंतु विभिन्न रुचियों द्वारा उनके वर्णन और कथोपकथन एवं काल की गति के प्रभाव से उनमें चमत्कार की न्यूनाधिकता भी होती रही है।

इस प्रकार की कुछ घटनाओं की एक सीमा तक समीक्षा कर जहाँ उनसे किसी ऐतिहासिक तथ्य का समर्थन हुआ है, उन्हे यथा स्थान प्रकट किया गया है। यहाँ उन कतिपय घटनाओं का उल्लेख किया जा रहा है, जिनका अन्य प्रसंगों में समावेश नहीं हुआ है।

१. व्याधि निवारण—

'गुरु-शिष्य-वशावली' में लिखा है कि जगन्नाथपुरी जाते हुए व्यास जी को मार्ग में ओरछे से आया हुआ उमेद नामक खिदमतगार मिला, जो कुष्ट रोग से पीडित होने के कारण गगा जी में अपना शरीर अर्पण करने जा रहा था। उन्होंने दया पूर्वक उसे श्री वृंदावन की रज दी, जिससे उसका शरीर तत्काल स्वस्थ हो गया। खिदमतगार ने व्यास जी से वहीं ठहरे रहने की प्रार्थना की, जिससे वह जा कर महाराजा रुद्रप्रताप को वहाँ उनकी शरण मे ला सके। आदि, आदि।

राजा रुद्रप्रताप की मृत्यु संवत् १५८७ मे ही हो चुकी थी और तब तक व्यास जी के वृंदावन जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। उस समय व्यास जी का ध्यान भक्ति और वृंदावन की रज की अपेक्षा शास्त्रार्थ की ओर अधिक था। अतएव यह घटना इतिहास विरुद्ध है, फलत. कल्पित प्रतीत होती है।

२. स्वर्ण पुष्प—

शरद की निर्मल रजनी मे वेत्रवती के तट पर व्यास जी ने ओरछा में रासोत्सव की योजना की। व्यास जी के प्रिय शिष्य ओरछा नरेश महाराजा मधुकर शाह भी उस उत्सव मे भाग ले रहे थे। रसिक-शिरोमणि व्यास जी आनंद में नृत्य कर रहे थे। साथ ही प्रेम विभोर भक्त मधुकर शाह भी नाँचने लगे। उत्सव की अलौकिकता देखकर

आकाश से सुमन-वृष्टि होने लगी। पुष्प भूमि पर पड़ते ही स्वर्ण के हो गयेऽ। ओरछा निवासी तथा बुंदेलखंड के भक्त चरित्र प्रेमी, वंश-परपरा से यह कथा सुनाते आते हैं। 'गुरु शिष्य वंशावली' में भी इस घटना का वर्णन है। वेत्रवती (वेतवा नदी) का वह तट जहाँ वे स्वर्ण पुष्प वरसे कहे जाते हैं, उसी घटना के फल स्वरूप कंचना घाट के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि ओरछा की गद्दी पर राज्याभिषेक के समय महाराजाओं को उन पुष्पों के दर्शन कराये जाते हैं।

रीवा निवासी एव ओरछा के राजकवि मुंशी रामाधीन खरे ने संवत् १९९२ मे ओरछा नरेश को समर्पित 'ओरछा के राजा राम' नामक एक अप्रकाशित खंड काव्य मे इस रासोत्सव की तिथि एकादशी प्रकट की है। आगे वे उत्सव की अलौकिक छटा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मँड्यौ रास-मंडल अखड गुरु-मंदिर में,
तान-राग नीके अति लौने लगे लहरान।
गुरु अरु भूपति के दंपति मँझार हरि,
ठाने रास कौतुक समीर लागे हहरान॥
वजे लागे वीना-वेनु आपही अनूप स्वर,
मधुर अवाज तें मृदंग लागो घहरान।
धीर लागे जोहन, समीर लागे मोहन,
सरीर लागे सोहन, सुचीर लागे फहरान॥
मचौ रास सुखधाम, वृंदावन वह थल भयौ।
तव सुर वृंद ललाम, स्वर्ण सुमन वर्षन लगे॥

३. शालग्राम का श्री विग्रह रूप—

एक महात्मा वृंदावन मे शालग्राम की सेवा करते थे। वहाँ जव झूलों का उत्सव हुआ तो सभी मंदिरों मे ठाकुर जी का समयोचित शृंगार हुआ और वे झूला मे पधराये गये। श्री शालग्राम जी का भी झूला सजाया गया। दर्शन करते हुए व्यास जी उस मंदिर मे पहुँचे, जहाँ श्री शालग्राम जी झूलों में विराजमान थे। अन्य मदिरों मे वे दर्शनों के अनुरूप छवि का वर्णन करने वाले पदों को गा-गाकर सुनाते आ रहे थे। यहाँ भी उनसे श्री शालग्राम जी की उस छवि का वर्णन करने को कहा गया। व्यास जी ने तुरंत ही यह पद सुनाया—

ऽ इक दिन व्यास दिवाले में, निसि करी नृत्य सह राजा।
वरसे पुष्प सुवर्ण सुनभ तें, मन भौ अति सुख-साजा॥
—लोकेन्द्र व्रजोत्सव, पृष्ठ १५

फूलैं मेरे गंडकी-नंदन ।
मानहु भटा कढी में बोरे, अग लगाएँ चंदन ॥
हाथ न पाँइ, नैंन नहि नासा, ध्यान करत कछु होत अनंद न ।
जालंधर अरु वृंदा बल्लभ, गावै 'व्यास' कहा कहि वदन ॥ (२६६)

इस व्यंगात्मक रूप-वर्णन से उपस्थित रसिक मंडली को उस समय तो हँसी आई, किंतु सबको तब आश्चर्य हुआ, जब प्रात' उत्थापन के समय श्री शालग्राम के स्थान पर आनदकंद श्री कृष्णाचद्र जी की मूर्ति पाई गई।

उक्त कथा मैंने अपने पिता जी से सुनी थी। ऐसी ही एक किंवदती श्री गोपाल भट्ट जी के पूज्य देव श्री राधारमण जी के विषय मे इस प्रकार प्रचलित है कि एक समय कोई सेठ वहुत से उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण इनके लिए लाया, पर जब दर्शन किये तो एक बाबा जी के शालग्राम मात्र देखे। उसको बड़ा सताप हुआ। दूसरे दिन प्रात काल जब उत्थापन हुआ, तब यह देखकर वडा आश्चर्य हुआ कि श्री शालग्राम जी श्री विग्रह रूप मे विराजमान हैं‡।

४. श्री युगलकिशोर जी का प्राकट्य—

'गुरु-शिष्य-वशावली' मे लिखा है कि व्यास जी को एक स्वप्न हुआ, जिसके आधार पर सेवाकुंज के समीप १४ हाथ गहरे मे से श्री युगलकिशोर जी की मूर्ति का प्रादुर्भाव हुआ। किंवदतियों के अनुसार भी किशोरकूप से, जो व्यास जी की समाधि के सामने व्यास घेरे मे अब भी वर्तमान है, श्री युगलकिशोर की मूर्ति के प्राकट्य की कथा प्रचलित है। जहाँ भक्त-चरित्र लिखे गये है, वहाँ श्री युगलकिशोर जी की पूजा में घटित अलौकिक घटनाओं के उल्लेख भी प्राप्त होते है†।

---

‡ 'व्रज की झाँकी' (गीताप्रेस) पृष्ठ ६४

† आजकल यह श्री युगलकिशोर जी पन्ना मे पूजित हो रहे है। इनकी बीसवीं शताब्दी की अलौकिक घटनाएँ भी यहाँ सुनी जाती हैं। पन्ना से १० मील दूर स्थित बरायछ ग्राम के बाबा हिम्मतदास प्रतिदिन युगलकिशोर जी के दर्शन करने आते थे। बाबा जी की झाझ छीन लेने से चोरों का यकायक अधा हो जाना, कीर्तन से मंदिर के कपाट अपने आप खुलना तथा बाबा हिम्मतदास का वेश धारण कर श्री युगलकिशोर जी द्वारा हिसाब चुकाना आदि प्रचलित अलौकिक कथाएँ बीसवीं शताब्दी की है।

—'कल्याण', भक्त-चरितांक, पृष्ठ ५६१

५. मूर्ति का स्वयं पगड़ी बॉधना—

एक समय व्यास जी श्री युगलकिशोर जी को जरकसी पगडी वॉधना चाहते थे, किंतु वह श्री ठाकुर जी के चिकने मस्तक पर से बार-बार फिसल जाती थी। कई बार वॉधने पर जब वह उनकी रुचि की न बँध सकी,तो यह कह कर कि "या तो मुझ से बँधवा लो, या आप ही बॉध लो' पगडी रख कर व्यास जी मंदिर के वाहर कुंज मे चले गये। थोड़ी देर में जब उन्हे पुन पगडी की याद आई तो वे वापिस मंदिर मे शीघ्र ही आये। वहॉ पगड़ी को वड़ी सुंदरता से बँधी हुई देख कर श्री ठाकुर जी को ताना देकर कहने लगे कि "ठीक है, मेरी बँधी काहे को पसंद आने लगी* ?"

६. वंशी धारण—

इसी प्रकार की एक दूसरी घटना प्रचलित है कि एक समय वे श्री ठाकुर जी को स्वर्ण की वंशी धारण करा रहे थे। वह वशी कुछ मोटी थी, इससे श्री विग्रह की अँगुली कुछ छिल गई और रुधिर बहने लगा। व्यास जी ने वंशी को पृथ्वी पर एक ओर पटक कर प्रभु की अगुली मे जल से भिगोकर एक कपड़ा वॉध दिया। दिन भर कुछ न खाया पिया और वड़ा पश्चात्ताप करते रहे। सायंकाल प्रभु ने अपने आप वशी धारण कर ली, जिसे देख कर व्यास जी अत्यत आनंदित हुए†। तब से वह वस्त्र आज भी श्री युगलकिशोर जी अंगुली मे वॉधे रहते है।

---

* चीरा जरकसी, सीस चिकनों खिसिल जाय,
लेहु जू बँधाय नहि आप बॉध लीजियै।
गये उठि कुज, सुधि आई मुख पुन,
आइ देख्यौ बँध्यौ मजु, कहि कैसै मोपै रीभियै॥
—भक्तिरस-बोधिनी टीका, ३५६

† 'भक्तिरस-बोधिनी टीका के कवित्त सख्या ३६१ में इस घटना का सकेत 'वैसी पहिराई' पदाश द्वारा किया गया है। 'राम-रसिकावली' पृष्ठ ७७० मे इस घटना के वर्णन मे वशी का पतला होना तथा बार-बार खिसल जाने के कारण व्यास जी द्वारा उसे धारण न कराने पर स्वयम् ही प्रभु द्वारा धारण कर लेने का उल्लेख है।

निकुंज-सेवा में अनुपस्थिति—

'गुरु शिष्य वंशावली' में लिखा है कि जब बादशाह ने दिल्ली में व्यास जी द्वारा रचित 'व्यास महलन लिएँ पीकदानी‡' वाला पद सुना, तो उसके हृदय में व्यास जी से मिलने की भावना उत्पन्न हुई। समय पाकर वह वृंदावन आया और व्यास जी से ही उसने उक्त पद पुनः सुनने के पश्चात् भगवत्-वार्ता में सारी रात बिता दी। भगवान् के गुणानुवाद कथन में व्यास जी को भी समय का भान न रहा। प्रातःकाल होते समय बादशाह ने व्यास जी से पूछा कि आज महलों में पीकदानी किसने ली होगी ?

सुनते ही व्यास जी सेवाकुंज की ओर भागे। वहाँ देखा गया कि पानों का उगाल यत्र-तत्र पृथ्वी पर पड़ा हुआ है। तब बादशाह अत्यंत लज्जित हुआ और उसने लाखों रुपया व्यास जी की भेंट करना चाहा, किंतु उन्होंने उस भेंट को अस्वीकार कर यह कहा कि यदि देना ही है तो जो मैं चाहता हूँ वह दो। बादशाह ने कहा कि आप आज्ञा तो करें। तब व्यास जी ने कहा कि मैं यही चाहता हूँ कि अब हमसे आप कभी न मिलना।

बादशाह ने व्यास जी को अपने कारण क्षुब्ध जान उनसे क्षमा-याचना की और आग्रह करके वहाँ की लगभग ५० बीघा भूमि रास-विलास के लिए घेरा बनाने के निमित्त भेंट की*।

---

‡ नव कुँवर चक्र-चूड़ा-नृपति-मनि साँवरौ,
राधिका तरुनि - मनि पट्टरानी।
पल न बिछुरत दोऊ, जात नहिं तहाँ कोऊ,
'व्यास' महलन लिएँ पीकदानी ॥ (व्या. ७५)

* वृंदावन में व्यास घेरा प्रसिद्ध मुहल्ला और स्थान है।

षष्ठ अध्याय

संप्रदाय



१. वैष्णव दर्शन और भक्ति—

(१) *चार संप्रदाय*—विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी मे परंपरागत चार वैष्णव सम्प्रदाय प्रचलित थे —१. श्री रामानुजाचार्य का श्री संप्रदाय, २. श्री विष्णुस्वामी का रुद्र संप्रदाय, ३. श्री निंबार्काचार्य का सनकादि संप्रदाय और, ४. श्री मध्वाचार्य का ब्रह्म संप्रदाय। आचार्यों ने इन संप्रदायों के दार्शनिक स्वरूपो का संस्कृत मे विवेचन कर अपने-अपने वेदात वादो को प्रतिष्ठित किया था। युग की आवश्यकता और साधारण जनता में संस्कृत भाषा का ज्ञानाभाव देखकर यह आवश्यक हो चला था कि लोकभाषा मे सांप्रदायिक साहित्य का सृजन कर तथा शुष्क वेदांतवाद के पचडों और विवादों को हटाकर सगुण मार्ग की सरल उपासना मे उनके सिद्धातो को केन्द्रित किया जावे। किंतु जहाँ विद्वान् आचार्य इन आवश्यकताओं का अनुभव करते थे, वहाँ संस्कृत भाषा का मोह छोडना भी अनेक कारणों से कठिन था। परतु राजनैतिक परिस्थितियों ने उन्हे ऐसा करने के लिए बाध्य कर दिया। इस्लाम तथा अन्य विधर्मों के प्रभाव से वैष्णवधर्म की रक्षा करने के लिए तत्कालीन आचार्यों ने प्रचलित सम्प्रदायो का न केवल लोकभाषा के माध्यम से प्रचार किया, बल्कि परिस्थिति और जन-समुदाय की भावनाओं की अनुकूलता को लेकर प्राचीन मान्यताओं को नए रूप मे उपस्थित भी किया। इस जीर्णोद्धार मे नवीन सम्प्रदायो के आविर्भाव की छटा दिखलाई पडती है।

स्वामी शकराचार्य ने अपने अद्वैत दर्शन को प्रस्थानत्रयी के भाष्य से समर्थित किया था और तब से नवीन संप्रदायों के प्रतिष्ठापकों मे अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और गीता के आधार पर ही करने की रीति चल पडी। जिन धार्मिक सम्प्रदायों को उक्त प्रकार का आधार नहीं मिला, उन्हे 'पथ' सज्ञा दी गई।

श्री रामानुजाचार्य के श्री सम्प्रदाय मे लोकाभिरुचि के अनुकूल कुछ उदार तत्वों का समावेश कर श्री रामानंद जी ने राम की साकार उपासना का प्रचार किया। इसी प्रकार १६ वीं शताब्दी में श्री वल्लभाचार्य ने विष्णुस्वामी के संप्रदाय मे अपनी मौलिक उपासना-पद्धति का समावेश

कर वल्लभ संप्रदाय के नाम से उसका जीर्णोद्धार किया। यद्यपि इन
सम्प्रदायों के परवर्ती आचार्यों ने हिंदी भाषा को प्रचार का
स्वीकार कर उसमें भी कुछ रचनाएँ प्रस्तुत कीं, किंतु उनके शिष्यों
संप्रदायिक भावनाएँ काव्य के रूप में प्रकट होकर उनके कार्य में
सहायक हुईं।

श्री हित हरिवंश जी द्वारा निकुंज-विहार-लीला-रस तथा र
प्रधानता देकर राधावल्लभीय नाम से एक नया सम्प्रदाय खडा किय
स्वामी हरिदास जी का भी अपना अनन्य उपासना परक राधावृ
केलि को आराध्य मानकर चलने वाला एक नवीन हरिदासी संप्रदाय
प्रचलित हुआ। इन दोनों आचार्यों ने हिंदी भाषा के माध्यम द्वारा अपने
साम्प्रदायिक सिद्धांतों को व्यक्त किया। श्री चैतन्य महाप्रभु श्री मध्व के
अनुयायी थे। उनकी भक्ति-भावना के अनुकूल उपासना गौडीय संप्रदाय
के नाम से प्रसिद्ध हुई।

उस समय विष्णु की उपासना के कितने ही मार्ग प्रचलित हो
चुके थे और उन सब में माधुर्य रूप को स्थान प्राप्त था। उत्तरी भारत
का वातावरण विदेशियों के आक्रमणों से अशात रहा। इससे भगवान
के अवतारों की लीलाभूमि अवध और ब्रज के उत्तरी भारत मे होते
हुए भी भक्ति का पोषण दक्षिण भारत में ही हुआ। बगाल में भी भक्ति
के विकास को अनुकूल परिस्थिति मिली।

२. धार्मिक नेताओं का उपकार—

आचार्यों द्वारा दार्शनिक सिद्धांतों के विवेचन शास्त्रार्थ और पंडितो
के क्षेत्र में ही सीमित रह जाते थे। साधारण श्रेणी के मनुष्यों में उन
सिद्धांतों को प्रतिपादित करने वाले एवं तत्कालीन सामाजिक दशा और
राजनैतिक प्रभावों का सामना करने के लिए आचार्यों और महात्माओं
द्वारा साधना के ऐसे उपदेश आवश्यक हुए, जो मनोवृत्ति का परिष्कार
कर धार्मिक भावना को जागृत बनाये रहें। धर्म ने दार्शनिको का सहारा
पाकर जन साधारण को नैतिक पतन से बचाया और उसका स्तर
ऊँचा उठाया।

जब विदेशियो के प्रभाव से जनता की मनोवृत्ति विलास प्रिय
होने लगी, तो धर्म के नेताओं ने उस रसिकता को भी भगवत्प्रेम की ओर
मोड दिया। इस प्रकार मनोवृत्ति का विपर्यय कर देने से समाज नैतिक
पतन से बच गया।

(३) *भक्ति में राधा का स्थान*—श्रीमद्‌भागवत में माधुर्य भाव की प्रधानता है। गोपियों का श्री कृष्ण के प्रति अपूर्व प्रेम का परिचय भागवत से मिलता है, किंतु उसमें राधा का स्पष्ट नामोल्लेख नहीं है। एक स्थान पर पूर्व जन्म में कृष्ण की विशेष रूप से आराधना करने के कारण एक गोपी को कृष्ण की अधिक प्रिय होने का वर्णन है। धर्माचार्यों को श्री कृष्ण की परम प्रिया इस गोपी में 'राधा' के वर्णन का संकेत मिला। लोकगीतों तथा संस्कृत काव्यों में राधाकृष्ण की प्रेम-लीलाओं के गान होने लगे। ब्रह्मवैवर्त पुराण मे राधा का स्पष्ट रूप से वर्णन हुआ है।

निंबार्काचार्य तथा मध्वाचार्य ने दार्शनिक विवेचना के साथ वैष्णव धर्म की उपासना पद्धति मे राधा को महत्वपूर्ण स्थान दिया। भक्त कवियों के सरस वर्णन ने माधुर्य भक्ति को पूर्ण रूप से विकसित किया। उन भक्त कवियों में जयदेव का एक विशिष्ट स्थान है, जिनको न केवल मान्यताओं को ही व्रजभाषा के कृष्ण-भक्त कवियों ने अपनाया, वरन् उनकी अंगीकृत गीत-शैली को भी अपनी कविता मे एक प्रमुख स्थान दिया।

पन्द्रहवीं शताब्दी तक कृष्ण के साथ राधा की भक्ति का विकास होता हुआ माधुर्य भाव का इतना प्रचार हो चुका था कि राधाकृष्ण की प्रेम-लीला के गान भारत के सभी भागों के भक्त कवियों द्वारा गाये जाने लगे थे। कवियों की सरस उक्तियों ने भक्ति की ओर नया आकर्षण उत्पन्न किया।

सोलहवीं शताब्दी मे वल्लभाचार्य ने भी अपने सम्प्रदाय मे बाल-कृष्ण की उपासना को प्रधान रूप से प्रतिष्ठित किया, किंतु जिन अन्य भावों से उन्होंने उपासना मान्य की, उनमें से माधुर्य को भी एक भाव बतलाया। अष्टछाप के कवियों द्वारा इस संप्रदाय का काव्य के माध्यम द्वारा भी अच्छा प्रचार हुआ। उसी समय निंबार्क मत के प्रचारक कितने ही भक्त महात्मा हुए, जिनमें श्रीभट्ट जी एव हरिव्यासी शाखा के प्रवर्तक हरिव्यास देव जी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रसिद्ध संगीत-शिरोमणि स्वामी हरिदास जी भी उसी समय हुए, जिन्होंने सगीत और काव्य के माध्यम से माधुर्य भक्ति का प्रचार किया।

कृष्ण चैतन्य की भक्ति मे माधुर्य और आवेग को प्रधानता दी गई है। उनके शिष्य रूप, सनातन और जीव गोस्वामी ने सस्कृत मे सांप्रदायिक भक्ति ग्रंथो का प्रणयन किया और प्रबोधानंद ने वृंदावन की

रूप-माधुरी और महिमा का वर्णन कर धर्म के प्रति आकर्षण मे प्रगाढ़ता की वृद्धि की। गदाधर भट्ट आदि ब्रजभापा के कवियों ने भी हिंदी का भंडार भरा।

उसी समय हित हरिवंश जी भी वृंदावन मे उपस्थित थे। उन्होंने अपने राधावल्लभीय सम्प्रदाय में राधा के पूर्ण विकसित रूप का निरूपण किया। उनके मतानुसार राधा की अनुकंपा से ही कृष्ण की कृपा मिलती है। अतएव उनके द्वारा राधा की भक्ति का उच्चतम विधान प्रस्तुत हुआ।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवन्नाम के जप और कीर्तन को ही जीवों के उद्धार के लिए मुख्य और सरल उपाय माना तथा राधाभाव को सबसे ऊँचा भाव बतलाया। राधाभाव से उन्होंने स्वयं प्रियतम कृष्ण को पुकारा।

(४) *भक्ति के रूप*—भक्ति के पाँच रूप माने गये हैं—

१. शांत—अपने इष्टदेव के प्रति अनुराग के अतिरिक्त संसार के सब पदार्थों से उदासीनता और वैराग्य रख कर 'शांति' भाव धारण करना।

२. दास्य—इष्टदेव को स्वामी तथा अपने को दीन-हीन समझ कर विनय पूर्वक दीनता प्रकट करते हुए उनसे 'प्रीति' करना।

३. सख्य—गोपों और कृष्ण में जो 'प्रेम' भाव था, उसी के अनुसार आराध्यदेव से संबंध रखना। जिस प्रकार सखा एक दूसरे की गोपनीय लीलाओं को जानते हैं और निस्संकोच भाव से स्वान्त सुखाय प्रकट भी करते हैं, वही बात इस रूप की भक्ति मे भी पाई जाती है।

४. वात्सल्य—नंद-यशोदा की तरह कृष्ण के प्रति 'स्नेह' भाव रखना।

५ माधुर्य—इस रूप में भगवद्विषयक रति का उत्कृष्ट दाम्पत्य प्रेम के अनुरूप कांत-कांता भाव रहता है। या तो भक्त राधाभाव धारण कर कृष्ण के विरह में कातर स्वर से विह्वल हो जाता है, अथवा राधा-कृष्ण के संयोग और शृंगार की ललित चेष्टाओं एवं कृष्ण-गोपियों की रासादिक क्रीडाओं को देखकर आनंद प्राप्त करता है, गोपियों के प्रेम का आदर्श लेकर भक्त भगवान से प्रेम करता है। इस प्रकार की भक्ति-भावना में वह प्रत्येक अवसर पर प्रियतम के निकट बना रहता है। यही रागानुगा भक्ति है। तुलसीदास जी के शब्दों मे 'कामिहिं नारि पियारि जिमि, प्रिय लागो मोहिं राम' इस भाव की संक्षिप्त परिभाषा है।

(५) *भक्ति रस*—रसोत्पादक सामग्री होते हुए भी काव्यशास्त्र की परिपाटी मे न जाने क्यों भक्ति को स्वतंत्र 'रस' नहीं माना गया है।

देव विषयक रति को साहित्याचार्यों ने 'भाव' संज्ञा दी है । भक्ति भाव के वर्णन मुख्यतया शांत रस से संबंध रखते हैं, किंतु माधुर्य भक्ति में देव विषयक 'रति' भावना स्थायी होती है, इस कारण उसके वर्णन में शृंगार रस के अनुरूप तत्व पाये जाते हैं; वैसे भक्ति और शृंगार में महान् अंतर है । देव विषयक रति भाव को 'भक्ति' कहते हैं, परंतु शृंगार की व्यंजना तो कामी जनों के हृदय में ही उद्भूत हो सकती है ।

२. मध्वाचार्य का ब्राह्म संप्रदाय—

(१) *द्वैतवाद और भक्ति*—व्यास जी के दीक्षा गुरु एवं पिता श्री समोखन जी शुक्ल मध्व संप्रदाय के अनुयायी कहे गये हैं† । मध्वाचार्य के पूर्णप्रज्ञ दर्शन में द्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है । उसी की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने भक्ति क्षेत्र में माधुर्य भाव की उपासना का भी उपदेश कर ब्रह्म संप्रदाय को प्रतिष्ठित किया था ।

मधुर भाव से भजने वाले भक्त के लिए भगवान की लीलाएँ, शृंगार चेष्टाएँ तथा विविध विलास क्रीड़ाएँ ही गेय हैं । कृष्ण का राधा के प्रति प्रेम उद्दाम मानवीय प्रेम का प्रतीक है । किंतु मध्वाचार्य ने एक मात्र मधुर भावना ही की उपासना का उपदेश नहीं किया था । उन्होंने विष्णु को परमात्मा मान कर उनके अवतारों की पूजा और भक्ति का उपदेश भी दिया था । इन अवतारों में उन्होंने कृष्ण को विशेष स्थान दिया और उनके साथ राधा की पूजा की व्यवस्था देकर माधुर्य भाव की भक्ति का संचार किया । वे नवधा भक्ति के पोषक थे और वैराग्य को अधिक महत्व देते थे । मध्वाचार्य के पहिले निंबार्काचार्य भी राधाकृष्ण की शृंगार उपासना का आभास दे चुके थे । मानव प्रकृति में दाम्पत्य प्रेम का एक अत्यंत आकर्षक भाव है । इस कारण इस भाव की उपासना को अपने पैर जमाने में देर न लगी । सोलहवीं शताब्दी में तो कृष्णोपासक सभी संप्रदायों में शृंगार भाव की पूर्ण रूप से प्रतिष्ठा हो चुकी थी ।

(२) *व्यास जी के द्वैतवादी विचार*—व्यास जी के परिचय में नाभादास जी ने जो छप्पय लिखा है, उससे यह आभास मिलता है कि

---

† श्री राधाकिशोर गोस्वामी कृत 'व्यास-वाणी' के प्राक्कथन में श्री समोखन जी को श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु-भाई श्री माधवदास जी का शिष्य लिखा गया है । उक्त 'व्यास-वाणी' में व्यास जी का जो चित्र है, उसमें उन्हें माध्वमत-मार्तंड विशेषण दिया गया है ।

व्यास जी उस समुदाय के थे, जिसमें भगवान के किसी भी अवतार की आराधना की जा सकती हैं तथा जिसमें कोई-कोई नवधा भक्ति का पालन करते हैं, परंतु व्यास जी ने तदनुकूल वैराग्य से प्रेम किया और एक अवसर पर जनेऊ के सूत्र से नूपुर बाँध कर रास प्रेम को प्रकट कर मधुर उपासना का परिचय दिया। उन्होंने तिलक एव माला का गौरव बढ़ाया और भक्तों को अपना इष्ट समझा। इस परिचय से हमें व्यास जी को मध्वाचार्य के ब्रह्म सम्प्रदायी होने का संकेत मिलता है। क्यों कि ये सब तत्व उस संप्रदाय के अनुकूल हैं। मध्वाचार्य जी द्वारा प्रचारित द्वैतवाद के दार्शनिक सिद्धांत के प्रति एवं साधना के उपदेशों के अनुकूल विचार हमे व्यास-वाणी से भी उपलब्ध होते हैं। यथा—

१ प्रकृति, जीव और ब्रह्म नित्य प्रथक सत्ताएँ हैं, जो शाखा चद्र न्याय के अनुसार भिन्न हैं। सत् जड प्रकृति, चित सवित् शक्ति जीव और आनद परा शक्ति आह्लादिनी अर्थात् राधिका को बतलाया गया है—

'व्यास' जगत में रसिक जन, जैसै द्रुम पर चद।
सत चित अरु आनद में, भेद न जानत मंद॥

२ जीव दास है। सेव्य-सेवक भाव का निदर्शन व्यास जी के असंख्य पदों से उपलब्ध होता है। यथा—

कहत सुनत बहुत दिन बीते, भक्ति न मन में आई।
स्याम-कृपा बिनु, साधु-संग बिनु, कहि कौनें रति पाई॥×
हरि मदिर माला धरि, गुरु करि, जीवनि के दुखदाई।
दया, दीनता, 'दास भाव' बिनु, मिलै न 'व्यास' कन्हाई॥(व्या १७०)

३ जीव का उद्धार भगवत्कृपा के आधीन है, तथा वह कर्म करने एव फल भोगने मे सर्वथा परतत्र है—

'तृष्ना कृष्ण-कृपा बिनु सबकैं।'×
गह्यौ आसरौ बृंदावन कौ, कट्टर 'व्यास' भयौ है अबकैं॥(व्या १८०)

तथा—

कहा-कहा नहि सहत सरीर।
स्याम-सरन बिनु, कर्म सहाइ न, जनम-मरन की पीर॥×
विनु अपराध चहूँदिसि बरषत, पिसुन बचन अति तीर।
कृष्ण-कृपा कवची तें उबरे, पोच बढी उर पीर॥ (व्या. ११२

४ जीव की मुक्ति ज्ञान से नहीं, केवल भगवत्प्रसाद से होती है। भक्ति भी विना कृष्ण की कृपा के प्राप्त नहीं हो सकती—

भक्ति न जनमैं पढ़ें पढ़ाये ।
कृष्ण-कृपा बिनु, साधु-संग बिनु, कह कुल गाल बजाये ॥×
नाऊ, जाट, चमार, जुलाहे, छीपा हरि दुलराये ।
मत्सर बाढ़्यौ भट्ट-गुसाइन, स्वामी 'व्यास' कहायें ॥ (व्या.२११)

५ वृंदावन में भक्ति का उपभोग करना ही उनके मत मे अन्य मुक्तियों की अपेक्षा श्रेयस्कर है--

परम पद कहत कौन सों लोग ।
कोऊ तहाँ तें गयौ न आयौ, ऐसौ सुख-संजोग ॥
मेरे मने साधु है सोई, जहाँ भक्ति रस भोग ।
'व्यास' करत हैं आस तहाँ की, जहाँ न भय भव-रोग ॥(व्या २४८)

६ 'भोग' भोक्ता और भाग्य के बिना सभव न होने से यह द्वैतवाद का बोधक है। जीव एवं ब्रह्म में साम्य-बोध भ्रम एवं अपराध है। 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि वाक्यों का अभिप्राय जीव ब्रह्मैक्य बोध मे नहीं है, किंतु स्वरूप मात्र मे अभेद भावना का उपदेश है। जीव की स्थिति मध्वाचार्य जी ने इस प्रकार मानी है कि 'स्वरूप' और 'बाह्य' दो उपाधियाँ है। मुक्ति मे बाह्य उपाधि का लय हो जाता है। स्वरूप में उपाधि रहती है। यह समस्त उपाधि नष्ट हो जाय तो प्रतिबिंब की स्थिति कहाँ हो सकती है और स्वरूप नाश के लिए कोई प्रयत्न भी नहीं करता, इसलिए द्वैत मे जीव प्रतिबिंब सा है--

'व्यास' चद आकास में, जल में आभा मद ।
जलज मद यह कहत है, जो हम सौ यह चंद ॥

७. ससार से भयभीत होने की आवश्यकता नही है--

'व्यास' बिभूका खेत को, दुक्ख न काहू देय ।
जो निसक ह्वै जाय, सो वस्तु घनेरी लेय ॥

८ भक्ति के साधनों से ही जीव मुक्त होता है--

साँची भक्ति और सब झूठौ ।
पाई नारद व्यास-कृपा तें, खात साधु कौ जूठौ ॥
जिन-जिन कौ सरि काज सँवारयौ, शृंगी रिषि सों रूठौ ।
'व्यास' मुनी कै मुनी सुकदेव, परीछत ऊपर तूठौ ॥ (व्या०२२४)

९. ब्रह्म सगुण, सविशेष और स्वतंत्र है—

श्री वृंदावन के राजा स्याम राधिका ताकी रानी ।
तीन पदारथ करत मजूरी, मुक्ति भरति जहँ पानी ॥
करनी धरनी करत जेंवरी, घरु छावत हैं ज्ञानी ।
जोगी, जती, तपी, सन्यासी, इन चोरी कै जानी ॥
पनिहाँ वेद पुरान मिलनियाँ कहत सुनत यह वानी ।
घर-घर प्रेम-भक्ति की महिमा, 'व्यास' सबनि पहिचानी ॥ (व्या०७४)

१०. परम तत्व ब्रह्म भगवान विष्णु हैं। शेष समस्त देव जीव कोटि मे है—

स्याम धन कौ नाहीं अंत ।
जाकैं कोटि रमा सी दासी, पद सेवत रति-कंत ॥
कोटि-कोटि लंका सुमेरु से, रकनि हँसि बगसंत ।
सिव,बिरचि, मघवा, कुबेर. जाके रोमनि के तंत ॥ (व्या०७३)

कृष्ण उपासकों ने श्री कृष्ण को ही परम तत्व ब्रह्म माना है। उन्होंने नारायण को नित्य विहार का अशमात्र स्वीकार किया है।

(३) *गुरु एवं पिता के इष्ट देव*—जैसा कहा जा चुका है व्यास जी ने अपने पिता समोखन शुक्ल से ही दीक्षा ली थी। 'गुरु-शिष्य-वशावली' में समोखन शुक्ल द्वारा विंध्यवासिनी देवी की तपस्या करने का उल्लेख है, जो नितात भ्रमपूर्ण है, क्यों कि व्यास-वाणी मे ऐसे कितने ही प्रसग हैं, जहाँ शाक्तों के प्रति व्यास जी ने अश्रद्धा ही नहीं, वरन् घृणा प्रकट की है। उनके पिता शुक्ल समोखन यदि शाक्त होते तो व्यास जी या तो शाक्तों के प्रति इस प्रकार के विचार प्रकट न करते, या फिर अपने को योग्य पिता का अयोग्य पुत्र लिख कर दीनता पूर्वक यह भाव प्रदर्शित न करते कि 'ता सतयुग तें हौं कलजुग उपज्यौ, काम-क्रोध कपटी'।

'व्यास जू के वश वर्णन' पत्र* मे 'सुकल समोखन कौ इष्ट श्री नृसिंह जू' लिखा है। यह उल्लेख कदाचित् ठीक हो सकता है,क्यों कि एक तो मध्व संप्रदाय में सभी अवतारों को पूज्य माना गया है। दूसरे नाम की स्तुति का एक पद व्यास जी ने 'नरहरि' नाम से ही प्रारंभ किया है—

नरहरि गोबिद गोपाला ।
दीनानाथ दयानिधि सुंदर, दामोदर नँदलाला ॥ (व्या० ३६)

* इस पत्र का रचना-काल सवत् १८७५ के पूर्व का प्रमाणिक होता है।

इस पद मे 'नरहरि' नाम का साधारणतया कोई प्रसंग अनिवार्य नहीं है, तथा व्यास जी की निजी उपासना भी 'नरहरि' भगवान की नहीं थी।

(४) *सखी भाव के उपासकों में सम्मानता सूचक संबोधन*—इधर व्यास-वाणी में सुकल समोखन के जो उल्लेख हैं, उनके साथ इस प्रकार के वर्णन हैं, जिनसे उनकी माधुर्य भाव ही की उपासना प्रकट होती है। इस विपमता का समन्वय हम इस प्रकार कर सकते हैं कि सुकल समोखन की परपरागत उपासना नृसिंह की रही हो और माधवदास जी के प्रभाव से उन्होंने माध्व मतानुकूल माधुर्य उपासना को महत्व दिया हो। व्यास जी के एक पद[1] से प्रकट होता है कि उनके गुरु सुकल समोखन की मृत्यु के पश्चात् व्यास जी की शंकाओ का निवारण श्री माधवदास जी ने किया था। माधवदास जी से व्यास जी की दूसरी बार भेंट हुई थी, उस समय तक व्यास जी हित हरिवंश जी और हरिदास जी से मिलकर कुंजकेलि, गुरु, हरि, नाम, वृंदावन, जमुना, महाप्रसाद आदि विपयों पर पद-रचना कर चुके थे। 'व्यास-वाणी' मे वृंदावन निवास के लिए उत्कंठा सूचक पदों से प्रकट होता है कि ओरछा में रहते हुए ही उनमे वैराग्य भावना वढती जा रही थी। इन पदों से यह भी सिद्ध होता है कि वे पहिले भी वृंदावन हो आये थे और वहाँ वे श्री हितहरिवंश जी तथा स्वामी श्री हरिदास जी की आराधना-रीति और सखी-भाव की उपासना-पद्धति से विशेप प्रभावित हुए थे, जिसके फलस्वरूप जव वे ओरछा से वृंदावन जाने के लिए उत्सुक हो रहे थे, तव उन्हे उक्त दोनो महात्माओं की सुधि और मिलन की भावना भी प्रवल प्रेरणा दे रही थी—

अव न और कछु करने, रहने है वृंदावन।
होनौ होइ सो होइ किनि, दिन-दिन आयु घटति भूटै तन॥
मिलिहैं हित ललितादिक दासी, रास में गावत सुनि मन।×
'व्यास' आस छाँड़हु सव ही की, कृपा करी राधा-नँदनंदन॥(२५८)

व्यास-वाणी मे ऐसे अनेकों स्थान हैं, जहाँ श्री हित जी और श्री हरिदास जी स्वामी के सखी, सहेली और दासी आदि विशेपण प्रयुक्त हुए है। शब्दो के सामान्य अर्थ मे ये विशेपण समता सूचक हैं, किंतु उपासना क्षेत्र मे सख्य और दास्य भाव भक्ति के प्रधान रूप हैं। भक्त

---

1 देखिये पद 'श्री माधवदास सपन मे आयौ।'

सखा, सखी दास या दासी बनना चाहता है, अतएव सखी, सहेली, दासी आदि शब्दों का अर्थ 'सिद्धि को प्राप्त हुए महात्मा' मान कर उनमे सम्मान प्रकट करने वाले सबोधन की भावना सन्निहित मानना चाहिये। व्यासी जी ने स्वयं अपने पिता एवं गुरु समोखन शुक्ल को कई बार 'सहचरी' लिखा है। यथा—

श्री गुरु सुकुल सहचारी ध्याऊँ, दपति रस सुख-सार ।

तथा—

जय-जय श्री गुरु सुकल सहचरी प्रिया की ।

इस कारण व्यास जी की विचारधारा के अनुसार गुरु को सखी रूपा माना गया है। तभी तो सखी भावना की दीक्षा उनसे संभव हो सकती है। अतएव हरिवश जी और हरिदास जी को 'सखी, सहली' विशेषण देना उनमे गुरुत्व भावना को ही प्रकट करना है। किंतु व्यास जी ने स्पष्ट रूप से 'सुकुल जी' को अनेकों स्थलों पर अपना गुरु स्वीकार किया है। इससे माधवदास, हरिवश जी एव हरिदास जी को उनके सद्गुरु ही मानना पड़ेगा।

इसमें सदेह नहीं कि माधुर्य भाव की उपासना के क्षेत्र मे हित हरिवंश जी ने एक नवीन एव सरस धारा का सचार किया। मधुर भाव की उपासना की प्रतिष्ठा तो निंबार्काचार्य और मध्वाचार्य द्वारा हुई ही थी और सखी भावना से इस भाव की ओर भक्तों की सख्या बढ़ती जा रही थी, किंतु श्री कृष्ण की कृपा के लिए राधिका जी का अनुग्रह अनिवार्य मानकर निकु ज-सेवा के अनन्य रसिक मार्ग का पथ-प्रदर्शन करने का श्रेय श्री हिताचार्य जी को है। उन्होंने महाप्रसाद को सर्वस्व बताया और विधि-निषेध के सब झगडों को हटा कर राधाकृष्ण विहार की अनन्योपासना का एकमात्र उपदेश दिया। इस प्रकार माधुर्य भाव के विशिष्ट अनन्य पथ को उन्होंने अपने हित राधावल्लभीय सम्प्रदाय के नाम से प्रतिष्ठित किया। उनके सिद्धात के अनुसार श्री कृष्ण भगवान की कृपा श्री राधिका जी की अनुकपा के बिना असभव है। राधाकृष्ण के निकु ज-बिहार मे दास्य भाव से सेवा करने के लिए सखी रूप से उपासना करना उन्हें मान्य हुआ।

३. साधना पक्ष—

(१) *जयदेव का 'गीत गोविंद'*—व्यास जी ने महाकवि जयदेव को अद्वितीय रसिक स्वीकार किया है। उन्होंने जयदेव का जन्म राधाकृष्ण की विलास-लीला का गान कर जीवों का उद्धार करने के लिए

ही हुआ माना तथा उन्हें माधुर्य उपासना के द्वारा भगवत साक्षात्कार होना बतलाया। वृंदावन की सरस महिमा का गान करने का श्रेय सर्व प्रथम जयदेव को प्राप्त है और उन्हीं से प्राप्त कर उस मधुर रस का अन्य लोगों ने सबको आस्वादन कराया। राधा के चरणों की उपासना कर उन्होंने कृष्ण को प्रसन्न किया था एवं सब की आशा छोड़ कर श्याम-सुंदर को कुंजों में बुला लिया था। यह है व्यासजी की जयदेव के प्रति भावनाएँ, जो इस पद के द्वारा हमे उपलब्ध हैं—

श्री जयदेव से रसिक न कोई, जिन लीला रस गायौ।×
'पतित पतत्रे'† मुख निसरत ही, राधा-माधव कौ दरसन पायौ॥
वृंदावन कौ रसमय वैभव, जिननें पहिलें सबनि सुनायौ।
ता पाछें औरन कछु पायौ, सो रस सबनि चखायौ॥
पद्मावति चरनन कौ चारन, जिहि गोविंद रिझायौ।*
'व्यास' न आस करी काहू की, कुंजन स्याम बुलायौ॥ (६)

इन मान्यताओं को व्यास जी ने भी अपनाया था। हित हरिवंश जी के राधावल्लभीय संप्रदाय की साधना में भी जयदेव के गीत गोविंद के अतर्गत काव्य रूप से वर्णित मान्यताओं का समावेश पाया जाता है। अतएव व्यास-वाणी मे जो विचारधारा प्रकट होती है, वह राधावल्लभीय सम्प्रदाय मे भी समान रूप से पाई जाती है।

(२) *राधावल्लभीय संप्रदाय*—व्यास-वाणी मे जहाँ हमे मध्वाचार्य के द्वैतवाद के दार्शनिक तत्व मिलते हैं, वहाँ साधना क्षेत्र मे श्री हित हरिवंश

---

† पतित पतत्रे विचलति पत्रे, शंकित भवदुपयानम ।
स्वयति शयन सचकित नयन, पश्यति तव पंथानम ॥
धीर समीरे यमुना तीरे, वसति वने वनमाली ।
गोपी पीन पयोधर मर्दन, चंचल कर युग शाली ॥

—गीतगोविंद

व्यास जी के निम्न पद को जयदेव के उक्त गीत मे प्रेरणा मिली ज्ञात होती है—
देहि सखी पियहिं प्रान कौ दान ।
तू अति चतुर उदारसिरोमनि, करत कृपनता मान ॥ (व्या० वा० ५२१)

* वाग्देवता चरित चित्रित चित्त सद्मा, पद्मावती चरण चारण चक्रवर्ती ।
श्री वासुदेव रस केलि कथा समेत मेत करोति जयदेव कवि प्रबंधम् ॥

—गीतगोविंद

जी की मान्यताओं के अनुकूल वर्णन भी पाये जाते हैं। साथ ही वाणी में व्यास जी ने अपने गुरु का नाम 'सुकल' लिखा है, किंतु हित हरिवंश जी के नामोल्लेख करने वाले कितने ही प्रसगों में उन्होंने कुछ ऐसे उल्लेख किये हैं, जिनसे यह प्रकट होता है कि व्यास जी को अपनी साधना मे उनसे सहायता मिली थी। यथा—

व्यासहि हित हरिवंस बताई, अपनी जीवन-मूरि।

तथा—

श्री हरिवंस-कृपा बिना, निमिष नहीं कहुँ ठौर।
'व्यासदास' की स्वामिनी, प्रगटी सब सिरमौर॥

व्यास जी ने एक दोहा मे श्री हित जी के आराध्यदेव श्री राधावल्लभ जी को इष्ट, मित्र और गुरुदेव कहा, जो मध्व मतानुकूल कथन है। तथा एक दूसरे दोहा में रसिकों के द्वारा उपदेश पाने पर श्री हरिवंश जी की प्राप्ति और फिर हरिवंश जी की कृपा हो जाने पर संशय दूर होने की बात कही है†। इससे प्रकट है कि पूर्व अगीकृत उपासना के मार्ग में की शकाओं के समाधान उन्हें हिताचार्य जी द्वारा उपलब्ध होते थे। यह कहा जा सकता है कि अपने गुरु सुकल जी से दीक्षा लेने के उपरात जब व्यास जी घर छोड कर वृ दावन चले आये, तब यहाँ उन्हे श्री हित जी के सत्सग से बड़ी सहायता मिली।

गौड़ प्रांत (बंगाल) तथा वृंदावन के केन्द्रों से प्रचारित माध्व सम्प्रदाय को माध्व गौड़ीय या गौडीय वैष्णव संप्रदाय भी कहते है, क्यों कि इस सम्प्रदाय का प्रचार बगाली महात्माओं द्वारा अधिक विस्तृत रूप से हुआ। हिंदी साहित्य के इतिहास लेखक विद्वानों का मत है कि पहिले व्यास जी गौड़ संप्रदाय के वैष्णव थे‡। माध्व और गौड सम्प्रदाय लगभग पर्यायवाची होने के कारण इन विचारों की व्यास-वाणी के अंत.साक्ष्य से पुष्टि होती है। यद्यपि श्री कृष्णचैतन्य के गौडीय सम्प्रदाय में भी माधुर्य भाव की प्रधान उपासना है, तथापि व्यासजी की माधुर्य भक्ति से उसमे सबसे महत्वपूर्ण अतर यह है कि चैतन्य द्वारा गौडीय उपासना मे

---

† उपदेस्यौ रसिकनि प्रथम, तब पाये हरिवस।
जब हरिवस कृपा करी, मिटे व्यास के सस॥

‡ हिंदी साहित्य का इतिहास (शुक्ल), पृष्ठ १८६ तथा
सुकवि-सरोज (गौरीशकर द्विवेदी), पृष्ठ ५४ आदि।

आवेग की उत्कर्षता के लिए राधिका जी को परकीया भाव से माना गया है और व्यास-वाणी में राधिका का स्वकीया रूप मे उल्लेख हुआ है, जो राधावल्लभीय पद्धति के अधिक निकट है। अब व्यास-वाणी से कुछ वे उद्धरण दिये जाते हैं, जिनमें राधिका जी को स्वकीया होने का उल्लेख स्पष्ट है—

स्यामहिं उपमा दीजै काकी।
वृंदावन सौ घर है जाकौ, राधा दुलहिन ताकी ॥×
इहिं रस नवधा भक्ति उबीठी, रति भागवत कथा की।
रहन कहन सब ही तें न्यारी 'व्यास' अनन्य सभा की ॥(व्या० ८६)

इस पद से यह भी प्रकट है कि उन्हे पहले नवधाभक्ति ही मान्य थी। मध्व संप्रदाय में नवधाभक्ति का उपदेश है—

रोम-रोम प्रति 'व्यासहिं' कोटिक रसना होति,
तौ न बरन्यौ परै 'प्यारी कौ सुहाग'।

तथा—

राधिका मोहन की प्यारी।×
'सुभग सुहाग' प्रेम रंग राची, अँग-अँग स्याम सिंगारी ॥
'व्यास' स्वामिनी के पद-नख पर, बलि-बलि जात रसिक नर-नारी ॥(३७१)

और भी—

श्री वृषभानु-किसोरी सुंदरि, वृंदावन की रानी जू।
चंदवदन चंपक तन गोरे, 'स्याम-घरनि' जग जानी जू ॥

व्यास जी ने राधाकृष्ण की विवाह-लीला भी एक लबे पद मे लिखी है, जिसमें नंद और वृषभानु के बीच सगाई संबंध की चर्चा से लेकर ब्याह की समस्त लौकिक और वैदिक रीतियों का उल्लेख करते हुए कंकण छोड़ने तक का पूरा वर्णन किया गया है।

व्यास जी के कृष्ण सौभाग्यवती राधिका रानी के प्रेम के आधीन रहने वाले हैं। उन्हे अपनी हृदयेश्वरी के अनुकूल चलना है। यदि थोड़ी सी भी असावधानी हुई और राधा रूठ गईं, तो कृष्ण को उन्हें मनाने के लिए सब कुछ करना पड़ता है। इस कार्य मे उन्हें सखियों की सहायता उपलब्ध हो जाती है। ब्रह्म की तुष्टि के लिए जीव के समस्त व्यवहारों का यह साधना पथ में प्रदर्शन है।

यद्यपि कृष्णोपासना मे राधा के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान श्री निंबार्काचार्य और मध्वाचार्य जी प्रतिष्ठित कर चुके थे एवं जयदेव

आदि भक्त कवि 'राधा-माधव' की मधुर विहार-लीला का गान भी कर चुके थे, तथापि राधा की विशेष रूप से आराधना का प्रचार श्री हित जी ने राधावल्लभीय संप्रदाय की स्थापना द्वारा किया। उनके प्रभाव से तत्कालीन भक्त कवियों एवं उनके शिष्यों ने हिंदी साहित्य के भडार को माधुर्यरस पूर्ण काव्य से भरा है।

निकुजलीला की उदात्त आराधना मे सख्य भाव के लिए पुरुष रूप में सर्वथा और सर्वत्र प्रवेश पाना अधिकाश सुलभ नहीं होता, इस कारण इस उपासना में सखी भाव के प्रति विशेष आकर्षण हुआ। जैसा पहिले कहा जा चुका है, व्यास जी सखी-उपासना को पहिले ही अपना चुके थे। श्री हिताचार्य जी का सत्संग पाकर वह और अधिक पुष्ट हो गई। व्यास-वाणी मे ऐसे कथन प्रचुर मात्रा मे हैं, जिनके विषय श्री राधावल्लभीय संप्रदाय के सिद्धात के अनुसार वर्णित हुए हैं—

यह वृदावन मेरी संपत्ति।
इह लोक, परलोक वृदावन मेरौ, पुरषारथ, परमारथ, गथु, गति ॥×
जहाँ निकुज पुज सुख विहरत, राधामोहन मोहैं काम-रति।
तहाँ 'व्यास' 'बनिता भयौ चाहत' चारयौ वेद करत मत आरति ॥ (६०)

हरि का गुण-गान करते हुए त्याग और भगवत्प्रेम का रसास्वादन करने में व्यास जी ने श्रीमद्भागवत के अनुसार गोपियों की प्रेम-भक्ति का अनुसरण किया—

हरि-गुन गावत, कलिजुग सुनियतु, भयौ सबनि कौ काज।
साखि भागवत बोलत अजहूँ, काहे करत अकाज ॥
सुक-सनकादिक जेहिं रस माँते, तजि ससार समाज।×
सो रस 'व्यासदास' कौ जीवन, राधामोहन आज ॥ (व्या०२२८)

व्यास-वाणी में राधाकृष्ण के विहार-दर्शन के लिए सखी भाव से उपासना के सकेत कई स्थलों पर पाये जाते हैं—

१. छलबल करि हरि-राधा बिहरत, देखन 'व्यास सखी' सचुपावति।
२. यह सुख निरखि 'व्यास सखी' फूली फूले अग न मात सकल दुख खोये ॥

व्यास जी के मतानुसार लक्ष्मी और नारायण रासेश्वरी और नित्य विहारी के अंश मात्र हैं। उनके कितने ही पदों में ऐसी भावना प्रकट हुई है—

१. 'व्यास' स्वामिनी के पद-नख की कमला करत न सारी जू।
२. अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरैं, कमला निरखि लजानी जू ॥

३. धनि-धनि वृंदावन की धरनि ।
अधिक कोटि वैकुंठ लोक तें, सुक-नारद मुनि बरनि । ×
ब्रह्मा मोह्यौ ग्वाल मंडली, भेद रहित आचरनि ।
राधा की छवि निरखत मोही, नारायन की घरनि ॥ (व्या० ८०)
४. मोहन धुनि वैकुंठहि गई । नारायन मन प्रीति जु भई ॥
वचन कहत, कमला सुनौ ॥
कुंजविहारी विहरत देखि । जीवन जनम सफल करि लेखि ॥
यह सुख हम को है कहाँ ॥
श्री वृंदावन हमतें दूरि । कैसे कर उडि लागै धूरि ॥
रास रसिक गुन गाइ हौं ॥ (व्या० ७५६)

उक्त त्रिपदियो मे रामानुजीय भक्ति पद्धति के सविशेष नारायण को गौण रूप दिया गया है । व्यास जी ने राधा को संपूर्ण तत्वों का सार माना है । श्री मद्भागवत मे राधा नाम का उल्लेख न होने का भी कारण उन्होंने यह बताया कि जिस राधा नाम की महिमा का पार पाने के लिए ही कृष्ण ने अनेकों लीलाएँ कीं, उस परम धन को व्यास जी ने गोपनीय ही रक्खा । वे कहते हैं—

परम धन राधा नाम-अधार ।
जाहि स्याम मुरली में टेरत, सुमिरत बारबार ॥
जत्र, मत्र अरु बेद तत्र में, सबै तार को तार ।
श्री सुक प्रकट कियौ नहि याते, जानि सार कौ सार ॥
कोटिन रूप धरे नंद-नंदन, तौऊ न पायौ पार ।
'व्यासदास' अब प्रगट बखानत डारि भार मे भार ॥ (व्या० ३१)

ऐसी वैभवशालिनी राधा की कृपा पाकर व्यास जी को किसका डर था ! उन्होंने लोकाचार, विधि-निषेध और धर्म-कर्म को छोड़कर मुक्ति का भी अनादर किया । परमधन का गर्व ऐसा ही होता है—

राधिका सम नागरी प्रवीन की नवीन सखी,
रूप गुन सुहाग, भाग आगरी न नारि । ×
ताके बल गर्व भरे, रसिक 'व्यास' से न डरे,
लोक, वेद, कर्म, धर्म छाँडि मुकुति चारि ॥ (व्या० ४२८)

इस प्रकार की चर्चा व्यास-वाणी मे अनेकों स्थलों पर आती है, जिससे पता चलता है कि लौकिक आडबर त्याग कर वे एक मात्र रसिक उपासना मे तल्लीन हो गये थे । देखिये—

१. स्याम ! तुम्हारे राज लाज तजि, 'व्यास' निगम दृढ सीवा तोरी ।
२. या सुख कारन 'व्यास' आस कै, लोक-बेद उपहास सहन दै ।

(३) *सामजस्य*—इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यास जी की भक्ति-पद्धति मध्वाचार्य के सिद्धांतों के अनुसार है। व्यास जी के पिता कृष्ण चैतन्य के गुरु-भाई माधवदास जी के शिष्य कहे जाते हैं। श्री कृष्ण चैतन्य मध्व सप्रदाय मे ही दीक्षित हुए थे और उनके द्वारा भक्ति का प्रवल प्रचार हुआ। वे राधिका जी के अवतार माने गये। चैतन्य सप्रदायी साधुओं का नाम-स्मरण भी व्यास जी ने बड़े आदर के साथ किया है। उन्होंने रूप और सनातन की स्तुति श्रद्धा पूर्वक की है। उन दोनों भाइयो के निधन पर कहे गये उनके विरह के पद मे कृष्ण चैतन्य के लिए 'करुणा-सिंधु' विशेषण का प्रयोग तथा उनके विना अपने को अनाथ हो जाने का कथन किया गया है। उनकी कुंजकेलि की प्रधान उपासना का सकेत विरह के इस पद में भी है—

साधु-सिरोमनि रूप-सनातन ।
जिनकी भक्ति एकरस निवही, प्रति कृष्न-राधा तन ॥×
करुनासिंधु कृष्ण-चैतन्य की कृपा फली दुहुँ भ्रातन ।
तिन बिनु 'व्यास' अनाथ भये, अब सेवत सूखे पातन ॥ (२७)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है व्यास जी के पिता एव गुरु माध्व सप्रदाय के अनुयायी थे। चैतन्य महाप्रभु इसी संप्रदाय के मानने वाले थे और हित हरिवश जी के सिद्धांतों का भी इनसे विरोध नहीं था। इन दोनों ने अपनी-अपनी विशिष्ट मान्यताओं के साथ दो नये संप्रदायों की स्थापना की। मध्वाचार्य के ब्राह्म सप्रदाय के अत्यत निकट होने के कारण, हम इन दोनों सप्रदायों के अनुयायिओं में एक अभिन्न प्रेम भाव पाते हैं। गौडीय संप्रदाय के तत्कालीन कितने ही अनुयायियों ने हित हरिवश जी की महिमा का गान किया है। भगवतमुदित जी ने 'रसिक अनन्य माल' में हित जी की महिमा का वर्णन किया है। उनके इस ग्रंथ की वदना से वे श्री कृष्ण चैतन्य के अनुयायी निर्विवाद रूपेण सिद्ध हैं।

महाप्रभु कृष्ण चैतन्य के जीवन चरित्र से परिचित व्यक्ति जानते हैं कि काशी के प्रसिद्ध वेदांताचार्य स्वामी प्रकाशानंद जी सरस्वती के ज्ञान का गर्व उन्हीं महाप्रभु ने मिटा कर उन्हें भक्त वनाया था। भक्ति का इस प्रकार बोध होने के कारण उनका नाम भी वदल कर प्रवोधानद रख दिया गया था। कृष्ण चैतन्य के शिष्यों में वे बड़े सरस कवि थे। परंतु हित हरिवंश जी की महिमा-वर्णन में भी 'जय जय श्री हरिवंस देत आनंद

को। भास्यौ धामस्वरूप प्रबोधानंद को। ।।' आदि कथन मिलते है। इसका कारण है इन दोनों संप्रदायों मे एक स्वाभाविक मेल, जिसके फलस्वरूप इनके अनुयायी दोनों आचार्यों मे श्रद्धा रखते रहे। धार्मिक भाव की वृत्ति वाले सज्जन तो संत मात्र का आदर करते ही हैं। व्यास-वाणी मे प्रबोधानन्द जी पर भी एक पद है—

प्रबोधानंद से कवि थोरे ।
जिन राधावल्लभ की लीला-रस मे सब रस घोरे ।।
यह प्रिय 'व्यास' आस करि (श्री) हित हरिवसहि प्रति कर जोरे ।।(१८)

उक्त पद से भी प्रबोधानन्द की श्री हित जी के प्रति श्रद्धा प्रकट होती है और इस सिद्धात की व्यास-वाणी के अत साक्ष्य से पुष्टि प्राप्त होती है कि गौडीय माध्व सम्प्रदाय के अनुयायी हित हरिवंश जी मे आदर भाव रखते थे।

(४) *समन्वय*—तात्पर्य यह कि माध्व गौडीय एव राधावल्लभीय संप्रदायों द्वारा नये प्रकार से माध्व सम्प्रदाय की भक्ति का प्रचार हुआ। उनके प्रवर्तकों ने स्वय तो प्रस्थानत्रयी पर स्वतंत्र भाष्य लिख कर अपने अलग दार्शनिक सिद्धातो का प्रतिपादन नही किया, किंतु उनके शिष्यो ने सांप्रदायिक ग्रंथों की रचना की। श्री कृष्ण चैतन्य द्वारा अचित्यरूपा, मायाशक्ति, अवाङमनस गोचर तत्व, सर्वमान्य कहे गये थे, इससे अनेक शिष्यों ने उनके दार्शनिक वाद को 'अचित्य भेदाभेद' नाम दिया।

गौड़ प्रात (बगाल) मे भक्ति की यह धारा विशेष रूप से प्रवाहित होने के कारण इसका नाम गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय हुआ। इसे गौर सम्प्रदाय भी कहते है। इसी प्रकार हिताचार्य के वाद को भी 'सिद्धाद्वैत' नाम दिया गया, और उनके पूज्य देव श्रीराधावल्लभ के नाम पर उनके सम्प्रदाय का हितराधावल्लभीय नामकरण हुआ। गौड़ीय सम्प्रदाय मे राधा का परकीया रूप से और राधावल्लभीय सम्प्रदाय मे विशेषतया स्वकीया रूप से अनुमोदन हुआ।

(५) *संकीर्णता*—अपने समय मे मध्वाचार्य सम्मत राधाकृष्ण की भक्ति और विशेष कर माधुर्य भाव को प्रधानता देकर उपासना का प्रचार करने वाले यही दो सम्प्रदाय थे। इससे उनके अनुयायी दोनो भक्ताचार्यों में श्रद्धा भावना रखते थे। जैसे जैसे समय बीतता गया,

1 श्री हित हरिवंश जी की बधाई (हस्तलिखित) पृष्ठ २६

वैसे वैसे सांप्रदायिक संकीर्णताएँ बढ़ती गई । साधु स्वभावोचित महात्माओं के प्रति आदर भाव के वचनों की भौतिक आलोचनाओं द्वारा गुरु शिष्य का निर्णय करने में आग्रह और झंझटें उत्पन्न हो गई ।

किसी साप्रदयिक आचार्य का अर्थ केवल उस मत का प्रस्थान त्रयी पर भाष्य करके प्रचार करने वाले महापुरुष से है । उन्होंने सिद्धात की सृष्टि की, ऐसा न तो वे मानते हैं और न उनके अनुयायी ही । सत्य अनेक प्रकार का नहीं हो सकता, किंतु जब वह वाणी में व्यक्त किया जाता है, तब दृष्टिकोण एव वाणी के भेद से वह विविध रूप का हो जाता है । इन रूपातरों के नाम से जिन सप्रदायों की सृष्टि हुई, उनके कुछ अनुयायी अपने सम्प्रदायों का विशेष प्रचार करने एव महत्व बढ़ाने के लिए आग्रहवाद और सकीर्णता का आश्रय लेते हुए भी पाये जाते हैं । अनन्यता के भ्रममूलक प्रचार ने भी इसे प्रोत्साहित किया । 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे मीराबाई के घर पहुँचे हुए पुष्टिमार्गीय कृष्णदास के व्यवहार में इस प्रकार की सकीर्णता लक्षित होती है । आगे के युग में यह और भी अधिक बढ गई ।

४. अनन्यता—

व्यास जी के आराध्य देव श्री कृष्ण थे । वे किसी अन्य देवी-देवता की आशा न रख कर राधा-कृष्ण की ही एक मात्र उपासना करते थे । अपने सिद्धातों की दृढ़ता के कारण इस अनन्य रसिकता का निर्वाह करने में उन्हें कष्ट भी उठाने पडे, परतु वे अपने निर्दिष्ट मार्ग से विचलित नहीं हुए । समस्त सपत्ति और ऐश्वर्य का त्याग कर उन्होंने अपने प्रण को निवाहा—

मोहिं भरोसौ हे हरि ही कौ ।
मोकों सरन न और स्याम बिनु, लागत सब जग फीकौ ॥×
दीनन की आसा कौ दाता, परम भावतौ जी कौ ।
जाके बल कमला सों तोरी, काज भयो अति नीकौ ॥
चारि पदारथ, सब सिधि, नव-निधि, पर डारत नहिं पीकौ ॥×
'व्यासहिं' आस स्याम-स्यामा की, ज्यों बालक आधार चुंबी कौ ॥ (१०२)

उनकी वाणी से पता चलता है कि भक्त लोग उनकी भक्ति मे बाधा डालते थे और उन्हे कष्ट देते थे । वे उस सगति को छोडने के लिए व्याकुल थे । जैसा उनके पद से भी ध्वनित है—

करि मन साकत कौ मुँह कारौ ।
साकत मोहिं न देख्यौ भावे, कहा बूढौ कहा बारौ ।×
'व्यासदास' यह संगति तजियै, भजियै स्याम सवारौ ॥ (२६१)

उस समय सांप्रदायिक विद्वेप बडे जोरों पर था। अपने मत की पुष्टि तथा दूसरे संप्रदायों को अधर्म कह कर उसकी निंदा की जाती थी। जब शाक्तों द्वारा व्यासजी को यह व्यवहार मिला, तो उन्होंने विवाद में न पड कर सरलता से यह कह कर टाल दिया—

जासों लोग अधर्म कहत हैं, सोई धर्म है मेरौ ।
लोग दाहिने मारग लाग्यौ, हौंव चलत हौं डेरौ ॥ (व्या० २३०)

श्यामा-श्याम के अतिरिक्त अन्य किसी की पूजा तो उन्हे पसंद थी ही नहीं, अतएव अपनी कन्या के विवाह तक में गणेश-पूजन का उन्होंने विरोध किया। किंतु व्यास जी ने होरी की धमार में लिखा है—

मोहन पकरि जूथ में ल्याई, पूजा रचित बनाई ।
दधि-अच्छित-रोरी कौ टीकौ, गनपति गौरि मनाई ॥

इससे प्रकट होता है कि वे गणेश और गौरी में यथोचित श्रद्धा रखते थे और अपनी अनन्यता के कारण अपने इष्टदेव में ही सभी देवी-देवताओं को समाविष्ट मानते थे। उन्हे विश्वास था कि इस प्रकार के अनन्य भक्तों से भूत-प्रेत तथा अन्य देवी-देवता भी डरते हैं—

हरिदासन के निकट न आवत, प्रेत-पितर, जमदूत ।
अरु जोगी, भोगी, सन्यासी, पंडित, मुंडित, धूत ॥
ग्रह, गन्नेस, सुरेस, सिवा - सिव, डरि कर भाजत भूत ।
सिधि-निधि, विधि-निषेध, हरि-नामहि डरपत रहत कपूत ॥ (८६)

किंतु अनन्यता का कोरा स्वांग रचने वालों को अपने मिथ्या आचरण के कारण दैवी प्रकोप का भाजन बनना पडता है, यह भी वे मानते थे—

रसिक अनन्य कहाइ कै, पूजैं ग्रह गन्नेस ।
'व्यास' क्यों न जिनके सदन, जम गन करैं प्रवेस ॥

वे किसी दूसरे देवता के द्वार पर नहीं जाना चाहते थे। अनन्य व्रत का पालन उन्होंने तलवार की धार पर चलना जैसा मान कर भी निष्ठा पूर्वक उसी का पालन किया—

अनन्य व्रत खाँडे की सी धार ।
इत-उत डगत जगत हित तें, हरि फेर न करत मम्हार ॥
कौन काम कीरति बिनु प्रीतहि, गनिका कैसौ जार ।
'व्यासदास' की पति-गति नासै, गयें पराये द्वार ॥ (६५)

५. माधुर्य उपासना के संप्रदायों में समान श्रद्धा—

(१) *हरिदासी संप्रदाय*—वृंदावन में मैंने राधावल्लभीय समुदाय मे एक किंवदंती सुनी थी, जिसके अनुसार व्यास जी ने अपने एक पुत्र को श्री हित जी के ज्येष्ठ पुत्र वनचंद्र जी का शिष्य करा दिया था। इस कथन का तो लेख कहीं मिलता नहीं, अपितु उनके द्वारा अपने एक पुत्र किशोरदास को श्री स्वामी हरिदास जी का शिष्य कराये जाने का वर्णन 'निजमत-सिद्धांत-सार' आदि हरिदासी संप्रदाय के ग्रंथो मे पाया जाता है।

श्रीमत् व्यासदास प्रण लीनों । दासकिसोर पुत्र संग कीनों ।
श्री स्वामी कौ सिष्य करायौ । रास मध्य ताकौ पद गायौ ॥

स्वामी हरिदास जी के प्रधान बारह शिष्यों मे से एक किशोरदास जी भी थे, जो व्यास जी के पुत्र थे और जिन्होंने व्यास जी द्वारा अपनी संपत्ति के विभाजन में संभवत: केवल माला, तिलक और छाप को पाया था। प्रियादास कृत 'भक्तमाल' की टीका से भी यही सूचना मिलती है। 'श्री लोकेन्द्र ब्रजोत्सव' आदि भी इसका समर्थन करते हैं। व्यासवशीय गोस्वामी ललितमोहिनी दास † का, जिनका ओरछे में सवत् १७८० मे जन्म हुआ था, हरिदासी सप्रदाय के आचार्य होकर टट्टी संस्थान की गद्दी पर आसीन होना भी इस बात की पुष्टि करता है कि व्यास जी के वशजों की एक शाखा में हरिदासी संप्रदाय की उपासना प्रचलित थी।

(२) *मध्व संप्रदाय*—बुंदेला नरेश प्रसिद्ध भक्त महाराज मधुकर शाह श्री व्यास जी के शिष्य§ थे। इसके संकेत व्यास वाणी में भी उपलब्ध हैं। उनके वशज परंपरा से व्यास जी के वशजों के शिष्य होते चले आते हैं। 'ओरछा गजैटियर' में तत्कालीन ओरछा नरेश महाराजा प्रतापसिंह को, जो स० १९३१ में ओरछा के राजसिंहासन पर आसीन हुए मध्व सप्रदाय का वैष्णव लिखा गया है। यह ओरछा नरेश महाराज मधुकरशाह के पुत्र वीरसिंह देव प्रथम के वशज थे। यही सप्रदाय अन्य बुंदेला नरेशों का भी विभिन्न गजेटियरो में लिखा है। इससे व्यास जी के वशजों की उस शाखा का, जिसमें परपरा से ओरछा नरेश के राज्य गुरु हुए, मध्व मतानुयायी होने का प्रमाण मिलता है। व्यास जी के वंश मे

† ललितमोहिनी दास, व्यास कुल कौ अवतंस ।
जनम ओडछे मॉहिं, नौंहिं कलि की रति अंस ॥
—सहचरिशरण कृत 'गुरु-प्रणालिका'

§ 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में मधुकरशाह को विट्ठलनाथ जी गोस्वामी का शिष्य होना लिखा है। देखिये, वैष्णव सख्या २४५

सखी भाव से युगल स्वरूप की उपासना होने का एक उल्लेख हमें संवत् १८४८ के पूर्व लिखे गये बख्शी हंसराज कृत 'सनेह सागर*' नामक ग्रंथ में भी मिलता है।

(३) *राधावल्लभी सम्प्रदाय*—महाराज मधुकरशाह के ज्येष्ठ पुत्र रामशाह, जहाँगीर द्वारा ओरछे के राजसिंहासन से च्युत किये जाने पर चंदेरी के राजा हुए। उनके वंशज मर्दनसिंह के नाम वृंदावनांतर्गत टट्टीस्थान से लिखे गये सं० १६०६ के एक पत्र† से उनकी राधावल्लभीय संप्रदाय की उपासना प्रकट होती है। पत्र के कुछ अंश इस प्रकार हैं—

"जय श्री कुंज विहारी जु की ॥ स्वस्ति श्रीमत् समस्त शस्त शकेत प्रशस्त प्रभापुंज पूर पूरित प्रताप सकल कल कला कुंज रंजित विभंजित दुरित दीन दु खौघेशु ॥×तन्मकरंद पीयूप पान लालसीक चतुर चंचरीक श्रीमत् रसिकानन्याग्रगण्य वर्य श्रीमन्त नरेन्द्र मौलिमुकुटालंकार सारासार-विचार चारु चातुर्य चमत्कृत राजहंस श्रीमत् हरि गुरु रसिकानन्य वैष्णव चरणारविन्दोन्मत्त मधुपेन्द्रेव रसज्ञ सदयोदार चक्रचूडामणि चिरायुष्मान् चिरजीवी अखंड राज्य सिंहासनासीन श्रीमन्महाराजाधिराज श्री महाराज श्री राजा मर्दनसिंघ जी देव सेवक प्रति इतोभव त्रिकाल परम शुभेच्छुक

* शुक्ल जी कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के अनुसार बख्शी जी का जन्म स० १७६६ मे पन्ना मे हुआ था। सवत् १८६३ की लिपि काल वाली 'सनेह सागर' की एक प्रति लेखक ने वृंदावन में स्वय देखी है और खोज रिपोर्टों मे सवत् १८४८ की एक प्रति का उल्लेख है। ग्रथ के प्रारभ में बख्शी जी ने अपनी उपासना और गुरु का परिचय इस प्रकार दिया है—

> स्याम वर्म-अचतस गुसाईं बिजय सखी गुरु मेरे।
> मन, बच, कर्म करहुँ मति, तिनके चरन-कमल के चेरे ॥
> 'सखी उपासना' परम प्रीति सों, तिन यह हमैं बताई।
> 'जुगल स्वरूप' राम निज लीला, दिल अंतर दरसाई ॥
> तिनके पद-अरविंद सीस धर, होय मगन मन भारी।
> कहियत परम प्रीति उर धरि के, लीला-नित्त-विहारी ॥
> 'हसराज बखसी' कुल कायथ, परम प्रेम रस पागे।
> यह 'सनेह सागर की लीला', कहत नित्त अनुरागे ॥

† इस पत्र की लबाई ६८ इच और चौड़ाई ६३/४ इच है। पत्र के ऊपर 'जय श्री कुंजबिहारी जु की ॥' लिखा है, जिससे पत्र लेखक का हरिदासी सम्प्रदायी होना प्रकट होता है।

वृ दावनान्तर्गत टट्टीस्थित रसिक कंगाल अभ्यागत यमुनादास दत्त वेद शास्त्रोक्त पुभासीर्वादाकित ।। उपरान्त हे सन् समाज कुमुन्निशाकर श्री हुजूर सों मिलने कौ मनोरथ विशेप है परतु प्रिया प्रीतम के आधीन आयवौ है। × हे श्रीमद्भागवतामृताब्धि रसज्ञ आपतौ श्रीमद् गुरु परंपरार्णव के पूरणानुरागी चक्षु चकोर प्राय निरंतर रहो हौ। × हे श्रीमद् भगवत् भक्ति कल्पद्रुमावतार आपहू प्रत्यक्ष प्रगट भये हौ यानतर हे श्रीमत् हित हरिवशांघ्रि अबुज खडंघ्रि प्रेमानुरागपूर्वक रसिक अनन्योपासन दृढ़व्रत स्थिर हजूर ही हौ। हे ध्रुव धर्म धुरधर जैसी कछू पूर्व परपरा भगवत कीर्तन गायन होत आई ता प्रमाने प्रथा श्री हुजूर करें हैं। × और समाचार वेद मूर्ति विदुशावतस राजमान्य राजेश्री विहारीलाल भट जी की पाती तै मालूम होवेंगे सुज्ञेपु वहुना किं ।। मिती पौष शुक्ल ।।७।। सवत् १६०६ ।। श्रीरस्तु ।। १ ।।"

महाराज मर्दनसिंह के गुरु कन्हैयालाल गोस्वामी थे, जिनके पौत्र गोस्वामी गोपीलाल द्वारा श्री चतुरासी जी की टीका के सबध मे लिखे गये एक पत्र में भी महाराज मर्दनसिंह को श्री हित हरिवश उपासक कहा है—

"श्री जय जय श्री राधावल्लभ जी की। स्वस्ति श्री हित हरिवश उपासक हरि गुरु सेवा परायण श्री जी के निज कृपापात्र श्री श्री काका जू साहव वहादुर जू देव ऐते सदा शुभ चिंतक चिरंजीवी पच श्री गोस्वामी गोपीलाल कौ जाहर होने में आवे। "

इससे प्रकट है कि महाराज मर्दनसिंह के गुरु जो व्यासवंशीय गोस्वामी थे, राधावल्लभीय सप्रदाय के अनुयायी थे। इस प्रकार हम व्यास जी के वशजों को माध्व, राधावल्लभीय और हरिदासी तीनों सप्रदाय के अनुयायी पाते हैं। राधावल्लभीय और हरिदासी सप्रदाय के दार्शनिक सिद्धातों पर प्रस्थानत्रयी के भाष्य न होने के कारण कुछ लोगों की धारणा है कि ये संप्रदाय माध्व आदि के अतर्गत उनकी ही साधना-पक्ष के प्रचारक हैं। इस दृष्टिकोण से उक्त विभिन्नता का लोप सा ही हो जाता है। परतु उक्त तीनों मत एक ही लक्ष्य रखते हुए भी अपनी-अपनी अलग मान्यताएँ और विशिष्टताएँ वनाये हुए हैं। यह प्रकट ही है कि व्यास जी का श्री हित हरिवश और स्वामी श्री हरिदास जी से अभिन्न प्रेम था, अतएव उक्त विवेचन के आधार पर अनुमान करना असगत न होगा कि उन्होंने अपने तीन पुत्रों को तीन गुरुओं से दीक्षा दिलवा कर भक्ति मार्ग की माधुर्य उपासना की तीन मधुर धाराओं को अपने वश में प्रवाहित किया।

सप्तम अध्याय

नृत्य और संगीत



१. आराधना के माध्यम—

भक्ति के साथ कविता और संगीत आदि का सम्बध सदा से ही चला आ रहा है। अपने आराध्य देव को सुंदर भजनों के संगीत और नृत्य द्वारा भावों के प्रदर्शन से सरलता पूर्वक रिझाने की कला को माधुर्य उपासना के सभी भक्तों ने अपनाया है। व्यास जी भी अपने प्रेम और भक्ति के लिए नृत्य और गान को ही प्रधान साधन मानते थे। कर्मकांड से दूर रह कर वे उक्त कलाओं के द्वारा हार्दिक आनंद लेते हुए ही अपने आराध्य देव को तुष्ट करते थे। गायनाचार्य भक्त नारद जी के प्रति भगवान् के यह वाक्य उनके कानों मे गूंजते हुए प्रतीत होते हैं—

नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिना हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद॥

व्यासजी ने इसका पूरी तरह अनुभव किया था। अपनी साखी में उन्होंने कहा है—

नैन न मूंदे ध्यान कों किये न अगन व्यास।
नॉच-गाय रासहिं मिले, बसि बृंदावन 'व्यास'॥

उनका कहना है कि अभिमान छोडकर जिस प्रकार हो भगवान का स्मरण करो। उनकी लीलाओ को खेल कर, स्वरूप बदल कर और नृत्य गान द्वारा उनकी भक्ति कर नटनागर को सरलता से रिझाया जा सकता है—

मेरो मन मानत नॉच-गाये।
एक प्रेम भक्ति कौ फल है, मोहनलाल रिझाये।×
तजि अभिमान दीनता जन की, स्यामु रहत सचु पाय॥ (व्या. २२५)

नृत्य और सगीत साधना को उन्होंने बड़ा गौरव प्रदान किया है। किंतु राजाओं को रिझाने के लिए भगवत्-भक्ति के भी भजन गाना व्यास जी की दृष्टि मे एक कपट पूर्ण व्यवहार का उदाहरण था। वे उस नृत्य और सगीत को भगवत-प्राप्ति का साधन मानते थे, जिसमें मन रास रसिक की ओर ही लगा रहे—

गावत मन दीजै गोपालहिं ।
नॉचत हरि पर चितु दीजै तो, प्रीति बढ़ै प्रतिपालहिं ॥×
मुँह गावत गोपालहि कपटी, मन में धरि भूपालहिं ।
हाथी कौ सौ स्वाग धरत, पुनि चलत स्वान की चालहिं ॥ (व्या.२५१)

उनका विश्वास था कि नृत्य और संगीत की ललित कलाएँ भगवान् को सुख देकर संतुष्ट करती हैं—

नाँचत-गावत हरि सुख पावत ।×
नॉचत गन गधर्व देवता, 'व्यासहिं' कान्ह जगावत ॥ (व्या. २४३)

वे कला को कला के लिए मानते थे। उनके वर्णनों से प्रकट होता है कि नृत्य और गान संबंधी कलाओं का उन्हें बड़ी बारीकी का ज्ञान था। नृत्य में नेत्रों के संचालन से प्रकट किये गये भावों को शब्दों में सुन कर सामने एक चलचित्र का सा प्रदर्शन हो जाता है। देखिये—

नटवा नैन सुधंग दिखावत ।
चचल पलक सबद उघटत हे, थं थं तत् थेई थेई कल गावत ॥
तारे तरल तिरप गति मिलवत, गोलक सुलप दिखावत ।
उरप भेद भ्रू भंग संग मिलि, रतिपति कुलनि लजावत ॥
अभिनय निपुन सैंन सर ऐंननि, निसि बारिधि बरपावत ।
गुनगन रूप अनूप 'व्यास' प्रभु, निरखि परम सुख पावत ॥ (व्या.३४२)

श्रीकृष्ण राधिका जी को अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय देते हैं। उन्होंने अनेक गुणिया को देखा और उनका संगीत सुना, किंतु व्यास की स्वामिनी राधिका जी के रूप को देख कर तो उनके लोचन और संगीत सुन कर उनके कान आत्म-विस्मृति मे सुधि ही खो बैठे। इससे अधिक गुण की सराहना क्या हो सकती है--

बहुत गुनी मैं देखे सुने री, सुधि न परै राधे तेरे गान की ।
मोह्व कछू गर्व हुतौरी गुन कौ, हौं पचिहारयौ, समुझि न परै कछु तेरे तान की ॥
तू जानत गति रेख नेम की, ताल मदिर घोर सुर बंधान की ।
'व्यास' की स्वामिनि तेरे गावत, कछु सुधि न रही मेरे लोचन कान की ॥
(व्या० ३६२)

२. संगीत शास्त्र पर व्यास जी का ग्रंथ—

व्यास जी द्वारा रचित भारतीय सगीत शास्त्र पर 'रागमाला' नामक एक ग्रथ की सूचना खोज रिपोर्ट सन् १६०६–०८ मे दी गई है। ६०४ श्लोकों के कलेवर के इस ग्रथ की, संवत् १८५५ के लिपिकाल की,

एक प्रति स्टेट लाइब्रेरी टीकमगढ़ में सुरक्षित है। हिंदी के दोहा छंदों में सरस्वती मत के अनुसार राग-रागनियों का वर्णन इसमें किया गया है। ग्रंथ की प्राप्त प्रति के प्रारंभिक और अंतिम भाग के उद्धरण इस प्रकार हैं—

प्रारंभिक भाग—श्री गणाधिपतये नमः। श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री कृष्णायनमः॥ दोहरा॥

जा सम देवन कों सदा, संकट परे सहाय।
सदा अभय वरदायनी, 'व्यास' चरन चित लाय॥१॥
राग-रागिनी आप ही, रसना बुद्धि सरूप।
ग्रंथ राग निर्णय उदित, होवे परम अनूप॥२॥
बहु मत बूझ बिचारि कै, मत सरस्वती मानि।
सब गुणदायक स्वामिनी, सब लायक जगरानि॥३॥
राग रागिनी गानजुत, होवे अंग समेत।
सुर औ ताल प्रमान तें, गावें सुनें सुनेनि॥४॥
भैरवादि षट राग हैं, रागनीय इकतीस।
'व्यास' कहे रागाग जुत, सोहे मोह ईस॥५॥
भैरव की तिय पाँच हैं, प्रथम भैरवी जानि।
अरु बिभावरी गूजरी, गुनक्रीय सुभ मानि॥६॥
पुनि बिलावली रागनी, भैरव की सुखदानि।
'व्यास' कहत मत भारती, गायो जाय सुमानि॥७॥

अंतिम भाग—इति राग शास्त्रे नाद भेद फल प्रभाव राग निर्णय अष्टविंशतमो प्रकास॥२८॥ इति रागमाला संपूर्ण॥ यादृशी पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशी लिखितं मया॥ यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते॥मीर्ना॥ जेष्ठ मासे शुक्ल पक्षे द्वादशी रवि वासरे संवत् १८५५ मुकामुठेहरी॥ लिखितं लक्ष्मणदास वैश्य॥

३. ध्रुपद शैली से प्रेम—

इससे प्रकट होता है कि व्यास जी संगीत शास्त्र के बहुत ऊँचे विद्वान थे तथा अपने समय के प्रसिद्ध गायक भी थे। उस समय साधारण लोगों को तो ख्याल-टप्पा की शैली में उडती हुई चीजें पसंद थीं, किंतु उच्च श्रेणी के गायकों और विशेष कर वैष्णव समाज में ध्रुपद शैली के गायन का आदर था। प्राचीन मंदिरों में अब भी परंपरा से ध्रुपद शैली के गायन की व्यवस्था चली आती है। स्वामी हरिदास जी को ध्रुपद शैली ही मान्य थी। वृंदावन चले जाने पर व्यास जी की इन्हीं

गायनाचार्य स्वामी श्री हरिदास जी के अत्यंत निकट सपर्क में रहे तथा उनमें उनकी विशेष श्रद्धा भी रही। स्वामी जी उस समय भारत के सर्वोच्च गायक थे। तानसेन आदि उनके शिष्य थे। अतएव व्यास जी को ध्रुपद शैली मान्य होना प्रतीत होता है।

उनके पदों में मृदग की 'परनों' के टुकडों का प्रयोग हुआ है, जिससे वादन कला में उनकी प्रवीणता के साथ-साथ ध्रुपद शैली से प्रियता भी सिद्ध होती है। स्वर सकेतों के साथ 'परन' का एक टुकडा निम्नलिखित पद में सुनिये—

अपनैं बृंदावन रास रच्यौ, नाँचत प्यारे पिय सग ।
सब्द उघटत स्याम नटवर, मनौं कल मुख चंग ।।
बिबिध बरन संगीत अभिनय, निपुन नखसिख अंग ।
सारे ग म प ध नी सप्तमस्वर गान तान तरग ।।
सिद्ध रागनी राग सारग, सहित सरस सुघग ।
धननन तंतनन तक तक थुग रुनित मृदंग ।।
तरल तिलक ललाट कुंचित, चपल चिकुर सुभंग ।×
थकित सुक - पिक - हंस - केकी, कोक - भृंग - कुरग ।
'व्यास' स्वामिनि नित्य बिहरत, प्रनय कोटि अनंग ।। (६४४)

व्यास-वाणी के विभिन्न पदों में प्रसग वश वाद्य यत्रों के नामों के प्रयोग मिलते हैं, जिनमें वीणा, रवाव, मृदंग, सहदाना, दुंदभी, वेणु, डफ, मुहचग, ढोल, भेरि, शहनाई, मुरली, उपग, रुंज, दमामा, आवज और करताल हैं। व्यास-वाणी मे अधिकाश पदों पर शीर्षक रूप मे राग-रागनियों के नाम पाये जाते हैं। निश्चय पूर्वक तो नहीं कहा जा सकता कि ये शीर्षक कब और किसके द्वारा दिये गये, परंतु व्यास जी के सगीतज्ञ होने के कारण यह अनुमान करना असगत न होगा कि उन पदों के राग सकेत वहुधा वे हैं, जिनमें व्यास जी उन पदों को विशेष रूप से गाया करते थे और कदाचित उन्हीं ने ही इस प्रकार के संकेत स्वय दे रक्खे हो ।

अष्टम अध्याय

काव्य



१०. रचना विस्तार—

(१) *हिंदी*—बुंदेलखंड के नरेशों के लगभग सभी पुस्तकालयों में व्यास जी के ग्रंथ उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त वृंदावन, अयोध्या, मिर्जापुर, प्रयाग, चित्रकूट, ललितपुर, अटेर (ग्वालियर) और सागर आदि स्थानों से भी व्यास जी के हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं। 'दयाल जी का पद' तथा 'ख्याल टिप्पा' नामक भजन संग्रहों में, जिनमें क्रमश २२ और ५६ भक्तों के भजन संगृहीत हैं, व्यास जी के पद पाये जाने का उल्लेख खोज रिपोर्टों‡ में है। अनेकों प्रकाशित एवं हस्तलिखित कीर्तन-संग्रहों और वर्षोत्सवों में लेखक ने व्यास जी के पद प्रचुर मात्रा में पाये हैं।

इससे पता चलता है कि उनका काव्य कितनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर चुका था। संवत् १९९१ तथा १९९४ में वृंदावन से श्री व्यास-वाणी के दो प्रकाशन भी हो चुके हैं। इससे पूर्व लाला केदारनाथ वैश्य लखनऊ द्वारा श्री भगवतरसिक की वाणी के साथ व्यास जी की साखी संवत् १९७१ में ही प्रकाशित हो चुकी थी। विविध नामों से प्राप्त व्यास जी के जो ग्रंथ पाये जाते हैं, वे निम्नलिखित रूपों में से एक न एक के अंतर्गत आ जाते हैं—

१. राग-माला
२. व्यास जी की वाणी
३. व्यास जी के सिद्धांत के पद
४. व्यास जी के रस के पद
५. व्यास जी के साधारण पद अथवा व्यास जी के स्फुट पद
६. रास पंचाध्यायी
७. व्यास जी की साखी अथवा व्यास जी की चौरासी

‡ "This poet (Vyas ji) is very popular in Bundelkhand, his native place, where his songs are usually sung along with those of Surdas"

—Report on the search of Hindi Manuscripts 1909—11 page 9

'राग-माला' हिंदी भाषा' मे भारतीय संगीतशास्त्र पर सरस्वती मत के अनुसार लिखा गया दोहा छंदों मे एक शास्त्रीय ग्रंथ है। इसकी पुष्पिका मे दिया हुआ इस ग्रंथ का नाम 'राग-माला' व्यास जी द्वारा निर्धारित प्रतीत होता है, किंतु ऊपर दिये गये अन्य सभी ग्रंथों के नाम उनके ही द्वारा निर्धारित किये हुए प्रतीत नहीं होते। सभव है कुछ पद रचनाओं के शीर्षक उन्होंने दिये हों और इस प्रकार १२१ त्रिपदी छद मे लिखी गई तद्विषयक रचना का 'रास-पचाध्यायी' नामकरण व्यास जी ने ही किया हो।

राग-माला में ६०४ दोहा हैं। इनके अतिरिक्त व्यास जी के नाम से १४८ दोहे अभी तक उपलब्ध हुए हैं। इन दोहों के संग्रह को 'साखी' नाम दिया गया है, जो नाम उनके शिक्षाप्रद होने के कारण उपयुक्त है। उस समय तक कबीर आदि संतों के दोहे भी साखी के नाम से प्रचलित हो चुके थे। दोहों के दो लिखित सकलन जिनमें उक्त साखी के ही क्रमश: ८६ और ८७ दोहे हैं, 'व्यास जू की चौरासी' के नाम से लेखक को मिले हैं। श्री हिताचार्य जी के प्रसिद्ध चतुरासी जी ग्रंथ के आधार पर यह नामकरण बाद में किया गया प्रतीत होता है।

राग-माला को छोड़कर शेष उपलब्ध रचनाओं के देखने से पता चलता है कि वे किसी योजना के अनुसार नहीं लिखी गई हैं, वरन् उनके हृदयोद्गारों का एक संकलन है। इस कारण शेष समस्त रचना 'व्यास-वाणी' के अंतर्गत आ जाती है। प्राचीन हस्तलिखित सग्रह और अर्वाचीन प्रकाशन भी इसी नाम से उपलब्ध हैं। महात्माओं की रचनावली को 'वाणी' नाम से संबोधित करने की प्रथा भी उस समय चल पडी थी, परतु ग्रथ का यह नाम भी व्यास जी के शिष्यों का रक्खा हुआ प्रतीत होता है।

इस प्रकार व्यास जी के दो ग्रथ माने जाते हैं—

१. राग-माला (जिसमे ६०४ दोहे हैं।)

२. व्यास-वाणी (जिसमें विविध प्रतियों के आधार पर ७५८ पद और १४८ दोहा उपलब्ध हैं।)

राग-माला के अतिरिक्त उपर्युक्त अन्य सब हिंदी रचनाएँ व्यास-वाणी के ही अंतर्गत हैं। व्यास-वाणी (राधावल्लभीय) के वक्तव्य मे लिखा है कि व्यास जी की पद-रचना की संख्या १००० सुनी जाती है। व्यास-वाणी (श्री राधाकिशोर गोस्वामी) के अंत में किसी कवि का एक

दोहा दिया गया है, जिसके अनुसार (वाम गति से अंक गिनने पर) उनके पदों की सख्या ६१४ मानी जा सकती है। वह दोहा इस प्रकार है—

श्री व्यास गिरा निधि रत्न पद, कच्छप की उनिहार।
माला नित वल्लभ रची, रसिकन उर आधार॥

(२) *संस्कृत*—इनके अतिरिक्त व्यास जी के एक सस्कृत ग्रथ 'नवरत्न' की भी सूचना आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी द्वारा प्रकाशित व्यास-वाणी के वक्तव्य मे दी गई है। इसी प्रकार एक और ग्रंथ 'स्वधर्म-पद्धति' भी श्री व्यास जी की संस्कृत रचना कही जाती है*।

श्री विनयतोष भट्टाचार्य जी ने व्यास जी द्वारा श्री निंबार्क की दशश्लोकी का भाष्य करना लिखा है‡। किंतु यह सूचना हरिराम व्यास और हरिव्यास देव में उन्हे भ्रम हो जाने के कारण प्रकट की गई प्रतीत होती है।

(३) *अप्रकाशित अतिरिक्त पद*—'राग-माला' जो संगीत शास्त्र पर लिखा गया दोहा छंदों मे व्यास जी का ग्रंथ है, अब तक अप्रकाशित है। व्यास जी की भक्ति, उपदेश, विहार, साखी, साधना आदि विषयों पर लिखी गई रचनाएँ 'व्यास-वाणी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस नाम से प्राचीन हस्तलिखित ग्रथ प्राप्य हैं और दो प्रकाशित भी हो चुके है। किंतु ऐसा कहा जाता है कि व्यास जी की रचनाएँ और अधिक हैं। इस कथन का समर्थन उन हस्तलिखित प्रतियों ने किया है, जिनमे लेखक को व्यास जी का एक न एक अप्रकाशित अतिरिक्त पद अथवा दोहा उपलब्ध हो सका है।

२. कविता काल—

श्री वियोगीहरि ने व्यास जी का रचना-काल सवत १६१८ से सवत् १६५५ तक माना जाना स्वीकार किया है†। किंतु व्यास जी की वृंदावन के प्रति उत्कंठा सूचक पद उनके अतिमवार वृंदावन-गमन (संवत

* संस्कृत के उक्त दोनों ग्रंथों के दर्शन प्रयास करने पर भी लेखक न पा सका, किंतु सस्कृत 'नवरत्न' से उद्धरण लेखक ने गया श्री कृष्णदास जी (गोवर्द्धन वालों) के पास देखे हैं। श्री पुलिनबिहारी दत्त ने अपनी बंगला पुस्तक 'वृंदावन-कथा' के पृष्ठ १४२ पर व्यास जी के स्वधर्म पद्धति नामक ग्रंथ को अधिक प्रचलित होना बताया है।

‡ Preface to Sakti Sangam Tantra

† ब्रजमाधुरी सार

१६१२) के पूर्व की रचनाएँ स्पष्ट रूप से प्रकट हैं। 'देहात-काल-निर्णय' के प्रसंग में यह बताया गया है कि उनके संवत् १६६३ के पश्चात् के रचे हुए पद भी प्राप्त हैं। इस कारण हमें संवत् १६१८ और संवत् १६५५ की मानी गई उक्त दोनों सीमाओं को छोड़ना पड़ेगा।

व्यास जी पहिले शास्त्रार्थी पंडित थे। पंडितों की तत्कालीन विचार धारा के अनुसार यही प्रतीत होता है कि उस समय उन्होंने हिंदी में कोई काव्य रचना न की होगी। हो सकता है कि संगीत शास्त्र पर हिंदी में 'राग-माला' उनकी उस समय की ही रचना हो, क्यों कि उसका उद्देश्य संगीत प्रेमियों को राग-रागनियों का शास्त्रीय परिचय देना था और उनके लिए उस समय में संस्कृत ग्रंथ से कोई लाभ न था। साथ ही इस प्रकार का शास्त्रीय ग्रंथ उनमें भक्ति भाव का प्रभाव बढ़ जाने के उपरांत नहीं रचा गया होगा।

शास्त्रार्थ करने के निमित्त काशी-यात्रा में व्यास जी का भक्ति की ओर झुकाव हो जाना कहा जाता है। संवत् १५६१ में उनका वृंदावन पहुँचना और तीर्थाटन करना प्रतीत होता है। इन सूचनाओं की संगति मिलाते हुए यह अनुमान होता है कि काशी से ओरछा वापिस आकर काशी में प्रचलित कबीर, रैदास, पीपा, नामदेव आदि की कथाओं को सुनकर वे उन साधुओं की स्तुति के पद संवत् १५६० के लगभग रचने लगे थे। अत व्यास जी का कविता-काल संवत् १५६० से संवत् १६६६ तक माना जा सकता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि जीवन के अंतिम भाग में हरित्रयी के अन्य दोनों सदस्यों के निधन हो जाने के पश्चात् उन्होंने कोई उत्सव संबंधी कविता संभवतया नहीं लिखी।

३. काव्य का स्वरूप—

(१) *सामान्य परिचय*—व्यास जी भक्त पहिले हैं और कवि बाद में। कला के प्रदर्शन की दृष्टि से उन्होंने कविता नहीं की, उनका काव्य अनुभूतिप्रधान है। यद्यपि यह शास्त्रीय कौशल के उदाहरणों से भरा हुआ है, तथापि वे सब बिना प्रयास के ही स्वाभाविक रूप में उनके हृदय से निकले हुए उद्‌गार मात्र हैं। प्रकृति और मानव हृदय के साथ अपनी सहानुभूति द्वारा जिस मधुर संगीत को उन्होंने प्रस्तुत किया, उसमें रस और अलंकार स्वाभाविक रूप से शोभा पा रहे हैं।

माधुर्य-उपासना तथा उत्कट रति भाव के कारण भक्ति में शृंगार का समावेश तो पूर्ण रूप से रहा, फिर भी उनका प्रकृति वर्णन शृंगार

रस के उद्दीपन रूप में ही न होकर ब्रज के वन-उपवन, नदी, रज आदि के प्रति धार्मिक प्रेम भाव उत्पन्न करता हुआ उसके प्रति सहानुभूति और तन्मयता का सृजन करता है। लोक के प्रति परलोक को भी आकर्पित करने वाली उनकी वाणी हृदय, मन और आत्मा सभी को आनंदित करती है।

कृष्णभक्ति-काव्य का मेरुदंड ही शृंगार रस है। शास्त्रीय विवेचन के दृष्टिकोण से उनके काव्य में राधिका और कृष्ण के जो वर्णन है, उनमे राधिका स्वकीया नायिका और कृष्ण अनुकूल नायक के रूप मे विहार करते हैं। मिलन, मान, दूती, मानमोचन, पुनर्मिलन आदि के शब्द-चित्र व्यास-वाणी मे इसी भाव के पोपक हैं।

कोमल-कात-पदावली के सरस प्रवाह के साथ रस पेशल मधुर भावो की कल्पना के सहित राधाकृष्ण की ललित लीलाओं का वर्णन जिस ढग से व्यास जी ने किया है, वह उनकी अपनी विशेपता है। वर्णन की सजीवता पग-पग पर दिखाई देती है और कवि उसी घटना स्थल पर सदैव ही उपस्थित मिलता है। उनके काव्य में भक्ति और साधना के सीधे-साधे मनोहर भावों के पदो द्वारा सहज मे ही बड़ी-बड़ी आध्यात्मिक गुत्थियाँ खोल दी गई हैं। जीव की प्रतीक गोपिकाओं का ब्रह्मस्वरूप श्री कृष्ण के प्रति जिस प्रगाढ़ प्रेम का परिचय दिया गया है, वह शुष्क दार्शनिक तत्वों की सरसता के माध्यम से व्यक्त करने मे सफल हुआ है। राधाकृष्ण के प्रेम की निर्मलता के जैसे सुदर चित्र यहाँ देखने को मिलेंगे, वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं। वृंदावन के प्रति अनुराग, साधुओं के विरह तथा सतों और भक्तो की महिमा-कथन जैसे विपयों पर तो व्यास जी की वाणी को विशेप अधिकार मिला हुआ प्रतीत होता है। उपमाओं की विशेपताएँ और उत्प्रेक्षाओं की उड़ाने इनके सरस मधुर और अछूते भावों का चक्कर काटती दिखाई देती है। उनके शब्द-चित्रों मे सौन्दर्य छलक रहा है। पदों का लालित्य अलौकिक माधुर्य का सचार करता है। प्रयुक्त शब्दों के नाद सौंदर्य की छटा ऐसी आकर्पक है कि वह उनके अर्थ और ध्वनि प्रकट करने में सदैव सहायक होकर श्रोताओं को भावों के निकट लाने में पूरा सहयोग प्रदान करती रहती है। कवि के रूप मे उन्होंने चित्रण-कला और संगीत का उद्घाटन कर उसी लक्ष्य को सिद्ध किया, जिसे भक्ति मार्ग में प्रेम, श्रद्धा और लोक-सेवा की भावना से प्राप्त किया जाता है।

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, उनकी अभी तक उपलब्ध समस्त रचनाएँ दो ग्रंथों के रूप में हमारे सामने हैं। उनमें से एक 'राग-माला' तो संगीत शास्त्र का ग्रंथ है। भाषा और शैली की दृष्टि से यह उनकी प्रारंभिक काल की रचना प्रतीत होती है। इसमें नाद का शास्त्रीय विवेचन है। हृदय की अनुभूति को प्रकट करने वाला व्यास जी का काव्य 'व्यास-वाणी' के नाम से प्रसिद्ध है।

वृंदावन की माधुरी, श्रद्धेय विषयों की स्तुति, उपदेश, संत और भक्तों की प्रशंसा, खलों और पाखंडियों की दशा का निरूपण एवं अन्य लोक कल्याणकारी विषयों पर रचे गये व्यास जी के पद वाणी के सिद्धांत नामक प्रकरण में संकलित हैं। इनकी 'साखी के दोहा' भी विषय की अनुरूपता के कारण इसी प्रकरण के अंग माने जा सकते हैं, किंतु शैली की भिन्नता के कारण वे अपना स्वतंत्र स्थान रखते हैं। व्यास-वाणी का यह भाग काव्य के विभिन्न रसों और अलंकारों से ओतप्रोत है। उपदेशों की साधारण बातें जिस ढंग से कही गई हैं, वह व्यास जी की अपनी विशेषता है। देश और समाज की तत्कालीन स्थिति पर दृष्टि डालने के लिए उनकी साखी और सिद्धांत के पद झरोखे का काम करते हैं। स्वभावोक्तियों और सहज वर्णन की शैली ने व्यास जी के पदों में ऐसे-ऐसे ऐतिहासिक तथ्य और सामाजिक रीतियों की सूचनाओं को सदा के लिए सुरक्षित कर रक्खा है, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। कला पक्ष के अतिरिक्त वाणी की यह विशेषता इसे और भी अधिक उपादेय बना देती है। उनकी उपासना के सिद्धांत भी इन पदों और दोहों में कहे गये हैं।

शृंगार रस भाग में राधाकृष्ण के विविध विहार, उनके अंगों की छवि, त्यौहारों, गृहस्थ जीवन के सामाजिक उत्सवों आदि का बड़ा ही सुंदर और सरस वर्णन है। इसमें विहार, विभिन्न उत्सव और समय विशेष पर कीर्तन करने के पद, व्रज लीलाओं के स्फुट वर्णन तथा रास-पंचाध्यायी, ये चार प्रकरण सम्मिलित हैं। श्री राधाकृष्ण के दाम्पत्य प्रेम संबंधी सभी अवसरों का वर्णन व्यास जी ने बड़ी तन्मयता और मधुर भक्ति निष्ठा से किया है। कृष्णभक्ति-काव्य के प्रणेता प्राय सभी भक्त कवियों ने इन विषयों पर लिखा है, किंतु कवि की व्यक्तिगत उपासना और साम्प्रदायिक विभिन्नताओं के कारण विषय निरूपण में जो अंतर रहता है, उसके अतिरिक्त उनकी काव्य-प्रतिभा भी रस की परिपक्वता के के लिए दायित्व रखती है।

कृष्ण के राधा के प्रति प्रेम के जो अलौकिक सौन्दर्य चित्र व्यास जी के काव्य मे हमे देखने को मिलते हैं, उनकी सबसे बड़ी विशिष्टता है मानवीय संयोग शृंगार के निर्मल प्रेम की उदात्त भावना और आध्यात्मिकता का एक साथ मनोहर मिश्रण। इनके उद्दाम शृंगार प्रवाह के अतस्तल में रहस्यमयी माधुर्य भावना की निगूढ़ धारा बहती रहती है। इनका काव्य मुक्तक शैली पर है। वाणी में संग्रहीत इनकी रास पंचाध्यायी की कथा अवश्य श्रीमद्‌भागवत् के दशमस्कंध के अध्याय २६ से ३३ तक के आधार पर वर्णित है।

(२) *शैली*—व्यास जी वर्ण्य-विषय के साथ तादात्म्य भाव प्राप्त कर लेते थे। उन्होंने 'गीत गोविंद' के रचयिता जयदेव को राधाकृष्ण के शृंगार वर्णन की परंपरा को स्थापित करने में आचार्य मानकर उनकी रचना-शैली और भाव-योजनाओं को अंगीकार किया। राधा कृष्ण का शृंगार वर्णन करने वाले वे कवि जिन्होंने भक्ति भावना से प्रेरित होकर शृंगार का वर्णन न कर काव्य कला को प्रदर्शित करने का ही उसे विषय बनाया, व्यास जी के हृदय मे स्थान न पा सके। इसके विपरीत उन वैष्णव कवियों का उन्होंने सम्मान पूर्वक स्मरण किया है, जो भक्ति को प्रधानता देकर काव्य का सृजन करते थे, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के अनुयायी रहे हों।

(३) *भाषा*—व्यास जी ने अपने काव्य में व्रजभाषा को अपनाया, किंतु उनकी भाषा मिश्रित व्रजभाषा है। इसमें संस्कृत के तत्सम और तद्‌भव शब्दों का बाहुल्य है। कवि का ४५ वर्ष तक बुंदेलखंड में निवास होने के कारण उसकी भाषा मे बुंदेलखंडी शब्दों की प्रधानता रहना भी स्वाभाविक है।

भाषा को रस के अनुकूल बनाने के लिए उन्होंने ध्वन्यात्मक शब्दों का भी बहुत स्थलों पर प्रयोग किया है। लोकोक्तियो और मुहावरों से प्रौढ़ता और महाकवि जयदेव जैसी कोमल-कांत-पदावली और प्रवाह पूर्ण वाक्य-विन्यास से सरसता प्राप्त कर उनकी काव्य-भाषा लोक रुचि के अनुकूल बन गई थी। उसमें फारसी आदि विदेशी भाषा के प्रचलित शब्द भी अपनाये गये, किंतु उनका प्रयोग बहुत ही कम हुआ है। इसी प्रकार अपवाद स्वरूप आजकल की खड़ी बोली की क्रियाओं के प्रयोग भी पाये जाते हैं, जैसे—

(अ) खड़ी बोली की क्रियाएँ—

सपने हरि सों मन न 'लगाया' ।
जार भरतार कियौ दुख 'पाया' ।
'व्यास' सुहागिल स्याम रिझाया ॥ (व्या० ८४)

(इ) संस्कृत के तत्सम शब्द—

जयति नव नागरी, कृष्ण-सुख-सागरी, सकल गुन-आगरी, दिनन भोरी ।
जयति हरि-भामिनी, कृष्ण-घन-दामिनी, मत्त गज गामिनी, नव किसोरी ॥ ×
जयति गोपाल मन मधुप नव मालती, जयति गोविंद मुख कमल भृंगी
जयति नँदनंदन उर परम आनंद-निधि, लाल गिरिधरन प्रिय प्रेम रंगी ॥
जयति सौभाग्य-मनि कृष्ण-अनुराग-मनि, सकल तिय मुकुट-मनि सुजस लीजै ।
दीजियै दान यह 'व्यास' निज दास कों. कृष्ण सों बहुरि नहिं मान कीजै ॥

(ड) संस्कृत के तद्भव शब्द—

१. भक्त न भयौ भक्त कौ 'पूत' ।
भक्त होइ 'साकत' कें, ज्यों श्रीनदेव सुदामा सून ॥ × (व्या २८४)
२. मेरैं भक्त हैं 'देई-देऊ' । (व्या वा. २२)

(ऊ) बुंदेलखंडी के शब्द और मुहावरे—

१. दावानलहिं न ओस बुझावत. कुहुर न हरत डुकासहि[१] ।
२. संतन के अपराध छमत, आपुन करतव्यहिं रानत[२] ॥
३. यह सुनि सकुचि गये बन मोहन, गिरधर 'मौरी'[३] आनी ।
४. और सकल साधन नीरस या रस बिन 'सब गुर माटी'[४] ॥
५. अलकनि ओट पलक नहिं नैननि 'हिरनी सी बिडरी'[५] ।
६. बातनि 'खैंचत खाल बार की'[६], 'लीपत भुस पर भीति'[७] ।
७. इहिं रस नवधा भक्ति 'उबीठी'[८], रस भागौत कथा की ॥

---

[१] डुकास = अधिक मात्रा मे जल पीने की प्यास ।
[२] रानत = अंगीकार कर लेते हैं ।
[३] मौरी = लम्बी जलाऊ लकड़ियों का बोझ, जिसमें विशेष कर हाथ से तोड़ी हुई अथवा जंगल से बीनी गई लकड़ी बाँध ली जाती है ।
[४] सब गुर माटी = व्यर्थ ।
[५] हिरनी सी बिडरी = हरिणी के समान भयभीत होकर भाग गई ।
[६] बार की खाल खैंचबौ = बड़ी बारीकी से व्यर्थ का तर्क-वितर्क करना ।
[७] भुस पर भीत लीपबौ = निराधार बात करना ।
[८] उबीठी = आकर्षक न रही अरुचित हो गई ।

(ए) लोकोक्ति—

दोष रहित गुन रहित, 'व्यास' अंधे की दई चरावै† ।

(ऐ) ध्वन्यात्मक शब्द-योजना—

१. *किंकिन ककन नूपुर धुनि सुनि, नदित मृदंग सुधंग सुताल ।*
२. *धन्नन तन्नन नक तक थुंग रुनित मृदंग ॥*

(ओ) विदेशी शब्द—

१. *परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि 'बकसति'§ मौज घनी ।*
२. *ढोल भेरि सहनाई धुनि सुनि, खबर* महावन आई ॥*

(४) *वाणी की सरसता*—कृष्णभक्ति-काव्य में राधाकृष्ण के प्रेम और शृंगार का वर्णन बडे विशद रूप मे हुआ है। भक्त की व्यक्तिगत उपासना और भावना के अनुसार राधाकृष्ण को विभिन्न दृष्टि विंदुओं से चित्रित किया गया है। अलग-अलग आध्यात्मिक मतों को साधना पक्ष में प्रकट करने के लिए राधा और कृष्ण एवं भक्त और भगवान में अनेक प्रकार के सबंधों की कल्पना की गई है। इस प्रकार विशिष्ट उपासना पद्धति को अपनाने वाले भक्त-कवि की रचना तदनुकूल रस को व्यक्त करने मे अग्रसर हुई है।

व्यास जी ने राधा और कृष्ण के किशोर अवस्था मे दर्शन किये तथा माधुर्य भक्ति को अपनाया। माधुर्य भक्ति में उनकी राधा कृष्ण की विहार उपासना थी, अतएव विप्रलंभ शृंगार को उनकी वाणी में स्थान न मिला। कुंज-केलि किंवा संयोग शृंगार उन्हें प्रिय था। विरह भक्ति को नि स्वाद मानते हुए वे स्वय लिखते हैं—

कुंज केलि मीठी, है विरह भक्ति सीठी ज्यों आग ॥

(५) *राधा और कृष्ण के संयोग*—शृंगार के वर्णन मे व्यास जी ने अपनी लेखनी पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया, परंतु उस रस के उपयुक्त मनोविकारों का चित्रण करने में जिस सजीवता को उन्होंने उत्पन्न किया, उसे वे अपनी उपासना के बल पर ही कर सके हैं। प्रेम की

---

† अंधे की दई चरावै=जिसका कोई सहायक नहीं होता, उसकी रक्षा भगवान करते ही हैं।

§ बकसति=(फारसी बख्शीदन्) प्रदान करना।

* खबर=(अरबी खबर), समाचार।

उदात्त भावना का संयोग शृंगार में ऐसा सुंदर वर्णन व्यास जी के अधिकार की ही वस्तु है। सांसारिक कलुषित काम-वासना को नष्ट करने के लिए वृंदावन-विहारी और रासेश्वरी के अखंड प्रेम दर्शन को ही उन्होंने एकमात्र साधन माना था। इस भावना का यह फल हुआ कि उनके शृंगार वर्णन में किसी न किसी रूप से अधिकतर मिलन का संकेत हो ही जाता है।

नर-गुणगान करने वाले प्राकृत कवियों के युग में होते हुए भी वे उनसे प्रभावित न होकर अपने एक ही सिद्धांत पर दृढ़ रहे। यह बात उन जैसे भक्त कवियों के आत्मबल की परिचायिका है। काव्य के विषय में तादात्म्य की अनुभूति उनकी महत्वपूर्ण विशेषता है। पशु-पक्षी, लता-वृक्ष, जड-चेतन सभी के साथ उन्हें समवेदना थी, जो हृदय से प्रस्फुटित होकर रस रूप में प्रवाहित हुई।

तुलसीदास के समान उन्होंने खलों और पाखंडियों पर भी दृष्टि रक्खी। लोक-कल्याण की भावना से उन्होंने साखी और सिद्धांत के पदों में अपने अमूल्य उपदेशों को कहा। उनकी शिक्षा व्यापक दृष्टिकोण लेकर सामने आई। कबीर के समान वे स्वतंत्र रूप से प्रत्येक विषय पर अपना विचार रखते थे और आडंबरों से घृणा करते थे। जहाँ उन्होंने व्यभिचार और अनुदारता को पाया, उसकी निर्भयता से प्रताडना की। उनके काव्य से, उनका प्रकृति के प्रति प्रेम, मनोभावों का अध्ययन तथा व्यवहारों और रीतियों का ज्ञान आदि प्रकट होता है।

भक्ति-काल के पश्चात् आने वाले रीति-कालीन कवियों ने नायिका-भेद के द्वारा शृंगार का जो स्वरूप उपस्थित किया, उसमें प्रधानतया नायिका की चेष्टाएँ चित्रित की गईं। नायिका की क्रिया, वचन अथवा मनोभावों के इस प्रकार के चित्रण उन्होंने उन पुरुषों की वासना-तृप्ति के लिए प्रस्तुत किये, जिनके आश्रय में रहकर उन्हें जीविका का उपार्जन करना था। उस युग में 'कवि' कहलाने के लिए भी 'रीति' वर्णन करने की एक रीति ही बन गई थी। परंतु भक्तों का शृंगार वर्णन उनकी साधना की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के अनुसार था। इसलिए शास्त्रीय रीति पर ध्यान देने की उन्हें कोई आवश्यकता ही न थी। अतएव आज उनकी वाणी का काव्य-रीत्यनुसार परीक्षण कम से कम उनके उद्देश्य के अनुकूल

नहीं है। किंतु इसमे काव्य के स्वाभाविक गुण किस प्रकार व्यक्त हैं, इसे जानने के लिए काव्यानुरागियों की उत्सुकता हो सकती है।

व्यास जी ने रसों और अलकारों आदि की शास्त्रीय पद्धति को ध्यान मे न रखकर अपने राग अलापे। भक्ति-भावना से प्रेरित होकर उनके द्वारा जिस काव्य का सृजन हुआ, उसमें शृंगार और शात रस की प्रधानता है। शात रस वीर का विरोधी है और शृंगार भी वीर रस का एक आलवन में विरोध सा रखता है,तथापि वीर रस के रूपकों का भी उक्त रसों के अंतर्गत कथन किया गया है।

युगलकिशोर की माधुर्य उपासना के इस क्षेत्र में श्री राधा वृंदावन की रानी हैं और श्री कृष्ण उनके आधीन रहने वाले आज्ञानुकारी पति। उनका कभी वियोग नहीं होता और जो मानादिक कारणों से क्षणिक अंतर दृष्टि-गोचर होता है, वह भावी मिलन में प्रगाढ़ता उत्पन्न करने के हेतु को ही सिद्ध करता है। ऐसी भावना को व्यक्त करने वाले काव्य मे शृंगार रसांतर्गत विप्रलभ शृंगार का अभाव तो होगा ही, सभोग शृंगार के भी सब हाव और नायिका-भेद की सभी अवस्थाओं के वर्णन करने का अवसर नहीं आ पाता। फलत उनकी वाणी में स्वाधीनपतिका नायिका के चित्रण की विशेषता है। कहीं-कहीं अवस्था भेद से खडिता आदि का रूप भी दिखलाई दे जाता है, जो श्री कृष्ण की व्रज लीलाओं के विविध वर्णनों का प्रचलित विषय रहा है। सखीभाव की उपासना द्वारा उपास्य देवों के अधिक निकट पहुँचने के लिए मानवती नायिका के रूप मे भी राधा का वर्णन बहुत हुआ है। श्री कृष्ण अनुकूल पति के रूप मे प्रकट होते हैं और वाणी में नायिका के संयोग शृंगार की व्यंजना विशेष रूप मे पाई जाती है।

तत्वज्ञान और वैराग्य के फलस्वरूप वर्णन किये गये सिद्धात के पद तथा साखी के दोहा शात रस के उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। साधुओं के विरह में करुण रस का तथा पाखडियों की दशा के चित्रणों में हास्य का भी समुचित आभास मिल जाता है। इन रसों के अतिरिक्त अन्य रसों का वर्णन वाणी में न होने के ही बराबर है। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, व्यास जी ने काव्यशास्त्र के शृंगार रसांतर्गत नायिका-भेद को ध्यान मे रखकर काव्य का सृजन नहीं किया था, फिर भी इसमें तदनुसार तत्व प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं। अब विभिन्न रसों के कुछ उदाहरण लीजिये—

शृंगार रस

स्वकीया नायिका—

राधिका मोहन की प्यारी ।
नखसिख रूप अनूप गुन सीमा, नागरी श्री बृषभान-दुलारी ॥
बृंदाविपिन निकुंज भवन, तन कोटि चंद उजियारी ।
नव-नव प्रीति प्रतीति रीति रस बस किये कुंजबिहारी ॥
सुभग सुहाग प्रेम रंग राची, अँग - अँग स्याम सिंगारी ।
'व्यास' स्वामिनी के पदनख पर, बलि-बलि जात रसिक नर-नारी ॥(३७१)

अनुकूल नायक—

तब मेरे नैंन सिरात किसोरी ! जब तेरे नैंन निहारौं ।
कोटि काम-रति, कोटि चंद बदनारविंद पर वारौं ॥×
तू भूषन धन जीवन मेरैं, यह ब्रत मन प्रतिपारौं ।
'व्यास' स्वामिनी के तन-मन पर, राई-लौन उतारौं ॥ (व्या. ४२१)

नायक को पर-स्त्री-संसर्ग के चिह्नों से चिह्नित देख कर ईर्ष्या कलुषित भाव प्रकट करने वाली नायिका को अवस्थानुसार भेद में 'खंडिता' कहा गया है। इन भावों के अनुकूल कथन वाणी में प्राप्त हैं। ब्रज लीला के अंतर्गत खंडिता भाव से राधा अथवा अन्य गोपी सपरिहास कोप प्रकट करने की दशा में प्रकट होती हैं। यथा—

आजु पिय काके हाथ बिकाने ।
ताही कौ भाग सुहाग छबीलौ, जाके उर लपटाने ॥
सुरत रंग की अंगनि उपमा, दुरति न बनति बखाने ।
उर नख, रेख अंग सोहत, मानों ससि गन गगन समाने ॥
पीक लीक नैंननि फिरि आई, सोभित पल अलसाने ।
मानों अरुन पाट के फंदनि, द्वै खंजनि अरुझाने ॥× (४१२)

नायक को दोषी जान कर जब नायिका उससे रूठ जाती है, उस दशा में स्वभावानुसार नायिकाभेद में उसे 'मानवती' संज्ञा दी गई है। नायक द्वारा नायिका को मनाने के अतिरिक्त 'दूती' एवं 'सखी' भी इस कार्य में सहायक होती हैं। वाणी में 'मान' और 'दूती' अथवा 'सखी' संबंधी सुंदर पद प्रचुर परिमाण में हैं। वर्षा ऋतु के आगमन पर कृष्ण मानिनी राधिका को किस प्रकार मनाते हैं, यह व्यास जी से सुनिये। गुरु मान का उदाहरण इस पद में प्राप्त है—

मान न कीजै माननि, वर्षा ऋतु आई ।
अंग संग मिलि गाउ राधिका, राग मलार सुहाई ॥
बिनु अपराधहिं रूसनौं छाँड़ि दै, श्री वृषभान दुहाई ।
'व्यास' स्वामिनी साँवरे सुंदर पाँइनि लागि मनाई ॥(व्या० ६७४)

लघु मान को व्यक्त करने वाले इस पद मे रूठे को मनाने का नया ढग भी देखिये—

मुख छवि अद्भुत होत रिसानें ।
नैंननि की सैंननि महँ सुंदरि, तेरे हाथ बिकानें ॥×
तोरत अग रग भरि पुलकित, रिसि न तजत अकुलानें ॥
अपनौं काज बिगारति नाहिंन, आतुर कुसल सयानें ।
'व्यास' उसास लेत दोऊ जन, रवकि कंठ लपटानें ॥ (व्या ४८५)

राधिका ने कृष्ण की बात रख ली । वे भी कहने लगीं--

सुनहु पिय ! जिय तें हौं न रिसानी ।
तुम्हरे मन कौ मरमु लेत ही, अरु चित काज निसानी ॥×
लेत उसास आस करि, हरि-हरि कहि सहचरि मुसिकानी ।
समुझि विनोद 'व्यास' की स्वामिनि, स्याम कठ लपटानी ॥(व्या ५५४)

देखिये, सखी मानिनी राधिका पर अपना क्या प्रभाव जमा रही है । कैसी स्वाभाविक सीख है । शिक्षा सखी का एक अनमोल उदाहरण इस पद में मिलता है—

कोप करति कत बात कहे तें ।
रास रजनि में बिरस होत सखि, पिय तें रूसि रहे तें ॥
धरमु न रहतु नाइका कौ कछु, पति कों बिपति सहे तें ।
कीरत बिमल वाढि है जुग-जुग, प्रीति और निवहे तें ॥
वलि-वलि जाउँ रहे न कबू सुख, चंचल मन उमहे तें ।
यह सुनि पिय के हिय लपटानी, 'व्यासहि' चरन गहे तें ॥(व्या.५२८)

व्यास-वाणी में श्री अंगों के वर्णन भी बड़े कोमल हैं । भक्ति काल के इन वर्णनों ने रीतिकाल के नख-शिख का पथ प्रशस्त किया था । विविध अंगों के वर्णनों में से श्री राधिका जी के आनन का अलंकारिक भाषा में एक सुंदर पद यहाँ उपस्थित किया जाता है—

देखि सखी राधा-मुख चारु ।
मनहुँ छिडाइ लयौ इहि, सब उपमनि कौ रूप सिंगारु ॥

दारयौ, दामिनि, कुंद मंद भये, दसननि दै सतु सारु ।
बिद्रु म वर बंधूक बिंब मिलि, अधरनि दै रस भारु ॥
सुक, किंसुक, तिलकुसुम तज्यौ मृदु निरख नासिका ढारु ।
सुभग कपोलनि बोल दियौ तनु, मधुपनि अधिक उदारु ॥×
गौर स्याम सोभा सागर कौ, नाँहिन वारापारु ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि आयैं, सकल सरूप उगारु ॥ (३६६)

श्री कृष्ण द्वारा कराये गये राधिका के षोडश शृंगार देखिये—

आजु बनी बृपभानु दुलारी ।
अंग राग भूषन पट रुचि-रुचि, मोहन अपनैं हाथ सिंगारी ॥
चिकुरनि चपकली गुहि वैनी, डोरी रोरी माँग सँवारी ।
मृगज बिंदु जुत तिलकइंदुछबि,झलकति अलक मनहुँ अलिनारी ॥×
नखसिख कुसुम विसिख रस बरसत, रोमनि कोटि सोम उजियारी ।
'व्यास' स्वामिनी पर तृन तोरत, रसिक निहोरत जय जय प्यारी(३६८)

निम्नलिखित पदों में सयोग शृंगार के कुछ हावों के अनुकूल तत्व मिलते हैं—

लीला (प्रेमाधिक्य के कारण वेष, अलकार तथा प्रेमालाप द्वारा प्रियतम का अनुकरण करना)—

कुँवरि कुँवर कौ रूप भेष धरि, नागर पिय पहँ आई ।
प्यारिहिं हरि न मिले सकुची जिय उपजी तब इक बुद्धि उठाई ॥
हौं बृंदावन - चंद छबीलौ, राधा - पति सुखदाई ।
तू को 'प्रिया' प्रिया' कह टेरत, तजि बनभूमि पराई ॥×(४४८)

किलकिंचित (अति प्रिय वस्तु की प्राप्ति से हर्ष जन्य मद हास्य एव त्रासादि के विचित्र समिश्रण का भाव—

नैंननि नैंन मिलत मुसक्यानी ।
मुख सुखरासि निरखि उर उमगत,दुखि करि लाज लजानी ॥
तन सों तन, मन सों मन मिलयौ, ज्यों पिय पय में पानी ।
रसिकनि की गति 'व्यास' मंद पै कैसैं जात बखानी ॥ (३२८)

विभ्रम—(शीघ्रता में भूषणादि का स्थानातर पर धारण करना)—

अंजत एक नैंन बिसरयौ । कटि कंचुकी लहँगा उर धरयौ ।
हरि लपेट्यौ चरन सों ॥
स्रवनन पहिरे उल्टे तार । तिरनी पर चौकी सिंगार ।
चतुर चतुरता हरि लई ॥×

चकित (प्रिय के आगे अकारण डरना या बबराना)—

जब - जब कौंधति दामिनी ,
तब-तब भामिनी डराति प्रीतम-उर लागति ।
उन्मद मेघ-घटा धुनि सुनि निसि,
पियहिं जगावति, आपुनि जागति ॥ × (६८३)

मद (सौभाग्य और यौवन के गर्व से उत्पन्न मनोविकार)—

पिय कों नाँचन सिखावत प्यारी ।
वृंदावन में रास रच्यौ है, सरद-चंद उजियारी ॥
मान-गुमान लकुट लिएँ ठाढी, डरपत कुंजविहारी ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत, हँसि-हँसि दै कर-तारी ॥ (६६२)

विच्छित्ति (काति को बढ़ाने वाली अल्प वेश-रचना)—

पाटी सिलसिली सिर लसति ।
सहज सिंगार सुकेसी केसनि, स्वरनि जूथिका लसति ॥ × (३३५)

कुट्टमित (केश, स्तन और अधर आदि के ग्रहण करने मे आतरिक हर्ष होने पर भी बाहरी घबराहट के साथ सिर और हाथो का परिचालन करना)—

कुँवरि प्रवीन सु बीन वजावति ।
वंसीवट निकट निकुंजनि वैठी, सुख-पुंजनि वरपावति । ×
लेति उसाँस, देति कुच-दरसन, परसत सकुचि दुरावति ॥ (४४५)

शृंगार रस के उद्दीपन विभावों मे चंद्र, चाँदनी, कोकिलादि पक्षियों का गुंजार, मधुर गान, वाद्य, नदी-तट, कमनीय केलि-कुंज और ऋतुओं के वर्णन प्रस्तुत होते हैं। इनके बडे ही सुंदर उदाहरण व्यास-वाणी में भरे पड़े हैं। शरद् ऋतु की निर्मल चंद्रिका का उद्दीपन स्वरूप मे वर्णन करने वाला एक पद देखिये—

दोऊ मिलि देखत सरद-उज्यारी ।
बिछी चाँदनी मध्य पुलिन के, तास जरी फुलकारी ॥ (६२१)

श्री कृष्ण द्वारा रासोत्सव की योजना देखिये—

रास रच्यौ वन कुंजविहारी ।
सरद-मल्लिका देखि प्रफुल्लित, वनि आई पिय-प्यारी ॥
वाम स्याम कें स्यामा सोभित, जनु चाँदनी अँधियारी ।
भूषन गन तारिका तरल छवि, वदन-चंद उजियारी ॥
कोमल पुलिन कमल मंडल महं मंडित नवल दुलारी ।
बाजत ताल मृदंग संग, नव अंग सुघग सिंगारी ॥ (६३६)

व्यास जी को 'रास' से विशेप प्रेम था। उन्होंने रास संबंधी बहुत सुंदर पद लिखे हैं, जिन्हें पढते समय रासोत्सव की छटा सामने नॉचने लगती है। श्रीमद् भागवत के दशम स्कंध के अध्याय २६ से ३३ तक को रास पंचाध्यायी कहते हैं। उनमें वर्णित कथा के आधार पर व्यास जी ने त्रिपदी छद मे रास पंचाध्यायी† की वड़ी सरस रचना की है।

बसत, फाग और वर्षा ऋतु के भी ऐसे ही मनमोहक वर्णन है। वाणी में संगृहीत अनेक पदों मे से उदाहरण रूप में एक-एक पद यहॉ उद्धृत किया जाता है।

बसत ऋतु—

चलि चलहिं वृंदावन वसंत आयौ ।
भूलत फूलनि के भॅवरा, मारुत मकरद उडायौ ॥
मधुकर कोकिल कीर कोक मिलि, कोलाहल उपजायौ ।
नॉचत स्याम वजावत गावत, राधा राग जमायौ ॥
चोबा चंदन बूका वदन, लाल गुलाल उडायौ ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत, रोम-रोम सचु पायौ ॥ (६४६)

फाग खेलने का हुल्लड सुनकर गोपियॉ कब घर में रह सकती थीं। वे भी युगलकिशोर की उस फाग क्रीड़ा में संमिलित होने के लिए दौड़ कर आ गईं—

खेलत फाग फिरत दोऊ फूले ।
स्यामा स्याम काम बस नॉचत, गावत सुरत हिंडोरे भूले ॥×
कोलाहल सुनि गोपी धाईं, बिसरे गृह, पति तोक भरूले ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत, नैन कुरग रहे तकि भूले ॥ (६५८)

---

† रास पचाध्यायी के नाम से नददास, कृष्ण देव, दामोदर, गोपालराम, कृष्णराम चौबे, सुदरसिंह, जाडा कृष्णदास आदि कवियों ने रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। हिंदी साहित्य ससार में नददास की रास पचाध्यायी प्रसिद्ध है, जो उनकी अंतिम काल की रचनाओं में गिनी जाती है। व्यास जी की रास पचाध्यायी कदाचित् इस नाम की अन्य हिंदी रचनाओं में प्राचीनतम है।

श्री हित हरिवंश जी के शिष्य सेवक जी ने 'हित विलास' एव श्री 'हरिवश नाम प्रताप यश' तथा सवत् १९६४ वि० में राधावल्लभीय सप्रदाय के एक कवि चतुर्भुज दास ने 'भक्ति प्रताप' ग्रथ व्यास जी की रास पचाध्यायी की शैली पर रचे थे।

वर्षा ऋतु—

आज कछु कुंजनि में बरषा सी ।
बादल दल में देखि सखी री, चमकति है चपला सी ॥
नान्ही-नान्ही बूँदनि कछु धुरवा से, पवन बहै सुखरासी ।
मंद-मंद गरजनि सी सुनियतु, नाँचति मोर-सभा सी ॥
इंद्रधनुष बग-पंगति डोलति, बोलति कोक-कला सी ।
इंद्रवधू छबि छाइ रही, मनु गिरि पर अरुन घटा सी ॥
उमँगि महीरुह सी महि फूली, भूली मृग-माला सी ।
रटत 'व्यास' चातक ज्यों रसना, रस पीवत हू प्यासी ॥ (६८६)

व्यास जी की उपासना कृष्ण के बाल स्वरूप की न होने से उस रूप का चित्रण तो उन्होंने नहीं किया, किंतु अपने उपास्य श्री किशोर और किशोरी जी की जन्म बधाइयाँ अवश्य ही उन्होंने बड़े सरस पदों मे गाई हैं। इन बधाइयों में कवि का हर्ष और उत्साह देखने योग्य है। नंद के घर पुत्र जन्म होने की सूचना पाकर ब्रजवासी फूले नहीं समाते। वे सब काम-काज छोड़कर उस आनंद में भाग ले रहे हैं। कवि का रस में तादात्म्य भाव कितना प्रौढ है, देखिये—

चलहु भैया हो नंद महर घर बाजत आजु बधाई ।
जनम्यौ पूत जसोदारानी, गोकुल की निधि आई ॥
कोऊ बन जिनि जाउ गाय लै, आवहु चित्र बनाई ।
करहु कुलाहल, नाँचहु, गावहु, हेरी दै-दै भाई ॥ ×
बाजत झाँझ, मृदंग, चंग, डफ, बीना, बेंनु सुहाई ।
जय-जय धुनि बोलत डोलत मुनि कुसुमावलि बरषाई ॥
परम उदार सकल ब्रजबासिन घर-घर बात लुटाई ।
जाचक धनी भये, बड़भागी 'व्यास' चरन-रज पाई ॥ (६०१)

रावल‡ में वृषभानु के घर आज बधाई बज रही है। महावन* मे इसकी सूचना मिलते ही वहाँ से कवि रावल की ओर दृष्टि फेंकता है और वह सब का ध्यान वृषभानु के घर पर फहराती हुई मांगलिक ध्वजा पर आकर्षित कर 'खबर' की पुष्टि पहिले ही प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् कहीं 'दूब' बाँधने को वहाँ से ब्राह्मण आ पाता है। देखिये—

‡ मथुरा से चार मील दूर श्री राधिका का जन्म स्थान।

* यह रावल से लगभग दो मील दूर है। नंद और यशोदा यहीं रहते थे और यहीं पुराना गोकुल था।

भैया आज रावल बजति बधाई।
ढोल, भेरि, सहनाई धुनि सुनि, खबर महाबन आई॥
वह देखो बृषभान-भवन पर, बिमल धुजा फहराई।
दूब लयें द्विज आयौ तब ही, कीरति कन्या जाई॥ (६१०)

उक्त पद में 'वह देखो वृषभान-भवन पर विमल धुजा फहराई' चरण में क्या ही सुंदर चित्र उपस्थित किया है ! कवि कितना सजीव वर्णन कर सकता है, इसको प्रकट करने के लिए यह एक पंक्ति ही पर्याप्त है। व्यास-वाणी के पदों से प्रकट होता है कि उन्होंने अत्यंत निकट उपस्थित होकर राधाकृष्ण की लीलाओं, उत्सवों और विविध प्रसगों के वर्णन किये हैं। यद्यपि इनका ऐतिहासिक मूल्य नहीं है, तथापि भावना क्षेत्र में रस-संचरण करने में ये वर्णन अधिक प्रभावोत्पादक हुए हैं।

शृंगार रस के विवेचन में उसके अंतर्गत प्रभूत नायिकाभेद को दृष्टि में रखकर यद्यपि उपर्युक्त कुछ पदों को उद्धृत किया गया है, तथापि यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि राधाकृष्ण की लीलाओं के वर्णन व्यास जी ने नायिका-नायक के रूप में प्रस्तुत नहीं किये थे, वरन् उन्होंने उनमें उपास्य देवोचित श्रद्धा के साथ अपनी विशिष्ट भक्ति-भावना के बल पर युगलबिहारी के अलौकिक दर्शन पाये। उनकी वाणी में प्राप्त अन्य रसों के उदाहरण देखिये—

वीर रस

व्यास-वाणी में युद्ध वीर के उदाहरण ढूँढने का प्रयास ही न करना चाहिए, क्यों कि यह रस कवि के वर्ण्य विषय से ही मेल नहीं खाता। परंतु शृंगार के कुछ पदों में वीर रस के रूपक प्रस्तुत हुए हैं, देखिये—

आजु अति कोपे स्यामा-स्याम।
बीर खेत बृंदावन, दोऊ करत सुरत-संग्राम॥×
जीती नागरि, हारे मोहन, भुज संकट में घेरे।
पीन पयोधर, हार-नितंब, प्रहार किये बहुतेरे॥
प्रनय कोप बोली कैतव, अपराध किये तैं मेरे।
परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि, छाँडि दिये करि चेरे॥ (५५८)

दानवीर—

हरि सौ दाता भयौ न आहि।×
जाहिं भक्त की लाज बडाई, दीनी द्रुपद सुताहि॥
जाकी दान-मान की महिमा, सकत न वेद सराहि।

'जिहि चिरवा लै, कमला दीनी', मंद न माँगत ताहि ।
पतित पिंगलहिं आलिंगन दै, रूप दियौ कुबजाहि ॥ (व्या. ६५)

धर्मवीर—

गुरु की सेवा हरि करि जानी । ×
यह सुनि सकुचि गये वन मोहन, सिर धरि मौरी आनी ।
भूखे - प्यासे मेहु सह्यौ, निसि - भोर भरयौ हरि पानी ॥ (२)

दयावीर—

असरन-सरन स्याम जू कौ बानौ । ×
दयासिंधु दीननि कौ बाधव, प्रगट भागवत कहानौ । ×
'व्यास' कलंक लगै तो जननी जौ न पितहिं पहिचानौ ॥ (७०)

हास्य रस

व्यंग द्वारा स्मित हास्य की मधुर व्यंजना का उदाहरण लीजिये—

हरि-भक्तन तें समधी प्यारे ।
आये संत दूरि बैठारे, फोरत कान हमारे ॥
दूर देस तें सारे आये, ते घर में बैठारे ।
उत्तम पलिका, सौरि सुपेती, भोजन बहुत सवारे ॥
भक्तनि दीजै चून चननिकौ, इनकों सिलवट न्यारे ।
'व्यासदास' ऐसे विमुखनि, जम सदा कढ़ेरत हारे ॥ (२६५)

करुण रस

श्री हित हरिवंश के निधन पर उन्होंने अपने जो शोकोद्गार प्रकट किये हैं, वे बडे ही हृदयस्पर्शी हैं, देखिये—

हुतौ सुख, रसिकन कौ आधार ।
बिनु हरिवंसहिं, सरस रीति कौ कापै चलि है भार ॥
को राधा दुलरावै - गावै, वचन सुनावै चार ।
श्री वृंदावन की सहज माधुरी, कहि है कौन उदार ॥
पद - रचना अब कापै ह्वै है, निरस भयौ संसार ।
बडौ अभाग अनन्य सभा कौ उठिगौ ठाठ-सिंगार ॥ (२४)

अद्भुत रस

शृंगार के योग से अद्भुत रस का वर्णन एवं उत्तमा दूती द्वारा संदेश का क्रियात्मक प्रदर्शन इस पद में देखिये—

संदेसौ कह्यौ दूतिका आनि ।
अनबोले सब अंग दिखाये, नागरि लै है जानि ॥ ×
मूदत स्रवन, उसास कठ धरि, फारत पट दुखदानि ।
बनमाला तोरति - जोरति कर, पोंछ परति मुसकानि ॥

सीतल भेंटि कमल उर पहँ धरि, कदलि खंभ लपटानि ।
औरौ बिपदा सुनि मुनि-व्रत तजि, छूटी जिय की ग्लानि ॥
'व्यासदास' के समुझि बिनोदनि, कुँवर जिवाये आनि ॥ (व्या.५२०)

व्यास जी का वर्ण्य विषय रौद्र, भयानक और वीभत्स रस के अनुकूल न होने के कारण इन रसों के उल्लेखनीय उदाहरण वाणी में नहीं पाये जाते। प्रस्तुत वर्णन के प्रसंग में अत्यंत सीमित रूप में कहीं-कहीं इन रसों के अनुकूल भावों का उदय और उनकी शांति दृष्टिगोचर होती है—

रौद्र रस (क्रोध)

जो हौं सत्य सुकल कौ जायौ ।
तौ मेरौ पन साँचौ करि हरि, तुम दारुन दुख दुख पायौ ॥
मो अनन्य के मदिर में, जिनि थापि गनेस पुजायौ ।
तिनकौ बस बेगि हरि तोरहु, गाइ गृह जिनि खायौ ॥ × (२६०)

भयानस रस (भय)

×साकत देखें डरु लागत है, नाहर हू तें भारौ ।
भक्त हेत मम प्रान हनत है, नैंक न डरै मटयारौ ॥ ×

निम्न पद में वीभत्स की व्यंजना है, किंतु प्रधानता शांत रस की ही है— *वीभत्व रस* (जुगुप्सा)

जूठन जे न भक्त की खात ।
तिनके मुख सूकर-कूकर के, अभखि भखि पोषत गात ॥
जिनके बदन सदन नरकनि के, जे हरिजननि घिनात ।
काम बिवस कामिनि के पीवत, अधरन लार चुचात ॥
भोजन पर माखी मूतति हैं, ताहू रुचि सों खात ॥ ×(व्या १५४)

निम्न पद में हृदय की अमूल्य अभिलाषा ने शांत रस को पुष्ट किया है— *शात रस*

ऐसौ मन कब्रि करिहौ हरि मेरौ ।
कर करवा, कामरि काँधे पर, कुंजनि माँझ बसेरौ ॥
ब्रजवासिन के टूक भूख में, घर-घर छाछि-महेरौ ।
छुधा लगै जब माँगि खाऊँगौ, गनौ न साँझ - सबेरौ ॥ × (२६३)

(५) *वाणी की कलात्मकता*—भक्तिकाव्य में रस की अपेक्षा अलंकार पर अधिक आग्रह होने की प्रवृत्ति नही पाई जाती है। भावप्रधान

कविता होने के कारण, व्यास-वाणी में अर्थालंकारों का विशेष सौन्दर्य है। कोमल और सरस पदावली के प्रयोग में अनुप्रासों और यमकों का चमत्कार भी पग-पग पर दिखाई देता है। यों तो उनकी वाणी की ओर विभिन्न अलंकार आकर्षित हुए हैं, किंतु उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि व्यास जी को अधिक प्रिय प्रतीत होते हैं। इन भावात्मक अलंकारों के प्रयोग से शब्दों के चित्र से बन गये हैं। उनकी वाणी में श्लेष आदि ज्ञानात्मक अलकारों के प्रयोग नहीं पाये जाते। इससे सिद्ध है कि व्यास जी ने अपनी कविता को अलंकृत करने का प्रयास नहीं किया, वरन् हृदय के स्वाभाविक उद्‌गारों को व्यक्त करने में उनकी भाषा अपने आप अलकृत हो गई है। कुछ अलंकारों के चमत्कार उनके पदों में देखिये। इन उदाहरणों में प्रस्तुत अर्थालंकारों के अतिरिक्त अनुप्रास आदि शब्दालकार तथा अन्य अर्थालंकार भी यत्र-तत्र दिखाई देते हैं।

उपमा—

गौर मुख चद्रमा की भाँति।
सदा उदित वृंदावन प्रमुदितकुमुदिन, वल्लभ जाँनि ॥ × (व्या.२४६)

उत्प्रेक्षा—

गौर स्याम सुंदर मुख देखत मेरे नैन ठगे।
मानहुँ चद - किरन मधु पीवत, राति चकोर जगे ॥
सरद कमल मकरंद स्वाद रस, जनु अलिराज खगे।
निरखत हास-विलास-मधुरता, लालच पल न लगे ॥ (व्या.४२७)

रूपक—वृंदावन के लिए राजधानी का रूपक देखिये—

माया काल न रहत वृंदावन, रसिकन की रजधानी।
सदा राज व्रजराज लाड़िलौ, राधा सतत रानी ॥
मथुरा मडल देस सुबस, गढ गोवर्धन सुखदानी।
रास भडार सुभोग रहत, अति पावन जमुना पानी ॥(व्या० ४३)

वृंदावन की शोभा का उन्होंने अपनी माधुर्य उपासना के तत्वों मे कैसा सुंदर वर्णन किया है, उसे भी सुनिये—

श्री वृंदावन की सोभा देखत, बिरले साधु सिरात।
विटप-बेलि मिलि केलि करत, रस-रंग अंग लपटात ॥
भुज साखनि परिरभन, चुंबन देत परसि मुख पात।
कुच फल सदय हृदय पर राजत, फूल दसन मुसकात ॥ (व्या. ४४)

परंपरित रूपक--

दुख-सागर कौ वार न पार ।
जुग-जुग जीव थाह नहिं पावत, बूडत सिर धरि भार ॥
तृष्ना तरल बयारि झकोरति, लाभ लहरि न उतार ।
काम क्रोध भर मीन-मगर डर, नॉहिंन कहूँ उबार ॥ (१४५)

विभावना (पॉचवीं)—निम्न पद की कितनी जोरदार भाषा है ! साधना की अनन्यता से आत्मबल का पुष्टीकरण देखिये—

अनन्यनि कौन की परवाहि ।
श्री कुंजबिहारी की आसा करि, ले कमरी करवाहि ।
कोटि मुकुति सुख होत, गोखरू जबै गडै तरवाहि ॥ (६४)

गोखुरू (कॉटा) के चुभने में कोटि मुक्ति के बराबर सुख मिलने की कैसी सुंदर भावात्मक कल्पना है ! इसी प्रकार—

सुभग गोरी के गोरे पाँइ ।×
जमुना जल के दूर करत मल, चरननि पंक छुटाइ ॥

उल्लेख--

मोहनी कौ मोहन प्यारौ ।
आनँदकंद सदा बृंदावन, कोटि चंद उजियारौ ।
ब्रजवासिन कें प्रान जीवनि धन, गोधन कौ रखवारौ ॥
नद - जसोदा कौ कुल मंडन, दुष्टनि मारन वारौ । (६६२)

रूपकातिशयोक्ति—केवल उपमानों द्वारा शिख-नख का वर्णन सुनिये—

चंद्र बिंब पर वारिज फूले ।
ता पर फनि के सिर पर मनिगन, तर मधुकर मधुमदमिलि भूले ॥
तहॉ मीन, कच्छप, सुक खेलत, बंसीहिं देखि न भये बिकूले ।
बिदुम-दारयौ में पिक बोलत, केसरि-नख-पद नारि गरूले ॥ × (३७७)

केवल उपमानों में राधा-कृष्ण के युगल स्वरूप का चित्र देखिये--

आवत सखि चंदा साथ अँध्यारी ।
घन-दामिनि, चकोर-चातिक मिलि, मोरति राका प्यरी ॥
गज, मराल, केहरि, कदली, सर, बक, चकवा, सुक, सारी ।
खंजन, मीन, मकर, कच्छप, मृग, मधुप, भुजंगिनि कारी ॥ (४४०)

भ्रातिमान—

मोहन मुख की हौं लेउँ बलाइ ।
बोलत, चितवत, हँसत, लसत छबि, उपजत कोटिक भाइ ॥

भँवरनि कौ संभ्रम करि भँवरिनि, भेंटति अलकनि आइ ।
खेजत नैननि सों खंजन भुव, धनुपहिं रहे डराइ ॥ (४०३)

लोकोक्ति—

कहा भयौ जो प्रान-रवन तें, वारक चूक परी ।
'ठाकुर लेइ सँवारि वेग ज्यों, सेवक तें बिगरी' ॥(५२४)

अधिक—

माला-हरिमंदिर तें पावन, वृंदावन की रैनु ।
भक्त भागवतहू तें प्यारी,रसिकनि मोहन वैनु ॥
महाप्रसाद स्वाद तें मीठो,गाइन कौ पय फैनु ।
साधु संग तें अधिक जानिवो, ग्वाल-मंडली धैनु ॥ × (५०)

मीलित—

गई ही खरिक दुहावन गाइ ।
खोरि सांकरी छैल छवीलौ अंचल पकरयौ धाइ ।
तैसी निसि अँधियारी, तैसोई स्याम न जान्यौ जाइ ॥ × (७२०)

भावक--

मन वावरे तू हरि पद अटक्यौ ।
अव तें साँचौ सुख पायौ, तव दुख लगि घर-घर भटक्यौ ॥
भली करी तैं मोह तोरिकै, वृंदावन कों सटक्यौ ।
तैं देख्यौ कुंजनि में मोहन, राधा के उर लटक्यौ ॥ × (२३५)

संभावना--

जो पै सवहिनि भक्ति सुहाती ।
तौ विद्या, विधि,वरन,धर्म की,जाति रसातल जाती ॥
होते जो न वहिर्मुख कलिजुग, आनंद सृष्टि अघाती ।
होती सहज समीति सवनि में,प्रीति न कहूँ समाती ॥ × (२७८)

(६) *पिंगल*—व्यास जी ने अपने पदों की रचना कीर्तन के दृष्टिकोण से की थी। किसी छंद विशेप के लक्षणों पर ध्यान रखे विना सगीत के ताल-स्वर में राग को वैठाकर उनकी वाणी प्रस्फुटित हुई है। इस प्रकार के काव्य को गीति काव्य कहा जाता है। इन गीतों का प्रस्तार के अनुसार वर्ण एवं मात्रा संख्या के लघु-गुरु विपर्यय कर पिंगल शास्त्रानुसार रूप स्थिर तो किया जा सकता है, किंतु इस ओर व्यास जी का विशेप ध्यान ही प्रतीत नहीं होता। संगीत के अनुरूप वाणी की शब्द-योजना उन्हें अभिप्रेत थी।

साखी के लिए उन्होंने पदों के साथ-साथ पूर्व प्रचलित दोहा छंद अपनाया। इस छंद का उपयोग वीरगाथा काल से ही अधिक होता चला आ रहा था और कबीर आदि संत भी साखी में इसी छंद का प्रयोग कर चुके थे। रास पंचाध्यायी उन्होंने त्रिपदी छंद में लिखी।

(७) *चरित्र चित्रण*—व्यास-वाणी दो भागों में विभक्त है, एक सिद्धांत और दूसरा शृंगार रस। सिद्धात भाग में स्तुति, उपदेश एवं भक्ति की महिमा आदि विषयों के वर्णन हैं, अतएव इस भाग मे पात्रों की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। प्रसगानुसार जहाँ लोभी, कपटी, साधु-विमुख आदिकों के वर्णन आये हैं, उनके पढ़ने से ऐसे व्यक्तियों का एक चित्र सा सामने खड़ा हो जाता है। शृगार रस भाग में राधा और कृष्ण के शृगारिक चित्र प्रस्तुत हुए हैं। वे व्यास जी के आराध्य देव ही हैं। माधुर्य उपासना में उत्कृष्ट रतिभाव के वर्णन के लिए युगल स्वरूप का किशोरावस्था मे चित्रण हुआ है। युगल दपति की प्रत्येक प्रेम चेष्टा को ऐसे मनोवैज्ञानिक ढग से चित्रित किया गया है कि लौकिक काम-वासना वाले भक्तिहीन युवक-युवतियों को तो राधा और कृष्ण दोनों काम-कला-विशारद प्रतीत हो सकते हैं। किंतु इस विलास क्रीड़ा के रूप मे आध्यात्मिक भाव छिपे हुए हैं। विना आध्यात्मिक अर्थ के तो लोग व्यास-वाणी को क्या, समस्त कृष्णभक्ति-काव्य के दिव्य प्रेम को ससारी वासना मान कर उसके एक विशेप भाग को अश्लील तक कह डालेंगे !

व्यास जी ने कृष्ण की शृंगार लीला के वर्णन के साथ-साथ ससार पर भी दृष्टि डाली है। आचार्य रामचद्र शुक्ल ने उन्हें श्रीकृष्ण की बाल-लीला में भी लीन रहने का उल्लेख किया है‡, जो उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। युगल दंपति के विवाह के पूर्व के वर्णन व्यास वाणी में नगण्य के बराबर हैं। अतएव व्यास जी को कृष्ण की बाल-लीला में लीन रहना नहीं कहा जा सकना। राधा और कृष्ण के जन्मोत्सव के वर्णन भी बाल-लीला के चरित्र नहीं कहे जा सकते, क्यों कि उनमें नंद-वृषभानु, यशोदा-कीरति एव अन्य गोप-गोपियों के आनंदोत्सव के गीत गाये गये हैं। इसके अतिरिक्त व्यास-वाणी में व्रजलीला रस के अंतर्गत कृष्ण की अन्य लीलाओं के भी कुछ वर्णन है, जिनमें दान लीला, पनघट लीला आदि में शृगार रस की भावनाएँ ही व्यक्त हैं। 'वात्सल्य' के शुद्ध व्यक्तीकरण के उदाहारण बहुत थोडे हैं। यथा—

‡ हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १९०

चाल-चवैनी ग्वाल चवात ।
मीठी लागत मोहन के सँग, घर की छाक न खात ॥
टोरि पतौवा, जोरि पतोखी, पय पीवत न अघात ।
मधुर दही के स्वाद निवेरत, फूले अँग न समात ॥
कवहुँक जमुना जल में पैरत, मोहन मारत लात ।
बूड़क लै उछरत छलवल सों, स्याम गात लपटात ॥
कवहुँक खग-मृग-भाषा बोलत, वन सिंघै न डरात ।
अदभुत लीला देखि देखिकै, 'व्यासदास' वलि जात ॥ (७०६)

इसलिए कहा जा सकता है कि कोई प्रबंधात्मक वर्णन न होने एवं मुक्तक काव्य-रचना के कारण व्यास जी को पात्रों के चरित्र-चित्रण करने का विशेष अवसर ही न था।

(८) *व्यापकता*—व्यास-वाणी के सिद्धांत भाग में लोक-कल्याण की भावना को लेकर अनेकों महत्वपूर्ण विषयों पर व्यास जी के उपदेश और विचार संकलित हैं। विविध प्रसंगों में उद्धृत उदाहरणों के अतिरिक्त यहाँ ऐसे पद दिये जाते हैं, जो व्यास-वाणी के व्यापक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालने में सहायक होंगे। जहाँ इन वर्णनों से धर्म और आध्यात्मिक धाराओं को वल मिला है, वहाँ साहित्य-सृजन और ऐतिहासिक तथ्यों के संरक्षण के कारण वे और भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रकृति-निरीक्षण, जीव मात्र के साथ आत्मानुभूति, ब्रजभूमि और विशेष कर वृंदावन में अनुराग, के जैसे सजीव वर्णन व्यास जी ने प्रस्तुत किये हैं, वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं। वृंदावन के वृक्षों के प्रति उनका आदर-भाव देखिये--

प्यारे श्री वृंदावन के रूख ।
जिन तर राधा-मोहन विहरत, देखत भागत भूख ॥
माया-काल न व्यापै जिन तर, सींचे प्रेम-पयूख ।
कोटि गाय-वाँभन हत, साखा तोरत हरहिं विदूख ॥ × (५१)

पाखंड से घृणा—नीचे लिखे पद में झूठे तथा कपटपूर्ण आचरण करने वालों की लज्जास्पद दशा का कैसा प्रभावोत्पादक वर्णन है, देखिये—

विनु भक्तिहिं, जे भक्त कहावत ।
भीतर कपट निपट सव ही सों, ऊपर उज्जल ह्वै जु दिखावत ॥
धन सव ही को घूसि टूंसि कै घर भरि, सठ सो सुतनि खवावत ।
दिन-दिन क्रोध विरोध जगत सों, सो घन वोध हियौ भरि आवत ॥ ×
(व्या. वा. २६४)

कलियुग के प्रभाव ने ससार की दशा ही वदल दी। उपदेशकों के आचरण भी नीच हो गये। सतों के द्वारा जाति-भेद माना जाना देख कर व्यास जी क्षुब्ध थे। ब्राह्मण के घर मे जन्म पाना ही लोगों को आमदनी का एक साधन वन गया था। लड़-झगड कर तामसी वृत्ति से धन प्राप्त करने वाले ब्राह्मण पर व्यास जी करोडों कसाई न्यौछावर कर देते हैं, देखिये—

धर्म दुरयौ कलि दई दिखाई ।
कीनौं प्रगट प्रताप आपनौ, सव विपरीति चलाई ॥
धन भयौ मीत, धर्म भयौ वैरी, पतितन सों हितवाई ।
जोगी-जपी-तपी-संन्यासी व्रत छोड्यौ अकुलाई ॥ ×
दान लैन कों वडे पातकी, मचलनि कों वॅभनाई ।
लरन-मरन कों बडे तामसी, वारों कोटि कसाई ॥
उपदेसनि कों गुरू गुसाई, आचरनैं अधमाई ।
'व्यासदास' के सुकृत साँकरे, श्री गोपाल सहाई ॥ (१२६)

उन्हे जाति-पॉति में भेदभाव मान्य नहीं था। जहॉ वे तामसी ब्राह्मणों पर करोडों कसाई न्यौछावर करते हैं, वहॉ वे रैदास जैसे भक्त पर करोडों ब्राह्मण भी न्यौछावर कर देते हैं—

'व्यास' बडाई छॉडिकै, हरि-चरनन चित जोरि ।
एक भक्त रैदास पर, वारौं बामन कोरि† ॥

पर-उपदेश-कुशलता आगे काम नहीं दे सकती। 'कहो सो करो' इसी पर वे अपने उपदेशों में वल देते रहे—

बाह्मन के मन भक्ति न आवै। भूलै आप सवनि समुझावै ॥ (२१३)

उनका कहना था कि विना वास्तविक त्याग के दिखावटी वृंदावन-वास करने से क्या लाभ उठा सकते हो—

कहा भयौ वृंदावनहिं वसै ।
जौलगि व्यापत माया, तौलगि कह घर तें निकसै ॥
धन-मेवा कों मंदिर - सेवा, करत कोठरी विषै रसै । ×
कंचन हाथ न लेत, कमंडल में मिलाय बिलसै ।
'व्यास' लोभ रति हरि हरिदासनि परमाथहिं खसै ॥ (१३६)

† यह दोहा भारतेन्दु हरिश्चद्र जी के छप्पय 'इन मुसलमान हरि-जनन पर, कोटिन हिंदुन वारियै' का स्मरण दिलाता है।

नैतिक आदर्श—उपदेश के अनुकूल आचरण करने तथा आशा को त्याग ने पर ही दु:ख से मनुष्य दूर हो सकता है। भागवत में वर्णित भक्ति का प्रचार करने वाले उपदेशकों में जो उस समय स्वामी, भट्ट तथा गुसांई (गोस्वामी) की उपाधियों से सम्मानित हो रहे थे, परस्पर प्रेम-भाव का अभाव व्यास जी को खटकता था। क्योंकि भक्ति के प्रचार का समान उद्देश्य होते हुए भी आपसी प्रेम छोड़कर वे धन के कारण अपने शिष्यों की सख्या वढाने मे तो लगे थे, परंतु वास्तविकता से दूर होते जा रहे थे—

जैसी भक्ति भागवत बरनी।
तैसी विरले जानत, मानत कठिन रहिन तें करनी॥
स्वामी भट्ट गुसाईं अगनित, मति करि गति आचरनी।
प्रीति परस्पर करत न कबहूँ, मिटै न हिय की जरनी॥ (१४२)

ब्रज-भूमि में अचल निवास करने का उपदेश देने वालों के द्वारा ही वगाल और गुजरात में जाकर लोगों को ठगने की कथाएँ सुनकर वे उन्हे अज्ञानी वनाते थे—

भटकत फिरत गौर-गुजरात।
सुखनिधि मथुरा तजि वृंदावन, दामन कौं अकुलात॥×
'व्यास' विवेक विना संसारहि, लूटत हू न अघात॥ (१३३)

तथा--

एक भक्ति विनु घर-घर भटकत।×
औरन के सुख संपति देखत, लेत उसास लिलारी पटकत।×
गुरु गोविंद लजाइ, आपनौ सहि अपमान, दान लै सटकत॥(१३२)

वाणी और कर्म की समानता अनन्य धर्म है, और इन दोनों में भेद है व्यभिचार, यह व्यास जी ने वताया है—

जाकी है उपासना, ताही की वासना,
ताही कौ नाम, रूप, गुन गाइये।×
सोई विभचारी आन कहै, आन करै,
ताकौ मुख देखें, दारुन दुख पाइये॥ (व्या. ६२)

आदर्शता से पतित हो जाने वाले उपदेशकों से ही केवल उन्हे न कहना था, शिष्यों को भी तो अपने कर्तव्य का ध्यान दिलाना आवश्यक था। 'लोभी गुरू, लालची चेला' पर भी एक पद सुनिये—

गुरुहिं न मानत चेली-चेला।
गुरु रोटी-पानी सों वूटित, सिष्य कें दूध पियै कुकरेला॥

सिष्यनि कें सौने के बासन, गुरु कें कुँडी-कुँडला ।×
'व्यास' आस जे करत सिष्य की, तिनतें भले भँड़ेला ॥ (१२७)

विश्व-कल्याण की भावना—कलियुग के उद्धार के लिए 'हरिनाम' को बताकर भक्ति करने का व्यास जी ने उपदेश दिया। भक्ति की कसौटी उन्होंने 'सबसे प्रेम करना' निर्धारित की। देखिये—

कलिजुग मन दीजै हरि-नामै ।
आराधन-साधन धन कारन, कत कीजै वे कामें । (व्या. वा. १७१)

संतों को उन्होंने भगवान का सच्चा मंदिर कहा है—

साँचे मंदिर हरि के संत ।
जिन मन मोहन सदा बिराजत, तिनहिं न छाँडत अंत ॥ (१५७)

सतोष—

जैसे सुख मोहन हमहि दिखावत ॥
ऐसे सुख भुगति मुकति के भोगी, सपनैं हूँ नहि पावत ।×
हरि की कृपा जानियै तबहीं, संत घरहिं जब आवत ॥
इहि विधि 'व्यास' कहाइ अनन्य, पाइ सुख अनत न कितहूँ धावत ॥(२४२)

अपने पुत्र को उपदेश देते हुए वे श्री कृष्ण की जन्म-भूमि मथुरा तक पहुँचने भर में उसकी मनोकामना की पूर्ति हो जाना निश्चित बताते है। जगत-पिता पर विश्वास जमाने के लिए वे कहते हैं—

भजहु सुत ! साचे स्याम पिताहि ।
जाके सरन जात ही मिटि है, दारुन दुख की डाहि ॥
कृपावत भगवंत सुने मै, छिन छाँडौ जिनि ताहि ।
तेरे सकल मनोरथ पूजै, जो मथुरा लौं जाहि ॥× (११६)

नाम की स्तुति—मन की एकाग्रता और हरिनाम-स्मरण पर उनके अनुभूत प्रयोग सुनिये—

हरि बोलि, हरि बोलि प्यारी रसना । हरि बोले बिनु नरकहिं बसना ॥
हरि बोलि नाँचि न मेरे मना । हरि बोलि होइ निरमल तना ॥
हरि - नाम हरि - नाम सदा जपना । हरि बिनु 'व्यास' न कोऊ अपना ॥
(व्या वा ३४)

आत्म सयम—

दुविधा जब जैहै या मन की ।
निर्भय ह्वै कै जब सेवहुगे, रज श्री बृंदावन की ॥

कामरि लै, करवा जब लैहै, सीतल छाँह कुंजन की ।
अति उदार लीला गावहुगे, मोहन-स्याम सुघन की ॥
इन पाँइनि परिकरमा देहैं, मथुरा-गोवर्धन की ।
'व्यास' दास जब टेक पकरिहै, ऐसैं पावन पन की ॥ (व्या १६७)

वासनाओं की बलि—

काहै भजन करत सकुचात ।
पर-धन, पर-दारा-तन चितवत, तब कहि क्यो न लजात ॥
मिथ्या बाद-विवाद बकन को, फूल्यौ फिरत कुजात ।
फूट्यौ कर्म, भर्म हिय बाढ्यौ, तजि अमृत विष खात ॥ ×
हरि-गुन गाइ, नाँच निर्भय ह्वै, 'व्यास' लखी यह बात ॥(व्या. १६६)

कंचन-कामिनी का त्याग—

'व्यास' पराई कामिनी, कारी नागिन जान ।
सूँघति ही मरि जायगौ, गरुड़ मंत्र नहि मान ॥
'व्यास' पराई कामिनी, लहसनि कैसी बानि ।
भीतर खाई चोरिकै, बाहिर प्रगटी आनि ॥
'व्यास' कनक अरु कामिनी, तजियै भजियै दूरि ।
हरि सों अंतर पारिहैं, मुख दै दैहैं धूरि ॥

समय का उपयोग—

गोपालै जब भजियै, तब नीकौ ।
जोतिक, निगम, पुरान सबै दग पढै जान है जीकौ ॥
भद्रा भली, भरनी भव हरनी, चलत मेघ अरु छींकौ ।
'व्यासदास' धन-धर्म विचारै, सो प्रेमी कौड़ी कौ† ॥(व्या. १०६)

हरिजन—गांधी-युग ने 'हरिजन' शब्द के व्यापक अर्थ को थोड़ा सा संकुचित कर दिया है। अछूत जाति के लोग, विशेष कर स्वपच (भंगी) इस युग में महात्मा गांधी के प्रचार से 'हरिजन' कहलाये। प्राचीन संतों ने हरिजन की परिभाषा में जाति का बंधन न रख कर भक्ति और उसके अंतर्गत लोक-कल्याणकारी सदाचरण का समावेश किया था। वे ब्राह्मण कुल में जन्म लेने मात्र से उसका आदर करने को तैयार न थे और न भंगी होने से ही उसे हरिजन कह सकते थे। उनके लिये भक्ति की कसौटी प्रधान थी। जो उस पर खरा उतरा, उसे उन्होंने बिना भेद-भाव के 'हरिजन' होना स्वीकार किया। व्यास जी इसी मत के न केवल

† ऐसा ही पद सूरदास के नाम से भी प्रसिद्ध है।

समर्थक ही थे, वरन् उसे व्यवहार मे लाकर उन्होंने सक्रिय उपदेश भी दिया था। इस संबंध की उनकी रचनावली से उनके मनोगत भाव स्पष्ट हैं—

भक्ति में कहा जनेऊ-जाति।
सब दूषन भूषन विप्रन के, पति छू घरनि घिनाति।×
'व्यास' दास कें सुख सर्वोपरि, वेद विदित विख्याति॥ (व्या० १०४)

हरिजन की बड़ाई में उनके हृदय से निकले हुए शब्द सुनिये—

'व्यास' दास हरिजन बड़े, जिनकौ हृदय गँभीर।
अपनौ सुख चाहत नहीं, हरत पराई पीर†॥
'व्यास' बड़े हरि के जना, हरिहि नवावत माथ।
जिनके हिय में बसत है, तीन लोक कौ नाथ॥
वृंदावन के स्वपच के, रहियै सेवक होय।
तासों भेद न कीजियै, पीजे पद-रज धोय॥
'व्यास' मिठाई विप्र की, तामैं लागैं आग।
वृंदावन के स्वपच की, जूठनि खैयै माँग॥
'व्यास' कुलीननि कोटि मिलि, पंडित लाख पचीस।
'स्वपच भक्त की पानहीं, तुलै न तिनकौ सीस॥

इस प्रकार के उपदेशों ने आगे आने वाले युग में अछूतोद्धार के आंदोलन के लिए पथ प्रशस्त किया था। यदि ऐसे संतों ने इतने पहले से इन उदार विचारों को प्रकट न किया होता, तो महात्मा गांधी को अछूतोद्धार में प्राप्त हुई सफलता अवश्य ही संदिग्ध बनी रहती। जैसा कहा जा चुका है, व्यास जी ने न केवल अपने उच्च विचारों से ही जनता के दृष्टिकोण को परिष्कृत किया, वरन् उन्होंने उन्हें कार्य रूप में परिणत कर स्वयं एक आदर्श भी उपस्थित किया था। अतएव मनसा, वाचा, कर्मणा सभी प्रकार हमारे चरित्र-नायक व्यास जी ने हरिजन के वास्तविक स्वरूप को जाना था।

प्रकृति से प्रेम—मनुष्य के साथ पशु-पक्षी और पेड़-पौधों को भी सहानुभूति-सूत्र में बद्ध दिखाने वाले कवियों की कमी किसी साहित्य में नहीं है, किंतु व्यास जी की विशेषता है जीव मात्र एवं लता-वृक्षों के साथ आत्मानुभूति। वृंदावन की तो प्रत्येक वस्तु उन्हे श्रद्धेय है। वहाँ के लता-वृक्ष उनके परिवार के ही सदस्य हैं—

† यह बापू को प्रिय लगने वाला गीत 'वैष्णव जनतो तेने कहिये, जे पीर पराई जाने रे' की याद दिलाता है।

श्री वृंदावन के रूख, हमारे मात-पिता, सुत-बंध ।×
इनहिं पीठि दै, अनत दीठि करै, सो अंधनि में अंध ॥ (५४)

इन वृक्षों के साथ उनकी सहानुभूति इतनी अधिक है कि वे 'कोटि गाय-बाभन हत, साखा तोरत हरहिं विरूख' कहकर उसका परिचय देते हैं। लता-वृक्ष के आलिंगन मे उन्हे अपने आराध्य देव की झाँकी मिल जाती है। उन्होंने उन्हे अपना देवी-देवता माना और कहा कि 'वेलि हमारी कुलदेवी सव, विटप-गुल्म सव देवा'।

पशु-पक्षी—वृक्ष तो हुए कुटुंबी, तब पशु-पक्षियों का उनके पड़ौसी और मित्र होना स्वाभाविक है—

अरौसी-परौसी हमारे भैया-बंधु भँवर, पिक, चातिक, वक, तमचोर ।
प्यारे कारे-पीरे खग-मृग, हितुवा चद चकोर ॥
मोहन बुनहिं सुनावत, गावत मन भावत चितचोर ॥× (व्या. वा. २४५)

जिन श्री युगलकिशोर की निकुंज सेवा साधना में व्यास जी लीन थे, उन्हीं के साथ उनके यह प्रेमी 'परौसी' भी फिर रहे हैं—

फिरत सँग अलिकुल, मोर, चकोर ।×
निकट कुरग कुरगनि आवत, सुनि मुरली धुनि घोर ।
'व्यास' आस करि त्रास तजत सर, चक्रवाक भरि भोर ॥ (८४३)

सभी खग-मृग, पर्वत और वृक्ष राधा-कृष्ण के प्रेम-संगीत में मुग्ध है। इस अखंड जीवन-समष्टि का भी एक चित्र देखिये—

रसिक-सिरोमनि ललना-लाल मिले सुर गावत ।
मत्त मधुर विवि धुनि सुनि कोकिल कूजत, तन-मन ताप बुझावत ॥
मोर-मंडली नॉचति प्रमुदित, आनंद नैननि नीरु वहावत ।
मंद-मंद घनवृंद गाज लजि, सीतल सजल सीकर वरषावत ॥×
(व्या. वा. ३६१)

कभी तो "हाथी कौ धरि स्वाग, 'व्यास' यह तज कूकर की चाल" कहकर पशु विशेषों की प्रवृत्ति के सहारे आत्मशुद्धि का उपदेश देते है, और कभी वे सवसे पहिले प्रसाद पा लेने पर बिल्ली से स्पर्द्धा करने लगते हैं। वे कहते हैं—

संतत राग-भोग जूठनि कौं, 'व्यासहिं' करौ विलैया ।

प्रेम के कठिन मार्ग के यात्री जल, थल और आकाश में विहार करने वाले जीव व्यास जी की दृष्टि से ओझल नहीं हो सके। देखिये—

कठिन हिलग की रीति, प्रीति करि लपट पै न अघात ।
अति आतुर चातुरता भूलत, प्रीतम कह अकुलात ॥
परत तेल में माखी, मरति न जानत दुख की बात ।
चचल चैंटी चाखि राव-रस, प्रान बिसरि लपटात ॥
चचल मिरिग घट सुनि सिर धुनि, बैठि बँधावत गात ।
परत पतग दीप - ज्वाला महँ, आरत काहि डरात ॥
चोर, चकोर, मोर, निसि, ससि, घन, देखत नैन सिगत ॥(व्या० ७४४)

विषयों की विभिन्नता तथा प्रभावोत्पादक विचार-शैली को देख कर हम कह सकते है कि भक्त व्यास जी की कवित्व शक्ति बड़ी सबल थी। भक्ति में लीन रहते हुए उन्होंने ससार को अमूल्य उपदेश दिये। यह उनकी लोक-सग्रह की भावना का द्योतक है। श्री राधाकृष्ण की विहार-लीला के वर्णन में कवि का शृंगार रस पर एक विशिष्ट अधिकार प्रकट होता है, जिसकी समीक्षा 'वाणी की सरसता' के प्रसग में की जा चुकी है। भक्ति की भावना में लीन रहने वाले व्यास जी में हम उच्च श्रेणी के कवि के रूप का तो दर्शन प्राप्त करते ही हैं, साथ ही साथ उनमें एक प्रभावशाली समाज-सुधारक नेता और महात्मा को भी पाते हैं।

नवम अध्याय

अन्य प्रासंगिक विवेचन



१. भ्रांतियों के निराकरण—

(१) *नाम और उपाधि से भ्रम*—'व्यास' कहने से साधारणतया महर्षि वेदव्यास जी का बोध होना तो स्वाभाविक है ही, किंतु श्रीमद् भागवत तथा पुराण-वक्ताओं को भी 'व्यास' की उपाधि द्वारा संबोधित होने की प्रथा के प्रचलित होने के कारण चरित्रनायक श्री हरिराम जी व्यास के संबंध मे प्राप्त उल्लेखों को ग्रहण करने मे बड़ी ही सतर्कता से काम लेना पड़ा है। आज तक हम कथावाचकों को 'व्यास' तथा उनकी बैठक को 'व्यास-आसन' कहते चले आये हैं। यथा—

करि मज्जन दान गये तहँवा। हुलसी-सुत बाँच कथा जहँवा ॥
छवि 'व्यास' विलोकि प्रसन्न भये। सब लोगन बूझि स्वठाम गये ॥

—मूल गोसाईं चरित, पृष्ठ ७

यहाँ 'व्यास' से अभिप्राय गोस्वामी तुलसीदास जी से है। वल्लभ संप्रदायी वार्ताओं में भी इस प्रकार के उल्लेख हैं—

"पद्मनाभदास व्यास आसन बैठते।" (चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ ३३)

"तू तौ व्यास आसन बैठ्यौ है ·" (वही, पृष्ठ १८६)

१६ वीं शताब्दी में भारतवर्ष मे ऐसे और भी ब्राह्मण थे, जो 'व्यास' कहलाते थे। अतएव शोधकर्ताओं को 'व्यास' नामोल्लेख के उपयोग करने में कहीं-कहीं तो बहुत ही अधिक भ्रम हो गया है। देवबंद निवासी श्री केशवदास मिश्र भी 'व्यास' कहलाते थे। इसी कारण उनके पुत्र, श्री हितराधावल्लभीय संप्रदाय के संस्थापक, गोस्वामी हित हरिवंश जी की जन्म बधाइयों में हित जी को व्यास-नंदन लिखा गया है। व्यास-नंदन के इस उल्लेख से ही ग्रियर्सन साहब को भ्रम हुआ प्रतीत होता है, जो उन्होंने श्री हित जी के पिता का नाम हरिराम शुक्ल लिख दिया*। फलतः उन्होंने श्री हरिराम व्यास के परिचय में भी उन्हें ओड़छा बुंदेलखंड का लिखते हुए भी देवबंद के गौड़ ब्राह्मण कुल का होना प्रकट किया है, जो सर्वथा भ्रमपूर्ण है। संभवतः ग्रियर्सन साहब के ही उक्त उल्लेख के

* The Modern Vernacular Literature of Hindustan, Page 29

आधार पर 'मिश्रबंधु विनोद' मे भी श्री हित हरिवंश जी के संबंध में यही अशुद्ध उल्लेख हुआ है। सितंबर सन् १९४७ ई० के 'कल्याण' मे प्रकाशित 'श्री गोपाल भट्ट' शीर्षक लेख मे भी इसी अशुद्धि को दुहराया गया है।

विक्रम की १७ वीं शताब्दी में निंबार्क सम्प्रदाय मे श्रीभट्ट जी के शिष्य श्री हरिव्यास देव जी परम वैष्णव संत हो गये हैं। उन्होंने भ्रमण कर विशेष रूप से निंबार्क संप्रदाय का प्रचार किया था। उनके प्रचार के कारण ही निंबार्क संप्रदाय की विशिष्ट शाखा का नाम अब तक 'हरिव्यासी' संप्रदाय कहा जाता है। संभवत' हरिव्यासी संप्रदाय का नाम हरिराम व्यास से मिलता-जुलता होने के कारण श्री ग्रियर्सन साहब ने हरिराम व्यास को ही 'हरिव्यासी' संप्रदाय का संस्थापक माना है‡। इसी प्रकार श्री विलसन ने भी 'रिलीजस सैक्ट्स आफ दि हिन्दूज' नामक ग्रंथ के पृष्ठ १५१ पर उनको तथा श्री केशव भट्ट को निंबावत सम्प्रदाय के संस्थापक श्री निंबादित्य के शिष्य होने का उल्लेख कर इसी भ्रांति को ही प्रकट किया है। डा० उमेश मिश्र ने 'हिन्दुस्तानी' त्रैमासिक पत्रिका मे प्रकाशित अपने 'प्राचीन वैष्णव संप्रदाय' शीर्षक एक लेख में हरिराम जी व्यास को श्रीभट्ट का शिष्य लिखा है। श्रीभट्ट जी के शिष्य श्री हरिव्यास देव जी थे, न कि हरिराम जी व्यास।

श्री विनयतोष भट्टाचार्य जी ने 'शक्ति-संगम तंत्र' की भूमिका मे हरिराम शुक्ल को श्रीभट्ट का शिष्य लिखते हुए मत प्रकट किया है कि उन्हीं का दूसरा नाम हरिव्यास मुनि था तथा वही हरिव्यासी सम्प्रदाय के संस्थापक एवं परशुराम के गुरु थे*। किंतु हरिव्यास देव जी गौड़ ब्राह्मण थे। उनका समाधि-स्थान नारद टीला, मथुरा है। इसे काबड़िया जी का स्थान भी कहते हैं। उनका जन्मोत्सव कार्तिक वदी १२ को मनाया जाता है†। हरिराम जी शुक्ल सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनका समाधि-स्थान व्यास घेरा, वृंदावन है। उनका जन्मोत्सव मार्गशीर्ष कृष्णा ५ को मनाया जाता है।

नाभादास जी ने अपनी 'भक्तमाल' में समोखन जी शुक्ल के पुत्र व्यासजी पर एक स्वतंत्र छप्पय लिखा है तथा दूसरे छप्पय में श्रीभट्ट जी के

‡ Modern Vernacular Literature of Hindustan, Page 28

* Preface to the 'Sakti Sangam Tantra', Vol LX

† श्री आचार्य-परंपरा-परिचय, पृष्ठ १५

उपरांत हरिव्यास जी का और उनके बाद परशुरामजी का नामोल्लेख किया है। हरिव्यास देव जी के संबंध में देवी को दीक्षा देने वाली प्रचलित कथा का संकेत नाभादास जी ने उक्त दोनों छंदों के अतिरिक्त ही छप्पय मे किया है और उसी में उनका श्रीभट्ट जी के शिष्य होने का भी उल्लेख है। यथा—

श्रीभट्ट-चरन-रज परस तें, सकल सृष्टि जाकों नई।
हरिव्यास तेज हरि भजन बल, देवी कों दीच्छा दई॥

आचार्य-परंपरा-परिचय (पृष्ठ १४) में श्रीभट्ट जी का आविर्भाव-काल संवत् १३५२ विक्रमी इस आधार पर माना गया है, कि उनके ग्रंथ 'युगल शत' में उसका रचना-काल निम्न दोहा के अनुसार संवत् १३५२ दिया है—

नैन बान पुनि राम ससि, गनों अंक गति बाम।
प्रकट भयौ 'श्री जुगल सत', यह संवत अभिराम॥

इस ग्रंथ की हस्तलिखित दो प्रतियों में मुझे उक्त दोहा ही प्राप्त नहीं हुआ! इससे इस दोहा को भी प्रक्षिप्त माना जा सकता है। भक्तमाल में नाभा जी ने श्रीभट्ट जी का वर्णन करने वाले छप्पय में कई वर्तमान कालिक क्रियाओं का स्पष्ट रूप से प्रयोग किया है। अतएव श्रीभट्ट जी को १७ वीं शताब्दी का ही मानना पड़ेगा। यदि 'युगल शत' के कथित दोहा को प्रक्षिप्त न भी माना जावे, तब भी इतना मानना पड़ेगा कि लिपिकार ने भ्रम वश उसके प्रथम चरण में 'राग' शब्द के स्थान पर 'राम' शब्द लिख दिया है। इस प्रकार शुद्ध पाठ कर लेने पर 'युगल शत' का रचना काल संवत् १६५२ इस दोहा के अनुसार भी हो जायगा।

अतः श्रीभट्ट जी के शिष्य हरिव्यास देव जी हरिराम व्यास जी के समकालीन हुए, जिससे 'हरिव्यासी संप्रदाय' के संस्थापक होने का हरिराम व्यास जी में भ्रमपूर्ण आरोप हो सका है। ध्रुवदास जी ने भी अपनी 'भक्त-नामावली' में 'हरिव्यास' और 'व्यास जी' के उल्लेख अलग-अलग स्थलों पर किये हैं। इससे सिद्ध है कि हरिव्यास देव जी और हरिराम जी व्यास नाम के अलग-अलग दो संत थे और हरिराम जी व्यास ने हरिव्यासी संप्रदाय की स्थापना नहीं की थी।

(२) *विहारी का दोहा*—श्री व्यास-वाणी की प्रकाशित दोनों प्रतियों में व्यास जी की साखी के अंतर्गत एक यह दोहा भी है, जो विहारी सतसई में भी पाया जाता है—

अपने अपने मत लगे, वादि मचावत सोर।
ज्यों-त्यों सबकों सेइबौ, एकै नंदकिसोर॥

'बिहारी सतसई' की एक हस्तलिखित प्राचीन प्रति मे तो यह पहिला ही दोहा है तथा 'बिहारी सतसई' पर लिखी गई प्रसिद्ध टीकाओं मे से बिहारी रत्नाकर, मानसिंह की टीका, कृष्ण कवि की टीका, हरिप्रकाश टीका, लाल चंद्रिका, शृंगार सप्तशती तथा प्रभुदयाल पांडे की टीका मे उक्त दोहा उपलब्ध होता है, किंतु 'बिहारी सतसई' की रस कौमुदी टीका मे यह दोहा नहीं है। इधर लाला केदारनाथ वैश्य, लखनऊ द्वारा सवत् १९७१ विक्रमी में प्रकाशित 'भगवत रसिक की वाणी' के साथ भी जो व्यास जी की साखी संकलित है, उसमें भी यह दोहा है। 'व्यास जू की साखी' या 'व्यास जू की चौरासी' के नाम से जिन तीन हस्तलिखित प्राचीन प्रतियो के अध्ययन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनमे से सवत् १८८८ और १८६४ की दो प्रतियों मे, जिनमें ८६ दोहे हैं, उक्त दोहा नहीं पाया जाता। किंतु तीसरी संवत् १९१४ की प्रति मे, जिसमें ८७ दोहे हैं, प्रसंगांतर्गत दोहा उपलब्ध होता है। श्री वियोगीहरि जी ने 'व्रजमाधुरी सार' में व्यास जी की साखी के उदाहरण में जो थोडे से दोहे दिये हैं, उनमें भी उक्त दोहा दिया गया है।

ऐसी स्थिति मे यह कहना कठिन है कि वास्तव मे यह दोहा व्यास जी का है या बिहारी का, क्यों कि दोनों महानुभावों की उपलब्ध प्रकाशित और प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में यह पाया जाता है। बिहारी का जन्म व्यास जी के जन्म से लगभग ६३ वर्ष पश्चात् माना जाता है। इससे व्यास जी द्वारा तो बिहारी का वह दोहा ग्रहण करने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो सकता। साथ ही बिहारी जैसे महाकवि से भी व्यास जी के दोहा को सतसई में मिला लेने की आशा नहीं की जा सकती। अत इसे संपादकों की भ्रमवश हुई भूल ही माननी होगी।

(३) *कबीर की साखी*—ऐसे ही साम्य का दूसरा उदाहरण कबीर की साखी में मिलता है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से प्रकाशित 'कबीर ग्रंथावली' की प्रस्तावना में पृष्ठ १७ पर कबीर की वैष्णवता के प्रमाण में उनकी ही रचना प्रकट करते हुए यह दोहा दिया गया है—

साकत बाभण मति मिलै, वैसनौ मिलै चंडाल ।
अंकमाल दे भेटिये, मानों मिले गोपाल ॥

किंतु यही दोहा व्यास-वाणी में भी इस प्रकार के थोड़े से पाठांतर से पाया जाता है—

साकंत बामन जिन मिलो, वैष्नव मिलि चंडाल ।
जाहि मिलै सुख पाइये, मनों मिले गोपाल ॥

(४) *मधुकर शाह की रचना*—'*बुंदेल वैभव*' के प्रथम भाग में महाराज मधुकर शाह की रचनाओं के जो उदाहरण श्री गौरीशंकर जी द्विवेदी ने दिये हैं, उनमें से एक पद व्यास-वाणी का भी है। वह यह है—

भक्ति बिनु केहि अपमान सह्यौ।
कहा-कहा न असाधनि कीनौ, हरि बल धर्म रह्यौ। ×
'व्यास' वचन सुन मधुकर साह, भक्ति-फल सदा लह्यौ॥ (१६८)

यह पद व्यास-वाणी की संवत् १८८८ की हस्तलिखित प्रति में तो नहीं है, किंतु संवत् १६६४ की प्रति में अलग-अलग दो स्थानों पर, पृष्ठ ३५ तथा ५० पर, लिखा मिलता है। बुंदेलखंड नरेश महाराजा मधुकर शाह व्यास जी के प्रिय शिष्य थे। व्यास-वाणी मे ऐसे और भी पद उपलब्ध हैं, जिनमें मधुकर शाह का नामोल्लेख हुआ है। यथा—

हरि सों कीजै प्रीति निवाहि। ×
ऐसें तन-धन-सुत-दारा झूँठे, सब मधुकर साहि॥ (२०५)

इसमें 'व्यास' का नामोल्लेख भी नहीं है। इसी प्रकार के और भी दो पद व्यास-वाणी में हैं, जिनमें 'व्यास' की छाप न होकर मधुकर शाह का नामोल्लेख है। यथा—

होइब सोई, हरि जो करिहै। ×
साधुनि कौ अपराध करत, मधुसाहि न ताहि गुदरिहै॥ (१०८)

यह पद व्यास-वाणी की दोनों हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है।

ऋतु बसंत दुलहिनि सँग खेलत, वाढ्यौ री रंग निवाहि। ×
करि न्यौछावर बलि-बलि जाइ, तृनु तोरि जोरि कर मधुकर साहि॥(परि०२)

उक्त पद व्यास-वाणी की मुद्रित प्रतियों में है, किंतु हस्तलिखित प्रतियों में नहीं है। इसमें 'मधुकर साहि' का नाम अंतिम चरण मे ऐसे प्रसंग के साथ दिया गया है, जिससे यह पद व्यास जी का न होकर मधुकर शाह का ही ज्ञात होता है।

(५) *सूरदास की 'रास-पंचाध्यायी' तथा अन्य पद*—सूरसागर की मुद्रित प्रतियों में 'रास पंचाध्यायी' विषयक एक विस्तृत पद प्राप्त* है। यही पद किंचित परिवर्तन के साथ व्यास-वाणी की प्रतियों मे भी मिलता है। इस पद की लीला-भावना पुष्टि संप्रदाय के प्रायः प्रतिकूल और व्यास जी

* श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई द्वारा प्रकाशित स० १६६४ का संस्करण, पृष्ठ ३६०—३६२ तथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित संस्करण, पृष्ठ ६६६—६७३, पद स० १७६८

की उपासना-पद्धति के अनुकूल है, अतः यह पद सूरदास जी का न होकर व्यास जी का ही ज्ञात होता है। सूर-साहित्य के विशेषज्ञ श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने भी इसे सूरदास जी का पद स्वीकार नहीं किया है‡। सूरसागर और व्यास-वाणी मे से उक्त पद के विशिष्ट अंश को उद्धृत कर हम इस विषय का विस्तृत विवेचन करना चाहते हैं--

'सूरसागर' से उद्धृत—	'व्यास-वाणी' से उद्धृत—
कह्यौ भागवत सुक अनुराग।	कह्यौ भागवत सुक अनुराग।
कैसें समुझैं विनु वड भाग॥	कैसें समुझैं विनु वड भाग॥
'श्री गुरु सकल' कृपा करी॥	'श्री गुरु सुकल' कृपा करी॥
'सूर' आस करि बरन्यौ रास।	'व्यास' आस करि वरनौ रास।
चाहत हौं बृंदावन वास॥	चाहत है बृंदावन वास॥
राधा (वर) इतनी करि कृपा॥	'करि राधे इतनी कृपा'॥
निसि-दिन स्याम सेउँ मैं नोहिं।	निजु दासी अपनी करि मोहि।
यहे कृपा करि दीजे मोहिं॥	नित प्रति स्यामा सेऊँ तोहि॥
नव निकुंज सुख-पुंज में॥	नव निकुंज सुख-पुंज में॥
हरिबंसी हरिदासी जहाँ।	हरिबंसी हरिदासी जहाँ।
हरि करुना करि राखहु तहाँ॥	मोहि करुना करि राखौ तहाँ॥
नित बिहार आभार दै॥	नित्य बिहार अधार है॥
कहत - सुनत वाढत रस-रीति।	कहत - सुनत वाढै रस - रीति।
बक्ता स्रोता हरिपद - प्रीति॥	स्रोतहिं बक्तहिं हरिपद - प्रीति॥
रास - रसिक गुन गाइ हो॥	रास - रसिक गुन गाइ हौं॥
(सभा का सूरसागर, पद १७९८)	(व्या० वा० ७५८)

उक्त दोनों उद्धरणों में चिह्नांतर्गत शब्दों पर विचार कीजिये। व्यास-वाणी में 'श्री गुरु सुकल कृपा करी' है। श्री व्यास जी ने गृहस्थ जीवन के पूर्व अपने पिता सुकल समोखन जी से ही दीक्षा ग्रहण की थी और व्यास-वाणी के अन्य स्थलों पर भी गुरु-कृपा का उल्लेख करने में उन्होंने अपने पिता का आस्पद 'सुकल' ही प्रयोग किया है। प्रौढ़ावस्था में वृंदावन आने पर उन्होंने हित हरिवंश जी और स्वामी हरिदास जी में सद्‌गुरु भावना स्थापित की थी। सूरसागर के पाठानुसार इसका गुरु द्वारा संपूर्ण कृपा करने का अर्थ है। किंतु सूरदास जी के गुरु

‡ सूर-निर्णय, पृष्ठ १५

श्री वल्लभाचार्य जी थे। "श्री वल्लभ-नख-चंद्र-छटा विनु, सब जग माँहिं अँधेरौ" के गायक सूरदास गुरु की संपूर्ण कृपा प्राप्त करने पर "हरिवंसी हरिदासी जहाँ, हरि करुना करि राखौ तहाँ" कहेंगे, यह असंगत है। 'व्यास आस कर वरनौं रास' और 'सूर आस कर वरनौं रास' मे यमक की सुंदरता पहिले उद्धरण मे ही है। इससे मानना होगा कि कवि का नाम इस स्थान पर 'व्यास' ही अधिक उपयुक्त है, न कि 'सूर'। 'करि राधे इतनी कृपा' पाठ छंद की गति के अनुसार ठीक है, किंतु 'श्री राधा वर इतनी कर कृपा' में छंद की गति सूरोचित नहीं है। श्री हरिवंश जी और हरिदास जी को जो धाम प्राप्त हुआ, उसकी प्राप्ति के लिए 'स्यामा' को ही संबोधित करना उपयुक्त है, जैसा व्यास जी ने किया है; न कि 'स्याम' को, जैसा सूर के कथित पद में है। राधावल्लभीय संप्रदाय के प्रवर्तक श्री हित हरिवंश जी के सुलभ धाम को प्राप्त करने के लिए 'राधा' की कृपा-कामना आवश्यक है। कारण कि उनके संप्रदाय में राधा की उपासना प्रधान है। यही बात श्री हरिदास जी के लिए भी लागू है। श्री युगलकिशोर के उपासी व्यास जी द्वारा 'नित्य विहार' को आधार मानना उपयुक्त है, क्यों कि उनके मतानुसार राधा रानी हैं और उन्हीं की उपासना से कृष्ण का प्रसाद भी मिल सकता है। यद्यपि सूरदास जी के गुरु वल्लभाचार्य जी ने वात्य, सख्य, दास्य और कांता चारों भावों की भक्ति करने का उपदेश दिया था, तथापि उनके पुष्टिमार्ग की सेवा में श्री कृष्ण के बाल स्वरूप की ही प्रधानता है। फलत 'नित्य विहार' के आधार की सूर द्वारा याचना मौलिक प्रतीत नहीं होती। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि १२१ त्रिपदी छंदों मे लिखी गई यह रास-पंचाध्यायी निश्चित रूप से व्यास जी की रचना है, तथा इसके कुछ शब्दों को बदल कर लिपिकारों ने इसे सूरसागर में मिलाने का व्यर्थ प्रयास किया है।

सूरदास का एक और पद देखिये—

ऐसैं बसियै व्रज की वीथिनि ।
ग्वारनि के पनवारे चुनि-चुनि, उदर भरीजे सीथिनि ॥
पैंडे के सब वृच्छ विराजत, छाया परम पुनीतनि ।
कुंज-कुंज प्रति लोटि-लोटि, व्रज-रज लागै रंग-रीतनि ॥
निसि-दिन निरखि जसोदा-नंदन, अरु जमुना-जल पीतनि ।
परसत 'सूर' होत तन पावन, दरसन करत अतीतनि† ॥

---

† नागरी प्रचारिणी सभा का सूरसागर, पद ११०८

उक्त पद का मिलान व्यास जी के निम्न पद से कीजिये—

ऐसैं हि बसियै ब्रज-बीथिनि ।
साधुन के पनवारे चुनि-चुनि, उदर पोपियत सीथिनि ॥
घूरनि में के बीन चिनघटा, रच्छया कीजै सीतिनि ।
कुंज-कुंज प्रति लता लोटि, उड़ रज लागै अंगीथिनि ॥
नित प्रति दरस स्याम-स्यामा कौ, नित जमुना-जल पीतिनि ।
ऐसैं हि 'व्यास' होत तन पावन, इहि विधि मिलत अतीतिनि ॥(व्या०६७)

व्रजभूमि और उसकी लता-कुंजों के प्रति व्यास जी की जो अनन्य भावना थी, तथा हरि-भक्तों के प्रति उनकी जो अपार श्रद्धा थी, उसे देखते हुए उपर्युक्त पद भी व्यास जी का ही सिद्ध होता है। सूर-पदावली के प्राचीन लिपि-कर्त्ताओं ने भ्रमवश अथवा जान बूझ कर उक्त पद को किंचित परिवर्तन के साथ सूरदास जी का वना दिया है।

२. व्यास-वाणी में शोध-सामग्री—

व्यास जी ने शोध-कर्ताओं के लिए अपनी वाणी में अमूल्य सामग्री दी है। किंतु स्वयं व्यास जी के प्रामाणिक जीवन-चरित्र के अभाव मे इस सामग्री का उपयोग पूर्ण रूप से साहित्य के इतिहास में अभी तक नहीं हो सका है। कुछ तथ्य,जो जनश्रुति के आधार पर प्राचीन भक्त और कवियों के जीवन-चरित्र में लिखे गये हैं, किसी साक्ष्य के विना शंका की दृष्टि से देखे जाते हैं। यह कहा जा चुका है कि व्यास जी भक्त पहिले थे और उनका काव्य भक्ति के हृदयोद्गार प्रकट करने में रचा गया था, अतएव इसमें अन्य भक्तों के तत्कालीन प्रचलित चमत्कारों का भी उल्लेख पाया जाता है। यथा—

(१) नामदेव—भक्त नामदेव के संवंध में उनका यह पद इसी प्रकार का एक उदाहरण है—

साँची भक्ति नामदेव पाई ।
कृष्न-कृपा करि दीनी जाकों, लोकनि बेद बड़ाई ॥
प्रीति जानि पय पियौ कृपानिधि, छानि छबीलैं छाई ।
चरन पकरि सठ के हठ बल ज्यों हरि सों बात कहाई ॥
जाके हित हरि मंदिर फेरयौ, चित दै गाइ जिवाई ।
जिन रोटी घी चुपरि स्याम कों, अपने हाथ खवाई ॥
जाकी जाति-पाँति-कुल बीठल, संत जना सब भाई ।
ताकी महिमा 'व्यास' कहा कहै, जाके सुबस कन्हाई ॥ (व्या०१७)

इन्हीं नामदेव के संबंध में उक्त चमत्कार पूर्ण घटनाओं में दो घटनाएँ और बढा कर व्यास जी के समकालीन नाभादास जी ने भी कदाचित उक्त पद-रचना के पश्चात्‡ अपनी भक्तमाल में उनका वर्णन किया, जो इस प्रकार है—

बाल-दसा बीठल्ल, पानि जाके पय पीयौ।
मृतक गऊ जीवाय, परचौ असुरन कौ दीयौ॥
सेज जलिल तें काढि, पहिल जैसी ही होती।
देवल उलट्यौ देखि, सकुच रहे सबही सोती॥
पंढुरनाथ कृत अनुग ज्यों, छानि स्वकर छई घास की।
नामदेव प्रतिज्ञा निर्बही, ज्यों त्रेता नरहरि दास की॥

प्राचीन भक्त-चरित्रों मे इस प्रकार के अलौकिक चमत्कारों की चर्चा होती चली आती है, किंतु इन वृत्तांतों से भी शोधक समुचित सार-तत्व प्राप्त कर लेते हैं।

(२) *कबीर*—व्यास-वाणी में कबीर का नामोल्लेख कई स्थलों पर है। यद्यपि कबीर का देहांत व्यास जी की बाल्यावस्था के समय ही हो चुका था, तथापि निस्संदेह रूप से यह कहा जा सकता है कि व्यास जी का ऐसे व्यक्तियों से अवश्य ही संपर्क रहा होगा, जो कबीर के साथी रहे हो। कबीर के संबध में व्यास-वाणी के उल्लेख बड़े महत्वपूर्ण हैं—

कलि में साँचौ भक्त कबीर।
जब तें हरि-चरननि रुचि उपजी, तब तें बुन्यौ न चीर॥×
पाँच तत्व तें जन्म न पायौ, काल ग्रस्यौ न सरीर।
'व्यास' भक्ति कौ खेत जुलाहौ, हरि - करुनामै नीर॥ (व्या० १६)

तथा—

भक्त न भयौ भक्त कौ पूत।×
बूड्यौ बंस कबीर कौ, जब भयौ कमाला पूत॥ (व्या० २८४)

इसमे कबीर के पुत्र का नाम कमाला (कमाल) की सूचना के साथ उसका भक्त न होना भी प्रगट होता है। रामानंद आदि साधुओं की

---

‡ नाभादास जी द्वारा व्यास जी के लिए 'भक्त इष्ट अति व्यास के' लिखना कदाचित इस ओर सकेत देता है कि वे 'भक्तमाल' की रचना के पूर्व व्यास जी से भक्तो की स्तुति सुन चुके थे। 'भक्तमाल' की रचना सवत् १६४२ के पश्चात् मानी जाती है और व्यास जी का कविता-काल संवत् १५६० के लगभग प्रारंभ हो जाता है।

स्मृति कर विरह-भावना व्यक्त करने वाले व्यास जी के एक पद में कबीर का रामानंद के शिष्य होने का प्रामाणिक कथन सुरक्षित है, जो श्री परशुराम जी चतुर्वेदी के अनुसार अभी तक ज्ञात सामग्री में तत्संबंधी प्राचीनतम् साक्ष्य है*। श्री चतुर्वेदी जी का कहना है—"इसी प्रकार कबीर साहब के रामानंद शिष्य होने की चर्चा सर्व प्रथम कदाचित् भक्त व्यास जी (संवत् १६१८ में वर्तमान) से आरंभ होती है और उसके अनंतर भक्तमाल श्रेणी के ग्रंथों में इस बात का उल्लेख निरंतर होता चला जाता है, तथा इन्हें तकी का उत्तराधिकारी व चेला मानने की बात गुलाम सरवर की "खजीन तुल असफिया" में बहुत पीछे दीख पडती है† ।"

वह पद इस प्रकार है—

साँचे साधु जु रामानंद ।
जिन हरि जू सों हित करि जानौ, और जानि दुख - दंद ॥
जाकौ सेवक कबीर धीर अति, सुमति सुरसुरानंद ।
तब रैदास उपासक हरि कौ, सूर सु परमानंद ॥
इनतें प्रथम तिलोचन - नामा, दुख-मोचन सुख - कंद ॥ × (२३)

(३) *तिलोचन*—उक्त पद में महाराष्ट्र प्रांत के भक्त कवि तिलोचन का भी नामोल्लेख हुआ है। उनके द्वारा सवा लाख पदों की रचना करने का लेख निम्न लिखित पद में देखिये—

सबै करत पद की रति, कहा हम थोरे हरिहिं रिझावत ।
राग-रागिनी, तान-मान महि, लालन लगतें आवत ॥ ×
सवा लाख कीने तिलोचन, हरि कौ को दरसन पावत ॥ (१६१)

(४) सूरदास आदि—'बिहारहिं स्वामी बिन को गावै' (व्या.२६) की स्थायी वाले पद में 'सूरदास बिनु पद-रचना कों,कौन कबिहिं कहि आवै' कह कर व्यास जी ने हिंदी साहित्य के सूर्य पर अपनी सम्मति दी है। उक्त पद में अष्टछाप के कृष्णदास और परमानंददास के संबंध में भी सम्मतियाँ हैं।

(५) *अन्य नामोल्लेख*—उक्त प्रकार के नामोल्लेख केवट, खेम, गंगल भट्ट, चैतन्य महाप्रभु, जैमल, जयदेव, धन्ना जाट, पीपा, पद्मावती बोधानंद, बिहारिनदास, मेहा, मीराबाई, माधवदास, मधुकरशाह, रैदास,

---

* 'उत्तरी भारत की संत-परंपरा', पृष्ठ २५८

† वही, पृष्ठ १३६

राघवानंद, रूप, सनातन, सेना नाई, सुरसुरानंद, हरिदास स्वामी और हित हरिवंश के सबध में भी हुए हैं। एक पद में तो व्यास जी ने भक्तों को अपना कुटुंबी ही कह कर उनमें आत्मीयता का भाव प्रकट किया है—

इतनौ है सब कुटुम हमारौ†।
सैन, धना अरु नामा, पीपा और कबीर, रैदास चमारौ ॥
रूप, सनातन कौ सेवक, गंगल भट्ट सुढारौ।
सूरदास, परमानंद, मेहा, मीरा भक्ति विचारौ ॥×
आसू कौ हरिदास रसिक, हरिवंस न मोहि बिसारौ ॥× (२१)

(६) *गोस्वामी तुलसीदास जी का संकेत*--व्यास जी का प्रथम बार वृंदावन जाने का समय सं० १५६१ निकलता है, और अंतिम बार वे संवत् १६१२ में वृंदावन गये तथा जीवन पर्यंत वहीं पर रहे। गोस्वामी तुलसीदास जी का वृंदावन जाने का काल निम्नलिखित ग्रंथों में तद्-विषयक प्रसंगों की समीक्षा करने पर अलग-अलग समय में प्रकट होता है—

१. मूल गोसाईं चरित के अनुसार संवत् १६४६ के लगभग ।
२. दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता से संवत् १६२६ के लगभग‡ ।

उपरोक्त दोनों संवतों मे व्यास जी का वृंदावन में ही निवास था। इन ग्रंथों में कृष्ण द्वारा गोस्वामी तुलसीदास की अनन्य राम-भक्ति के प्रण की रक्षा के लिए धनुष-बाण धारण करने की घटना का उल्लेख किया गया है। किंतु इस घटना के चमत्कार का श्रेय दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता मे नंददास की भक्ति को दिया गया है। मूल गोसांई चरित में वह गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति के प्रभाव से वर्णित है। उक्त दोनों ग्रंथों के लेखक अपने-अपने संप्रदाय का आग्रह रखते थे। मूल गोसांई चरित की प्रामाणिकता में भी संदेह किया जाता है। अतएव इस विषय पर प्रियादास जी की 'भक्ति-बोधिनी' भक्तमाल की टीका तीसरा साक्ष्य मान लेना होगा, जो टीकाकार के चैतन्य संप्रदायी होने के कारण उक्त दोनों सांप्रदायिक आग्रहों से मुक्त है, एवं जिसके अनुसार वृंदावन मे तुलसीदास की यात्रा के समय उनकी अनन्यता की टेक रखने के लिए कृष्ण

† भगवतरसिक (जन्म सं० १७६५ के लगभग) ने भी ४४ चरणों का एक बड़ा पद लिखा है। इसमें उन्होंने 'व्यास जी' के नाम का भी समावेश किया है— हममों इन साधुन सों पंगति।×
व्यासदास, हरिवंस गुसांई, दिन दुलराए दंपति ॥

‡ सूर निर्णय, पृष्ठ ६४

मूर्ति का धनुष-बाण धारणकरने की चमत्कारपूर्ण कथा का श्रेय तुलसीदासजी को ही था। यद्यपि इस प्रकार की चमत्कारपूर्ण घटनाओं की ऐतिहासिक समीक्षा करना अभिप्रेत नहीं है, तथापि जिन व्यास जी के सबंध में हमें निर्णय करना है, वे दैवी चमत्कारों मे पूर्ण विश्वास रखते थे, जैसा कि उनके 'सॉची भक्ति नामदेव पाई' आदि पदों मे वर्णित घटनाओ से प्रकट है। नामदेव के हाथ से भगवान के दूध पी जाने की चमत्कारपूर्ण घटना व्यास जी की साखी में भी वर्णित है—

नामा के कर पय पियौ, खाई ब्रज की छाक।
'व्यास' कपट हरि ना मिलैं, नीरस अपरस पाक॥

अतएव हमें इस हेतु तो उस घटना को मान ही लेना पड़ेगा। व्यास जी का उक्त घटना को संकेत करने वाला पद यह है—

करौ भैया साधुन ही सों सग।
पति-गति जाय असाधु संग तें, काम करत चित भंग॥
हरि तें हरिदासिन की सेवा, परम भक्ति कौ अंग।
जिनके पद तीरथमै पावन, उपजावत रस - रंग॥
जिनके बस दरसथ-सुत मारयौ, माया कनक कुरग।
तिनके कहत 'व्यास' प्रभु सुमरयौ, सत्वर धनुष-निषंग॥ (व्या० २१७)

यहाँ पर व्यास जी के 'प्रभु' वृ दावन विहारी श्री कृष्ण हैं, न कि विष्णु, क्यों कि व्यास जी ने अपने कितने ही पदों में नारायण या विष्णु को अपने प्रभु राधावल्लभ से प्रथक कहा है। कृष्ण के इस प्रकार धनुष-बाण धारण करने की कथा अन्य किसी साधु के संबंध में प्रचलित न होने के कारण इस पद में गोस्वामी तुलसीदास से संबंधित इस चमत्कारिक घटना के संकेत को अभिप्रेत समझना चाहिये।

रहा रसिकानन्य व्यास जी द्वारा रामभक्तों की प्रशंसा का प्रश्न। इसके लिए इतना कहना ही पर्याप्त है कि राम-भक्ति के प्रसिद्ध प्रचारक श्री रामानद के सबध में "सॉचे साधु जु रामानद" पद निश्चयात्मक रूप से व्यास जी की सवत् १६४० वि० के बाद की रचना है, जब कि वे अनन्य व्रत को पूर्ण रूप से ले चुके थे। इस पद में कबीर, सुरसुरानंद, रैदास आदि रामानंदी एवं अन्य उन प्रमुख साधुओं में श्रद्धा प्रकट की गई है, जो उस समय परमधाम को प्राप्त कर चुके थे। । अतएव कृष्ण द्वारा धनुष-बाण धारण करने की अन्य कोई घटना प्रसिद्ध न होने के कारण आलोच्य पद मे लेखक को गोस्वामी तुलसीदास जी का ही संकेत मान्य है।

द्वितीय खंड

वाणी-संकलन



'व्यास-वाणी' की महिमा—

जय जय बिसद व्यास की वानी ।
मूलाधार इष्ट रसमय, उत्कर्ष भक्ति रस सानी ॥
लोक बेद भेदन तें न्यारी, प्यारी मधुर कहानी ।
स्वादित सुचि रुचि उपजै, पावत मृदु मनसा न अघानी ॥
सक्ति अमोव विमुख-भजन की, प्रगट प्रभाव वखानी ।
मत्त मधुप रसिकन के मन की, रस रंजित रजधानी ॥
कलि के कलुप विदारन कारन, तीछन तरल कृपानी ।
कपट-दंभ कूरी दूरी कर, बसन दास पन छानी ॥
रस श्रृंगार सरस जमुना सम, बर धारा घहरानी ।
बिधि-निषेध तरुवर तरु तोरत, हरि जस जलधि समानी ॥
सुदर बदन जुगल छबि भूपन, चीर चातुरी ठानी ।
पहिरै प्रेम कंचुकी सोहत, मुख मदिर महरानी ॥
स्रवन सीप चातक विरही कों, ज्यों स्वातिन कौ पानी ।
सुख सतोष वढावै, दूजै मुक्ति फलद अनुमानी ॥
हरि-लीला सागर तें रस भर बरषे सुभ्भर सुहानी ।
सींचत सुहृद हृदय के दारुन, घनमाला सम जानी ॥
भक्ति अनन्य सलिल उपजाई, मृदुल सघन सरसानी ।
पायैं ताहि छुधित जन मन के, जियैं जीव सुखमानी ॥
जनु संतन क सुजस चंद्र की, सोभा स्वच्छ दिखानी ।
जातें जाइ प्रकृति जामिन कौ, तम तामस दुखदानी ॥
जुगल विहार विटप सों लिपटी, सुबरन बेलि निवानी ।
लगे रँगीले सुमन जासु में, फल रसमय निर्बानी ॥
दधि माधुर्य, माठ बृंदावन, भरौ अमोघ अमानी ।
सहज सतोगुन बँधौ जासु में, गोपी सुमति सयानी ॥
सखी रूप नवनीत उपासक, अमृत निकरयौ आनी ।
'नीलसखी'† प्रनमामि नित्य, सो अद्भुत कथन मथानी ॥

'इन (व्यास जी) की रचना परिमाण में भी बहुत विस्तृत है, और विपय-भेद के विचार से भी अधिकाश कृष्ण-भक्तों की अपेक्षा व्यापक है* ।..'

—आचार्य रामचद्र शुक्ल

---

† नीलसखी जी का जन्म ओरछा में (स० १८०० मे) हुआ था, किंतु वे अधिकतर वृंदावन में ही रहे। उनकी ११० पदों की वाणी उपलब्ध है ।

—बुंदेल वैभव, भाग २, पृष्ठ ४६१

* हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १९०

प्रथम परिच्छेद

सिद्धांत



१. मंगलाचरण—

राग सारंग

वंदे श्री सुकल - पद-पंकजन ।
सत्त-चित्त-आनद की निधि, गई हिय की जरन ॥
नित्य वृंदाविपिन संतत जुगल मम आभरन ।
'व्यास' मधुपहिं दियौ सर्वसु, प्रेम-सौरभ सरन ॥१॥

२. गुरु-महिमा—

राग बिलावल

गुरु की सेवा हरि करि जानी ।
गये उज्जैन, रैन-दिन दुख सहि, तजि मथुरा रजधानी ॥
छाँड़ी प्रभुता पाँइ लगत है, दास कहत सुखदानी ।
गद्-गद् सुर पुलकित वेपथ, सोहत गो-रज लपटानी ॥
इहिं विधि रहत बहुत दिन बीते, गुरु-घरनी अनखानी ।
पीसत, पोवत, करत रसोई, हौं जु भई नकवानी ॥
यह सुनि सकुचि गये वन मोहन, सिर धरि मौरी आनी ।
भूखें प्यासें मेहु सह्यौ निसि, भोर भर्‌यौ हरि पानी ॥
दियौ जिवाइ मृतक सुत तब हीं, गुरु महिमा पहिचानी ।
हरि के गुन-गन कहौं कहाँ लगि, 'व्यास' विमुख अभिमानी ॥२॥

राग केदारौ

गुरु गोविंद एक समान ।
वेद पुरान कहत भागवत, ते जु वचन परमान ॥
एकै सिष्य लीक देत हैं, गुरु सों दूर भयें परसावत ।
छियें छोति मानत हैं छुतिहा, सींचौ ले पुनि धावत ॥
जैसी रीति सेप सोफिन की, ऐसी रीति चलावत ।
संन्यासी पै मंत्र सुनत हैं, ते कब भक्त कहावत ॥
गुरु गाडे चेला ले वारें, दोऊ पंथ तुरंत भये ।
उत संन्यास न इतहिं भक्ति-फल, खल नर बीचहिं बीच गये ॥
दीच्छा वस्तु पलटु है ऐसौ, दिया दिया है जैसौ ।
'व्यास' बीज बोवत हैं जैसौ, फल लागत है तैसौ ॥३॥

राग बिलावल

जैसे गुरु तैसे गोपाल ।
हरि तो तव ही मिलि हैं, जव ही श्री गुरु होहिं कृपाल ॥
गुरु रूठें गोपाल रूठि हैं, बृथा जातु है काल ।
एक पिता बिनु गनिका-सुत कौ, कौन करै प्रतिपाल ॥
ज्यों रज बिनु रजपूत कपूत जिय देखत रन कौ चाल ।
ऐसैं ही गुरु के बिमुख सिष्य कौ जम करिहैं वेहाल ॥
संत सग गुरू की सेवा करि, सुपचहिं करत निहाल ।
'व्यास' दास बिजयें गुरु जुग-जुग मिटत नहीं उर-साल ॥४॥

३. साधु-स्तुति— राग सारग

नमो नमो नारद मुनिराज ।
विषयनि प्रेम-भक्ति उपदेसी, छल-बल किये सबनि के काज ॥
जासों चित दै हित कीनौ, ते सब सुधरे साधु समाज ।
'व्यास' कृष्ण-लीला रँग राचे, मिट गई लोक-बेद की लाज ॥५॥

राग सारग

नमो नमो जय सुकदेव-बानी ।
जा सुमिरत हरि मन में आवत, गावत सुधरे सब अभिमानी ॥
तासों प्रीति करत भ्रम छूटत, करम दुरासा त्रास डरानी ।
मद मत्सर माया सुत जाया, काया बिसरी सब दुखदानी ॥
जिन सर्वोपरि बृंदावन की, सहज माधुरी केलि बखानी ।
निर्मल भजन अनन्य कियौ जिन, निरसे जोगादिक तुछि ध्यानी ॥
जिनकी विषै भागवत संतत, भक्ति-भाव भक्तन पहिचानी ।
जय जय 'व्यास' उत्तरानदन, आनँदकंद सरद घन पानी ॥६॥

राग सारग

सुक नारद से भक्त न कोऊ, जिहिं भागवत सुनायौ ।
विनु भागवत भक्ति न उपजै, साधन साधि बतायौ ॥
जिनके वचन सुनत, संदेह परीच्छत देह भुलायौ ।
ससारी ,ताकों करुना करि सुखदानी दिखरायौ ॥
जिनकी कृपा कृपाल होत हरि, सुत ह्वै आपु बँधायौ ।
तिन कारन गिरवर धरि, विष पावक पीवत सुख पायौ ॥
कहा-कहा न कियौ करुनानिधि, निज दासनि कौ भायौ ।
कोटि अजामिल हू तें पापी, 'व्यास' हिं नाम लिवायो ॥७॥

राग धनाश्री

पद्मावती-पति-पद सरनम् ।

कुंजकेलि- कविराज मुकुटमनि, रसिक अनन्यनि आभरनम् ॥

श्री हित हरिवंस हंस मुख सुखमय, वचन रचन दुख जल तरनम् ।

श्री जयदेव 'व्यास' कुल वंदित, ब्रज जुवती नट नृत करनम् ॥८॥

राग सारंग

श्री जयदेव से रसिक न कोई, जिन लीला - रस गायौ ।
जाकी जुगति अखंडित मंडित, सबही के मन भायौ ॥
विविध विलास कला कवि मंडन, जीवन के भागनि आयौ ।
'पतति पतत्रे' मुख निसरत ही,राधा-माधव कौ दरसन पायौ ॥
बृंदावन कौ रसमय वैभव, जिनि पहिलैं सबनि सुनायौ ।
ता पाछैं औरन कछु पायौ, सो रस सबनि चखायौ ॥
पद्मावति-चरनन कौ चारन, जिहिं गोविंद रिझायौ ।
'व्यास' न आस करी काहू की, कुंजनि स्याम बुलायौ ॥९॥

राग गौरी

नमो-नमो जै श्री हरिवंस ।
रसिक अनन्य बेनुकुल-मंडन, लीला - मानसरोवर-हंस ॥
नमो जयति बृंदावन, सहज माधुरी रास-विलास प्रसंस ।
आगम-निगम अगोचर, राधे-चरन-सरोज 'व्यास'-अवतंस ॥१०॥

मैदा-मिश्री-मुहरें मेरैं, श्री बृंदावन की धूरि ।
जहाँ राधा रानी, मोहन राजा, राज रह्यौ भरिपूरि ॥
कनक कलस, करुवा महमूदी*, खासा ब्रज कमरनि की चूरि ।
'व्यास'हिं हित हरिवंस† बताई, अपनी जीवनि - मूरि ॥११॥

राग सारंग

अनन्य नृपति श्री स्वामी हरिदास ।
श्री कुंजविहारी सेये बिनु, जिन छिन न करी काहू की आस ॥
सेवा सावधान अति जान, सुघर गावत दिन रास ।
ऐसौ रसिक भयौ ना ह्वै है, भुवमंडल आकास ॥
देह विदेह भये जीवत ही, विसरे विस्व - विलास ।
श्री बृंदावन-रज तन-मन भजि, तजि लोक-वेद की आस ॥

* महमूदी (ग, च, छ), मैहमूदी (ख)

† हेत हरिवंश (ख), हिति हरिवस (ग), हित हरिवश (च), श्री हरिवस (छ)

प्रीति-रीति कीनीं सब ही सों, किये न खास खवास ।
अपनौ व्रत हठि ओर निवाह्यौ, जब लगि कठ उसास ॥
सुरपति, भूपति, कंचन, कामिनि, जिनकें भायें घास ।
अब के साधु 'व्यास' हम हू से, जगत करत उपहास ॥१२॥

राग नट

श्री हरिवंस से रसिक, हरिदास से अनन्यनि की,को बपुरा अब करि सकै सारी ।
जिन बृंदावन साँचौ करि जान्यौ, राधावल्लभ, कुंजविहारी ॥
रूप - सनातन हैं वैरागी, उपकारी सब के हितकारी ।
'व्यास' धन्य - धन्य ब्रजवासी, कृष्णदास गोवर्धन - धारी ॥१३॥

राग जयतिश्री

श्री माधवदास सरन में आयौ ।
हौं अजान,ज्यों नारद ध्रुव सों कृपा करी, सदेह भगायौ ॥
जिनहिं चाहि गुरु सुकल तज्यौ वपु फिरकैं दरसन पायौ ।
मो सिर हाथ धरौ करुना करि, प्रेम-भक्ति - फल पायौ ॥
हरिवंसी, हरिदासी सों मिलि, कुंजकेलि-रस गाय सुनायौ ।
गुरु,हरि,साधु, नाम, बन,जमुना,महाप्रसाद रसालय भायौ ॥
जातें सहज प्रिया - प्रीतम वस, कलजुग बृथा गँवायौ ।
मनसा, वाचा और कर्मना, 'व्यास'हिं स्याम बतायौ ॥१४॥

राग देवगाधार

जै-जै मेरे प्रान सनातन-रूप !
अगतिन की गति दोऊ भैय्या, जोग-जज्ञ के जूप ॥
बृंदावन की सहज माधुरी, प्रेम-सुधा के कूप ।
करुनासिंधु, अनाथबंधु, जय भक्त-सभा के भूप ॥
भक्ति भागवत-मति आचारज - कुल के चतुर चमूप ।
भुवन चतुर्दस विदित विमल जस, रसना के रस-तूप ॥
चरन-कमल कोमल रज - छाया, मेटत कलि-रवि धूप ।
'व्यास' उपासक सदा उपासी राधा-चरन अनूप ॥१५॥

राग सारग

कलि में साँचौ भक्त कबीर ।
जब तें हरि चरननि रुचि उपजी, तब तें बुन्यौ न चीर ॥
दीनौ लेइ न कबहूँ जाँचै, ऐसौ मत कौ धीर ।
जोगी, जती, तपी, संयासी, तिनकी मिटी न पीर ॥
पाँच तत्व तें जनम न पायौ, काल ग्रस्यौ न सरीर ।
'व्यास' भक्ति कौ खेत जुलाहौ, हरि करुनामय नीर ॥१६॥

राग सारंग

सॉची भक्ति नामदेव पाई।
कृष्न-कृपा करि दीनी जाकों, लोकन-वेद बड़ाई ।।
प्रीति जानि पय पियौ कृपानिधि,छाँनि छवीलैं छाई ।
चरन पकरि सठ के हठ वल,ज्यों हरि सों वात कहाई ।।
जाके हित हरि मंदिर फेर्यौ, चित दै गाइ जिवाई ।
जिन रोटी घी चुपरि स्याम कों अपने हाथ खवाई ।।
जाकी जाति-पाँति-कुल वीठल, संतजना सव भाई ।
ताकी महिमा 'व्यास' कह कहै, जाकें सुवस कन्हाई ।।१७।।

राग धनाश्री

प्रबोधानंद से कवि थोरे।
जिन राधावल्लभ की लीला-रस में सव रस घोरे।
केवल प्रेम-विलास आस करि, भव-बंधन दृढ़ तोरे ।।
सहज माधुरी वचननि, रसिक अनन्यनि के चित चोरे।
पावन रूप-नाम-गुन उर धरि, विषै-विकार जु मोरे ।।
चारु चरन-नख-चंद-विंव में, राखे नैन चकोरे।
जाया, माया, गृह, देही सों, रवि-सुत वंधन छोरे ।।
लोक-वेद सारंग अंग के, सेत हेत के फोरे।
यह प्रिय'व्यास'आस करि, हित हरिवंसहिं प्रति कर जोरे ।।१८।।

श्री राधावल्लभ की नव कीरति, वरनत हू न सिरात ।
भरतखंड की सुकवि मंडली, वरनत हू न अघात ।।
वड़े रसिक जयदेव वखानी, लीला - अमृत चुचात ।
वृंदावन हरिवंस प्रसंसित, सुनि गोरी मुसिकात ।।
राग सहित हरिदास कही, रस-नदी वही न थहात ।
रसिक अनन्यनि की जूठनि,'व्यास'सखी रुचि-सुचि कै खात ।।१६।।

राग धनाश्री

सॉची प्रीति श्री विहारिनदासै।
कै करुवा, कै कुंज - कामरी, कै धरु श्री स्वामी हरिदासै ।।
प्रतिवाधक सहि सकत न जिनकें, जानत नहीं कहा कहै त्रासै ।
महा माधुरी मत्त मुदित ह्वै गावत, रस जस जगत उदासै ।।
छिन ही छिन परतीत वढ़त,रस-रीतनि देखि विवि वदन विलासै ।
अँग-अँग नित्य विहार करत मिलि, इहै आस निजु वन वसि'व्यासै' ।।२०।।

राग धनाश्री

इतनौ है सब कुटुम हमारौ ।
सैन, धना अरु नामा, पीपा और कबीर, रैदास, चमारौ ।।
रूप, सनातन कौ सेवक, गंगल भट्ट सुढारौ ।
सूरदास, परमानद, मेहा, मीरा भक्ति बिचारौ ।।
बाह्मन राजपुत्र कुल उत्तम, तेऊ करत जाति कौ गारौ ।
आदि अंत भक्तन कौ सर्वसु, राधावल्लभ प्यारौ ।।
आसू कौ हरिदास रसिक, हरिवंस न मोहिं बिसारौ ।
इहि पथ चलत स्याम-स्यामा के,'व्यास'हिं बोरौ,भावहिं तारौ।।२१।।

राग सारंग

मेरैं भक्त हैं देई - देऊ ।
भक्तनि जानौ, भक्तनि मानौ, निज जन मोहिं बतेऊ ।।
माता, पिता, भैय्या मेरे भक्त-दमाद, सजन, बहनेऊ ।
सुख-संपति परमेस्वर मेरैं, हरिजन जाति - जनेऊ ।।
भवसागर कौ बेरौ भक्तै, केवट कह हरि खेऊ ।
बूडत बहुत उबारे भक्तनि, लिये उबार नरेऊ ।।
जिनकी महिमा कृष्न कपिल कहि, हारे सर्वोपरि बेऊ ।
'व्यास' दास के प्रान-जीवन-धन, हरिजन बाल-बडेऊ ।।२२।।

४. साधु-विरह—

राग सारंग

साँचे साधु जु रामानंद ।
जिन हरि जू सों हित करि जान्यौ, और जानि दुख दंद ।।
जाकौ सेवक कबीर धीर अति, सुमति सुरसुरानंद ।
तब रैदास उपासक हरि के, सूर-सु परमानंद ।।
इनतें प्रथम तिलोचन-नामा, दुखमोचन सुखकंद ।
खेम-सनातन भक्तिसिंधु, रस रूप, राघवानंद ।।
अलि हरिबंसहिं फब्यौ, राधिका-पद-पंकज मकरंद ।
कृष्नदास, हरिदास उपास्यौ, बृंदावन कौ चंद ।।
जिन बिनु जीवत मृतक भये हम, सह्यौ बिपति कौ फंद ।
तिनु बिनु उर कौ सूल मिटै क्यों, जियैं 'व्यास' अति मंद ।।२३।।

राग देवगंधार

हुतौ सुख* रसिकनि कौ आधार ।
बिनु हरिबंसहिं सरस रीति कौ, कापैं चलि है भार ।।

* सुख (ख, ग, छ); रस (ङ, च,)

को राधा दुलरावै-गावै, वचन सुनावै चार।
श्री वृंदावन की सहज माधुरी, कहि है कौन उदार॥
पद-रचना अब कापै ह्वै है, निरस भयौ संसार।
बड़ौ अभाग अनन्य सभा कौ, उठिगौ ठाठ-सिंगार॥
जिन बिनु दिन-छिन सतजुग बीतत, सहज रूप आगार‡।
'व्यास' एक कुल कुमद - बंधु बिनु, उडगन जूठौ थार॥२४॥

राग धनाश्री

पै न छवि कोऊ कवन बखानै।
जीव कुकात प्रीति कहिबे कौं, व्याकुल होत अयानै।
अति अगाध रस-सिंधु-माधुरी, वेई पै कहि जानै।
ताकौ बार-पार नहिं पावत, बिधि-सिव-सेष धरत श्रुति ध्यानै॥
कोटि-कोटि जयदेव सरीखे, कहत सुनत न अघानै।
'व्यास' आस मन की को पुजवै, श्री हरिवंस समानै॥२५॥

राग सारंग

बिहारहिं* स्वामी बिनु को गावै।
बिनु हरिवसहिं, राधावल्लभ को रस-रीति सुनावै॥
रूप - सनातन बिनु, को बृंदाविपिन - माधुरी पावै।
कृष्नदास बिनु, गिरधर जू कौं को अब लाड़ लड़ावै॥
मीराबाई बिनु, को भक्तनि पिता जान उर लावै।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु, को सब बंधु कहावै॥
परमानंददास बिनु, को अब लीला गाइ सुनावै।
सूरदास बिनु पद-रचना कौं, कौन कबिहिं कहि आवै॥
और सकल साधन बिनु, को कलिकाल कटावै।
'व्यासदास' इन बिन, को अब तन की तपन बुझावै॥२६॥

राग सारंग

साधु-सिरोमनि रूप-सनातन।
जिनकी भक्ति एक रस निबही, प्रीत कृष्न-राधा तन॥
जाकौ काज सवाँर्‌यौ चित दै, हित कीनौ छिन ता तन।
जाके विषय-वासना देखी, मनसा करी न बातन॥

---

‡ आगार (च, छ), सिंगार (ख), (ग) प्रति में लिखित इन पद में यह चरण ही नहीं है।

* विहारहिं (ख); विहारिहि (ग);

श्री बृंदावन की सहज माधुरी, रोम-रोम सुख गातन ।
सब तजि कुंज-केलि भज अहनिसि,अति अनुराग सदा तन ॥
तृन हू तें नीचे, तर हू तें सहकर, अमानी, मान सुहात न ।
असि-धारा व्रत ओर निवाहौ, तन-मन कृष्न-कथा तन ॥
करुनासिंधु कृष्न चैतन्य की कृपा फली दुहुँ भ्रातन ।
तिन बिनु 'व्यास' अनाथ भयें, अब सेवत सूखे पातन ॥२७॥

५. जमुना जी की स्तुति—

राग कान्हरौ

जमुना जोरी जू की प्यारी ।
जाकौ वैभव कहौ भागवत, सुक, जयदेव विचारी ॥
मनिमय तटी, उभय पट-भूषन, पूपन पियहिं सिंगारी ।
सौरभ-सुधा सलिल, जनु राधा-मोहन की रस - झारी ॥
सुरतरु राज विराजत, तीर कुटीर समीर सँवारी ।
कुसुमित नमित विविध साखा सों, प्रान समान सुखारी ॥
महलन के मारग जल छलबल, विहरत निपुन विहारी ।
ऐंननि लै नैनन - सैनन में, व्याकुल बसत विकारी ॥
हंस हंसिनी सभा प्रससित, जय बृषभान-दुलारी ।
'व्यास'-स्वामिनी, स्याम-भामिनी, बृंदावन-चंद उज्यारी ॥२८॥

६. महाप्रसाद की स्तुति—

राग सारंग

हमारी जीवन-मूरि प्रसाद ।
अतुलित महिमा कहत भागवत, मेंटत सब प्रतिवाद ॥
जो षट मास व्रतनि कीनैं फल, सो एक सीथ के स्वाद ।
दरसन पाप नसात, खात सुख, परसत मिटत विषाद ॥
देत-लेत जो करै अनादर, सो नर अधम गवाद ।
श्री गुरु सुकल प्रताप 'व्यास', यह रस पायौ अनह्लाद† ॥२६॥

हरि-प्रसाद क्यों लेत नारकी ।
व्याह-सराध अधम जहँ जूठनि खात फिरत संसार की ॥
जा मुख सलिता बहै निरंतर, विष-लोहू-कफ-लार की ।
तिहिं मुख सुखद जाय क्यों जूठनि, ब्रज-जुवतिन के जार की ॥

---

† श्री गुरु सुकल प्रताप 'व्यास' यह रस पायौ अनह्लादि (ग) 'श्री गुरु सकल प्रताप 'व्यास' यह रस पायौ अनह्लाद (च); 'व्यास' प्रीति परतीत रीति सों जूठन तै गुन नाद (ख, च)

ताहि न वृंदावन-रज रुचि है, राधा-पद सुकुँवार की ।
जाकी देहैं टेच परी है, कदरज ढोली खार की ॥
ज्यों असती आराधन जारहिं, तजि सेवा भरतार की ।
ऐसैं 'व्यास' कहावत निगमन, विषय-नदी विष-धार की ॥३०॥

७. नाम की स्तुति—

राग कान्हरौ

परम धन राधा नाम अधार ।
जाहिं स्याम मुरली में टेरत, सुमिरत वारंवार ॥
जंत्र, मंत्र अरु वेद-तंत्र में, सबै तार कौ तार ।
श्री सुक प्रकट कियौ नहिं यातें, जानि सार कौ सार ॥
कोटिन रूप धरैं नँदनंदन, तौऊ न पायौ पार ।
'व्यासदास' अब प्रगट बखानत, डारि भार में भार ॥३१॥

लागी रट राधा, श्री राधा नाम ।
ढूँढ़ि फिरी वृंदावन सगरौ, नंद - ढिठौना स्याम ॥
कै मोहन है खोर साँकरी, कै मोहन नँदगाम ।
श्री 'व्यासदास' की जीवन राधे, धनि बरसानौ गाम ॥३२॥

राग गौरी

हरि-हरि-हरि मेरैं आधार । हरि-हरि मेरैं सहज सिंगार ॥
हरि-हरि सकल सुखन कौ सार । हरि-हरि 'व्यास' कृपन के भंडार ॥३३॥

राग भैरव

हरि बोलि, हरि बोलि, प्यारी रसना । हरि बोले बिनु नरकहिं बसना ॥
हरि बोलि, नाँचि न मेरे मना । हरि बोलि, होइ निरमल तना ॥
हरि बोलि, पर-निंदा नहीं करना । हरि बोलि, राधा-चरन सरना ॥
हरि बोलि, वृंदाविपिन गहना । हरि बोलि, हरि बोलि सबै सहना ॥
हरि नाम, हरि नाम सदा जपना । हरि बिन 'व्यास' न कोऊ अपना ॥३४॥

राग सारंग

गोपाल कहियै, गोपाल कहियै । गोपाल कहियै, कछु और न कहियै ।
गोपाल कहियै, दुख-सुख सहियै । गोपाल ज्यों राखैं, त्यों ही रहियै ॥
गोपाल गाइयै, परम पद लहियै । 'व्यास' बेगि वृंदावन गहियै ॥३५॥

राग नट

नरहरि गोविंदे गोपाला ।
दीनानाथ, दयानिधि सुंदर, दामोदर नँदलाला ॥
सरन - कलपतरु चरन कामधेनु, आरति हरन कृपाला ।
महा पतित पावन, मनभावन, राधारमन रसाला ॥

अघ, वक, वकी, वत्स, धेनुक, कंस, केसि कुल काला ।
साधु सभा हरि पुष्ट करहिं, दिन दुष्टन के घर घाला ॥
मानसरोवर रसिक अनन्य, हृदय कल कमल मराला ।
घन तन स्याम, नाम राधा-धव, नागर नैन बिसाला ॥
इंद्र नीलमनि मोहन तन छवि, कचन तन ब्रजबाला ।
'व्यास'-स्वामिनी हरि उर राजत, मानहुँ चंपक-माला ॥३६॥

राग धनाश्री

जय श्री कृष्णा, जय श्री कृष्णा, जय श्री कृष्णा, जय जगदीसा ।
असुर - सँहारन, विपति - विदारन, ईस्मन हू के ईसा ॥
कृष्ण - मुरारी, कुंज - विहारी, बाल - मुकुंदे, लाला ।
दीन - उधारी, संत - सुधारी, गिरिधारी, गोपाला ॥
जदुकुल - नायक, दीन - सहायक, सुख - दायक, जन - बंधू ।
सुखमा - सुंदर, महिमा - मंदिर, करुना - पूरन सिंधू ॥
गोधन-गोहन, वन - घन - सोहन, मन - मोहन, ब्रज - चंदा ।
नटवर नागर, परम उजागर, गुन-सागर, गोविंदा ॥
जदुकुल - नदन, दनुज - निकंदन, करत सनंदन सेवा ।
जय गरुड़ासन, प्रेम प्रकासन, 'व्यासदास' कुल देवा ॥३७॥

८. श्री वृंदावन की स्तुति—

राग सारग

कहत हू वनै न ब्रज की रीति ।
यह सुख सुक-सनकादिक माँगत, माया-मोहहिं जीति ॥
सब गोपाल उपासिक, तन-मन वृंदावन सों प्रीति ।
एक गोविंद चद लगि छाँड़ी, लोक-वेद की भीति ॥
सहज सनेह देह गति विसरी, वाढ़ी सहज समीति ।
संपति सदा रहत, विपदा महिमोहन की परितीति ॥
अगनित प्रलय-पयोधि बढ़त हू, मिटी न घोष वसीति ।
'व्यास' विहारिहिं विहरत वन, अवतार गये सब वीति ॥३८॥

राग सारग

सदा वृंदावन सब की आदि ।
रसनिधि,सुखनिधि,जहाँ विराजत नित्य, अनंत, अनादि ॥
गौर-स्याम कौ सरन, हरन दुख, कंद - मूल - मुंजादि ।
सुक, पिक, केकी, कोक, कुरंग, कपोत, मृगज, सनकादि ॥

कीट, पतंग, विहंग, सिंह, कपि, तहाँ सोहत जनकादि ।
तरु, तृन, गुल्म, कल्पतरु, कामधेनु, गो, वृष, धर्मादि ॥
मोहन की मनसा तें प्रगटित, अंस - कला कपिलादि ।
गोपिन कों नित नेम - प्रेम, पद-पंकज जल - कमलादि ॥
राधा दृष्टि सृष्टि सुंदरि की, बरनत जयदेवादि ।
मथुरा मंडल के जादव कुल, अति अखंड देवादि ॥
द्वादस वन में तिलु - तिलु धरनी, मुक्ति तीर्थ गंगादि ।
कृष्ण जन्म अचला न चलै, जो होहिं प्रलय मन्वादि ॥
गिरि गह्वर बीथी रति रन में, कालिंदी सलितादि ।
सहज माधुरी मोद विनोद, सुधा-सागर ललितादि ॥
सबै संत सेवत निरबैरिन, लखि माया नासादि ।
सेष - असेष पार नहिं पावत, गावत सुक-'व्यासा'दि ॥३९॥

राग कामोद

धनि-धनि बृंदावन की धरनि ।
अधिक कोटि वैकुंठ लोक ते, सुक - नारदमुनि बरनि ॥
जहाँ स्याम की वास केलि कुल धाम, काम-मन हरनि ।
ब्रह्मा मोह्यौ ग्वाल मंडली, भेद रहित आचरनि ॥
राधा की छवि निरखत मोही, नारायन की घरनि ।
और बार कीनी वनि वनिता, प्रेम पतिहिं अनुसरनि ॥
जहाँ महीरुह राज विराजत, सदा फूल-फल फलनि ।
तहाँ 'व्यास' बसि ताप बुझायौ, अंतरहित की जरनि ॥४०॥

राग सारंग

छबीली बृंदावन की धरनि ।
सदा हरित, सुख भरित, मोहनी मोहन परसत करनि ॥
धवल धेनु छवि नवल ग्वाल फबि, सोभित द्रुम की जरनि ।
रंग भरी अँग-अँग विराजत, पल्लव लव-लव धरनि ॥
चंद्रक चारु सिंगार, केकि-नट नाचत मिलि नागरनि ।
गुन अगाध राधा - हरि गाइ-बजावत सुख-सागरनि ॥
कुंज-कुंज कमनीय कुसुम, सयनीय केलि आचरनि ।
कुच गहि चुंबन करि दुख मेटि, भेंटि भुज आँकौ भरनि ॥
पावक-पवन, चंद-तारा जहँ, आभासत नहिं तरनि ।
'व्यास' स्वामिनी कौ बल-वैभव, कहि न सकत कवि डरनि ॥४१॥

श्री बृंदावन की सोभा देखत, मेरे नैन सिरात ।
कुंजनि - कुंज पुंज सुख बरषत, हरपत सबके गात ॥
राधा-मोहन के निज मंदिर, महा प्रलय नहिं जात ।
ब्रह्मा तें उपज्यौ न अंड ते, कमल सिखंड नसात ॥
फन पर रवि तर नहीं विराट महँ, कमला पुर के तात ।
माया-काल रहित, नित नूतन, सदा फूल-फल-पात ॥
निर्गुन-सगुन ब्रह्म तें न्यारौ, विहरत सदा सँघात ।
'व्यास' बिलास-रास अदभुत गति,निगम अगोचर बात ॥४२॥

राग धनाश्री

माया-काल न रहत, बृंदावन रसिकन की रजधानी ।
सदा राज ब्रजराज लाडिलौ, राधा संतत रानी ॥
मथुरा मंडल देस सुबस, गढ़ गोवर्धन सुखदानी ।
रास भंडार सुभोग रहत, अति पावन जमुना पानी ॥
बंसीवट छत्र, पुलिन सिंघासन, मृदंग अलि-पिक-बानी ।
कटि-काछनी टिपारौ बाँधे, मोरन सुधंग ठानी ॥
निर्भय राजपथ, चिर वीथिन, महल निकुंज रवानी ।
प्रतीहार ब्रजवासी रोकत, सपनैं हु न जात अभिमानी ॥
हरिवंसी - हरिदासी महलनि साधु सनातन जानी ।
बेगि खबर करि 'व्यास' गुदरिबी, पिछिली हू पहिचानी ॥४३॥

राग केदारौ

श्री बृंदावन की सोभा देखत, विरले साधु सिरात ।
विटप-बेलि मिलि केलि करत, रस-रंग अंग लपटात ॥
भुज-साखनि परिरंभन, चुंबन देत परसि मुख पात ।
कुच फल सदय हृदय पर राजत, फूल दसन मुसकात ॥
कोटर स्रवन सुनत मृदु कुजनि, किसलय नैन चुचात ।
नित्य बिहारहिं खग सुर गाइनि गावत सुरभि सुवात ॥
इहिं रस जिनके तन-मन राचे, तिनहिं न और सुहात ।
'व्यास' विलास-सिंधु लोभिन के उर-सरवर न समात ॥४४॥

राग केदारौ

सुखद सुहावनौ बृंदावन लागत है अति नीकौ ।
त्रिविध समीर बहै, रुचिदाइक भाँवते-भाँवती कौ ॥
मोर, चकोर, हंस-हंसिनि युत, पीवत पान अधर-रस पी कौ ।
पलक न लगत अंग छवि निरखत, जानत जीवन जी कौ ॥

मुरली बजाइ, सुनाइ स्रवन धुनि, संतन सौं मंडल रचि लीकौ ।
तत्-तत्, थेइ-थेइ बोलि परस्पर, तन में तनक न सीकौ ॥
नित्य विहार-अहार करत हैं, ब्रजबासिन सुख-पुन्य रती कौ ।
'व्यासदास' या सुख के ऊपर और ऐसौ, ज्यों दीपक औसहिं फीकौ ॥४५॥

राग देवगधार

श्री वृंदावन देखत नैन सिरात ।
इनि मेरे लोभी नैनन में, सोभा-सिंधु न मात ॥
संतत सरद-बसंत, बेलि-द्रुम झूलत, फूलत घात ।
नदनंदन-वृषभाननंदिनी मानहुँ मिलि मुसकात ॥
ताल, तमाल, रसाल, साल, पल-पल चमकत, फल-पात ।
मनहु गौरमुख विधु कर रंजित, सोभित साँवल गात ॥
किंसुक नवल नवीन माधुरी, विगसित हित उरझात ।
मनहु अबीर-गुलाल भरे तन, दंपति रति अकुलात ॥
बैठे अलि अरबिंद-बिंब पर, मुख-मकरंद चुचात ।
मानहु स्याम कचु कुच कर गहि, अधर-सुधा पीवत बलि जात ॥
नाचत मोर, कोकिला गावत, कीर - चकोर सुहात ।
मनहु रास - रस नाचैं दोऊ, बिछुर न जानत प्रात ॥
त्रिभुवन के कवि कहि न सकत कछु, अद्भुत गति की बात ।
'व्यास' बात नहिं मुख कहि आवै, ज्यों गूँगहिं गुर खात ॥४६॥

श्री वृंदावन प्रगट सदा सुख-चैन ।
कुंज-निकुंज पुंज छवि बरपत, आनँद कहत बनै न ॥
कुसुमिति नमित बिटप नव साखा, सौरभ अति रस-ऐन ।
मधुप, मराल, केकि, सुक, पिक धुनि, सुनि व्याकुल मन मैन ॥
स्यामा-स्याम फिरत बन-बीथिन, होत अचानक ठैन ।
पुलकित गात सम्हारत भुज में, भेंटत बात कहै न ॥
अति उदार सुकुमारि नागरी, रोम-रोम सुख दैन ।
हाव-भाव अँग-अंग बिलोकत, धन्य 'व्यास' के नैन ॥४७॥

राग सारंग

वृंदावन की बलाइ लै हौं ।
देखत जाहि राधिका - मोहन, सुख पावत रौ-रौ ।
सीतल छाँह सुबास कुसुम-फल, जमुना - जल रस सौ ॥
बिटप-बेलि प्रति केलि प्रगट, बिट वधू प्रताप नदौ ।
सुक पिक, अलि, केकी, मराल, खग-मृग मन माँहि बँधौ ॥

ब्रजवासिन की पद-रज तन, मन सुखसागरहिं सचौ।
छवि-निधि 'व्यास'हिं फब गई भक्ति, क्यों छिन छाँडि सकौ॥४८॥

प्यारी श्री बृंदावन की रैन।
जाहिं निरखि मोहन सुख पावत, हरपि वजावत वैन॥
जहाँ-तहाँ राधा चरननि के अंक विराजत ऐन।
राग-भोग संजोग जहाँ-तहाँ, दंपति के रति-सैन॥
रसिक अनन्यनि कौ मुख-मंडन, दुख-खंडन, सुख-चैन।
मधु मकरंद चंद रस वरषत, गोधन कौ निजु फैन॥
कुंजनि पुंजनि की छवि निरखत, रति भूली पति मैन।
'व्यासदास' के कुंवर-किसोरी, वाँयौ-दाहिनौ नैन॥४९॥

माला-मदिर तें पावन, बृंदावन की रैन।
भक्ति-भागवत हू तें प्यारी, रसिकन मोहन वैन॥
महाप्रसाद स्वाद तें मीठौ, गाइन कौ पय-फैन।
साधु-संग ते अधिक जानिवौ, ग्वाल मडली धैन॥
वर मथुरा वैकुंठ लोक तें सुखद निकुंजनि ऐन।
सुक-नारद-सनकादिक हू तें, दुर्लभ मोहन-सैन॥
सुनौ न देखौ, भयौ न ह्वै है, राधा सम रस चैन।
'व्यास' वल्लभ वपु बेदनि हू (तें), माँग्यौ मोहन मैन॥५०॥

प्यारे श्री बृंदावन के रूख।
जिन तर राधा-मोहन विहरत, देखत भाजत भूख॥
माया-काल न व्यापै जिन तर, सींचै प्रेम पयूख।
कोटि गाय-ब्राभन हत, साखा तोरत हरहिं विदूख॥
रसिकन पारजात सूझत है, विमुखन ढाक-पिलूख।
जो भजियै तौ तजियै पान, मिठाई, मेवा, ऊख॥
जिनके रस-वस ह्वै गोपिन तज सुख-सपति-ग्रह तूख।
मनि-कचन मय कुंज बिराजत, रश्मनि चद्र-मयूष॥
जिहिं रस भोजन तज्यौ परीछित, उपजौ सुकहिं अहूख।
'व्यास' पपीहा वन घन सेयौ, दुख सलिता-सर सूख॥५१॥

छबीली बृंदावन की वेलि।
आनँद-कंद-मूल सुख मय, फल-फूल सुधा-मधु झेलि॥
राधारवन भवन मनमोहन, निरखि वढ़ावत केलि।
मलयज, मृगज, कपूर धूरि, कुंकुम, सौरभ रस झेलि॥

तहाँ विराजत हंस-हंसिनी, अंस बाहु पर मेलि ।
अलि-कुल नैन चषक रस पीवत, कोटि मुकति पग पेलि ।
'व्यास' स्वामिनी पियहिं सुवस करि, विरमति नाहिंन खेलि ॥५२॥

राग सारंग

विराजै श्री वृंदावन की वेलि ।
फूलनि द्रुम भरि ताहि भेटि, दुख मेटि, अस भुज मेलि ॥
अरुझि नाह की वाँहनि, कुंचित केस सुदेस नवेलि ।
कल फल पीन पयोधर पिय के, हिय सुख-सागर झेलि ॥
किसलय वदन विहँसि चुंवन करि,पुलकि-पुलकि करि केलि ।
आनँद नीर नयन मधु वरषत, हरपत कोटिक खेलि ॥
पट-भूपन नव कुसुम-पत्र छवि, रवि - पावस अवहेलि ।
'व्यास' राधिकारवन-भवन कौं, निरखन है पग पेलि ॥५३॥

श्री वृंदावन के रूख, हमारे मात - पिता - सुत - वंधु ।
गुरु गोविंद साधु गति-मति सुख फल-फूलन की गंध ॥
इनहिं पीठि दै, अनत दीठि करै, सो अधनि में अंध ।
'व्यास' इन्हे छोड़ैरु छुड़ावै, ताकौ परै निकंध ॥५४॥

मीठी वृंदावन की सेवा ।
स्यामा-स्यामहिं नीकी लागत, ज्यों वालकहिं कलेवा ॥
वेलि हमारी कुल - देवी सव, विटप-गुल्म स॰ देवा ।
और धरम अकरम से लागत, त्रिन माला ज्यों लगत जनेवा ॥
कुंजनि-कुंजनि कुसुम-पुंज रचि, सैन ऐन मधु-मेवा ।
मनि-कंचन भाजन भरि सौंधे, अंग धूप कौ खेवा‡ ॥
विहरत सदा दुलहिनी-दूलह, अँग-अँग मधु रस पेवा ।
'व्यास' रास आकास फिरत दोऊ, मानहु प्रेम - परेवा ॥५५॥

राग धनाश्री

देखौ श्री वृंदाविपिन प्रभाइ ।
सव तीरथ धामनि फिर आयौ, देखत उपजत भाइ ॥
श्री जमुना तट लता भवन रज, छिन-छिन वाढ़त चाइ ।
मगन होत जव सुधि-वुधि विसरत, कहूँ चलत नहिं पाइ ॥
यह रस चाखि और रस भूले,फूलत लखि मन अति घहराइ ।
अचरज कहा 'व्यास' मुख वरनत,थके रसिक ताहि गाइ ॥५६॥

‡ खेवा (न), (छ), मेवा (ख)

राग धनाश्री

सदा वन कौ राजा भगवान ।
जाकौ अंत अनंत न जानत, करि मुख चतुर बखान ।।
जो परभाव भक्ति रजधानी, राधारानी - प्रान ।
कुंज महल श्री बृंदावन धन गोपी रूप - निधान ।।
प्रेम प्रजा ब्रजवासी अनुचर, ग्वाल-ग्वालि संतान ।
माइ जसोदा, नंद पिता, सुखदाता श्री वृषभान ।।
विटप छत्र-छाया मृदु राजत, आसन सभा सुजान ।
मंत्री मदन सहायक संतत, लाइक विषय प्रधान ।।
नटवा मोर और कल कोकिल, मधुप सुरन बंधान ।
भेरि भारही, झरना कल रव, मधुर मृदंग निसान ।।
राग-भोग संजोग सदा गति, रास - विलास सु गान ।
यह सुख 'व्यास' दास कों निसिदिन, दीनौ कृपानिधान ।।५७।।

९. मधुपुरी की स्तुति—

राग कान्हरौ

धनि-धनि मथुरा, धनि-धनि मथुरा, धनि मथुरा के वासी हो ।
जीवत मुक्त सबै बिहरत हैं, केसौराय उपासी हो ।।
माला - तिलक हृदै अति राजत, मुनि-मन ज्ञान प्रकासी हो ।
थावर - जंगम सबै चत्रभुज, काम - क्रोध-कुलनासी हो ।।
सुभग नदी विश्रांत जमुन जल मज्जन काल बिनासी हो ।
'व्यासदास' षट् पुरी दुरी सब, हरिपुर भयौ उदासी हो ।।५८।।

सखी हो मथुरा-बृंदावन बसियै ।
तीन लोक तें न्यारी मथुरा, और न दूजी दिसियै ।
केसौराइ, गोवर्धन, गोकुल, पल-पल मॉंहि परसियै ।
जमुना जल बिसरांत मधुपुरी, कोटि करम जहँ नसियै ।।
नंदकुमार सदा वन बिहरत, कोटि रसाइन रसियै ।
'व्यासदास' प्रभु जुगल किसोरी, कोटि कसौटी कसियै ।।५९।।

१०. श्री किशोर-किशोरी जू की स्तुति—

राग सारंग व बिहागरौ

जय-जय राधिका-धव स्याम ।
केलि - पुंज - निकुंज - नायक, कंज - मुख सुख-धाम ।।
नैन - सैननि मैन मोहत, बैन बिहसनि वाम ।
भृकुटि - भंग तरंग उपजत, अंग - अंग ललाम ।।

पीत चीर, अधीर भूषन, किंकनी मनि दाम ।
मुकट - कुंडल गंड झलकत, अलक-छवि अभिराम ।।
धन्य बृंदाविपिन - वासी, सत्य पूरन काम ।
'व्यास' अगनित पतित उधरे, लेत पावन नाम ।।६०।।

राधिका-रमन जय ।
नवल कुँवरि बृंदावन-वासी, निज दासन दिखरावत सुख-चय ।।
जाके चरन-कमल सेवत नित, रसिक अनन्य भये सब निरभय ।
ताके नाम - रूप - गुन गावत, पावत महा प्रसाद रसालय ।।
नव निकुंज रति-पुंजनि बरषत, परसत अंग ललित लीलामय ।
ताकी आस 'व्यास' नहिं छाँड़हिं, जद्दपि लोक भये सब निर्दय ।।६१।।

राग धनाश्री

महिमा स्याम की हम जानी ।
जेहि प्रताप बृंदावन सेवत, मो हू से अभिमानी ।।
हम हू सेन कृपा करि दैहै, दरसन राधारानी ।
'व्यासदासि' नव केलि विलोकति, विन ही मोल विकानी ।।६२।।

श्री राधावल्लभ नमो-नमो ।
कुंज-निकुज-पुंज रति-रस मे, रूप-रासि जहाँ, नमो-नमो ।।
सुख-सागर, गुन-नागर, रस-निधि, रस सुधंग रँग, नमो-नमो ।
स्याम सरीर, कमलदल लोचन, दुख-मोचन हरि, नमो-नमो ।।
बृंदाविपिन-चंद नँदनंदन, आनँदकँद सुख, नमो-नमो ।
सर्वोपरि, सर्वोपम, निसि-दिन 'व्यासदास' - प्रभु, नमो नमो ।।६३।।

राग सारग

सबकौ भामतौ राधावर ।
पूत जसोदा कौ नँदनंदन, व्रज - लाड़िलौ स्याम-सुंदर ।।
कुंजविहारी सदा सिंगारी, गावत - नाचत सदा सुघर ।
कोक-कलाकुल, रसिक-मुकटमनि, वारिज-मुख सुख-सागर ।।
महा पतित पावन चरननि के, सरन रहत काकौ डर ।
'व्यास' अनन्य रसिक-मंडल कौ पोसक मानसरोवर ।।६४।।

हरि सौ दाता भयौ न आहि ।
सुख करिबे कों, दुख हरिबे कों, सब जग देख्यौ चाहि ।।
भक्तन के बस हरि है जानत, जसु दीनौं जसुदाहि ।
जाहिं भक्त की लाज - बड़ाई दीनीं द्रुपद - सुताहि ।।

जाकी दान-मान की महिमा, सकत न वेद सराहि ।
जिहि चिरवा लै कमला दीनी, मंद न माँगत ताहि ।।
पतित पिंगलहिं आलिन दै, रूप दियौ कुबजाहि ।
हरि न पाइयतु 'व्यास' भक्ति बिनु, मिटै न मन की दाहि ।।६५।।

भयौ न ह्वै है हरि सौ प्यारौ ।
सुन्यौ न देख्यौ हरि सौ हितुवा, सुत-माता-महतारौ ।।
ज्यों रक सों प्रीति करत कोऊ, अपनौ काज बिगारौ ।
गरजत भक्त भरोसैं हरि के, ज्यों पानिप मनि गारौ ।।
कामधेनु, कल्पद्रुम कौ सेवक, अजहिन करौ कुरारौ ।
सिंह-सरन रहि स्यारहिं डरपत, बिनु काजर मुँह कारौ ।।
भव-सागर डरि स्वान-पूँछ गहि, सो को, जो न दुखारौ ।
'व्यास' आस तजि बृंदावन में, दीजै दाव सचारौ ।।६६।।

हरि कौ सौ हित न कियौ अब काहू ।
और सबै दुखदाता, लातनि मारत लागैं पाहू ।।
ऐसौ सुख सपनैं नहिं दीनों, गर्भ बसत माता हू ।
अपनौ विषै-भोग-पोषन लगि, कीनौ कपट पिता हू ।।
बोलि तोतरे बोल, चोरि चित, वित लीनौ बेटा हू ।
अपनैं काज पतिव्रत लीनौ, बस कीनी अबला हू ।।
भाइप प्रीति समीति मिलैं चित, घर लीनौ भैया हू ।
कपट प्रीति-परतीति बढाई, अपने काज सखा हू ।।
व्याह बरैती मिस रूठ्यौ करि, घर लूट्यौ सजना हू ।
धन कारन मन हरयौ कर्‍यौ सब, स्वारथ लगि राजा हू ।।
हरि-गुन विमल अगाध सिंधु की, को जानै सीमा हू ।
क्रूर, कुटिल, कामी, अपराधी, 'व्यास' विमुख सेवा हू ।।६७।।

राग सारंग जयतिश्री

हरि दासनि के वस ह्वै जानत ।
निगम अगोचर, आपुन हित करि, जन के जसहिं बखानत ।।
राई सौ गुन देखत गिरि सम, दोष न मन महँ आनत ।
थोरैं ही रति करत बहुत, बहु दीने तनक न मानत ।।
जानराइ अभिमानिनि, दीननि तबहीं हँसि पहिचानत ।।
सर्वसु देत भुरायैं ही, कपटिनि सों चतुराई ठानत ।
संतन के अपराध छमत, अपनै करतब ही हिरानत ।
'व्यास' भक्ति की यहै रीति अपनैं सतनि सों मन मानत ।।६८।।

राग सारंग व धनाश्री

सोहत पराधीनता स्यामहिं ।
जाके बल रस-सिंधु बढ़ायौ, गावत को गुन-ग्रामहिं ।।
मारत - बाँधत सुख पावत हरि, छोरि न डारत दामहिं ।
रोवत नहीं दुखित ह्वै जानत प्रेम-नेम जसुधा महिं ।।
आपु बँधाइ छुड़ाइअ दीननि, देत विषय निह कामहिं ।
अद्भुत वैभव कही न जाय सुक श्री भागवत कथा महिं ।।
मोद-विनोद विचित्र विराजत, निस-दिन चंद ललामहिं ।
'व्यास' रूप-गुन सुख-रस आनँद-कंद वृंद राधा महिं ।।६६।।

राग सारंग

असरन-सरन स्याम जू कौ बानौ ।
बड़ौ बिरद पतितन कौ पावन, भक्तन हाथ बिकानौ ।।
सुक-नारद जाकौ जस गावत, सिव-विरंचि - उरगानौ ।
हित ही की हित मानत नागर, गनत न रक, न रानौ ।।
दयासिंधु दीननि कौ बाधव, प्रगट भागवत कह्यानौ ।
रजधानी वृंदावन जाकी, लोक चतुर्दस थानौ ।।
ऐसे ठाकुर कौ हौं सेवक, कैसैं औरहिं मानौं ।
'व्यास' कलंक लगै तो जननी, जो न पितहिं पहिचानौ ।।७०।।

राग कान्हरौ

राधावल्लभ मेरौ प्यारौ ।
सर्वोपरि सर्वहिन कौ ठाकुर, सब सुखदानि हमारौ ।।
ब्रज-वृंदावन-नाइक, सेवा - लाइक स्याम उज्यारौ ।
प्रीति-रीति पहिचानै-जानै, रसिक अनन्यनि कौ रखवारौ ।।
स्याम कमल दल लोचन, दुख-मोचन नैननि कौ तारौ ।
अवतारी, सब अवतारन कौ महतारी - महतारौ ।।
मूरतिवंत-काम गोपिन कौं, गऊ - गोप कौ गारौ ।
'व्यासदास' कौ प्रान-जीवन-धन, छिन न हृदै तें टारौ ।।७१।।

राग कमोद व धनाश्री

देखौ माई, सोभा नागरि-नट की ।
जाके दरस-परस रस राचै, विथकित मनसा मन की ।।
जाकौ गुन लागत ही भागै, साँपिनि तृष्ना धन की ।
जिहिं रस गोपी गोपालहिं भजि, तजि माया गृह तन की ।।

जहाँ चद्रिका मंद होत नहिं, राधा विधु-आनन की ।
पीवत नंदकिसोर चकोरहिं वाढ़ी चोप मदन की ।।
जाकी कथा परीछत सुनि, तजि त्रास विपी भय भव की ।
जिहिं आनंद 'व्यासहिं' सुख परिहरि, आसा जननी-थन की ।।७२।।

राग सारग व धनाश्री

स्याम सु धन कौ नाहीं अंत ।
जाकैं कोटि रमा सी दासी, पद सेवत रति-कंत ।।
कोटि-कोटि लका-सुमेरु से, रंकनि हँसि वगसंत ।
सिव, विरचि, मघवा, कुवेर, जाके रोमनि के तत ।।
रजधानी वन ।कुंजमहल-महली सरद-वसत ।
श्री राधा रानी, सहचरि गोपी, सुख पुंजनि वरषत ।।
नागर मनमोहन रस-सागर, अर्थ अपार अनंत ।
'व्यास' स्वामिनी भोग भोगवत, नव जोवन मयमंत ।।७३।।

श्री- वृंदावन ,के राजा स्याम, राधिका ताकी रानी ।
तीन पदारथ करत मँजूरी, मुक्ति भरत जहँ पानी ।।
करमी-धरमी करत जेवरी, घरु छावत हैं ज्ञानी ।
जोगी, जती, तपी, सन्यासी, इन चोरी कै जानी ।।
पनिहाँ वेद, पुरान मिलनियाँ, कहत-सुनत यह वानी ।
घर-घर प्रेम-भक्ति की महिमा, 'व्यास' सवनि पहिचानी ।।७४।।

राग सारंग (चर्चरी ताल)

नव कुँवर चक्र चूडा नृपति मनि साँवरौ, राधिका तरुनि-मनि पट्टरानी ।
सेसगृह आदि वैकुंठ पर्यंत, सव लोक थानैत, वन राजधानी ।।
मेघ छ्यानवै-कोटि वाग सींचत जहाँ, मुक्ति चारौं जहाँ भरत पानी ।
सूर-ससि पाहरू, पवन जन, ईंदिरा चरन-दासी, भाट निगम-वानी ।।
धर्म कुतवाल, सुक सूत, नारद चारु, फिरत चर, चार सनकादि ज्ञानी ।
सत्त गुन पौरिया, काल वदुआ, कर्म डाँडियै, काम-रति सुख-निसानी ।।
कनक मरकत धरनि, कुंज कुसुमित, महल मधि कमनीय सयनीय ठानी ।
पल न विछुरत दोऊ,जात नहिं तहाँ कोऊ,'व्यास'महलन लियैं पीकदानी ।।७५

राग धनाश्री

स्यामहिं उपमा दीजै काकी ?
वृंदावन सौ घर है जाकौ, राधा दुलहिन ताकी ।।
नारद, सुक, जयदेव वखानी, अदभुत कीरति जाकी ।
जाकौ वैभव देखत कमला-पति में रही न वाकी ।।

इहिं रस नवधा भक्ति उत्रीठी, रति भागवत-कथा की ।
रहन-कहन सबही तें न्यारी, 'व्यास' अनन्य सभा की ।।७६।।

राग सारंग

यह छवि को कवि बरन सकै ।
जब राधा मोहन सनमुख ह्वै, भृकुटि-विलास तकै ।।
सेष - असेष कोटि चतुरानन, बरनत बदन थकै ।
उपमा जितीं तितीं सब झूठीं, कत मन - बुधि भटकै ।।
जिते तिते वक्ता अरु स्रोता, कलपि - कलपि सुबकै ।
आगम - निगम सबै पचिहारे, 'व्यासै'-मति तनकै ।।७७।।

राग बिलावल व सारंग

श्री राधाप्यारी के चरनारविंद, सीतल सुखदाई ।
कोटि चंद मंद करत, नख - बिधु जुन्हाई ।।
ताप, साप, रोग, सोग, दारुन दुख-हारी ।
कालकूट - दुष्ट - दवन, कुंजभवन - चारी ।।
स्याम हृदय भूषन जुत, दूषन जित संगी ।
श्री बृंदावन-धूलि - धूसर, रास - रसिक - रंगी ।।
सरनागत अभय बिरद, पतित पावन बानै ।
'व्यास' से अति अधम आतुर कौं, कौन समानै ।।७८।।

राग सारंग व धनाश्री

धनि तेरी माता, जिनि तू जाई ।
ब्रज-नरेस वृषभान धन्य, जिहिं नागरि कुँवरि खिलाई ।।
धन्य श्रीदामा भैय्या तेरौ, कहत छबीली बाई ।।
धन्य बरसानौ, हरिपुर हू ते ताकी बहुत बड़ाई ।
धन्य स्याम बडभागी तेरौ नागर कुँवर सदाई ।।
धन्य नंद की रानी जसुदा, जाकी बहू कहाई ।
धन्य कुंज सुख - पुंजनि, बरसत तामैं तू सुखदाई ।।
धन्य पुहुप - साखा - द्रुम - पल्लव, जाकी सेज बनाई ।
धन्य कल्पतरु बंसीबट, धनि बर बिहार रह्यौ, छाई ।।
धन्य जमुन, जाकौ जल निर्मल अँचवत सदा अघाई ।
धन्य रास की धरनी, जिहिं तू रुचि कै सदा नचाई ।।
धन्य सखी ललितादिक, निसिदिन निरखत केलि सुहाई ।
धन्य अनन्य 'व्यास' की रसना, जेहिं रस-कीच मचाई ।।७९।।

११. उत्तम सिद्ध भक्त लक्षण—

राग केदारौ

श्री कृष्न - कृपा ते सब बनि आवै ।
सतगुरु मिलै साधु की संगति सदा, असाधु न भावै ॥
चित इद्रीजित, वितु न रुचै मन, निजु जनही कों धावै ।
लोचन दुखमोचन मुख देखत, रसना हरि - गुन गावै ॥
दरस भक्ति भागवत तीस - सात जगदीस बतावै ।
रास - विलास - माधुरी राधा, बृंदाविपिन बसावै ॥
सो जु कहा उपजै गुन हरि भजि, दोप दुखनि विसरावै ।
दोष रहित, गुन रहित, 'व्यास' अधे की दई चरावै ॥८०॥

राग सारंग

रुचत मोहिं बृंदावन कौ साग ।
कद - मूल, फल - फूल जीवका, मैं पाई बड भाग ॥
घृत, मधु, मिश्री, मेवा, मैदा, मेरे भायैं छाग ।
एक गाय पै वारौं, कोटिक ऐरावति से नाग ॥
जमुना जल पर वारौं, सोमपान से कोटिक जाग ।
श्री राधापति पर वारौं, कोटि रमा के सुभग सुहाग ॥
साँची माँग किसोरी के सिर, मोहन के सिर पाग ।
वंसीवट पर वारौ कोटिक, देव - कल्पतरु - बाग ॥
गोपिन की प्रीतिहिं पूजत, सुक - नारद अनुराग ।
कुंज - केलि मीठी है, बिरह - भक्ति सीठी ज्यों आग ॥
'व्यास'* विलास रास - रस पीवत, मिटैं हृदय के दाग ॥८१॥

राग गौरी व नट

मेरौ हरि-नागर सों मन मान्यौ ।
अगम-निगम पथ छाँड़ि दियौ है, भली भई सबरे जग जान्यौ ॥
मात-पिता की सीख न मानी, और तजी कुल - कान्यौ ।
'व्यासदास' प्रभु के मिलिवे बिनु, काहि रुचै भोजन - पान्यौ ॥८२॥

मोहिं बृंदावन-रज सों काज ।
माला, मुद्रा, स्याम बिंदुनी, तिलकु हमारौ साज ॥
जमुना जल पावन सु हमारें, भोजन ब्रज कौ नाज ।
कुंज-केलि- कौतुका† नैननि - सुख, राधा - धव कौ राज ॥

---

* 'व्यास' (छ), 'श्री व्यास' (ख), (च)

† 'कौतुक' (च), (छ), 'कौतिक' (ख) (ग)

निसि - दिन दुहुँ दिसि सेवा मेवा, ताल-पखावज बाज ।
निरतत नटनागर भावत अति, 'व्यास'हिं साधु-समाज ।।८३।।

सोई साधु, जो हरि गुन गाया ।‡ सोई साधु जु छाँडै माया ।।
माया कौ फल गृह, सुत, जाया । दामिनि कैसी चमकिनि काया ।।
यह संसार धूरि की छाया । सपनैं हरि सों मन न लगाया ।।
जार भरतार कियौ दुख पाया । 'व्यास' सुहागिल स्याम रिझाया ।।८४।।

माया भक्त न लगतै जाई ।
जद्यपि कान्ह कुँवर की बहिनी, जसुदा मैया जाई ।।
जाके मोहैं तन - धन भावै, मन में नारि पराई ।
जस की हानि होत ताके बस, पसु ज्यों करत लराई ।।
बासों प्रीति करत हरि बिसरत, संत जना सब भाई ।
सोई साधु जु ताहि तजै, हरि-चरन भजै चित लाई ।।
नाचति जगहिं, नचावति मम सिर, तोरति तार रिसाई ।
मोहन बिनती सुनहुँ 'व्यास' की, बन मे होति हँसाई ।।८५।।

हरिदासन के निकट न आवत प्रेत, पितर, जमदूत ।
अरु जोगी, भोगी, संन्यासी, पडित, मुंडित, धूत ।।
ग्रह, गनेस, सुरेस, सिवा, सिव डर करि भाजत भूत ।
सिधि-निधि, बिधि-निषेध हरिनामहिं, डरपत रहत कपूत ।।
सुख - दुख, पाप - पुन्य मायामय भीत सहत आकूत ।
सब की आस-त्रास तजि 'व्यास'हिं भावत भक्त सपूत ।।८६।।

राग सारग व धनाश्री

श्री वृंदावन न तजै अधिकारी ।
जाके मन परतीति रीति नहिं, ताके बस न बिहारी ।।
कैसैं जारहिं भजिहै, तजिहै भरतारहिं कुल - नारी ।
भागी भक्ति लोभ के आगैं, मंत्री डोम भिखारी ।।
को-को भयौ न पर - घर हरुवौ, तात लजी महतारी ।
मालहिं पहिरि गुपालहिं छाँडत, गुरुहिं दिवावत गारी ।।
ज्यौं गजकुंभ विदारहिं सिंह बालक झपटै ज्यौं ल्यारी ।
ऐसै 'व्यास' सूर कायर की, संगति हरि करि न्यारी ।।८७ ।।

बन परमारथ पथ हरि मेरौ ।
अरथ करत है अनरथमै कहा, मारतु है घर ही मे घेरौ ।।

‡ (ख) प्रति में यह चरण नहीं है ।

कियौ अनन्य बीच नीच ह्वै, आइ फव्यौ रसिकनि कौ टेरौ ।
'व्यास' आस कै स्याम भरोसौ, दुख के बीज बये रस-खेरौ ।।८८।।

श्री बृंदावन मेरी घर बात ।
जाहि पीठि दै दीठि करौ कित, जित-तित दुखित जीव बिललात ।।
स्याम सचे सुख-सागर कुंजनि, नागर रसिक अनन्य खटात ।
सहज माधुरी कौ रस बरषत, हरषत गोरे-साँवल गात ।।
सुख मुख-चंद-सुधा रस सुनि-सुनि, स्रवननि आनँद सृष्टि अघात ।
नाद-विनोद रास-रस माते, कोउ न रगनि अग समात ।।
बिबि अरबिंद द्रवत मकरंदहिं, पियहिं जिवावहिं दल-पत्र चुचात ।
या रस बिनु फीके सब साधन, ज्यौं दूलह बिनु 'व्यास' बरात ।।८९।।

यह बृंदावन मेरी संपति ।
इहिलोक, परलोक बृंदावन मेरौ, पुरुषारथ-परमारथ, गथु-गति ।।
साधन साधु संतत बृंदावन, राग-रग गुन-गुनी जहाँ अति ।
भक्ति भागवत बृंदावन मेरौ, मात, पिता, भैया, गुरु संमति ।।
मंदिर जगमोहन मन-कोठौ, बृंदावन सेवा-मेवा निति ।
दाता दान-मान बृंदावन, छिन छूटै ना रहै प्रान पति ।।
जहाँ निकुंज पुंज सुख विहरत, राधा-मोहन मोहे काम-रति ।
तहाँ 'व्यास' वनिता भयौ चाहत, चारथौ बेद करत मत आरति ।।९०।।

हमारैं बृंदावन व्यौहार ।
संपति गति वृंदावन मेरैं, करम-धरम करतार ।।
स्वारथ, परमारथ बृंदावन, गथ-पथ विधि-व्योपार ।
वृंदाविपिन गोत-कुल मेरैं, कुल-विद्या-आचार ।।
रूप-सील वृंदावन मेरैं, गुन गारौ सिंगार ।
बरष, मास, रितु, पच्छ, ऐन, जुग, कल्प सबै तिथि, वार ।।
फागु, दिवारी, परबु, पारवन वृंदावन त्यौहार ।
सूर सुघर वृंदावन मेरैं, रसिक अनन्य उदार ।।
बधु सहोदर-सुत वृंदावन, राजा राज भँडार ।
श्री राधा-ललितादिक मेरैं, जीवन-प्रान-अधार ।।
सर्वसु 'व्यासदास' कौ बनि है, वृंदावनहिं अभार ।।९१।।

जाकी उपासना, ताही की वासना, ताही कौ नाम-रूप-गुन गाइयै ।
यहै अनन्य धर्म परिपाटी, वृंदावन वसि अनत न जाइयै ।।
सोई बिभचारी आन कहै, आन करै, ताकौ मुख देखैं, दारुन दुख पाइयै ।
'व्यास' होइ उपहास त्रास कियैं, आस अछत, कित दास कहाइयै ।।९२।।

राग सारंग

रसिक अनन्य हमारी जाति ।
कुल देवी राधा, वरसानौ खेरौ, व्रजवासिन सों पॉति ॥
गोत गोपाल, जनेऊ माला, सिखा सिखंडि, हरि मंदिर भाल ।
हरि गुन नाम वेद धुनि सुनियत, मूँज पखावज, कुस करताल ॥
साखा जमुना, हरि - लीला पट् कर्म, प्रसाद प्रान-धन रास ।
सेवा विधि - निपेध, जड़ संगति, वृत्ति सदा वृंदावन वास ॥
सुमृत भागवत, कृष्न - नाम संध्या, तर्पन गायत्री जाप ।
वंसी रिषि, जजमान कल्पतरु, 'व्यास' न देत असीस - सराप ॥६३॥

अनन्यनि कौन की परवाहि ।
श्री कुंज विहारी की आसा करि, लै कमरी करवाहि ॥
कोटि मुकति सुख होत, गोखरू जबै गडैं तरवाहि ।
श्री वृंदावन के देखत भाजै नैननि की हरवाहि ॥
जमुना कूल, मूल - फल फूलत, गोरस की भरवाहि ।
निसि-दिन स्याम कामवस सेवत, राधा की घरवाहि ॥
रीझत जाहि राजसी* जब - तब, मारत पाथर वाहि ।
इतनी आस 'व्यास' तजि भजियै, गुदी वाँधि सरवाहि ॥६४॥

अनन्य व्रत खाँडे की सी धार ।
इत-उत डगत जगत हितैं हरि, फेर न करत सम्हार ॥
कहा ग्यास कुल-कर्मनि छाँड़ै, जौ लगि विपय विकार ।
विनु प्रेमहिं, न प्रसाद नेम तहाँ, हरि न ग्रहत ज्यौनार ॥
कौन काम कीरति विनु प्रीतहिं, गनिका कौसौ जार ।
'व्यासदास' की पति गति नासै गयैं पराये द्वार ॥६५॥

मरै, कै मारै साँचौ सूर ।
पीठि न देइ, दीठि कै अरि-दल, सुनत समर के तूर ॥
जनम-भूमि तजि पतिपद भजई, फिरै न सलिता पूर ।
विरद सँभारि गारि के डर, रजपूत जु मरहिं मजूर ॥
वैसादुर डर सती न उलटै, सिर में मेलि सिंदूर ।
ऐसैं ही सीस सहै हथ्यारहिं, मुख मुरै न छाँडि गरूर ॥
कहत आपने मुख हरवाई, भख्यौ दुरै न कपूर ।
सर्वोपरि हरि भक्ति 'व्यास' कैं, रवा रती नहिं वूर ॥६६॥

---

* राजमी (ग, च, छ,), तामसी (ख)

ऐसैहिं बसियै ब्रज-वीथिनि ।
साधुन के पनवारे चुन-चुन, उदर पोपियत सीथिनि ॥
घूरनि में के बीन चिनवटा, रछ्या कीजै सीतिनि ।
कुंज-कुंज प्रति लता लोटि, उड रज लागै अगीथिनि ॥
नित प्रति दरस स्याम-स्यामा कौ, नित जमुना जल पीतिनि ।
ऐसेहिं 'व्यास' होत तन पावन, इहिं विधि मिलत अतीतिनि ॥९७॥

राग रामकली

तेई रसिक अनन्य जानिवै ।
जिनकों विपय-विकार न, हरि सों रति, तेई साधु मानिवै ॥
तिनकी सगति पतित सु उधरे, जो वारक घर आनिवै ।
तिनके चरनोदक सों, अपने नख-सिख गातनि सानिवै ॥
तिनकी पावन जूठनि जैंवत, तव ही हरि हिय आनिवै ।
तिनके वचन स्रवन सुनि तिहिं छिन, मन-सदेह भानिवै ॥
तिनकी जीवनि - धन बृंदावन, जीवत मरत वखानिवै ।
'व्यास' राधिका-रमन भवन विनु, तेई क्यों पहिचानिवै ॥९८॥

श्री बृंदावन साँचौ है जाकैं ।
बिषई बिषै भिखारी दाता, निकट न आवै ताकैं ॥
वसनी वसनहिं गिरत न जानैं, जीव कोऊ मद छाकैं ।
ऐसैं ही रससिंधु मगन भयैं, रहै अविद्या काकैं ॥
कुंज - केलि अनभौ है जाकैं, सो चलै न पथ अवला कैं ।
जैसैं निर्धन हूँ जु न* जैहै वोलैंहू गनिका कैं ॥
जैसैं सिंघनि के सुत भूखे, जाचत नहिं विलवा कैं ।
काम स्याम सों जिनहिं, ते सुने न जात रमा कैं ॥
ज्यों अनयासा संपति आवै, व्याहैं राजसुता कैं ।
ऐसैं ही 'व्यास' भक्ति पायैं सुख, द्रवत हैं स्याम कृपा कैं ॥९९॥

जाके मन वसै बृंदावन ।
सोई रसिक अनन्य धन्य, जाकैं हित राधा-मोहन ॥
ताहि नित्य विहार फुरै, वन-लीला कौ अनुकरन ।
विषय - वासना नाहिंन जाकैं, सुधरै अंतहकरन ॥
लोक-बेद कौ भेद न जाकैं, श्री भागवत सौ धन ।
ताकैं 'व्यास' रास-रस वरषत, वहि गई कामिनि-कंचन ॥१००॥

* 'जु न' (च), (छ), 'जन' (ख), (ग),

हरि बिनु और न सुनौं-कहौं।
श्री गुरु की मैं सपथ करी है, यौं घर मॉंझ रहौं॥
काहू के दोष न मन में आनौं, सबके मनहिं गहौं।
अंतरजामी हरि सब ही के, हौं उपहास सहौं॥
जीवनि के चित थिर न रहत हैं, सुख-दुख धरतु न हौं।
'व्यास'हिं आस स्याम-स्यामा सौं, प्रीति किये निबहौं॥१०१॥

मोहि भरोसौ है हरि ही कौ।
मोकौं सरन न और स्याम बिनु, लागत सब जग फीकौ॥
दीननि कौ मनमा कौ दाता, परम भावतौ जी कौ।
जाके बल कमला सौं तोरी, काज भयौ अति नीकौ॥
चारि पदारथ, सर्ब सिद्धि, नव निधि पर डारत नहिं पीकौ।
आँन देव सपनें नहिं जाँचौं, ज्यौं धन जानौं धी कौ॥
तिनुका कैसें रोकि सकै, पावस परवाह नदी कौ।
हरि अनुरागिहिं लगै सराप न, सुर-नर, जती-सती कौ॥
जैसें मीनहिं जल कौ बल, अलि-हंसहिं कमल-कली कौ।
'व्यास'हिं आस स्याम-स्यामा की, ज्यौं बालक आधार चुची कौ॥१०२॥

नैंननि देखौ सोई भावै।
जोई कपट-लोभ तजिकै श्री राधावल्लभ के गुन गावै॥
रसिक अनन्य भक्त मंडल की मीठी बात सुनावै।
ताके चरन-सरन ह्वै रहियै, दिन प्रति रास दिखावै॥
स्यामा-स्याम करैं सोई, जो 'व्यास' दास सुख पावै॥१०३॥

भक्ति में कहा जनेऊ-जाति।
सब दूषन भूषन बिप्रन कें, पति छू घरनि घिनाति॥
कहा हरे रँग भाँग बिराजत, तुलसी न में समाति।
सोहति नहीं सुहागिल के सँग, सौति सुरति इतराति॥
संध्या-तरपन-गायत्री तजि, भजि माला-मंत्र सजाति।
'व्यास' दास कैं सुख सर्वोपरि बेद बिदित बिख्याति॥१०४॥

राग सारंग

रसिक अनन्य भगति कल भोगि।
जिनके केवल राधावल्लभ वृंदावन रस भोगि॥
जे सुख-संपति सुपन न देखत, ज्ञान-कर्म-ब्रत-जोगि।
जिनके सहज सनेही, स्यामा-स्याम सदा संजोगि॥

नीरस पसु परसौ नहिं जानै, अभिमानी भव जोगि ।
'व्यास'जु हरि तजि आनहिं मानत, ह्वै है तुरक दुरोगि ॥१०५॥

गोपालै जब भजियै तब नीकौ ।
जोतिष, निगम, पुरान सबै ठग, पढ़ै जानि है जी कौ ॥
भद्रा भली, भरनी भव हरनी, चलत मेघ अरु छींकौ ।
'व्यासदास' धन-धर्म विचारै, सो प्रेमी कौडी कौ ॥१०६॥

राग सारंग

जैयै कौन के अब द्वार ।
जो जिय होइ प्रीति काहू कें, दुख सहियै सौ वार ॥
घर-घर राजस - तामस बाढ़्यौ, धन-जोबन कौ गार ।
काम बिबस ह्वै दान देत नीचन कौं, होत उदार ॥
साधु न सूझत, बात न बूझत, ये कलि के ब्यौहार ।
'व्यासदास' कत भाजि उबरियै, परियै माँझी धार ॥१०७॥

१२. मध्यम साधक भक्त लक्षण—

राग सारंग

होइव सोई हरि जो करिहै ।
तजि चिंता चित चरन-सरन रहि, भावी सकल मिटरिहै ॥
करिहै लाज नाम - नाते की, यह बिनती मन धरिहै ।
दीनदयाल बिरद साँचौ करि, हरिदासन-दुख† हरिहै ॥
सिंहिनि - सिंह बीच बैठ्यौ सुत, कैसैं स्यारहिं डरिहै ।
ऐसें स्यामा-स्यामहिं थरुदै, डरिकैं कौन बिचरिहै ॥
सुनियत सुक मुनि-वचन चहूँ जुग, हरि दोषनि संहरिहै ।
साधुन कौ अपराध करत, मधुसाहि न ताहि गुदरि है ॥१०८॥

राग बिलावल

जगजीवन है जीवनि जग की ।
दीन हरिहिं आधीन बजे सै औरन गति बोहित के खग की ॥
जैसैं दंभु अंबु महँ ठानत, होत जीविका बग की ।
ऐसैं कपटी नट भट नाटकु* पिटभरि करत ठगौरी ठग की ॥
पंडित, मुंडित, तुंड बल भोगी, आसा बढ़ै कुंटुंबहिं मग की ।
सो को 'व्यास'न बँध्यौ दुरासा, ज्यों गनिकाहि कठिन कुच-भग की॥१०६॥

† 'दासन दुख' (ख), 'दारुन-दुख' (ग), (छ), 'दारुण-दुख' (च)
* 'नाटकु' (ख), 'नाइक' (च), (छ)

राग सारंग व बिलावल

कौनैं सुख पायौ विनु स्यामहिं।
सेवत सदा बबूरन, कैसैं खायौ चाहत आमहिं ।।
सिंह सरन सूझत नहिं बूझत, पढ़्यौ जु सून्य सभा महिं ।
परम पतिव्रत कौ सुख नाहिंन, सुपनैं हू गनिका महिं ।।
विकल बुद्धि, मन सुद्धि न उपजै, काम, क्रोध, माया महिं ।
गुरुकुल घर अभिमानहिं जाकैं, 'व्यास' भक्ति नहिं ता महिं ।।११०।।

राग धनाश्री

ऐसौ काकौ भाग, जु दिन प्रति स्यामा-स्यामहिं रुचि सों गावै ।
जाकी चरन - सरन ह्वै रहियै, तौ वृंदावन स्याम बसावै ।।
जाकी जूठन जौ खइयै, तौ ताप - पाप गोपाल नसावै ।
'व्यास' दास ताही कें हूजौ, जाहि भक्ति विनु और न भावै ।।१११।।

कहा-कहा नहिं सहत सरीर ?
स्याम-सरन विनु कर्म सहाय न, जनम - मरन की पीर ।।
करुनावंत साधु-संगत विनु, मनहिं देइ को धीर ?
भक्ति-भागवत विनु को मेटै, सुख दै दुख की भीर ।।
विनु अपराध चहूँ दिसि वरषत, पिसुन वचन अति तीर ।
कृष्न - कृपा - कवची तें उवरे, पोच बढ़ी उर पीर ।।
नामा, सैंन, धना, रैदास, दीनता फुरी कबीर ।
तिनकी वात सुनत स्रवनन सुख, वरषत नैननि नीर ।।
चेतहु भैया वेगि, कलि बाढ़ी काल - नदी गंभीर ।
'व्यास' वचन बल वृंदावन बसि, सेवहु कुंज-कुटीर ।।११२।।

राग नट

को-को न गयौ, को-को न जैहै ।
इहिं ससार असार भक्ति विनु, दूजौ और न रैहै ।।
हरि - विमुख नर आतमघाती, नरक परत न अघैहै ।
सत-चरन दृढ़ सरन नाव विनु, काल - नदी में वैहै ।।
सुधासिंधु हरि - नाम निकट तजि, विषयी विषयन खैहै ।
'व्यास' वचन कौ कियौ निरादर, फिर पाछैं पछितैहै ।।११३।।

राग केदारौ तथा नट,

कबहूँ नीके करि हरि न बखाने ।
चरन-कमल सुखरासि स्याम के, ते तजि विषयनि हाथ विकाने ।।

दिवस गयौ छल करत मनोरथ निसि सोवत भूँठौ बररानै।
इहिं विधि मनुष जनम गँवायौ, श्रीपति कहि धौ कब पहिचानै ॥
जेहिं सुमिरत त्रैताप नसत हैं, ते आराधि भवन नहिं आनै।
समै गयौ गोपाल विमुख भयें, तातें 'व्यास' बहुत पछितानै ॥११४॥

सारग (जयति ताल)

कहा मन या तन पै तू लैहै ?
करिलै हित राधा-धव सों तू, पुनि केस काल कर गैहै ॥
करत कृपनता दूरि धरत धन, तन छूटै धन कहाँ समैहै।
बाढ़ी तृष्ना कृष्न-कृपा बिनु, पावत हू न अघैहै ॥
सूकर, स्वान, स्यार की खाजी, ता पर का गरवै‡ है।
'व्यास' वचन माने बिन, जुग-जुग जम के हाथ बिकैहै ॥११५॥

छिनु-छिनु ग्रसत तनहिं मन काल।
अजहू चेत चरन गहि हरि के, आयौ है कलि-काल ॥
लाज न कीनी राज-सभा महँ, कत कूटत है गाल।
पेट न भरत करत हू चेटक, लोभ पर्यौ मति चाल ॥
घर-घर भटक्यौ नट के कपि ज्यों, बहुत भयौ न बे-हाल।
बिनु हरि-दास निहाल भयौ को, बिमुख भयें न निहाल ॥
पुत्र, कलत्र सों नेह बिरस ज्यों, गैया चाटत छाल।
दीनन ही हरि राखि लेत ज्यों, मीनन सीतल ताल ॥
गीध मृगन वे तकि-तकि मारत, जैसें कालहिं काल।
ऐसें कपट प्रीति की संगति, सदाँ बढै उर साल ॥
मन दुख, आँखिन दुख, स्रवननि दुख, सुख दै हरै कृपाल।
'व्यासदास' की बिनती सुनि, पुनि कृपा करी नँदलाल ॥११६॥

राग केदारौ

धर्म छूटत छूटहिं किन प्रान।
जीवत मृतक भयौ अपराधी, तजि गुरु रीति प्रमान ॥
बीधिरबानी करी मूढ मति, करि गोरिल गुन-गान।
चढ़ि गादहि सर्वत्र मत्र पढ़ि, पाप बजाइ निसान ॥
यह कारौंछि पौंछि है को अब, लै दै कन्या-दान।
माँगर† तेल कलस जल धोये, रोवै जड बेदान।

‡ का गरवै (ग, च, छ), कहा गवै (ख)
† मागर (ग, च, छ), मारग (ख)

भक्ति न होत देव पितरन कें, किंकरीन की सान ।
चढ़ै काठ की वार-वार क्यौं, लगत न कूर कड़वान ॥
कपटी अपनौ होइ न कबहूँ, जोरामीत निदान$ ।
'व्यास' पुनीत न होइ कूकरी कोटिक गंगा-स्नान ॥११७॥

राग सारग

सत छाँड़ै हू तन जैहै ।
पाकी छाँडि गहत है काची, फिरि पाछैं पछितैहै ॥
हरि के चरन-सरन विनु जुग-जुग, सिर अप-कीरति रैहै ।
ताही कौ तनु, तनु कौ सोई, जो हरिही सो हित करि लैहैं ॥
जाही कौ धर्म, धर्म कौ जोई, सो हरि की ओर निवैहै ।
जोई गनिका कौ सुत सोई, विना करै अव कैहै ॥
ताही कौ कर्म, कर्म कौ सोई, जो असि-धारा व्रत गैहै ।
भक्ति-भाव धरि भजै स्याम कौं, भली-बुरी सव सैहै ॥
'व्यास' अनन्य सभा सेवत हू, काल व्याल कौ खैहै ॥११८॥

भजहु सुत ! साँचे स्याम पिताहि ।
जाके सरन जात ही मिटिहै, दारुन दुख की डाहि ॥
कृपावंत भगवत सुने मैं, छिन छाँडौ जिन ताहि ।
तेरे सकल मनोरथ पूजैं, जो मथुरा लौं जाहि ॥
वे गोपाल दयाल, दीन तू, करिहैं कृपा निवाहि ।
और न ठौर अनाथ दुखित कौं, मैं देख्यौ जग चाहि ॥
करुना वरुनालय की महिमा, मो पै कही न जाहि ।
श्री 'व्यास'दास के प्रभु कौं सेवत हारि भई कहु काहि ॥११९॥

जौ पै वृंदावन धन भावै ।
तौ कत स्वारथ-परमारथ लगि, मूँढ़ मनहिं दौरावै ॥
नव-निधि अष्ट-सिद्धि। वन-वैभव, सपनैं अंत न पावै ।
घर-घर भटकत मुक्ति वापुरी, कमलहिं को वंतरावै ॥
महा पतितपावन जमुना - जल, भूतल - ताप नसावै ।
नव-निकुंज-रति-पुंजनि वरपत, हरि राधे गुन गावै ॥
मदा, अधीन! रहत नित मोहन, मन लै प्रियहिं रिझावै ।
'व्यास' स्वामिनी रास-मंडल में, चुटकिनि पियहिं नचावै ॥१२०॥

$ जोरामीतु निदान (ख), ज्योरामीतुनदान (ग);
ज्यो रामी तनु दान, (च) (छ),

श्री बृंदावन-रस मोहिं भावै हो ।
ताकी हौं बलि जाऊँ सखी री, जो मोहिं आनि सुनावै हो ॥
वेद, पुरान औ भारत भाषैं, सो मोहिं कछु न सुहावै हो ।
मन, वच, क्रम स्मृत हू कहत ते, मेरे मन नहिं भावै हो ॥
कृष्न-कृपा तब ही भलैं जानौं, रसिक अनन्य मिलावै हो ।
'व्यास' दास तेई बडभागी, जिनके जियैं यह आवै हो ॥१२१॥

श्री बृंदावन में मंगल मरिवौ ।
जीवनमुक्त सबै ब्रजवासी, पद-रज सों हित करिवौ ॥
जहाँ स्याम बछरा ह्वै, गायन चौंषि तृननि कौ चरिवौ ।
हरि बालक गोपिनि पय पीवत, हरि आँकौ-भरि चलिवौ ॥
सात रात-दिन इद्र रिसानौ, गोवर्धन कर धरिवौ ।
प्रलय मेघ मघवाहि विमद करि, कहि सबसों नहिं डरिवौ ।
अघ, वक, वकी विनासि,रास रचि,सुख-सागर में तरिवौ ॥
कुंज-भवन रति-पुंज चयन करि, राधा के बस परिवौ ॥
ऐसे प्रभुहिं पीठि दै, लोभ, रति, माया, जीवन जरिवौ ।
श्री गुरु सुकल प्रताप 'व्यास' रस, प्रेमसिंधु उर भरिवौ ॥१२२॥

राग विलावल तथा सारंग

यह तन बृंदावन जो पावै ।
तौ स्वारथ परमारथ मेरौ, रसिक अनन्यनि भावै ॥
दासिनि की दासी करि हरि मोहिं, राधा-रमन दिखावै ।
यहै वासना मेरे मन में, और कछू जिनि आवै ॥
पुंज पुन्य तें प्रेम भक्ति - रति, कुंज विहार बतावै ।
सर्वोपरि रस-रीति-प्रीति कौ, वारिध 'व्यास' बढ़ावै ॥१२३॥

राग धनाश्री

गाइ गुन तनहिं न दीजै ठालि ।
साधुनि की सेवा करि लीजै, कौनैं देखी कालि ॥
काल-बधिक तकि मारतु बिमुखनि, विषै बिसारी भालि ।
हरिहिं क्यों न सम्हारत अजहू, गुरु-वचननि प्रतिपालि ॥
छाँडहु आस-त्रास सब ही की,जग उपहासहिं पेटहिं घालि ।
ऐसैं ही दुख सहियै, जैसैं जर खोदै तें जीवत आलि ॥
हरि करिहै हित सुत कौ, जैसैं गैया आवत थालि ।
हाथी कौ धरि स्वाँग 'व्यास' यह, तजि कूकर की चालि ॥१२४॥

राग धनाश्री तथा कान्हरौ

गाइ मन, मोहन नागर-नटहिं ।
कुंजन अंतर देखि निरंतर, राधा - छवि की छटहिं ।।
केलि नवेलि बेलि-कुल छिन, जिन छाँड़ौ बंसीवटहिं ।
कमल विमल जल मृदुल पुलिन, सुख सेवहु जमुना-तटहिं ।।
कुसुमित नमित अमित किसलय दल, फल बीथिन में अटकहिं ।
गुंजत मधुप- पुंज, पिक बोलत, गौर स्याम लंपटहिं ।।
बृंदावन की सहज सपदा, पावत हू जिन लटपहिं ।
'व्यास' आस तजि भजियहु, रसिक अनन्यनि के सघटहिं ।।१२५।।

गाइ लै गोपालै दिन चारि ।
काल भुजंग लोक वली तें हरि के चरन उबारि ।।
लोभ-कपट तजि, साधु - चरन भजि, लीजै जनम सुधारि ।
दया, दीनता, दास-भाव तें गुरुहिं न आवै गारि ।।
रसना इंद्री अनी अन्यारी, भेदत तनहिं सम्हारि ।
साधु-चरन-रज की कवची करि, कवहुँ न आवत हारि ।।
कृष्न-कृपा बिनु तृष्ना बाढ़ी, गृह, बन* बिपै उजारि ।
'व्यास' अकाज करै जिनि अपनौं, प्यारौ स्याम बिसारि ।।१२६।।

१३. कनिष्ठ प्रवर्तक भक्त लक्षण—

गुरुहिं न मानत चेली-चेला ।
गुरु रोटी पानी सों घूँटत, सिष्य कें दूध पियैं कुकरेला ।।
सिष्यनि के सौने के बासन, गुरु कें कुँडी - कुँड़ेला ।
चोर चिकनियनि कों वहु आदर, गुरु कों ठेली - ठेला ।।
सिष्य तौ माँखीचूसा सुनियत, गुरु पुनि खाल उचेला ।
वह कायर, यह कृपन हठीलौ, ईंट मारि दिखरावतु भेला ।।
श्री कृष्न-भक्ति बिनु बिवि असमंजस, दुख-सागर में झेली-झेला ।
'व्यास' आस जे करत सिष्य की, तिनतें भले भँडेला ।।१२७।।

राग बिलावल तथा धनाश्री

गुरु गोविंदहिं बैंचत हाट ।
भक्त न भयौ माँगनौ, जैसैं डोम, कलावँत, भाट ।।
कायर कूर कुटिल अपराधी, कबहुँ न होइ निराट ।
लोभ सोभ मिलि सबै बिगार्‌यौ, ज्यों रैनी कौ माँट ।।

---

* 'बन'—च, छ, 'बिनु'—ख

तन खोवत कामिनि मुख जोवत, लागि काम की साट ।
पावत है बिस्राम न मन में, उपजत कोटि उचाट ॥
पर घर गयैं पाडुपुत्रनि कों, परिभो कर्‍यौ बिराट ।
द्रुपदसुता कीचक हू डारी धर्म - पुत्र कें रुधिर लिलाट ॥
जाके जात सुआवत देखत, बिनु रुचि देत कपाट ।
'व्यास' आस करि हरिहिं जु सेवै, ताकी परियौ बाट ॥१२८॥

राग सारग

धर्म दुर्‍यौ कलि दई दिखाई ।
कीनौ प्रगट प्रताप आपनौ, सब बिपरीति चलाई ॥
धन भयौ मीत, धर्म भयौ बैरी, पतितन सौं हितवाई ।
जोगी, जपी, तपी, सन्यासी ब्रत छाँड़्यौ अकुलाई ॥
बरनास्रम की कौन चलाई, सतनि हू में आई ।
लीनौं लोभ घेरि आगै दै, सु-कृत चल्यौ पराई ॥
देखत सत भयानक लागत, भावत ससुर - जमाई ।
संपति सुकृति सनेह मान चित, गृह ब्यौहार बडाई ॥
कियौ कुमंत्री लोभ उपायौ, महा मोह जु सहाई ।
काम - क्रोध - मद - मोह - मत्सरा, दीनी देस दुहाई ॥
दान लैन कों बड़े पातकी, मचत्ति कों बॅभनाई ।
लरन - मरन कों बड़े तामसी, वारौं कोटि कसाई ॥
उपदेसनि कों गुरू गुसांई, आचरनैं अधमाई ।
'व्यासदास' के सुकृत साँकरे, श्री गोपाल सहाई* ॥१२९॥

मोहि न काहू की परतीति ।
कोऊ अपने धर्म न साँचौ, कासौं कीजै प्रीति ॥
कबहुँक व्यास उपासि दिखावत, लै प्रसाद तजि† छीति ।
ह्वै अनन्य सोभा लगि दिन द्वै, सब सौं करत समीति ॥
बातनि खेंचत खाल बार की, लीपत भुस पर भींति ।
कुवा परैं बादर चाटत हैं, धूम धौरहर ईति ॥
स्वारथ परमारथ पथ बिगर्‍यौ, उत पथ चलत अनीति ।
'व्यास' दिनै चारिक या बन में जानि गही रस-रीति ॥१३०॥

---

* 'व्यासदास' कौ सुकृत साकरे मैं श्री गोपाल सहाई (ख) 'व्यासदास' कौ सुठि सकरे में श्री गोपाल सहाई (ग) 'व्यासदास' के सुकृत्य साँकरे श्री हरिवस महाई छ) 'व्यासदास' के सुकृत्य साँकरे श्री (हित) हरिवंश सहाई (च)

† तजि (ग, च, छ,) 'तन' (ख),

भक्त ठाड़े भूपनि के द्वार ।
उमकत झुकत पौरियन डरपत, गाइ बजाइ सुनावत तार ॥
कहियहु धाय थवाइत प्रोहित, हमहिं गुदरवी स्वार ।
छिन-छिन करत बिदा की बिनती, उपजत कोटि बिकार ॥
बिहसत लसत कोटि बर अंतर, कलिजुग के अनुसार ।
होत अनादर बिपयनि कैं जब, तब हीं होत कुतार ॥
चंदन, माला औ स्याम बिंदुनी, दै उलटे उपहार ।
'व्यास' आस लगि नट बाँदर ज्यौं, नाँचत देस उतार ॥१३१॥

एक भक्ति बिनु घर-घर भटकत ।
फिट-फिट होत बिषै रस लंपट, साधु-चरन गहि मनहिं न हटकत ॥
औरन कैं सुख-संपति देखत, लेत उसास लिलारी पटकत ।
दाता कौ दुख, सुख करि मानत, गाइ-नाँचि बातैं कहि मटक्त ॥
जब लगि कंठ उसास न तब लगि, हरि परतीति न कबहूँ अटकत ।
गुरु गोबिंद लजाइ आपनौ, महि अपमान, दान लै सटकत ॥
खोवत* खात रहत दिन पसु ज्यौं, जामिनि कामिनि के उर लटकत† ।
'व्यास' आस के दास भिखारी, दारुन दुख मैटे ज्यौं झटकत ॥१३२॥

भटकत फिरत गौर-गुजरात ।
सुख - निधि मथुरा बृंदावन तजि, दामन कौं अकुलात ॥
जीवन-मूरि जहाँ की धूरहिं, छाँड़त हू न लजात ।
मुक्ति-पुंज समता नहिं पावत, एक कुंज के पात ॥
जाकी तक्र सक्र कौं दुर्लभ, ताहि न बूझत बात ।
'व्यास' बिबेक बिना संसारहिं, लूटत हू न अघात ॥१३३॥

राग सारंग

लोभी बगरूरे कौ सौ पात ।
सात छानि कौ फूस‡ धूस सौं काके नैन समात ॥
पावस सलिता के तिनका ज्यो, चलन न कहूँ खटात ।
दामनि लगि गनिका लौं, निसदिन सबके हाथ बिकात ॥
जो कोऊ सर्बस देइ, तौऊ सतोप बिना पछितात ।
अमुका मेरी भाँजी दीनी, ता पर ओंठ चबात ॥

* खोवत (ख, ग), सोवत (च, छ)
† लटक्त (च, छ), लपटत (ख, ग)
‡ फूस (ग), फूँस (छ), फूल (ख)

निलजन सकुच नहीं घर माहीं, सब ही सो सतरात ।
भंडिहा कूकर लौं कारौ मारत हू ना किकियात ॥
टूटे घरहिं नेक लौं डरपत, जब लगि दरर चुचात ।
सूकर पाइ प्रतिष्ठा विष्टा, फूले अंग न मात ॥
अधर लार गंडकहिं भजन करि, महा मास हू खात ।
कृष्न कृपा बिनु तृष्ना जाके, सो 'व्यासहिं' न सुहात ॥१३४॥

लोभिनि बृंदावन न सुहात ।
भागत भोर चोर लौं पापी, विमुखन सेवत जात ॥
रहत सोभ लगि लोभ धरै मन, दुख करै बिललात ।
सुखहिं पीठि दै दुख कों दौरत, वहुतनि हाथ बिकात ॥
केलि-कुंज पुंजनि कौ वैभव, नैनन महँ न खटात ।
सहज माधुरी कौ रस कैसैं नीरस हृदै समात ॥
जहाँ स्याम के धोखैं चौंकत तनिकहु खरकै पात ।
जाहि पीठि दै पति-गति नासै, 'व्यासहिं' सो न सुहात ॥१३५॥

राग सारंग तथा गौरी (अठताल)

कहा भयौ बृंदावनहिं बसैं ।
जौ लगि व्यापत माया, तौ लगि कह घर ते निकसैं ॥
धन मेवा कों मंदिर सेवा, करत कोठरी बिषै रसैं ।
कोटि - कोटि दंडवत करै, कह भूमि लिलाट घसैं ॥
मुँह मीठे, मन सीठे, कपटी वचन, नैन† बिहसैं ।
मंत्र ठगौरी कहूँ न तंत्र गद मानत विषय डसैं ॥
कंचन हाथ न लेत, कमंडल में मिलाय बिलसैं ।
'व्यास' लोभ रति हरि हरिदासनि, परमारथहिं खसैं ॥१३६॥

घटत न अजहूँ देह कौ धर्म ।
झूँठ न होत बेद-बानी हरि, फटत नाम कौ भर्म ॥
साधन विविध, कुठार धार हूँ कठिन, कटत नहिं कर्म ।
पंडित मूरख कोऊ न जानत, यह संसै कौ मर्म ॥
कहत भागवत साधु संग तें जाय जगत की सर्म ।
'व्यास' तबहिं असमंजस मिटिहै, जब ह्वै है मन नर्म ॥१३७॥

साधत बैरागी जड बंग ।
धातु रसायन औखदि के बल निसिदिन बढ़त अनंग ॥

† बचन नैन (ख); बचन स्त्रन नैननि (ग, च, छ)

सुक-वचननि कौ रंग न लाग्यौ, भगौ नहिं ससै कौ अंग ।
विषै-विकार गुन उरझै चित लगि, सबै करत चित भंग ।।
वन में रहत, गहत कामिनि कुच, सेवत पीन उतग ।
धनि-धनि साधु मानि† सतनि तजि, हरि कौ छाँडि उछंग ।।
लोभ वचन बाननि अँग अगनि, सोभित निकर निषंग ।
'व्यास' आस दृढ पासि गरै, तिहिं भावै रागिनि-रग ।।१३८।।

दिन द्वै लोग अनन्य कहायो ।
धन लगि नट कौ भेष काछि कैं, फिरि पाँचनि में आयौ ।।
सिगरे बिगरे अगनित गुरु करि, सब कौ जूठौ खायौ ।
इत व्यौहार न उत परमारथ, बीचहिं जनम गमायौ ।।
खौं खोदो ऊसर बैवे कों, चोड भैंस लै साँड़* मुल्यायौ ।
गनिका कौ सुत पितहिं पिंड दै, काकौ नाम लिवायौ ।।
अँधरहिं नाँचि दिखायौ जैसैं, बहिरहिं गाइ सुनायौ ।
चढ़ि कागद की नाव नदी कहिं, काहू पार न पायौ ।।
प्रीति न होहि विना परतीतिहिं, सब ससार नचायौ ।
सहज भक्ति बिनु 'व्यास' आस करि, घर ही माँझ मुसायौ ।।१३६।।

राग विलावल

कपट न छूटै हरि गुन गावत ।
काम न छूटै स्यामहिं सेवत, कामिनिहीं लगि धावत ।।
कहत भागवत घर नहिं छूटै, मत्सर मद न नसावत ।
भक्ति करत हू धर्म न छूटै, बाँधे कर्म नचावत ।।
हरिवासर कौ भेद न छूटै, महाप्रसादहिं पावत ।
कर्म विषै नहिं छूटै विषयी, साधुनि कौं समुझावत ।।
देह धर्म कौ संग न छूटै, देह धर्म ही ध्यावत ।
कुंजर-सोच करत नहिं डरपत, 'व्यास' वचन बिसरावत ।।१४०।।

कहत सुनत भागवत, बढ़ै स्रोतहिं वक्तहिं अभिमान ।
मद- मत्सर न गयौ, न भयौ सुख, रुख न करत चखकान ।।
भक्ति न भई, विषै न गई रति, भूलि गयौ भगवान ।
लोभी कौ लोभ न छूटौ, न गयौ कृपन कौ जु सयान ।।

---

† धनि धनि साधु मानि (ख). धन धन साध मान (ग)
धिक धिक अधमनि (च, छ)

* भेस लै साढ (ख), 'भैंस लै माट (ग),
भेस लै माँट (च), 'भैस लै माँटै' (छ);

केवल कृष्न-कृपा बिनु, साधु संग बिनु, रंग न आन ।
'व्यास' भक्ति समुझी तबहीं, नारद के सुनत बखान ॥१४१॥

राग सारग

जैसी भक्ति भागवत बरनी ।
तैसी विरले जानत, मानत कठिन रहनि तें करनी ॥
स्वामी, भट्ट, गुसांई अगनित-मति करि गति आचरनी ।
प्रीति परस्पर करत न कबहूँ, मिटै न हिय की जरनी ॥
धन कारन साधन करि हरि पर धरि सेवा बन धरनी ।
बिषै-बासना गई न अजहूँ, छाँडि बिगूचे घरनी ॥
सहज प्रीति विना परतीति न, सिस्नोदर की भरनी ।
'व्यास'आस जौ लगि है,तौ लगि,हरि बिनु दुख जिय भरनी ॥१४२॥

जीवन जन्म भक्ति बिनु खोवत । सत सुहात न हरि मुख जोवत ॥
नख-सिख विषै विषी दुख भोगत । द्यौस अघाय खाय निसि सोवत ॥
पायैं सुख, अपनायैं रोवत । हरि-जस-जल मन मलिन न धोवत ॥
पर-धन पर-नारी सुख टोवत । कामधेनु तजि कूकरि लोवत ॥
छीरहिं परिहरि, नीर विलोवत । 'व्यास'हिं बरजत दुख-गिरि ढोवत ॥१४३

गावत नाँचत आवत, लोभ कह ।
याही तें अनुराग न उपजत, राग-वैराग सोभ कह ॥
मन्त्र-जंत्र पढ़ि मेलि ठगौरी, बस कीनौ ससार ।
स्वामी बहुत, गुसाईं अगनित, भट्टन पै न उबार ॥
भाव विना सब बिलबिलात, अरु किलकिलात सब तेहू ।
'व्यास' राधिका-रवन-कृपा बिनु, कहूँ न सहज सनेहू ॥१४४॥

राग सारग

दुख-सागर कौ वार न पार ।
जुग-जुग जीव थाह नहिं पावत, बूड़त सिर धर भार ॥
तृष्ना तरल बयारि झकोरति, लोभ-लहरि न उतार ।
काम-क्रोध भर मीन-मगर उर, नाहिंन कहूँ उबार ॥
श्री गुरु-चरन नाम नौका नहिं, हरि-करिया न बिचार ।
'व्यास' भक्ति बिनु आस जाइ नहिं, सत,सगति करि बार ॥१४५॥

जो दुख होत विमुख घर आयैं ।
ज्यौं कारी लागै कारी निसि, कोटिक बीछू खायैं ॥
दुपहर जेठ परत बारू में, घायनि लौंन लगायैं ।
काँटनि माँझ फिरत बिनु पनहीं, मूँड में टोला खायैं ॥

टूटत चाबुक कोटि पीठ पर, तरुवा बाँधि उठायें ।
जो दुख होत अगिन मे ठाड़ें सर्वसु जुवा हरायें ।।
ज्यौं बाँफहिं दुख होत, सौत कौ सुंदर बेटा जायें ।
देखत ही सुख होत जितौ दुख, बिसरत नहिं बिसरायें ।।
भटकत फिरत निलज बरजत ही, कूकर ज्यौं झहरायें ।
गारी देत बिलग नहिं मानत, फूलत दमरी पायें ।।
अति दुख दुष्ट जगत में जेते, नैंकु न मेरे भायें ।
वाके दरसन परस मिलत ही‡ कहत 'व्यास' यौं नायें ।।१४६।।

राग सारंग

जो पै हरि की भक्ति न साजी ।
जीवत हू ते मृतक भये अपराधी, जननी लाजी ।।
जोग, जज्ञ, तीरथ, व्रत, जप, तप सब स्वारथ की बाजी ।
पीडित घर-घर भटकत डोलत पंडित मुंडित काजी ।।
पुत्र - कलत्र सजन की देही, गीध - स्वान की खाजी ।
बीत गये तीनों पन कपटी, तऊ न तृष्ना भाजी ।।
'व्यास' निरास भयो जाही नें कृष्न-चरन रति राजी ।।१४७।।

१४. भक्त-प्रशंसा—

साधु सरसीरुह कौ सौ फूल ।
निर्मल सीतल जल हितकारी, काहू कों न विकूल ।।
तिनके वचन पान करि, डारत काम - जटा निर्मूल ।
जिनकी संगति भक्ति देत, हरि हरत सकल भ्रम - मूल ।।
तिनके 'व्यास' दास जो हूजै, तौ न रहै भव - सूल ।।१४८।।

राग धनाश्री

सुनियत कबहुँ न भक्त दुखारौ ।
पुजये स्याम काम बिनु दामनि, है निष्काम सुखारौ ।।
कृष्न कह्यौ रुक्मनि सों निहकिंचन - जन मोहिं पियारौ ।
ताकौ मुख कबहूँ नहिं देखौं, जाकैं धन कौ गारौ ।।
घन बसि पांडुसुतनि नहिं माँग्यौ, लग्यौ न राज लुभारौ ।
पाँच बरप के ध्रुव घर छाँड्यौ, मो लगि तजि आहारौ ।।
कोटि जातना सहि प्रहलाद, विषाद न जानत वारौ ।
पट - लूटत द्रोपती न मटकी, करी न अनत पुकारौ ।।

‡ वाके दरसन परस मिलत ही (ग) वाके दरसन परस मिलतनहि (ख) दरश परस नहि दीजौ वाकौं (च) दरस परस नहि दीजौ वाकौ (छ)

जरत गर्भ वैराट सुता महँ, मोहिं मन दियौ सवारौ।
सरनागति आरति गजपति कौं, मो विनु को रखवारौ॥
व्रज लगि गैं विष अग्नि-पान कियौ, विषधर कीनौ न्यारौ।
महाप्रलय के मेह नेह लगि, गोवर्धन लग्यौ न भारौ॥
भक्तनि कें अवतर्‍यौ भक्ति लगि, भूखौ रह्यौ उघारौ।
असुरनि सों जूझे भक्तन लगि, भयौ जु पसु चरि चारौ॥
तन, मन, जीवन, जीव, जीविका, सर्वस भक्त हमारौ।
'व्यासदास' की विनती कोऊ भक्त न मोहिं विसारौ॥१४६॥

सुने न देखे भक्त भिखारी।
तिनकें दाम काम कौ लोभ न, जिनकें कुंजविहारी॥
सुक-नारद अरु सिव-सनकादिक, ये अनुरागी भारी।
तिनकौ मनु भागवत न समुझै, सब की वुधि पचिहारी॥
रसना, इंद्री दोऊ वैरिन, जिनकी अनी अन्यारी।
करि आहार-विहार परस्पर, वैर करन विभिचारी॥
विषयनि की परतीति न हरि कों, रीति कहत वाजारी।
'व्यास' आस-सागर में वूडे, सो कै भक्ति विसारी॥१५०॥

राग धनाश्री

सदा हरि-भक्तनि कें आनद।
गावत महाप्रसादै, पावत सुख-संतोष अमंद॥
जिनकौ मुख निरखत सुख उपजत, दूर होत दुख-दंद।
अहंकार, ममता, मद छूटत भूतनि कौ सौ छंद॥
श्री राधावल्लभ के पद-पंकज, सकल संपदा-कंद।
सेवत रसिकन के भ्रम छूटत, लोक-वेद के फंद॥
मुक्त भयें अजहूँ गावत सुक, नारद, सनक, सनंद।
'व्यास' विराजमान सर्वोपरि, जय वृंदावनचंद॥१५१॥

राग धनाश्री

निरखि हरिदासनि नैन सिरात।
स्याम हृदै में जब ही आवत, मिलत गात सों गात॥
स्रवन होत सुख भवन दवन दुख, सुनत छवीली बात।
दूरि होत त्रैताप-पाप सब, मुख चरनोदक जात॥
वाढ़ति अति रस-रीति प्रीत सों, संत प्रसादै खात।
गदगद स्वर पुलकित जस गावत, नैननि नीर चुचात॥
तिनके मुख मसि घसि लपटाऊँ, तिनहिं न संत सुहात।
'व्यास' अनन्य भक्ति विनु जुग-जुग, वहुत गये पछितात॥१५२॥

राग सारंग

जो सुख होत भक्त घर आयैं ।
सो सुख होत नहीं बहु संपति, बाँझहिं बेटा जायैं ।।
जो सुख भक्तन कौ चरनोदक पीवत, गात लगायैं ।
सो सुख सपनैं हू नहिं पैयत, कोटिक तीरथ न्हायैं ।।
जो सुख भक्तन को मुख देखत उपजत, दुख बिसरायैं ।
सो सुख होत न कामिहिं कबहूँ, कामिनि उर लपटायैं ।।
जो सुख होत भक्त-बचननि सुनि, नैनन नीर बहायैं ।
सो सुख कबहुँ न पैयत पितुघर, पूत कौ पूत खिलायैं ।।
जो सुख होत मिलत साधुन कै, छिन-छिन रंग बढायैं ।
सो सुख होत न रंक 'व्यास' कौं लंक सुमेरहिं पायैं ।।१५३।।

जूठन जे न भक्त की खात ।
तिनके मुख सूकर-कूकर के, अभखि-भखि पोषत गात ।।
जिनके बदन सदन नर्कन के, जे हरि - जननि बिनात ।
काम-बिबस कामिनि के पीवत अधरन लार-चुचात ।।
भोजन पर माँखी मूतति हैं, ताहू रुचि सौं खात ।
भक्तन कौ चरनोदक अँचवत, अभिमानी जरि जात ।।
स्वपच भक्त कौ भोग ग्रहत हरि, बाँभन ताहि डरात ।
बाजदार की पाँति ब्याह में, जैंवत बिप्र बरात ।।
भेंटत सुतहिं रेंट मुख लागत, सुख पावत जड़ तात ।
अपरस ह्वै भक्तन छ्वै छुतिहा, तेल सचेलै न्हात ।।
हरि - भक्तनि पाछैं आछैं डोलत, हरि गंगा अकुलात ।
साधु-चरन-रज माँझ 'व्यास' से कोटिक पतित समात ।।१५४।।

राग धनाश्री

भव तरिबे कौं भक्ति उपाउ ।
साधु संग करि हरिहिं भजौ रे, देहु सबारौ दाउ ।।
परहरि निंदा, पर-दारा तजि, भजियै हरिराउ ।
सब गुन जैहैं लोभ करत ही, स्याम न करत सहाउ ।।
काचे घट के जल ज्यों छिनु-छिनु, घटति जात है आउ ।
बिषयनि की संगति बूड़हुगे, देह जाँजरी नाउ ।।
हरि कौ नाम धाम सर्बस सुख, जानि कृस्न-गुन गाउ ।
'व्यास' बचन बिसरावत ही, जम - द्वारौं जाइ बसाउ ।।१५५।।

भावत हरि प्यारे के प्यारे ।
जिनके दरस परस हरि पाये, उघरे भाग हमारे ॥
दूरि भये दुख - दोष, हृदय के कपट- कपाट उघारे ।
भवसागर बूडत हमसे अपराधी बहुत उबारे ॥
भूत - पितर, देई - देवा सों झगरे सकल निवारे ।
सुख सुख वचन रचन कहि कोटिक बिगरे 'व्यास' सुधारे ॥१५६॥

राग गौरी

साँचे मंदिर हरि के संत ।
जिन मन मोहन सदा विराजत, तिनहिं न छाँडत अंत ॥
जिनि महँ रुचि करि भोग भोगवत, पाँचौ स्वाद वदंत ।
जिन महँ बोलत हँसत कृपा करि, चितवत नैन सुपंत ॥
अपनै मत भागवत सुनावत, रति दै रस बरषंत ।
जिनमें बसि संदेह दूरि करि, देह धर्म परजंत ॥
जहाँ न संत तहाँ न भागवत, भक्त सुसील अनंत ।
जहाँ न 'व्यास' तहाँ न रास-रस, बृंदावन कौ मंत ॥१५७॥

राग गौरी

पहिले भक्तन के मन निर्मल ।
जिनके दरस पतित पावन भये, जीव परसत गंगाजल ॥
जिनके हिय तें हरि न टरत कबहूँ एकौ पल ।
तिनकौ नाम लेत गुन गावत रति बाढै सद सेयै चरन-तल ॥
तिनकें सुरति - रति बाढ़ै सदा जुगल छूटत न कहूँ छल ।
जिनकें मद-अभिमान न मत्सर, तिनके बेगि पंथ चल ।
जिन्हें सेइ बृंदावन पायौ, 'व्यास' सुफल जनम-फल ॥१५८॥

वेद भागवत स्याम बतायौ ।
गुरु वचननि परतीति बड़ाई, साधन सब संदेह भगायौ ॥
त्रिभुवन में भुवि जा लगि जनये, निजु वपु छीन छुडायौ ।
साधु संग कीनी वंसी बस, निस्चै करि मन भायौ ॥
जहाँ भक्त सब जात, तहाँ तें अजहूँ कोऊ न आयौ ।
'व्यास' हिं विदा करी करुना करि, समाचार लै आयौ ॥१५६॥

१५. उपदेश—

राग नट

सुख में हरि बिसरावै कैसें, दुख में हरि कहि आवै ।
दुख सुख परै जु हरिहिं न छाँड़ै, ताहि न हरि बिसरावै ॥

दुख-सुख जौ लगि, भक्ति न तौ लगि, यह भागवत बतावै ।
दुख-सुख झूँठौ, संतत साँचौ हरि, हरि-जन मुहिं भावै ॥
सुख-दुख छूटैं सुक, सनकादिक, नारद हरि-गुन गावै ।
विधि-निषेध, गुन-दोष, सुक्ख-दुख, त्रिपर्यनि बाँधि नचावै ॥
सुख-दुख गयें जु सुख उपजत है, तापै स्याम बँधावै ।
हरिवंसी हरिदासी सेवत, 'व्यास' तहाँ वन पावै ॥१६०॥

राग गौरी

हरि की भक्ति विनु तन-मन मैलौ ।
जैसै विनु लाद्यौ विनु जोत्यौ, गायनि-माँझ फिरत खल खैलौ ॥
आपु न जानत, कही न मानत, अजहूँ गुरुहिंन करत असैलौ ।
आपुन विगरि विगारत औरनि, ज्यौं जल-नायें काचौ वैलौ ॥
जुग-जुग जनम-जनम जाही तें, अजहुँ न भर्‌यौ विषै कौ थैलौ ।
'व्यास' वचन मानैं विनु जानैं, नरक परैगौ वैले पैलौ ॥१६१

तन छूटत ही धर्म न छूटै ।
जीवत मरैं न माया छूटै, काल करम मुँह कूटै ॥
पुत्र, कलत्र, सजन सुख देवा, पितर, भूत सब लूटै ।
कबहुँ रंक राजा कबहूँ है, विषय-विकार न छूटै ॥
साधु न सूझै, गुन नहिं बूझै, हरि-जस-रस नहिं घूँटै ।
'व्यास' आस घर घालै जग कौ, दुखसागर नहिं फूटै ॥१६२॥

राग सारंग

हरि विनु सब सोभा सोभा सी ।
अंजन मंजन पति विनु सीठौ, ज्यौं मटकै ससवासी ॥
अँधरहिं काजर, नकटिहिं वेसरि, टौंटिहिं पहुँची हासी ।
हीज पुरुष, त्रिया बाँझ वृथा, मुँडली लटकन मति नासी ॥
कुढ़ियहिं मुदरी, वूचहिं कुंडल, केस विना आकासी ।
दासी लीन कुलीन कामिनी, कंचन तन संन्यासी ॥
स्यारहिं राज नरनि मे सोहै, जैसैं राज विसासी† ।
'व्यास' स्याम विनु सब असमंजस, जैसैं धनिक विनासी ॥१६३॥

हरि विनु को अपनौ संसार ।
माया-मोह बँध्यौ जग बूडत, काल नदी की धार ॥
जैसैं संघट होत नाउ में, रहत न पैले पार ।
सुत - संपति-दारा सौं ऐसैं, विछुरत लगै न वार ॥

† विसासी (ख), सिनासी (ग), विलासी (च, छ)

जैसैं सपनै रक पाइ निधि, ओंड़ै धरि भंडार ।
ऐसैं छिन-भगुर देही कों, गरवतु कहा गँवार ॥
जैसैं अंध आँधरे टेकत, गनत न खार पनार ।
ऐसैं 'व्यास' बहुत उपदेसे, सुनि-सुनि गये न पार ॥१६४॥

राग धनाश्री

भक्ति बिनु मानुष-तन खोवै, क्यों सोवै, उठि जागु रे ।
विषय-अगिनि परि भागि उबरियै, साधुनि सों कीजे अनुरागु रे ॥
देह, गेह, दारा, सुख, संपति, ज्यों कोकिल सुत कागु रे ।
लाज-बडाई, गुन-चतुराई, जैसैं फोकट† फागु रे ॥
माया-मोह जियत नहिं छूटैं, जैसैं दुमुहाँ नागु रे ।
लोक-बडाई कौ सुख झूँठौ, बाजीगर सौ बागु रे ॥
हरि बिनु क्यों तरिहै दुख सागर, ज्यौं धन निधन सुहागु रे ।
आयु घटत जानत नहिं, जैसैं नदी-तीर बड बागु रे ॥
जैसैं मृग अपनौ हित जानत, सुनत बधिक कौ रागु रे ।
ऐसैं 'व्यास' वचन बिनु मानैं, मिटै न मन कौ दागु रे ॥१६५॥

भगति बिनु अगति जाहुगे बीर ।
बेगि चितै हरि-चरन-सरन रहि, छाँड़ि विषै की भीर ॥
कामिनि-कनक देखि जिनि भूलहु, मन में धरियहु धीर ।
साधुन की सेवा करि लीजै, जौं लगि जियत सरीर ॥
मानुष तन बोहित, गुरु करिया, हरि अनुकूल समीर ।
डरियहु आतमघात तें, तरियहु काल-नदी गंभीर ॥
सैन, धना, नामा, पीपा, रैदास, भक्ति ले गये कबीर ।
ताकें 'व्यास' स्याम उर आवत, जाही कें है पर-पीर ॥१६६॥

राग सारग [जयति ताल]

भक्ति बिनु टेसू कौ सौ राज ।
कारागृह दारा हय गय, रहत न गाँव समाज ॥
सूकर, कूकर, वधिक, सूकरी, हम सु नरक कौ साज ।
जैसे राँकहिं सुख न होत, पावत सब पसु बस नाज* ॥
ऐसे कोटि पुरुष पर मिटत न, एक जुवति की खाज ।
झटपट है जग बकहिं रात दिन, काल चहूँ दिस बाज ॥
अपने सरन राखिहै 'व्यास'हिं, हरि सबके सिरताज ॥१६७॥

---

† फोकट (च, छ), फोटक (ख, ग),

* सब पसु बस नाज (च, छ); सब सुब नाज (ग),

भक्ति विनु केहि अपमान सह्यौ ।
कहा-कहा न असाधुनि कीनौ, हरि-बल धर्म रह्यौ ॥
अधम राज-मद माते लै, सिबिका जडभरत नह्यौ ।
निगड सहे वसुदेव देवकी, सुत पटकत दुःसह सह्यौ ॥
हरि-ममता प्रह्लाद विषाद न जान्यौ, दुख सहदेव दह्यौ ।
पट लूटत द्रौपदि नहिं मटकी, हरि कौ सरन चह्यौ ॥
मत्त सभा कौरवनि विदुर सों, कहा-कहा न कह्यौ ।
सरनागत आरत गजपति कों, आपुन चक्र गह्यौ ॥
हा, हरि, नाथ ! पुकारत आरत, और कौन निवह्यौ ।
'व्यास' वचन सुन मधुकरसाह, भक्ति-फल सदा लह्यौ ॥१६८॥

काहे भजन करत सकुचात ?
पर-धन, पर-दारा-तन चितवत, तव कहि क्यों न लजात ॥
मिथ्या वाद-विवाद वकन कों, फूल्यौ फिरत कुजात ।
फूट्यौ कर्म, भर्म हिय वाढ़्यौ, तजि अमृत विष खात ॥
डहक्यौ आइ पाइ भल अवसर, भक्ति विमुख भयौ गात ।
सहज सिराय गई माया में, वहुत गये पछतात ॥
पाछै गई सु जान दै रे, अव सुन लै यह बात ।
हरि गुन गाइ नॉच निर्भय ह्वै, 'व्यास' लखी यह घात ॥१६९॥

कहत सुनत वहुत दिन वीते भक्ति न मन मे आई ।
स्याम-कृपा विनु, साधु-संग विनु, कहि कौनैं रति पाई ॥
अपनैं-अपनैं मत मद भूले, करत आपनी भाई ।
कह्यौ हमारौ वहुत करत हैं, वहुतनि में प्रभुताई ॥
मैं समुझी सव, काहू न समझी, मैं सवहिन समुझाई ।
भोरे भक्त हुते सव तव के, हम तौ वहु चतुराई ॥
हमहीं अति परिपक्व भये, औरनि के सवै कचाई ।
कहनि सुहेली, रहनि दुहेली, वातनि वहुत वड़ाई ॥
हरि-मंदिर माला धरि, गुरु करि, जीवनि के दुखदाई ।
दया, दीनता, दास-भाव विनु, मिलै न 'व्यास' कन्हाई ॥१७०॥

राग सारंग

कलिजुग मन दीजै हरि-नामैं ।
आराधन-साधन धन-कारन, कत कीजै वेकामैं ॥
साधुनि के गुन नाहि न लागैं, दोष विरानैं तामैं ।
सेवा मंदिर भक्ति भागवत, अव न होत विनु दामैं ॥

हरि साधुनि विनु कछू न भावै, ऐसे गुन हैं कामैं ।
जाहि भलौ सबही कौ भावै, 'व्यास' भक्ति है तामैं ॥१७१॥

राग सारग व धनाश्री

कलिजुग स्याम-नाम आधार ।
हरि के चरन-सरन विनु, काल-व्याल पै कहूँ न उवार ॥
देवी - देवा पूजा करि - करि, धार वहे ससार ।
स्वान पूँछ गहि भव - सागर कौ, क्यों पावहुगे पार ॥
छूट्यौ अपनौ धर्म सवनि पै, ज्ञान विवेक विचार ।
एक लोभ के आगें, सकल गुननि कौ पर्‌यौ विडार ॥
बाह्मन करत सूद्र की सेवा, तजि विद्या - आचार ।
रज छाँड़ी रजपूत, कपूतन लाज नही ससार ॥
वनिक - वनिक मे मेलि जौडरी, जोरत कपट भँडार ।
कुल की नारि गारि दै भर्तहिं, ज्यों रति गाइवि जार‡ ॥
और सवै असमंजस हरि विनु, नाहिन कहूँ उवार ।
'व्यास' वचन माने विनु जुग - जुग सेवहुगे जमद्वार ॥१७२॥

तौ लगि रवनी लगत रवानी ।
जव लगि मोहन-मुख-छवि वारक, उर अतर नहिं आनी ॥
तौ लगि स्रवननि सुनत सुहाइ, न और पुरान-कहानी ।
जौ लगि साधुनि पर वारक हू, सुनी न सुक-मुख-वानी ॥
तव लगि जोग, जज्ञ, व्रत, तीरथ, भावत पावक पानी ।
लव लगि गुरु-उपदेस न जान्यौ, प्रेम-भक्ति हू वानी ।
जव लगि 'व्यास' निरास दास ह्वै, भजी नहीं रजधानी ॥१७३॥

राग सारग व विलावल

सपनौ सौ धन अपनौ स्याम ।
आदि अंत तासों न विछुरिवौ, परत काल सों काम ॥
तन, धन, सुत, दारा, काराग्रह, तजहु भजहु लै नाम ।
देखि - देखि फूलहु जिनि भूलहु, जग नट कौ सौ आम ॥
जैसैं बछरा के धोखे सों, गैया चाटत चाम ।
ऐसैं 'व्यास' आस सव झूठी, साँचौ हरि अभिराम ॥१७४॥

राग धनाश्री

साँचौई गोपाल-गोपाल रढ़िवौ ।
रूप-सील-गुन कौन काम कौ, हरि की भक्ति विनु पढ़िवौ ॥

‡ गाइविजार (ख, ग), गाय_विजार (च, छ)

जोग, जज्ञ, जप, तप, संजम, ब्रत, कलई कौ सौ मढ़िवौ ।
नाम-कुठार विना को काटै, पाप - बृंद कौ वढ़िवो ।।
जैसें अन्न विना तुस कूटत, बारू में तेल न कढ़िवौ ।
ऐसैंहिं करम-धरम सव हरि विनु, विन वैसादर डढ़िवौ ।।
जैसे परदारा सों रति करि, पति विनु रासभ चढ़िवौ ।
ऐसैंहिं 'व्यास' निरास भये विनु, कहु वातनि कौ गढ़िवौ ।।१७५।।

राग गौरी व धनाश्री

वृंदावन साँचौ धन भैया ।
कनक-कूट कोटिक लगि तजियै, भजियै कुँवर कन्हैया ।।
जहाँ श्री राधा - चरन रैंनु की कमला लेत वलैया ।
तिनमें गोपी नाँचति - गावति, मोहन वैंनु वजैया ।।
कामधेनु कौ छीरसिंधु तजि, भजहु नंद की गैया ।
चारयौ मुक्ति कहा लै करियै, जहाँ जसोदा मैया ।।
अदभुत लीला, अदभुत वैभव, साँचौ सुकदेव कहैया ।
आरत 'व्यास' पुकारत वन में, थोरेई लोग सुनैया !!१७६।।

राग सारग व धनाश्री

श्री वृंदावन अनन्यनि की गति ।
अनत रहत दुख सहत सुखनि लगि, जाइ हठीले (हू) की पति ।।
सुक वरजे सुकरत अभिमानी, विपयिन संग गई मति ।
कृष्न-कृपा विनु तृष्ना वाढ़ी, कनक - कामिनी सों रति ।।
सीता राम सरीखे विछुरे, माया वर्तमान अति ।
अजहूँ माया मोह न छूटत, 'व्यास' मीच सिर गाजति ।।१७७।।

जाके मन लोभ वसै सो कहा हरि जानै ।
स्याम - कृपा विनु साधु - वचन नहिं मानै ।।
साधुन सों विमुख भूत - पितरन कों मानै ।
गनिका कौ पूत पितहिं कैसें पहिचानै ।।
इहि विधि जगत जनम-जनम वहुतन के हाथ विकानै ।
'व्यास' स्याम-भक्ति विनु को, को नहीं खिसानै ।।१७८।।

राग नट

मनहिं नचावै विपय - वासना, क्यों हिरदै हरि आवै ।
हौं असमर्थ अनाथ, मारयतु पाचनि, को समुझावै ।।
सखा सग के अग करत नहिं, सखी न मोहिं वचावै ।
लहुरौ भैया करि विरोध, औरनि पै मोहिं हँसावै ।।

बिनु आगहिं घरु लगत जु लायौ, सो कोऊ न बुझावै ।
भीतर भाजि दुरयौ बाहिर कौं, भक्त न सोधौ पावै ।।
तोरौ पानौं सुत - दारा हँसि बसत परौसी गावै ।
एकै आस 'व्यास' नहिं समुझत, खात पीवन बहकावै ।।१७६।।

राग धनाश्री

तृष्ना कृष्न - कृपा बिनु सबकैं ।
जती सती कौ धीरज न रहै, माया - लोभ बात के बबकैं ।।
जग घोराहि काम दौरावत, मारत आसा चाबुक ठबकै ।
गह्यौ आसरौ बृदावन कौ, काटर‡ 'व्यास' भयौ है अबकैं ।।१८०।।

राग कान्हरौ

श्री कृष्न-सरन रहे तृष्ना जैहै ।
भजि गोपाल कृपालहिं निसिदिन, काल-व्याल कबहूँ नहिं खैहै ।।
साधु - सिंह की जो सगति रहै, तौ न निकट माया-मृग रैहै ।
'व्यास' भक्ति बिनु गति नहिं लहियै, जम के द्वार नरक दुख सैहै ।।१८१।।

राग धनाश्री

जैसैं प्यारे लागत दाम ।
ऐसैं रसिक अनन्यन लागत, प्यारे स्यामा-स्याम ।।
काया-जाया सौं रति बाढ़ी, कौन कहै निहकाम ?
राग-तान-तालहिं मन दीनौं, लेइ न हरि-गुन-ग्राम ।।
पाप हरन, सुचि-करन 'व्यास', पतितन कौं है हरि-नाम ।।१८२।।

राग सारंग

नियता पतितन कौ हरि-नाम ।
उचरत ही मुँह कुचरत कलि कौ, खोज न राखत स्याम ।।
चोर मध्य या मित्र, ब्रह्म, गुरु, दारा, सुत आराम ।
अधवतन हरि बोलत हीं, भगवत दियौ निज-धाम ।।
कौन अजामिल हू तें पापी, जाकौं जम हँसि कियौ प्रनाम ।
हरि-पद-पंकज-छत्र-छाँह बिनु, मिटै न दुख-रवि-घाम ।।
ब्रजवासी 'व्यास' बबूर किये हरि, और भक्त कुल आम ।।१८३।।

राग कान्हरौ

पतित पवित्र किये हरि-नागर ।
एक नाम के लेत सबनि के, सूखि गये अघ-सागर ।।

---

‡ काटर (ख, ग), कट्टर (च, छ

अधम अजामिल हू कों उबरी, मुक्ति-पौर की आगर ।
हरि-हरि कहत कौन पापी के, पाप लिखे जम-कागर ।।
जैसैं राजनीत की संका, चोरन होत अचागर ।
गौरस्याम कौ सरन तक्यौ जिनि, तिनकी कौन बराबर ।।
ऐसैं 'व्यास' अनन्य सभा में और न होत उजागर ।।१८४।।

राग कान्हरौ

हरि कहि लेहु कछू नहिं रैहै ।
सपनौ सौ जोवन-धन अपनौ, सुत-सपत-दारा - घर जैहै ।।
कोटिक करम धरम कौ करता, एक भक्ति बिनु गति नहिं पैहै ।
संतत सिंह सरन रहि को अब ,कोटि स्वान परि धौ कहा लैहै ।।
कुल - कन्या भरतारहिं तजि, गनिका कैसैं पतिहिं रिझैहै ।
कदली निकट बारि कर, को जड अंड - बबूर - धतूरे बैहै ।।
हीरा हेम निगड़ दुखदाता, चंदन फूल भार को मैहै ।
प्यासे परत सुधासिंधु हित, कौन अंध बिष घोरि अचैहै ।।
सुरसरि परिहरि कौन पातकी, पावन छोड सुरा-जल न्हैहै ।
'व्यास' उपासक हरि कौ ह्वै, को देव-पितर-भूतन कर गैहै ।।१८५।।

हरि के नाम के भरोसैं रहियै ।
साधन-विधि-व्यौपार न कलिजुग, निसि-दिन हरि-हरि कहियै ।।
अपनैं धरम विमुख नर, हरि-भजन बिना भवसिंधु न तरियै ।
और न कछू उपाव, भाव करि, संत-चरन-रज गहियै ।।
माया-काल न गुन सब झूठे, दुख - सुख विधि सब महियै ।
'व्यास' निरास भयौ, हरि के बल साँचौ सुख तब लहियै ।।१८६।।

राग कान्हरौ

गाइ लेहु गोपालहिं, यह कलिकाल वृथा न बितीजै ।
बिछुरत हू न जानि है, तन-मन-धनहिं न भूलि पतीजै ।।
दामिन कैसी चमक मीचु की, कामिनि त्यौं न चितीजै ।
करता - हरता परमेसुर, बिनु काजहिं कत पछतीजै ।।
भोग करत दुख-रोग बढ़त, हरि - नाम प्रसाद हितीजै ।
'व्यास' स्याम के दास कहावत, कपट भँडार रितीजै ।।१८७।।

हरि-गुन गावत कलिजुग रहियै ।
विधि - व्यौहार रह्यौ न कछू अब, साधु - चरन निजु गहियै ।।
इहिं संसार-समुद्र बोहित उठि, हरि - हरि कहत निबहियै ।
'व्यास' स्याम की आस करहु, उपहास सबनि की महियै ।।१८८।।

राग कान्हरौ

मन मेरे तजियै राजा-संगति ।
स्यामहिं भुलवत दाम-काम वस, इनि वातनि जैहै पति ॥
विपयनि के उर क्यों आवत हरि, पोच भई तेरी मति ।
सुख कहँ साधन करत अभागे, निसि-दिन दुख पावत अति ॥
'व्यास' निरास भये विनु, भगति विना न कहूँ गति ॥१८९॥

राग कान्हरौ

जाकैं हरि धनु नाहिन माल ।
जो गरीव गरवत काहे कौं, वादि वजावत गाल ॥
है कपूत वंस-कुल-वोरा, काँचु रच्यौ ज्यों लाल ।
तासों धनिक कहौ जिनि कोऊ, है कोरौ कगाल ॥
तरपट परै जानियै तव ही, कंठ गहै जम-जाल ।
'व्यासदास' सपनें की सपति, को गहि भयौ निहाल ॥१९०॥

राग कान्हरौ

सवै करत पद की रति, कहा हम थोरे हरिहिं रिभावत ।
राग-रागिनी तान-मान महिं, लालन लगतैं आवत ॥
कछू जुगति ना मो कहँ उपजत, उर में मोहन गावत ।
सवा लाख कीनें तिलोचन हरि कौं, को दरसन पावत ॥
भाव विना न भक्ति-रस उपजै, यह सव संत वतावत ।
कियें उपाय राधिका, मोहन 'व्यास'हिं निकट न आवत ॥१९१॥

राग नट

कहत सव लोभहिं लागौ पाप ।
तऊ न छूटत लोभ होत हू, वाढ़्यौ उर परिताप ।
जैसैं पंकहिं पंक न छूटहिं, सूखि सरीरहिं आप ।
ऐसैं जोग, जज्ञ, तीरथ, व्रत, मन कौ मिटै न ताप ॥
विद्यानानि* कृष्न जादव कौं, मुनि नें दीनौ कोपि सराप ।
'व्यास' भक्ति विनु दुर्लभ लोकनि तजत सोक अगधाप ॥१९२॥

राग कान्हरौ

लोक चतुर्दस लोभ फिरायौ । कवहुँक राजा रंक सुहायौ ॥
कवहुँक वाँभन सुपच कहायौ । 'व्यास' वचन सुनि साधुन पायौ ॥१९३॥

* विद्यावानि (ग), विद्यमान (ख, च, छ),

राग सारंग

जाके मन बसै काम-कामिनि - धन ।
ताकैं सपनै हू न संभवै, आनँद-कंद स्याम-घन ॥
भक्ति, भागवत भजत तहाँ नहिं, जहाँ विषय आचरन ।
दया, दीनता, करुना तहाँ, जहाँ नहिं जीव - आहरन ॥
विमद विमत्सर संत जहाँ हैं, भगवत - लीला - सरन ।
'व्यास' आस की पास बँधे, ते बूडे ग्रह आचरन ॥१६४॥

राग बिलावल

निष्काम ह्वै स्याम जो गावहु ।
साँचे-साँचे साधुनि में तुम, साँचे साधु कहावहु ॥
बिनु लीनैं जो नाँचहु, तौ तुम प्रेम - भक्ति-फल पावहु ।
दाम-काम ना हरि-नाम कौ गुन लगै न कोटि रिझावहु ॥
इंद्रीजित ह्वै अजितहिं मन दै, तन धन सुख बिसरावहु ।
बिमुखन के द्वारैं उझकत ही, मुख जिनि हरिहिं दिखावहु ॥
अगनित दोष रोष तृष्ना महँ, कृष्नहिं कहा लजावहु ।
आसा-बंधन तें नँदनंदन, 'व्यास'हिं वेगि छुड़ावहु ॥१६५॥

राग मारग

सो न मिल्यौ जो कबहुँ न बिछुरै ।
हरि कौ साथ सु ओर निबाहूँ, जो मन माँझ फुरै ॥
जैसैं पथरहिं भिदत न पानी, परसत फटक धुरै ।
ऐसैं जड़ सचेत के चित सौं, साँचौ हित न जुरै ॥
अनी, आगि में परत बनी लगि सूर सती न मुरै ।
गिरवर तरवर सिंधु भेद कैं, फिरि न नदी बहुरै ॥
ठग, बग, डिंभी लोगनि की गत, आदि - अंत न दुरै ।
दया, दीनता, दास - भाव बिनु 'व्यास' न स्याम ढुरै ॥१६६॥

दुविधा तब जैहै या मन की
निर्भय ह्वै कैं जब सेवहुगे, रज श्री वृंदावन की ॥
कामरि लै, करुवा जब लैहै, सीतल छाँह कुंजन की ।
अति उदार लीला गावहुगे, मोहन - स्याम सुघन की ॥
इन पाँइनि परिकरमा दैहैं, मथुरा - गोवर्धन की ।
'व्यास' आस जब टेक पकरिहैं, ऐसैं पावन पन की ॥१६७॥

सबै सुख, विमुखनि कों दुख-रूप।
जहाँ न रसिक अनन्य सेईयतु वृंदावन के भूप॥
जहाँ न जीव-दया, न दीनता-भाव, न भक्ति अनूप।
कनक-कूट कोटिक लगि तजि, भज हरि-मंदिर जु अजूप।
'व्यास' वचन सुनि राज परीछत विसराये गृह-कूप॥१९८॥

राग सारग

हरि-विमुखन कों दारुन दुख पायौ।
निसि-दिन विषै-भोग की चिंता, अतकाल दिन आयौ॥
औंडी नींव खुदाइ दाम दै. ऊँचौ घर करवायौ।
'व्यास' बृथा ऐसे साधन करि, जनम-जनम डहकायौ॥१९९॥

विमुखनि रुचित न कुंजन वसिवौ।
जिनमें राधा-मोहन विहरत, देखि सुखद मुख हँसिवौ॥
निसि-दिन-छिन छूटत नहिं कामिनि, चरनन सों सिर घसिवौ।
चुंवत मन-आनंद विकाने, रह कुल व्याकुल गसिवौ॥
अंग-अंग रसरंग रचे, सुख सचे, कुसुम कच खसिवौ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि, पिय सँग जमुना-जल में धसिवौ॥२००॥

राग सारग

बहिनी-बेटा, हरि कों न तजियै।
जा संगति ते पति-गति नासै, ता संगति ते लजियै॥
माता, पिता, भैया, भामिनि, कुल, सखी, सखा नहिं भजियै।
साधुनि के पथ चलियै, ऊवट चलै सु बेगि वरजियै॥
गुरुहिं न आवै गारि बातन की, सो सामग्री सजियै।
'व्यास' विमुख ब्राह्मन परिहरियै, सुपच भक्त की कूखि उपजियै॥२०१॥

जौ पै कोऊ साँची प्रीति करि जानैं।
तौ या वन में राधा-रमनैं, मन लगाइ गहि आनैं॥
सुनियत कथा स्याम जू की एकै, प्रीति के हाथ विकानैं।
ता मोहन की महिमा कैसैं, विपई 'व्यास' वखानैं॥२०२॥

साँची प्रीति हरति उपहासहिं।
कपट-प्रीति-रँग राचि परस्पर, जब-कब होहि बिनासहिं॥
मुँह-मीठी वातनि मन मोहत, हरत पराई आसहिं।
दावानलहिं न ओस* बुझावत, कुहुर न हरत डुकासहिं† ॥

* ओस (च, छ), वोस (ख, ग)

† डुकासहि (च, छ), ढुकासहि (ख) ढुकामहिं (ग)

पीर पराई धीर हरत कछु, कहत न आप व्यथा सहिं ।
घर के सुत ज्यों जिय कायर,कोकिल चित चोरत कलवासहिं ।
ऐसे कपटिन की संगति तजि,'व्यास' भजहु हरि-दासहिं ॥२०३॥

साँची प्रीति के हरि गाहक ।
जान राइ सब ही हरि जानत, परत प्रेम कौ लाहक ॥
कपट निकट न रहै नट-नागर, दीननि के दुख दाहक ।
'व्यास' न कोऊ और सहाइक, भक्ति-भार को वाहक ॥२०४॥

राग सारंग

हरि सों कीजै प्रीति निबाहि ।
कपट कियें नागर-नट जानत, सबके मन की डाहि ॥
मैं फिरि देख्यौ लोक-चतुर्दस, नीरस घर-घर आहि ।
अपनै-अपनै स्वारथ के सब, मन दीजै अब काहि ॥
भक्ति-प्रताप न जानत त्रिपई, भव-सागर अवगाहि ।
जार-जुवति-गनिका कौ बेटा, पहिचानैं न पिताहिं† ॥
जैसैं प्यासौ मृग धावत, नहिं पावत मृग-तृष्नाहि ।
ऐसैं तन, धन, सुत, दारा सब झूँठे, मधुकरसाहि ॥२०५॥

प्रीति कपट की जब तब टूटै ।
चोढ़ गाय ज्यौं हुँकरि बछेरुहिं, थन लागत मुख कूटै ॥
कबहुँक बचन बोल मीठे से, तमकि तुपक सी फूटै ।
पाखंडिन की संगति खोटी, ज्यों ठग मिलि सब§ लूटै ॥
कृपावंत भगवंत होहिं तब, दारुन दुख ते छूटै ।
साधु-संग तें 'व्यास' परम सुख, भक्ति-रतन कहा खूटै ॥२०६॥

राग रामकली

वादि सुख* - स्वाद, वेकाज पंडित पढ़त ।
स्याम-जस, भक्ति-रस, कहै नहिं भागवत,
हक नाहक कहा कनक-कामिनि विषै निसिदिन रढ़त ॥
करत साधन सकल, धन-मान चित धरि,
कटक भटकत मृषा बचन-रचना गढ़त ।

---

† पहिचानै न पिताहि (च, छ), पहिचानै पतिताह (ख); पहिचानै पतिताहि (ग)

§ सब (ख), सग (ग, च, छ)

* सुख (च, छ), नुख (ख, ग)

अस्व - गज हेत नृपति नर ठगत, रातनि—
जगत, नैंक आदर जान गर्व - पर्वत चढ़त ॥
हरिदास निंद करि, पित्र-भूत वंदि उर,
कृष्न - गोपाल सुभ नाम नहिं मुख रढ़त ।
'व्यास' मन त्रास नहिं करत जमदूत की,
जातना‡ कठिन सहि लेत पावत डढ़त ॥२०७॥

राग सारग

पढ़त - पढ़ावत जो मन मान्यौ ।
कौन काम गोपाल - भक्ति सों, जो पुरान पढ़ि जान्यौ ॥
घर-घर भटकि, मटकि कामिनि लगि, गाल पटकि धन आन्यौ ।
निसिदिन विषै-स्वाद - रस - लंपट, तजि पाँचनि की कान्यौ ॥
सपनै हूँ न किये हरि अपने, हित† हरिवस बखान्यौ ।
सुने न वचन साधु के मन दै, चरन पखारि न अँचयौ पान्यौ ॥
सारासार विवेक न जान्यौ, मन - संदेह न भान्यौ ।
दया, दीनता, दास-भाव विनु, 'व्यास' न हरि पहिचान्यौ ॥२०८॥

राग सारग

हिय में आवत हरि न पढ़ै ।
अभिमानी क्यो दास होत, दीनन के कध चढ़ै ॥
भक्ति - प्रीति तौ खोवत धन लगि, रोवत गुली डढ़ै ।
ठगत राजसिनि, डगत धर्म ते, फूलत दाम वढ़ै ॥
जव - तव पीतरि प्रगट होत, कलई सों कनक मढ़ै ।
'व्यास' कपट सों हरि न मिलत, ज्यो सूरहिं रनहिं कढ़ै ॥२०९॥

राग सारग

आपु न पढ़ि औरनि समुझावत । दोषहिं प्रगटत, गुनहिं दुरावत ॥
नीर मिलै सब छीर भिडावत । सत - सभा सपनैं नहिं आवत ॥
अपनैं ही घर वड़े कहावत । औरनि ठगि आपुन ठगवावत ॥
गनिका के से भाव वनावत । हरि-बिमुखनि पै सचु नहिं पावत ॥
इहिं विधि जनम-जनम डहकावत । 'व्यासहिं' अभिमानी नहिं भावत ॥२१०॥

भक्ति न जनमैं पढ़ैं पढ़ायैं ।
कृष्न-कृपा विनु, साधु-सग विनु, कह कुल गाल वजायैं ॥
हरि सों ठैन न सुबर मानहीं, पिटभरि रागहिं गायैं ।
हरिहिं रिझाइ सकै को नटवा, नट - भट पै नचवायैं ॥

---

‡ जाचना (ख), जान्तिना (ग), यातना (च, छ),
† हित (ख), हिति (ग), श्री (छ), (श्री) हित (च)

सपनें हू न मिलैं हरि लोभिनि, बाजे विविध सुनायें ।
सुभटनि जूझत हरि न मिलै अब, सती न पावक पायें ।।
दान दियें भगवान न भेटैं, कोटिक तीरथ न्हायें ।
नाऊ, जाट, चमार, जुलाहे, छीपा हरि दुलरायें ।।
मत्सर बाढ़्यौ भट्ट-गुसाँइन, स्वामी 'व्यास' कहायें ।।२११।।

राग सारंग

भई काहू कैं भक्ति पढ़ै न ।
धन कौं पंडित कहत भागवत, होत न हरि सौ ठैंन ।।
उपज्यौ भाव कबीर धीर कौं, वेद पुरान पढ़ैं न ।
माँस छाँडि रैदास भक्त भये, कृपा - तुरग चढ़ैं न ।।
विपइनि तजैं पिंगला सुधरी, करुना राज बढ़ैं न ।
'व्यास' प्रतीति बिना न कहूँ सुख,ज्यौं दुख उरग कढ़ै न ।।२१२।।

बाह्मन के मन भक्ति न आवै । भूलै आप, सबनि समुझावै ।।
औरनि ठगि-ठगि अपुन ठगावै । आपुन सोवै, सबनि जगावै ।।
वेद-पुरान बेचि धन ल्यावै । सत्या तजि हत्याहिं मिलावै ।।
हरि-हरिदास न देख्यौ भावै । भूत, पितर, देवता पुजावै ।।
अपुन नरक परि कुलहिं बुलावै । 'व्यास'भक्ति बिनु को गति पावै।।२१३

हरि बिनु जम की पाँसि जनेऊ ।
सुक-सनकादिक मुकति भये, हरि-भजन करत हैं तेऊ ।।
अगिन-कुंड रौरव कुंडनि सम, मूँज मेखला बधनु ।
स्रुवा डंड स्वाहा-रव हाहा, भूलि गये नँदनंदनु ।।
कुस त्रिसूल, कटक रित्विज करि, द्विज-पंडित जम-जूप ।
प्रोडासान जु मास खवावत, आचारज जम रूप ।।
इहिं विधि कलजुग जज्ञ करत, कंचन-कामिनि की आस ।
केवल भक्ति-भागवत बिनु,छिन ना जीवै सुख पावै'व्यास' ।।२१४।।

राग कान्हरौ

साकत बाह्मन, गूँगौ ऊँट ।
भार लेत संसार, अहार विकट काँटे कौ सूँट ।।
चालि हालि सहि, नकुवा छेदि, चढ़्यौ उटहेरौ टूँट ।
नकनकाइ मारत हारत हू, देत न जल कौ घूँट ।।
लयें कुदान कारटो† खाइ, बढ़ाइ निलज जग-खूँट ।
'व्यास' वचन मानें बिनु बाढ़्यौ, दारुन दुख कौ बूँट ।।२१५।।

† कारटौ (ग, च), कान्टो (ख), काटो (छ)

राग सारग

पितर सेप जड़ स्यामहिं देत ।
तिहिं पापी अपुने पितरनि के मुख मे मेली रेत ॥
सो ठाकुर-सेवक न जानिवौ, जो अधमनि की जूठन लेत ।
तिनकी सगति पति-गति जैहै, मेरे चित यह चेत ॥
स्याम केस सित होत न धोयैं, कौला होत न सेत ।
सहज भक्ति विनु 'व्यास' नहीं कन सेवत ऊसर खेत ॥२१६॥

राग सारग

करौ भैया ! साधुन ही सो सग ।
पति-गति जाइ असाधु संग ते, काम करत चित भग ॥
हरि तें हरि-दासन की सेवा, परम-भक्ति कौ अग ।
जिनके पद तीरथमै पावन, उपजावत रस-रंग ॥
तिनके वस दसरथ-सुत मार्‌यौ, माया-कनक-कुरंग ।
तिनके कहत 'व्यास' प्रभु सुमिर्‌यौ, सत्वर* धनुष निषंग ॥२१७॥

राग सारग

जो तू माला तिलक धरै ।
तौ या तन-मन-व्रत की लज्जा, ओर निवाह करै ॥
करि वहु भॉति भरोसौ हरि कौ, भव-सागर उतरै ।
मनसा, बाचा और कर्मना, तृन करि गनतु धरै ॥
सती न फिरत घाट ऊपर तें, सिर सिंदूर परै ।
'व्यासदास' कौ कुंजबिहारी, प्रीत न कहुँ विसरै† ॥२१८॥

राग सारंग

मूँड़ मुड़ाये की लाज निवहियै ।
माला तिलक स्वॉग धरि हरि कौ, मारि-गारि सब ही की सहियै ॥
विधि-ब्यौपार जार सों कलिजुग, हरि-भर्त्तार गाढ़ौ करि गहियै ।
अनन्य-व्रत धरि सत जिनि छॉडहु,बिमद§ संतनि की सगति रहियै ॥
अग्नि खाहु,विष पियहु,परौ जल, विषयनि कौ मुख भूल न चहियै ।
'व्यास' आस करि राधा-धव की, श्री वृंदावन बेगि उमहियै ॥२१९॥

* सत्वर (च, छ) । (ख, ग) प्रतियों में सत्वर नहीं है ।

† प्रीति न कहूँ बिसरै (च, छ), प्रति कबहू बिसरै (ख)

§ बिमद (ग, च, छ), विसद (ख)

कर लै करुआ कुंज सहाइक ।
पीलू-पैचू, साग-सैंगरे, छाछि-समाँ मन-भाइक ॥
विहरत स्यामा-स्याम सनेही, दीनन के सुखदाइक ।
वृंदावन की रेनु-धेनु, तरु-तीर सेइबे लाइक ॥
अभिमानीनि सजा दै रोकत, ब्रजवासी हरि-पाइक ।
काम-केलि सुख के रखवारे, हरपत वरपत साइक ॥
मगन सबै आनंदसिंधु मे, नंदादिक ब्रज-नाइक ।
'व्यास' रास-भूमिहिं नहिं परसत, नीरस माया माइक ॥२२०॥

राग सारग व धनाश्री

सोई घरी, सोई दिन, सोई पल, सोई छिन, जबहिं मिलत मेरे प्यारे के प्यारे ।
सोई घर-घरनी, सोई सुत, गुरु हित,* जिनकैं रसिक नैंननि के तारे ।
सोई 'व्यास', सोई दास, त्रास तजि हरि भजि, रास दिखावै, सोई प्रान हमारे ॥

राग कान्हरौ

सोई जननी, जो भक्तहिं जावै । सोई जनक, सु भक्ति सिखावै ॥
सोई गुरु, जो साधु सिखावै । सोई साधु, जो विषै छुड़ावै ॥
सोई धर्म, जो भर्म नसावै । सोई धन, जो प्रीति बढावै ॥
सोई सूर, जो मन न चलावै । सोई धीर, जो चित न डुलावै ॥
सोई मुख, जो हरि-गुन गावै । सोई 'व्यास', जो रास करावै† ॥२२२॥

राग नट

कोई रसिक स्याम-रस पीवैगौ । पीवैगौ सोई जीवैगौ ॥
पीवैगौ सोई फूलैगौ । तन-मन देख न भूलैगौ ॥
पीवैगौ सो नाचैगौ । साधु-संग मिलि राचैगौ ॥
चाखैगौ सो जानैगौ । कहनै कौन पत्यानैगौ ॥
'व्यास' दास जिय भावैगौ । तब अग-खवासी पावैगौ ॥२२३॥

साँची भक्ति और सब झूंठी ।
पाई नारद स्याम-कृपा ते, खात साधु की जूंठी ॥
जिन-जिन कौ हरि काज सँवार्यौ, सृंगी रिषि सों रूठी ।
'व्यास' सुनी कि सुनी सुकदेव, परीछत ऊपर तूठी ॥२२४॥

---

* सुत गुरु हित (च, छ), सुत गुर हिति (ग),
सन गुर हित (ख)

† करावै (ख, च, छ), बनावै (ग)

राग सारंग

मेरौ मन मानत नाचैं - गायैं ।
एकै प्रेम - भक्ति कौ फल है, मोहनलाल रिझायैं ।।
गदगद सुर, पुलकित जस गावत, नैननि नीर वहायै ।
नट-गोपाल कपट नहिं मानत, कोटिन स्वाँग वनायैं ।।
तजि अभिमान-दीनता जन की, स्याम रहत सचु पायैं ।
'व्यास' सुपच तारे, कुल वोरे विप्रनि हरि विसरायैं ।।२२५।।

राग गौरी

राधावल्लभ के गुननि गाइ लेहु ।
तजहु असाधु, सग भजि साधुनि, हरि सों हित उपजाइ लेहु ।।
बृंदावन निरुपाधि राधिकारमन सों, प्रीति वढाइ लेहु ।
नव-निकुंज सुख-पुंजनि वरषत, नैंननि सुख दिखराइ लेहु ।।
पावन पुलिन रासमंडल में, मन दै तनहिं नचाइ लेहु ।
गदगद सुर, पुलकित कोमल चित, आनँद-नीर वहाइ लेहु ।।
विमद-विमत्सर रसिक-अनन्य - चरन - रज सिर लपटाइ लेहु ।
इहिं विधि महाप्रसादहिं पावत, सहचरि 'व्यास' कहाइ लेहु ।।२२६।।

कुंजनि-कुंजनि रसमय लूट ।
दस दिसि निसि-वासर बृंदावन - चंद, बृंद सव छूट ।।
राग-भोग अनुरागनि विलसत, जा तन देख्यौ कूट ।
गुन-सागर नागर रस - रूप - कूप - जल जात न टूट ।।
रसिक अनन्य कहाइ अनत वसि, राजा-राउ न फूट ।
लोक - प्रतिष्ठा विष्टा लगि, सतु हार्‌यौ चारौं खूट ।।
ज्यौं आनवोलैं ऊँट भार सहि, भजि काटै सरहूट ।
ऐसैं 'व्यास' दुरास - पास वँधि, क्यों आवै पसु छूट ।।२२७।।

राग गौरी

हरि-गुन गावत कलिजुग सुनियतु, भयौ सवनि कौ काज ।
साखि - भागवत बोलत अजहूँ, काहै करत अकाज ।।
सुक-सनकादिक जेहि रस माते, तजि संसार - समाज ।
जेहिं रस राज परीछति राँचे, बिसरि गयौ जल-नाज ।।
जिहिं रस प्रेम-मगन भई गोपी, तजि सुत-पति-गृह-लाज ।
सो रस 'व्यासदास' की जीवनि, राधा - मोहन आज ।।२२८।।

राग गौरी

स्याम-कृपा बिनु दिन दुख दूनौं ।
अपने ही अभिमान जरत जग, भयौ काज अति भूनौ ॥
भक्ति-मुक्ति कौ दाता है हरि, प्रभु बगसत अति पूनौ ।
कूरनि कौं मुहरें देत, 'व्यास' कौं ईंटै - पाथर - चूनौ ॥२२९॥

१६. सिद्धावस्था—

राग सारंग

जासों लोग अधर्म कहत हैं, सोई धर्म है मेरौ ।
लोग दाहिने मारग लाग्यौ, हौं बाँये चलत हौं डेरौ ॥
द्वै-द्वै लोचन सब ही कें, हौं एक आँखि कौ ढेरौ ।
और आब हौं कौन काम कौ, ज्यों बन बुरौ बहेरौ ॥
लोगन कौं पुर - पट्टन - खेरौ, नाहिन मेरौ बसेरौ ।
मृगया करि जो काम न आवै, मर्कट माँस अहेरौ ॥
जिनकी ये सब छोति करत हैं, तिनहीं कौ हौं चेरौ ।
सूजी नरी घुरहुटी 'व्यास' के मन में बस्यौ बँदेरौ ॥२३०॥

राग सारंग

अब मैं वृंदावन-धन पायौ ।
राधा - चरन - सरन मनु दीनौं, मोहनलाल रिझायौ ॥
सूतौ हुतौ विषै - मंदिर मे, श्री गुरु टेरि जगायौ ।
अब तो 'व्यास' विहार विलोकत, सुक-नारद मुनि गायौ ॥२३१॥

राग धनाश्री

हरि बिनु, छिन न कहूँ सुख पायौ ।
दुख - सुख - सपति - विपति भोगवत, स्वर्ग - नर्क फिरि आयौ ॥
लोक चतुर्दस बहुविधि भटक्यौ, स्वारथ लगि, मैं हरि बिसरायौ ।
कोटि गाय - बाँभन मारे कौ, ताप - पाप उपजायौ ॥
कबहुँक सुपच सरीर धर्‌यौ, चोरी बल उदर बढ़ायौ ।
कबहुँक विद्या - बाद - स्वाद लगि, बाह्मन ह्वै पुजवायौ ।
कबहुँक रंक निसंक भयो, घर - घर फिरि जूठो खायौ ।
कबहुँक सिंहासन पर बैठ्यौ, छत्र - चौर ढरवायौ ॥
कबहुँक कंचन - कामिनि लगि, रन - दूलह बिरद बुलायौ ।
कबहुँक विषयी - विषयनि कारन, घर तजि मूंड़ मुड़ायौ ॥
ऐसैं नाना धर्म - कर्म करि, जनम - जनम डहकायौ ।
अबकै रसिक अनन्यनि 'व्यास'हिं, राधा - रमन बनायौ ॥२३२

राग भूपाली

बिसद कदंबनि की कल वाटी ।
बृंदावन रस-वीथिन रसमय, रसिकन की परिपाटी ।।
नवदल-माल-तमाल-गुच्छ-छबि, तोरन - रचना ठाटी ।
अमित नमित फूलनि की भूलनि, रमित महल की टाटी ।।
अति आवेस सुदेस निलज ह्वै, लाज लाज की काटी ।
स्यामा-स्याम केलि-वल रोकी, मदन-मान की घाटी ।।
सरस सुधग राग-रागिनि मिलि, गावत है करनाटी ।
तान-तरंग सुनत ही, सकल गुनन की परदा फाटी ।।
और सकल साधन नीरस, या रस बिन सब गुर माटी ।
छाँड़ि प्रपंच नाँच नट कौ सौ 'व्यास' संधि यह डाटी ।।२३३।।

राग सारंग व भूपाली

तन अब ही कौ कामै आयौ ।
साधु-चरन कौ संग कियौ, जिन हरि जू कौ नाम लिवायौ ।।
धन्य वदन मेरौ, जिनि रसिकनि कौ जूठौ खायौ ।
रसना मेरी धन्य, अनन्यनि कौ चरनोदक प्यायौ ।।
धन्य सीस मेरौ, श्रीराधा - रमन - रेनु - रस लायौ ।
धन्य नैन मेरे, जिन बृंदावन कौ सुख दिखरायौ ।।
धन्य स्रवन मेरे, श्री राधा - रमन - बिहार सुनायौ ।
धन्य चरन मेरे, श्री बृंदावन गहि अनत न धायौ ।।
धन्य हाथ मेरे, जिन कुंजन में हरि - मंदिर छायौ ।
धन्य 'व्यास' के श्री गुरु, जिन सर्वोपरि रंग बतायौ ।।२३४।।

राग कान्हरौ

मनुवाँ मेरे*, तू हरि-पद अटक्यौ ।
अब तै साँचौ सुख पायौ, तब दुख लगि घर - घर भटक्यौ ।।
भली करी तैं मोह तोरिकै, बृंदावन कों सटक्यौ ।
तैं देख्यौ कुंजनि में मोहन, राधा के उर लटक्यौ ।।
तेरे वस को - को न विगूच्यौ, जन्मत - मरत न मटक्यौ ।
'व्यास' दास ह्वै कै किनि उबरहु, आसा-डाइन सब जग गटक्यौ ।।२३५।।

सुधार्यौ हरि मेरौ परलोक ।
श्री बृंदावन में कीन्हौ, दीन्हौ हरि अपनौ निज ओक ।।

---

* मन बावरे (छ), मनुआँ मेरे (ग), मनुवाँ मेरे (ख)

माता कौं सौ हेत कियौ हरि, जानि आपनौ तोक ।
चरन - धूरि मेरे सिर मेली, और सबन है रोक ।
ते नर राकस, कूकर, गदहा, ऊँट, वृषभ, गज, बोक ।
'व्यास' जु वृंदावन तजि भटकत. .ता सिर पनहीं ठोक ॥२३६॥

स्याम निबेर्यौ सबकौ झगरौ ।
निजु दासनि के दास करे हम, पायौ नाम अचगरौ ॥
देवी - देवा, भूत - पितर, सबही कौ फार्‌यौ कगरौ ।
पावन गुन गावत तन सुधर्‌यौ, तब रसिकन पथ डगरौ ॥
मिटि गइ चिंता मेरे मन की, छूटि गयौ भ्रम सगरौ ।
चारि पदारथ हू नें न्यारौ, 'व्यास' भक्ति - सुख अगरौ ॥२३७॥

गरजत हौं, नाहिंन नैकौ डरु ।
और सहाइ करत है, मेरौ श्री गोपाल धुरधरु ॥
धन गोधन मेरैं, रस गोरस, छाया करत कलपतरु ।
जाति-पाँति बल्लभ (गोप) कुल मेरैं, वृंदावन साँचौ घरु ॥
बंसीवट, जमुना-तट, खरिक - खोरि - बीथी जीवन बरु ।
विहरत 'व्यास' रास में, हंस - हंसिनी मान - सरोवरु ॥२३८॥

राग नट

लोग वेकाज करत उपहास ।
स्याम सग खेलत सचु पायौ, काम कियौ कुल नास ॥
कठिन हिलग कौ फंदा‡ पर्‌यौ, अब कैसैं होत निकास† ।
पिय मों हित हठ और निवाह्यौ, जौ लगि कंठ उसास ॥
मोहन - मुख - सुख की चाहनि में, कैसैं मानौं त्रास ।
'व्यास' उदास भये, रस चाहैं, तजि नागर कौ पास ॥२३९॥

हरि पाये मैं लोलक चैया ।
जोग, जग्य, तीरथ, व्रत, संजम, कर्म, धर्म मेरी करत बलैया ॥
वेद - पुरान - स्मृति - तरु कौ फल, प्यारौ कुँवर कन्हैया ।
वृंदावन घर, नंद पिता, जसुदा ताकी है मैया ॥
राधा जाकी घरनि तरुनि - मनि, श्रीदामा जाकौ है भैया ।
सतत राग-भोग जूठनि कौ, 'व्यास'हिं करौ बिलैया ॥२४०॥

---

‡ फंद (ग, छ); पथ (ख),

† निकास (च, छ), निवास (ख, ग);

राग बिलावल

साँचौ धनु मेरैं दीनदयाल ।
जुग-जुग लेत-देत नहिं निघटै, मैं पायौ अजगैबी माल ।।
ता बिनु सकल लोक की सपति, पायैं हू जु होइ बेहाल ।
ताकौ नाम, रूप, गुन गावत, निकट न आवै माया - काल ।।
नवल-किसोर भव-बंध छोरिहै, रंक सुदामा कियौ निहाल ।
निज दासनि दिन पुष्ट करत हरि, दुष्टनि कौ कीनौ मति-चाल ।।
रसिक अनन्य किये जिहिं बटुवा, नटवा ह्वै रीझे गोपाल ।
सुख, संतोष, मोक्ष भक्तनि दै, बिमुखनि दारुन दुख-जजाल ।।
श्री राधा मानसरोवर अँग-अँग, मुक्ता चुनि-चुनि जियत मराल ।
कामधेनु तजि 'व्यास' किन्हैं भजि, निस-दिन बाढ़यौ छाती-साल ।।२४१।।

जैसे सुख मोहन हमहिं दिखावत ।
ऐसे सुख भुगति मुकति के भोगी, सपनैं हू नहिं पावत ।
दरसन दै सब पाप दूरि करि, परसत ताप नसावत ।
महाप्रसाद बिषाद हरत मन, मोद बढ़त गुन गावत ।।
उपजत प्रीति-प्रतीति साधु-मुख, श्री भगवत सुनावत ।
हरि की कृपा जानियै तब ही, सत घरहिं जब आवत ।।
ाहिं बिधि 'व्यास' कहाइ अनन्य, पाइ सुख, अनत न कितहूँ धावत ।।

राग केदारौ

नाचत-गावत हरि सुख पावत ।
नाँचि-गाइ लीजै दिन द्वै, पुनि कठिन काल-दिन आवत ।।
नाँचत नाऊ, जाट, जुलाहौ, छीपा नीकैं गावत ।
पीपा अरु रैदास, बिप्र जयदेव सु भलैं रिझावत ।।
नाँचत सनक, सनंदन अरु सुक, नारद सुनि सचु पावत ।
नाँचत गन गधर्व-देवता 'व्यास'हिं कान्ह जगावत ।।२४३।।

राग केदारौ

मेरे भाँवते स्यामा-स्याम ।
रास - बिलास करत बृंदावन, बिबिध बिनोद ललाम ।।
नख-सिख अंग लुभारे - प्यारे, ज्यों लोभिन कों दाम ।
रूप-अवधि, गुन-जलधि, रग-निधि, सब बिधि पूरन-काम ।।
मद हसनि छबि छली अलिहिं, बंक बिलोकनि बाम ।
'व्यास' बिहार निहारति रसिकनि, भूले तन-मन-धाम ।।२४४।।

राग धनाश्री

अरौमी-परौसी हमारे भैय्या-वधु, भँवर, पिक, चातिक, चक, तमचोर।
प्यारे कारे - पीरे खग - मृग, हितुवा चंद - चकोर॥
मोहन धुनहिं सुनावत गावत, मन भावत चितचोर।
विटप - वेलि, फल - फूल हमारे, मूल निकुंज - किसोर॥
सुंदर, सुघर, सुदिन हैं हमारे, संत - केलि निसि - भोर।
सुखनि करत, दुख हरत हमारे, त्रिविध समीर - झकोर॥
तन - मन - ताप बुझावत जमुना - वारि विहारि हिलोर।
रैनु - धैनु आनदकंद, रस वैन सप्त सुर घोर॥
रास - विलास 'व्यास' की जीवनि, जोरी जोवन - जोर॥२४५॥

राग सारंग

लगैं जो बृंदावन कौ रंग।
सब संदेह देह के जैहै, अरु विषयनि कौ संग॥
जैसैं बाजहिं नाजु लगत ही, करत है उदर मृदंग।
ऐसैं सहज माधुरी परसत, उपजत गुन कौ अंग॥
जैसैं कामी कामिनि देखत, बाढ़त दुसह अनंग।
ऐसैं ही 'व्यास' विहार विलोकत, साधन सौं चित भंग॥२४६॥

१७. साधक अवस्था—

राग सारंग

मन दै जुगलकिसोरहिं गाउ।
सेवत राधा संग बृंदावन, वारक देखन आउ॥
या सुख ते टरियै वा सुख लगि, करियै वेग उपाउ।
अपनै कर कुठार गहि रहि, कत मारत अपनै पाउ॥
विषै-भोग कौं विषयनि सेवत, यह सयान वहि जाउ।
'व्यास' आस तजि छिन-भंगुर की, देह सवारौ दाउ॥२४७॥

परम पद कहत कौन सौं लोग।
कोऊ तहाँ ते गयौ न आयौ, ऐसौ सुख - सजोग॥
मेरे मतैं साधु है सोई, जहाँ भक्ति - रस - भोग।
'व्यास' करत है आस तहाँ की, जहाँ न भय - भव रोग॥२४८॥

करता स्याम सनेही सब कैं।
जुग जुगवतु जग जीवनि कैसैं, जिनहिं छाँड़िहैं अब कैं॥
बहुत दुखित दुख-सागर ते, हरि काढ़ि लये कर केसनि ह्वै कैं।
इतनी आस 'व्यास' की पुजवहु, राखहु बृंदावन मे ह्वकैं॥२४९॥

राग सारग

सुनि बिनती मेरी तू रसना, राधावल्लभ गाइ ।
बृथा काल खोवहि, जिन सोवहि, छिन-भंगुर तन आइ ।।
सुनि सुख - सदन वदन मेरे, तू प्रीति-प्रसादहिं पाइ ।
सुनि दुख - मोचन मेरे लोचन, जुगल-किसोर दिखाइ ।।
सुनहि स्रवन, रति-भवन किसोरहिं गावत नैकु सुनाइ ।
सुनि नासा, तू चारु चरन पंकज की बास सुँघाइ ।।
सुनि तू सिर, पावन चरनोदक रुचि अभिषेक कराइ ।
सुनि कर, तू मदिर की सेवा सुख पर प्रीति बढ़ाइ ।।
सुनहि चरन, तू बृंदावन तें अनत न पैंड चलाइ ।
सुनि मन, हरपि रासलीला पर संतत रुचि उपजाइ ।।
सुनि चित, बिनती आस तजहि नित, दासहिं हाथ बिकाइ ।
सुनि बुधि, सुकरि जु कुंज-महल में सुख-पुंजहिं बरषाइ ।।
सुनहि लोक-करता की इंद्री, बिषै - बिकार बिहाइ ।
सुनि बनिता, हरि की दासी ह्वै, मेरो करहि सहाइ ।।
सुनि सुत, नवलकिसोर-दास ह्वै, हरि-गुन गाव-गवाव ।
सुनि सिष, हौं भव-जल बूडत हौं, हरि-पद सेवहु नाव ।।
इहिं कलि-काल गुपाल-भजन कौ आनि पर्‌यौ है दाव ।
विनती सुनहु 'व्यास' की सब ही, हरि बिनु अनत न ठाव ।।२५०।।

राग देवगधार

गावत मन दीजै गोपालहिं ।
नॉचत हरि पर चितु दीजै, तौ प्रीति बढ़ै प्रतिपालहिं ।।
बिनु अनुरागहिं, राग न मीठौ, सीठौ बिनु गुन-मालहिं ।
सब साधन सीठे धन कारन, कत कूटत है गालहिं ।।
गदगद सुर पुलकति असुवनि बिनु, भक्ति न भावत लालहिं ।
ऐसौ काकौ भाग, जु नॉचत - गावत पावत कालहिं ।।
मुँह गावत गोपालहिं कपटी, मन में धरि भूपालहिं ।
हाथी कौ सौ स्वॉग धरत, पुनि चलत स्वान की चालहिं ।।
घर-घर भटकि-मटकि धन कारन, पहरि लजावतु मालहिं ।
पथरा गरैं बॉधि किनि बूडहु, जब छॉडत नॅदलालहिं ।।
अधम प्रतिष्टा बिष्टा लगि तजि, बसि बृंदाविपिन रसालहिं ।
आसा-पासि बॅधे क्यों छूटै, 'व्यास' बिसारि कृपालहिं ।।२५१।।

राग देवगंधार

रसना, स्यामहिं नैंक लड़ाउ री ।
चढ़ि बैकुंठ-नसैनी हरि-पद, प्रेम - प्रसादहिं पाउ री ॥
छाँड़ि पराई निंदा, बिंदा - गोबिंदा - गुन गाउ री ।
भव-सागर तरिबे के काजैं, नाहिंन आन उपाउ री ॥
वे ही काजै जा देही कौ, छिन - छिन घटत जु आउ री ।
इहिं कलि-काल गुपाल-भजन बिनु, सुख सपने नहिं पाउ री ॥
हरि-बिमुखन कौं आजु नाजु-जल, कारी धारि बहाउ री ।
रसिक अनन्यनि की जूठनि पर, 'व्यास'हिं रुचि उपजाउ री ॥२५२॥

मन रति, वृंदावन सों कीजैं ।
खायौ पियौ भर्‌यौ भूंज्यौ अब, जीवन कौ फल लीजैं ॥
काज - अकाज जानि सब अपुनौ, दाउ सवारौ दीजैं ।
देखि धेनु, सुनि बैनु, रैन तजि, धृक-धृक जग जो जीजैं ॥
जमुना - तट बंसीवट निकट रहत, जो यह तन छीजैं ।
बरषत स्यामास्याम-रास-रस, 'व्यास' नैन भरि पीजैं ॥२५३॥

राग सारंग

मन, तू वृंदावन के मारग लागि ।
तेरौ न कोउ, न तू काहू कौ, माया-मोह तजि भागि ॥
यह कलि-काल-व्याल बिष भोयौ, जगु सोयौ, तू जागि ।
भवसागर हरि - बोहित कौ, तू होहि कृपा करि कागि ॥
गो-गिरि-सर-सरिता-द्रुम-कुंजनि सों जोरहि अनुरागि ।
'व्यास' आसि करि राधा-धव की, ब्रजबासिन के कौरा माँगि ॥२५४॥

हरि मिलिहैं मोहि वृंदावन में ।
साधु - वचन† मैं साँचे जाने, फूल भई मेरे मन मे ॥
विहरत संग देखि अलिंगन जुत, निबिड़ निकुंज-भवन मे ।
नैन सिराइ पाइ गहिबी, तब धीरज रहै कवन मे ॥
कबहुँकि रास-विलास प्रगटिहै, सुंदर सुभग पुलिन मे ।
विविध विहार - अहार लच्यौ है, 'व्यासदास' लोचन मे ॥२५५॥

राग सारंग

हम कब होहिंगे ब्रजबासी ।
ठाकुर नंदकिसोर हमारे, ठकुराइन राधा सी ॥

---

† वचन (च, छ), चरन (ख) ।

सखी - सहेली कब मिलिहैं, वे हरिबंसी - हरिदासी ।
बंसीवट की सीतल छैंयाँ, सुभग नदी जमुना सी ।।
जाकी वैभव करत लालसा, कर मीडत कमला सी ।
इतनी आस 'व्यास' की पुजवौ, बृंदाविपिन - विलासी ।।२५६।।

बृंदावन कबहिं बसाइहौ ।
कर करुवा, हरवा गुंजनि के, कटि कोपीन कसाइहौ ।।
बर-घरनी, करनी कुल की तें, मो मन कबहिं नसाइहौ ।
नाँक सकोरि, बिदोरि बदन, इन बिमुखनि कबहिं हँसाइहौ ।।
सुभग भूमि में चपल चरन ये, बन-बन कबहिं फिराइहौ ।
राधाकृष्न नाम द्वै अच्छर, रसना रसहिं रमाइहौ ।।
बंसीवट जमुना-तट के सुख, मो मन कबहिं लभाइहौ ।
'व्यास'दास कों नील-पीत-पट, कुंजनि दुरि दरसाँइहौ ।।२५७।।

अब न और कछु करनै, रहनै है बृंदावन ।
हौनौ होइ सो होइ किनि, दिन-दिन आयु घटति झूठे तन ।।
मिलिहैं हित ललितादिक दासी, रास में गावत सुनि मन ।
जमुना - पुलिन - कुंज, बन - बीथिनि, बिहरत गौर-स्याम-घन ।।
कहा सुत-सपति - गृह - दारा, काटहु हरि माया के फंदन ।
'व्यास' आस छाँडहु सब ही की, कृपा करी राधा-नंदनंदन ।।२५८।।

करि मन बृंदावन सों हेत ।
निसि-दिन-छिन छाया जिनि छाँडहि, रसिकन कौ रस-खेत ।।
जहँ श्री राधा - मोहन बिहरत, करि कुंजनि संकेत ।
पुलिन रास - रस - रंजित देखत, मनमथ होत अचेत ।।
बृंदावन तजि, जे सुख चाहत, तेई राकस - प्रेत ।
'व्यासदास' के उर में बैठ्यौ, मोहन कहि-कहि देत ।।२५९।।

राग केदारौ

करि मन, बृंदावन मे वास ।
कपट-प्रीति के लोगनि तजि, भजि जौ लगि कंठ उसास ।।
खेलत राधा - मोहन, जामहिं होत सदा निसि रास ।
कुंज - कुटीर तीर जमुना के, धीर समीर बिलास ।।
नख-सिख बिटप बेलि लपटाने, जहँ-तहँ कुसुम-बिकास ।
बीथिनि बीच कीच रँग जाकौ, नाहिंन कहूँ निकास ।।
सुख की खान जान बंसीवट, कीनौ सुरत अवास ।
पावक - रवि कौ तेज न, संतत सरद बसत निवास ।।

हरित भूमि, जल सीतल, छाहीं, गाय-ग्वाल कौ पास।
ग्रहै फिरत दधि-दूध चहूँ दिसि, सकल दुखन कौ नास* ॥
स्यामहिं गावति गोपी, रसिक अनन्यनि होत उगास* ।
पुजवहु आस 'व्यास' की सोहन, अब जिनि करहु विसास ॥२६०॥

राग सारंग

रहि मन, वृंदावन की सरन।
और न ठौर कहूँ मो-तोकों, संपति चार्यौ चरन ॥
कुंज-केलि कमनीय, कुसुम-सयनीय देखि, सुख-करन।
राग भोग संजोग होत जहँ, रजनी रति† की तरन ॥
तरुनी-तरुन प्रताप चाँप वल, काल-व्याल कौ डर न।
तरनि तेज कर भूमि न परसत, पावक माया वरन ॥
वहत मरुत मकरंद उड़ावत, मृदु छबि सीतल परन।
सुक, सनकादिक, नारद गावत, सुख पावत आधरन ॥
यह रस पसु नीरस सतु छाँडै, भाजत पेटहिं भरन।
'व्यास' अनन्य भक्त की जीवनि, वन में मंगल मरन ॥२६१॥

होहु मन वृंदावन कौ स्वान।
जो गति तोकों दैहैं ऐसी, सो गति लहै न आन ॥
वेगि विसरिहै कामिनि-कूकरि, सुनत स्याम-गुन-गान।
ब्रजवासिन की जूठन जेंवत, वेगि मिलैं भगवान ॥
जहाँ कल्पतरु, कामधेनु के वृंद विराजत जान।
वाजत जहाँ स्याम-स्यामा के सुरत-समर-नीसान ॥
सदा सनातन राधा वन कौ, प्रलै खिसत नहिं पान।
तीरथ और सकल जवहीं लगि, तव लगि ससि अरु भान ॥
है वैकुंठ एक सुनियतु, ताकौ साधन गुरु कौ ज्ञान।
ब्रज मे भये चत्रभुज कों, राका वर वैनु-विपान ॥
नंद-जसोदा गो-गोपिन के, मोहन तन-धन-प्रान।
'व्यास' वेद ब्रज-वैभव जानत नाहिन, करत वखान ॥२६२॥

राग देवगधार

ऐसो मन कब करिहौ हरि मेरो।
कर करवा, कामरि काँधे पर, कुंजनि-माँझ वसेरो ॥

---

* (ख) प्रति में ये दोनों पंक्तियाँ नहीं है।

† रति (ग, छ); रस (ख)

व्रजवासिन के टूँक भूख में, घर - घर छाछि - महेरौ ।
छुधा लगै जब माँगि खाउँगौ, गनौ न साँझ - सवेरौ ॥
रास - विलास बृत्ति कर पाऊँ, मेरैं खूँट न खेरौ ।
'व्यास' विदेही बृंदावन में, हरि - भक्तन कौ चेरौ ॥२६३॥

राग सारंग

वलि जाऊँ, वलि जाऊँ, राधा मोहि रहन दै बृंदावन की सरन ।
मोकों ठौर न और कहूँ अब, सेउँगौ ये चरन ॥
सहचरि ह्वै तेरी सेवा करौं, पहिराऊँ आभरन ।
अति उदार अँग - अग माधुरी, रोम-रोम सुख करन ॥
देखौं केलि - बेलि मंदिर में, सुनि किंकिन - रव स्रवन ।
दीजै बेगि 'व्यास' कों यह सुख, जहाँ न जीवन - मरन ॥२६४॥

राधा, आसा पुजवौ मेरी ।
हा, हा, कुँवरि-किसोरी वलि जाऊँ, करहु आपनी चेरी ॥
मोहिं स्याम कौ डर नहिं, स्यामा ! छुटत न आसा तेरी ।
अगति जाति तैं मेरी देही, भव - सागर तैं फेरी ॥
कामधेनु के संग न सोहै, सदाँ छोति में छेरी ।
तुव पद-पकज - पारस परसत, 'व्यास' कहा अब खेरी ॥२६५॥

राग गौरी

किसोरी, तेरे चरननि की रज पाऊँ ।
वैठि रहौं कुंजनि के कौनैं, स्याम - राधिका गाऊँ ॥
या रज सिव-सनकादिक-लोचन, सो रज सीस चढ़ाऊँ ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत, विमल-विमल जस गाऊँ ॥२६६॥

किसोरी, मोहिं अपनी करि लीजै ।
और दियैं कछु भावत नाहीं, श्री बृंदावन दीजै ॥
खग - मृग - पसु - पछी या वन के, चरन-सरन रख लीजै ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत, महल-टहलनी कीजै ॥२६७॥

राग सारंग

जीवत मरत बृंदावन सरनैं ।
सुनहु सुचित ह्वै राधामोहन, यह विनती मन धरनैं ॥
यहै परम पुरुषारथ मेरैं, और कछू नहिं करनैं ।
स्याम भरोसे तेरे व्रत के, नहीं 'व्यास' कों टरनैं ॥२६८॥

राग सारंग

कहाँ हौं वृंदावन तजि जाउँ।
मोसे नीच-पोच को अनत न, हरि बिन और न ठाउँ ॥
सुख-पुंजनि कुंजनि के देखत, विषय विषै क्यों खाउँ।
एक आगि कौ डाढ़्यौ, दूजी आग माँझ न बुझाउँ ॥
एक प्रसन्न न मोपर निसि-दिन, छिन-छिन सबै कुढाउँ।
राधारमन-सरन बिनु अब, हौं काके पेट समाउँ ॥
भोजन-छाजन की चिंता नहिं, मरिबे हू न डराउँ।
सिर पर सेंदुर 'व्यास' धर्‌यौ, अब ह्वै है स्याम सहाउँ ॥२६९॥

राग सारंग

जरतु जग अपने ही अभिमान।
लोभ लहरि ते भागि उबरियै, रहियै हरि की आन ॥
एकनि विद्या-धन-कुल कौ मद, एक गुनी गुन-गान।
एक रहत जोवन-मदमाते, एक व्रती तप-दान ॥
भारत, रामायन मूसल सुनि, अजहुँ न जागे कान।
'व्यास' वायसहिं वेगि उड़ावहु, हरि की कृपा-कमान ॥२७०॥

राग सारंग

मोहिं देउ भक्ति कौ दान।
या संपति कौ दाता और न, हौं मागौं कछु आन ॥
एक चुरू जल प्यासौ जीवै, यौं राखे कौ मान।
पाछैं सुधा-सिंधु कहा कीजै, छूटि गये जो प्रान ॥
ऐसैं अंगनि देइ कुरंग, सुनत नादहिं सहि बान।
जैसैं मद-गयंद बिनु बिछुरैं, सहि न सकत ऐलान ॥
तैसैं भृंग बँध्यौ जल-सुत सौं, एक लोभ परधान।
ऐसैं 'व्यास' आस कर बाँधे, मुकरे वे भगवान ॥२७१॥

मेरे तन सो वृंदावन सौं, हरि जिन करहु बिछोह।
अरु यह साधु-संग जिन छूटौ, ब्रजवासिन सौं टोह ॥
देउ कृपाल कृपा करि मोकौं, राधा-पति सौं मोह।
विपई विषय कनक-कामिनि सौं, मोहिं करौ निरमोह ॥
चारु-चरन-रज-पारस परस्यौ चाहत हौं मन-लोह।
रागादिक वैरिन मे 'व्यास'हिं मोहन करहु निलोह ॥२७२॥

राग गौरी (अठताल)

ऐसौ बृंदावन मोहिं सरनैं ।
जा महँ स्यामा-स्याम विराजत, तीन काल दोउ तरनैं ।।
सदा किसोर विटप-मंडल-दल, किसलय कुसुमत फरनैं ।
अद्भुत जोटहिं ओट राखि, सेवत नित चार्यौ चरनैं ।।
निविड-निकुंज मंजु कुंजावलि, चलत पत्र मन-हरनैं ।
विहरत विपिन-खड रति-मंडन, राधा-हरि के सरनैं ।।
रसिक अनन्यनि मोहन - वन तें अनत कहूँ नहिं टरनैं ।
'व्यास' धर्म तजि भक्ति गही, ताहू तजि नर्कहिं परनैं ।।२७३।।

राग कान्हरौ

मेरी पराधीनता मेटौ हरि किन ।
अपने सरन राखि लेहु वलिजाऊँ, विमुखनि के द्वारैं डभक्कौं जिन ।।
तुम्हरे दासहिं आस और की, उपजत नाहिंन, स्याम तुम्हें घिन ।
सिंघन के वालक भूखे हू तजत प्रान, नहिं चरत हर्यौ तृन ।।
ताही प्रभु की प्रभुता साँची, जाकौ सेवक सुख पावै दिन ।
'व्यास' हिं आस राधिका-वर की, जग रूठौ, तूठौ अब ही किन।।२७४।।

राग कान्हरौ तथा सारंग

ऐसैहिं काल जाइ जो वीति ।
निसि-दिन कुंज-निकुंजनि डोलत, कहत-सुनत रस-रीति ।।
विमद विमत्सर चरन-सरन ह्वै, विषै जाइ जो जीति ।
नाँचत - गावत रास - रेनु में, तन छूटै जो प्रीति ।।
या रस विनु सव साधन फीके, ज्यौं विनु लौंन पहीति ।
रसिकनि की हरि आस पुजैहैं, यह 'व्यास'हिं परतीति ।।२७५।।

राग कान्हरौ

श्री राधावल्लभ कौ हौं भावतौ चेरौ ।
राधावल्लभ कहत सुनत ही, मन न नैम जम केरौ ।।
राधावल्लभ वस्तु भूलि हू, कियौ अनत नहिं फेरौ ।
राधावल्लभ 'व्यासदास' कैं, सुनहु स्रवन दै टेरौ ।।२७६।।

राग कान्हरौ

श्री राधावल्लभ तुम मेरे हित ।
और सवै स्वारथ के सगी, गुरी चोपरी दै पोपत पितु ।।
यह मैं जानि सवनि सों तोरी, तुम सों जोरी, दै चरनन चितु ।
इतनी आस'व्यास'की पुजवहु, ज्यों चातिक पोपत पावस रितु।।२७७।।

१८. कनिष्ठ भक्तावस्था—

जौ पै सबहिन भक्ति सुहाती।
तौ विद्या, विधि, बरन, धर्म की, जाति रसातल जाती॥
होते जो न बहिर्मुख कलिजुग, आनँद सृष्टि अघाती।
होती सहज समीति सबनि में, प्रीति न कहूँ समाती॥
जो भागवत रीति गुरु चलते, तौ कति भक्ति बिकाती।
जो साधुन कौ संग न तजते, तौ कत जरती छाती॥
जो मंदिर करि हरि कों भजते, तौ कत लिखते पाती।
जथा लाभ-संतोष रहत ही, मिलते स्याम सँगाती॥
कृष्न-कृपा न होइ सबहिनि पै, माया जाहि डराती।
'व्यासदास' भागि किन उबरौ, आगि तें आसा ताती॥२७८॥

हमारैं कौन भक्ति की रीति।
साधन पुरुषारथ कछु नाहीं, सतन सों न समीति॥
कायर, कुटिल, अधम, लोभी, हम निसदिन करत अनीत।
सपनैंहूँ नहिं स्याम-चरन-रति, विषइनि सों बहु प्रीति॥
तीरथ, करम, धरम, व्रत नाहीं, लोक-वेद की भीति।
महा पतित-पावन हरि कहियतु, 'व्यास'हिं यह परतीति॥२७९॥

राग सारंग

अब हम हू से भक्त कहावत।
माला-तिलक स्वाँग धरि हरि कौ, नाम बेचि धन लावत॥
स्यामहिं छाँडत काम विवस ह्वै, कामिनि ही लगि धावत।
हरुवे होत तूल तृन हू तें, पर-घर गये न भावत॥
श्री गुरु कौ उपदेस लेस नहिं, औरन मंत्र सुनावत।
छल-बल लेत, देत नहिं दीननि, अपने जस कों गावत॥
भक्ति न सूझत सुनत भागवत, साधु न मन मे आवत।
कियौ अकाज 'व्यास' कौ आसा, बन ही मे घर छावत॥२८०॥

मोसौ पतित न अनत समाइ।
याही तें मैं बृंदावन कौ सरन गह्यौ है आइ॥
बहुतनि सों मैं हित करि देख्यौ, अनत न कहूँ खटाइ।
कपटि छाँड़ि मैं भक्ति कराई, दारा-सुतनि नचाइ॥
भक्त पुजाये लीला करि, सबही की जूँठनि खाइ।
ता ऊपर बिरचे सब मोसौं, कोटि कलंक लगाइ॥
अजहूँ दाँत पन्हैया गहि, तिनहू के चाटौ पाइ।
तौ न तिन्हें परतीत 'व्यास' की, संत छाँडे पति जाइ॥२८१॥

१६. कुटुंब–उपदेश—

राग–सारंग

विनती सुनियै वैष्नव दासी ।
जा सरीर मे वसत निरंतर, नरक व्याधि, पित, खाँसी ।।
ताहि भुलाइ, हरिहिं दृढ़ गहियौ, हँसत संग सुख वासी ।
बढ़ै सुहाग ताहि मन दीजै, और वराक विसासी ।।
ताहि छाँडि हित करौ और सों, गरै परै जम–फाँसी ।
दीपक हाथ परै कूवा में, जगत करै सब हाँसी ।।
सर्वोपरि राधापति सौं रति, करत अनन्य विलासी ।
तिनकी पद रज सरन 'व्यास' कौं, गति बृंदावन वासी ।।२८२।।

राग सारंग

जो त्रिय होय न हरि की दासी ।
कीजै कहा रूप, गुन सुंदर, नाहिंन स्याम-उपासी ।।
तौ दासी गनिका सम जानौ, दुष्ट, राँड, मसवासी ।
निसि-दिन अपनौ अंजन-मजन करत, विषय की रासी ।।
परमारथ स्वपनै नहिं जानत, अंध बँधी जम-फाँसी ।
ताके सग रग पति जैहै, ताते भली उदासी ।।
साकत नारि जु घर में राखै, निस्चै नरक निवासी ।
जिहिं घर साधु न आवत कबहूँ, गुरु-गोविंद मिलासी ।।
हरि कौ नाम लेत नहिं कबहूँ, याहीं तें सब नासी ।
'व्यासदास' जोई पै कीजै, मिटै जगत की हाँसी ।।२८३।।

राग धनाश्री

भक्त न भयौ भक्त कौ पूत ।
भक्त होइ साकत कें, ज्यौं श्रुतिदेव सुदामा सूत ।।
उग्रसेन के कंस, वली कें वानासुर जम ऊत ।
भीपम कें रुक्म, विभीपन के घर भयौ कपूत ।।
सेन, धना, रैदास भयौ जयदेव, कबीर अभूत ।
बूड्यौ वस कबीर कौ, जब भयौ कमाला पूत ।।
होइ भक्त कें साकत, जानियौ अन्य काहु कौ मूत ।
ब्रह्मा कें नारद, 'व्यास' के विदुर, सुक अवधूत ।।२८४।।

राग धनाश्री

कर्मठ गुरु सकल[1] जग बाँध्यौ, करम-धरम अरुझाये ।
काका, बाबा, घर-गुरु कीनैं, घर ही कान फुकाये ॥
जिनकैं भक्ति कहाँ ते उपजै, साधु न मन मे आये ।
क्रोध रारि हिंसा के माँडें, सिष्य न गुरु सुहाये ॥
प्रभुता रहत न तन के नाते, कोटिक ग्रंथ सुनाये ।
बड़े कुलीन, विद्या-अभिमानी, सुतौ पताल पठाये ॥
जगत-प्रतिष्ठा बिष्टा सी तजि, सरन स्याम कें आये ।
'व्यासदास' कुल तजी बड़ाई, तब हरि-भक्त कहाये ॥२८५॥

हरि-बिमुखनि, जननी जिन जावै । हरि की भक्ति बिनु, कुलहिं लजावै ॥
हरि-बिनु विद्या नरक बतावै । हरिनाम पढै साधुन अति भावै ॥
हरि बोलि, हरि बोलि, कहूँ न धावै । हरि बोले बिनु 'व्यास' मुँह न दिखावै ॥

जिहिं कुल उपज्यौ पूत कपूत ।
ताकौ बंस नास ह्वै जैहै, जिनि गिधयौ जमदूत ॥
जो सुत पितहिं बिरोधै, सोई है सबहिन कौ भूत ।
याकी साखि कंस आहुक की, जिनि हठि कियौ कुसूत ॥
सोई भक्त भागवत मानैं, नहिं मानै सो भूत ।
इहिं सगति तें पति-गति बिसरै, हूजौ पिता अऊत ॥
यह पाखंड-प्रपंच छाँड़ियै, चोर चिकनियाँ धूत ।
'व्यासादि'कन बतायौ, सुक-सौनक मान्यौ सूत ॥ २८७ ॥

राग सारग

हमारे घर की भक्ति घटी ।
उपजे नाती-पूत बहिमुँख, बिगरी सबै गटी ॥
सुत जो भक्त न भयौ, तौ वा पिता की गरी कटी ।
भक्त-बिमुख भये मम गुरु सत्य सुकल हू मीच ठटी ॥
ता सतजुग ते हौं कलिजुग उपज्यौ, काम, क्रोध, कपटी ।
माला-तिलक दंभ कों मेरें हरि-नाम सीस पटी ॥
कृष्न नचाये तृष्ना के, मैं कीनी आरभटी ।
किहिं कारन हरि 'व्यास'हिं दीन्ही, बृंदावनहिं तटी ॥२८८॥

---

1 'गुरु सकल' (ख, च), 'गुरु सुकल' (छ)

राग गौरी

मरैं वे, जिन मेरे घर गनेस पुजायौ ।
जे पदार्थ सतन के काजैं, ते सारे सकतन नें खायौ ॥
'व्यासदास' कन्या पेटहिं क्यों न मरी, अनन्य धर्म में दाग लगायौ ॥२८६॥

जो हौं सत्य सुकुल कौ जायौ ।
तौ मेरौ पन साँचौ करि हरि, तुम दारुन दुख पायौ ॥
मो अनन्य के मदिर में, जिन थापि गनेस पुजायौ ।
तिनकौ बस बेगि हरि तोरहु, गाइ गूह जिन खायौ ॥
जिन जीवत हौं हत्यौ लोभ लगि, तिहिं बेटन कौ गरौ कटायौ ।
तिहिं मेरौ अपमान कियौ, जिहिं काल हुंकारि बुलायौ ॥
जिनकौ खोज न रहौ कहौं हरि, जिहिं हरि-परस छुड़ायौ ।
रास-विलास जहाँ होते तहँ, मलियागोरिल गायौ ॥
गुरु गोविंदहिं मारि, गारि दै, सो पापी घर नायौ ।
यहै पाप बेगि ही फलिहै, हथजुग बृथा कहायौ* ॥
बेगम मिहरी आपु कों रुची†, भरुवनि भात खवायौ ।
तेहि संगति उपजी यह ममता, बाह्मन बाँधि वहायौ ॥
जो मैं कह्यौ सोई हरि कीनौ, यह परचौ जग पायौ ।
'व्यास' जु वचै, लुनैगौ दुख-सुख, यह मत बेद बतायौ ॥२९०॥

राग सारंग

करि मन साकत कौ मुँह कारौ ।
साकत मोहिं न देख्यौ भावै, कहा बूढौ, कहा बारौ ॥
साकत देखें डर लागतु है, नाहर हू तें भारौ ।
भक्त हेत मम प्रान हनत है, नैकु न डरै मटयारौ ॥
आठैं - चौदस कूँड़ौ पूजें, अभागे कौ ज्ञान अँध्यारौ ।
'व्यासदास' यह संगति तजियै, भजियै स्याम सवारौ ॥२९१॥

सेइयौ, स्यामा-स्याम बृंदावनवासी ।
रसिक अनन्य कहाय अनत रहि, विषै-व्याल विपुलहिं सहि हासी ॥
साधु न वसत असाधु-संग महँ, जब - तब प्रीति - भंग दुखरासी ।
देह, गेह, संपति, सुत, दारा, अधर, गड, भग, उरज उपासी ॥

---

* कहायौ (ग), कथायौ (ख), गमायौ (च, छ)

† बेगम मिहरी आपु कों रुची (ख), बेग समार हरि आपु कौ रिचि (ग), बेगि महावरि आपुन कों रचि (च), बेगम महेरी आपुन कों रचि (छ)

पूतन के हित मूत पियत हैं, भूत - विप्रे कर कासी ।
तिन सों ममता करि हरि बिसरे, जानत मद न, तिनहिं बिसासी ।।
स्वारथ-परमारथ पथ छूट्यौ, उपजी खाज कोढ़ मे खासी ।
देह बूड़ बूढ़्यौ वंस 'व्यास' कौ, बिसर्‌यौ कुंज-निकुंज-निवासी ।।२६२।।

अब साँचेहू कलिजुग आयौ ।
पूत न कह्यौ पिता कौ मानत, करत आपनौ भायौ ।।
बेटी बेचत सक न मानत, दिन - दिन मोल बढ़ायौ ।
याही ते बरषा मदि होति है, पुन्य तें पाप सवायौ ।।
मथुरा खुदत, कटत बृंदावन, मुनिजन सोच उपायौ ।
इतनौ दु.ख सहिवे के काजैं, काहे कों 'व्यास' जिवायौ ।।२६३।।

बिनु भक्तिहिं जे भक्त कहावत ।
भीतर कपट निपट सब ही सों, ऊपर उज्जल ह्वै जु दिखावत ।।
धन सबही कौ मूसि ठूसि कैं,घर भरि सठ सो सुतनि खवावत ।
दिन-दिन क्रोध विरोध जगत सों,सो धन बोध हियौ हरि आवत ।।
झूठी बात न अटकत, भटकत, पटकत पाग फिरादनि धावत ।
पर्‌यौ रहै पाटी तर निसि-दिन, विपयिन घर आयौ नहिं भावत ।।
कोऊ न लेतु नाउँ गाउँ में, ठाँव - ठाँव पनहीं जु ठुकावत ।
ऐसे कुल में उपजे पाँवर, 'व्यासै' घर-घर फिरत लजावत ।।२६४।।

हरि भक्तन तें समधी प्यारे ।
आये सत दूर बैठारौ, फोरत कान हमारे ।।
दूर देस तें सारे आये, ते घर में बैठारे ।
उत्तम पलिका, सौरि सुपेती, भोजन बहुत सवारे ।।
भक्तनि दीजै चून चनन कौ, इनकों सिलवट न्यारे ।
'व्यासदास' ऐसे विमुखनि, जम सदा कढ़ोरत हारे ।।२६५।।

ये दिन अब ही लगत सुहाये ।
जब लगि तरुनि तरौंछी चितवनि,फिरत विपै कों धाये ।।
उठि-उठि चलत गोष्ट मे बैठत, जंगी भगी भाये ।
मोतिन-माल, कनक-आभूपन, रुचि-रुचि बहुत बनाये ।।
तजि कुल-बधू औगुननि गहिं रहि, लै बिस्वन पहिराये ।
मन-मन खुसी मसकरन ऊपर, माखन दूध खवाये ।।
खाटौ मठा कठिन भक्तन कौं, भाडन खोवा खाये ।
लोक-लाज कों तन-मन अरप्यौ, हरि हित दाम न लाये ।।

परमारथ कों नहीं थेगरी, विमुखन जरकस पाये ।
अदल - बदल ह्वै है दिन दस में, जरा जोगरिन छाये ॥
अब तौ चपल बुढ़ापौ आयौ, रोग - दोष तन ताये ।
अब हू सुमिरि चत्रभुज प्रभु कों, ह्वै है काम कहाये ॥
'व्यासदास' आसा चरननि की, बिमल-बिमल जस गाये ॥२६६॥

२०. साधारण पद—

राग नट व आसावरी

मुँह पर घूँघट नैन नचावै । बातन ही की लाज जनावै ॥
अपने ही मुँह सुपत कहावै । जारुहिं लीन भरतार न भावै ॥
बाहिर पहिर-ओढ़ि दिखरावै । भीतर विष की बेलि बढ़ावै ॥
सोई सुहागिल सती कहावै । गुन-बल जो इहि भाँति रिझावै ॥
अंजन मजन कै भरताहिं नचावै । 'व्यास'जु साँचे सुख नहिं पावै॥२६७॥

ऐसौ जो मन हरि सों लागै ।
जैसें चकई पिया बियोगिन, निसा सबै वह जागै ॥
जल ही तें उत्पत्ति कमल की, सदा रहै वैरागै ।
जैसै दिनकर उदै होत ही, महामुदित रस पागै ॥
जैसी प्रीत चकोर - चंद की, अनत नहीं चित तागै ।
ऐसे 'व्यास' मिलहु जो हरि सों, जरा-मरन - भौ भागै ॥२६८॥

भूलें मेरे गंडकीनंदन ।
मानहु भटा कढ़ी में बोरे, अंग लगायें चंदन ॥
हाथ न पाँइ, नैन नहिं नासा, ध्यान करत कछु होत अनंद न ।
जालधर अरु बृंदा बल्लभ, गावै 'व्यास' कहा कहि छंदन ॥२६९॥

द्वितीय परिच्छेद

शृंगार-रस-विहार



१. वंदना—

राग गूजरी (हमीरताल)

वंदे श्री राधा-रमनमुदारं ।

श्री गुरु सुकल सहचरी ध्याऊँ, दंपति-सुख रस-सारं ॥
वृंदावन - घन वीथिनि-वीथिनि, कुंज - निकुंज-विहारं ।
जोरी प्रमुदित निरखि मनोहर, रतिपति विमद सुमारं ॥
रसिक अनन्य सरन आधारन†, दासी जन परिवारं ।
स्याम - सरीर गौर - तन चीर, पयोधर भूषन भारं ॥
परिरंभन, चुंबन - धन - संग्रह, अधर - सुधा - आधारं ।
मंदहास अवलोकनि अद्भुत, उपजत मदन विकारं* ॥
सहज रूप गुननागर आगर, वैभव अकह अपारं ।
यह रस नित‡ पीवत जीवत है, 'व्यास' विसरि संसारं ॥३००॥

राग चौतारौ

वंदे‡ श्री राधा-मोहन की प्रीति ।

एक प्रान द्वै देह, हरद - चूने लौं रची समीति ॥
एक - एक विनु जियें न सारस§, जोरी कैसी रीति ।
गौर - स्याम तन घन-दामिनि लौं, राजत विपिन वसीति ॥
विविमुख चंद-चकोर नयन रस, पीवत कलप गये सब वीति ।
चारि चरन सेये विनु 'व्यास'हिं अनत नहीं परतीति ॥३०१॥

---

† आधारन (ग, च, छ), साधारन (क, ग); संवत् १८६४ की प्रति में यह पद दो स्थलों पर दिया गया है, जिनमें पृष्ठ ६० पर पाठ 'साधारन' शब्द है और पृष्ठ ६२ पर उसके स्थान पर 'आधारन' पाठ दिया गया है । दोनों ही पाठ प्रचलित प्रतीत होते हैं ।

* सदन कुठारं (ग)

‡ सुन (ग)

‡ वदे (क) वंदौं (च, छ) वदौं (ग)

§ सारस (ग, च, छ); समरस (क)

वंदौं श्री राधा - हरि कौ अनुराग ।
तन मन एक, अनेक रंग भरे, मनहुँ रागिनी राग ।।
अंग - अंग लपटाने मानहुँ, प्रेम रंग कौ पाग ।
रूप अनूप, सकल गुन सीमा, कहत न बनैं सुहाग ।।
विहरत कुंज - कुटीर धीर, सेवत बृंदावन - बाग ।
निसिदिन छिन न चरन छाँडत अत्र, 'व्यासदास' कौ भाग ।।३०२।।

राग केदारौ व कमोद

जयति नव-नागरी,कृष्न-सुख-सागरी,सकल गुन-आगरी,दिनन भोरी ।
जयति हरि-भामिनी, कृष्न-घन-दामिनी,मत्त गज-गामिनी, नव किसोरी ।।
जयति पिय-केलि हित,कनक नव बेलिसम,कृष्नकलकलप निसि मिलि विलासिनी
जयति बृषभान-कुल-कुमुद-बन-कुमुदिनी,कृष्न-सुख हिमकर निरख प्रकासिनी।।
जयति गोपाल मन - मधुप नव मालती, जयति गोबिंद-मुख-कमल-भृंगी ।
जयति नँदनंदन-उर परम आनंद-निधि, लाल गिरिधरन पिय-प्रेम-रंगी ।।
जयति सौभाग्य-मनि,कृष्न-अनुराग-मनि,सकल तिय मुकट-मनि,सुजस लीजै,
दीजियै दान यह 'व्यास'निज दास कों,कृष्न सों बहुरि नहिं मान कीजै ।।३०३

राग गौड़मलार

स्यामा स्याम रति - आसार ।
सुभग बृंदाविपिन वाढ़ी, सुख-नदी रस-धार ।।
नारदादि सुकादि गावत, कुंज नित्यविहार ।
प्रेम बस ब्रज - बल्लवी, तजि नेम, कुल-आचार ।।
ब्रह्म, सम्भु, सुरेस, सेस, न लेस जानत नार ।
'व्यास' स्वामिनि सुजस जगिमगि रह्यौ जुगनि उदार ।।३०४।।

राग सारंग व धनाश्री

सहज प्रीति राधा सों हरि करि जानी री ।
जस-रस स्यामा-स्याम जु राख्यौ, बृंदावन रजधानी री ।।
परवस राउ रसिक-नृपतनि की, परिपाटी पहिचानी री ।
सब विधि नायक,गुनगन लायक,नवल राधिका मानी री ।।
मान करत हरि* चरन धरत, अपमानु करति ब्रजरानी री ।
लोक चतुर्दस की प्रभुता तजि, सहज दीनता मानी री ।।
अगनि पट-भूषन पहिरावत, सेवा करत रवानी री ।
तोरत तृन जु दिखाइ आरसी, वारि पियत पिय पानी री ।।

---

* हरि (क), हँसि (च, छ)

विविध विनोद विहार आदरतीं†, घर-घर कहत कहानी री ।
अद्भुत वैभव निरखि,सची अरु कमला-रति बिलखानी री ॥
चारि मुकति, नवधा दसधा गति, जहाँ रहत अरगानी री ।
यह कौतिक देखति ललितादिक,तृपति न सदा अघानी री ॥
खग, मृग, गो,सरिता, सरवर,दंपति कों ये सुखदानी री ।
संतत सरद, वसंत विराजत, लाजत सुनि अभिमानी री ॥
ता महिमाहिं कहत विथक्ति भई, वेद-उपनिषद वानी री ।
यह लीला अब 'व्यास' मंद पै, कैसैं जात वखानी री ॥३०५॥

२. प्रातः सेज्या-विहार—

राग सारंग

बनी वृपभान जान की बेटी ।
निविड़-निकुंज-कुसुम-पुंजन पर, स्याम-वाम-अँग लेटी ॥
रति निसि जगी सोवत नहिं भोर, किसोर जोर गुजरेटी ।
पिय के हिय में जिय ज्यों राजति, नाहु - वाहु - वल भेटी ॥
विहँसनि नैननि की सैननि, मनु मनमथ-अनी खखेटी* ।
लोभी लाल 'व्यास' स्वामिनि, जनु कचन-रासि समेटी ॥३०६॥

राग कल्याण (चर्चरी ताल)

वाम कुंजधाम स्यामसुंदरी ललाम,
ललन विहरत अभिराम काम, भाम-भामिनी ।
आनंदकंद मद पवन, सरदचंद ताप - द्वन,
जमुनाजल कमल विमल, जाम - जामिनी ॥
सुरँग कुच, उतंग अग, माधुरी तरग रग,
सुरत रँग, मान - भंग, काम - कामिनी ।
मंदहास, भ्रू-विलास, मधुर वैन, नैन - सैन,
विवस करत पियहिं, 'व्यासदास' स्वामिनी ॥३०७॥

राग कान्हरौ

मंजुल तर कुंज-अयन, कुसुम-पुंज रचित सयन,
विहरत नँदनंदन - वृपभान - नंदिनी ।
आनंदकंद सरदचंद, मद पवन ताप-द्वन,
सीतल जल तरल पूर मूर - नंदिनी ॥

---

† आदरत (क) अधार की (च,छ)

* पखेटी (क, ग), खखेटी (च, ञ)

अंग-अंग सुरत-रंग, नैन - सैन भृकुटि भंग,
कोटि छदि† करति सुभग हासि चंदिनी‡ ।
परिरंभन-चुंबन-रस, उरज, करज बिबिध परस,
सरस जघन दरस, सुख - समूह कंदिनी ॥
अधर-सुधा-पान मत्त, मुदित गान, उदित तान,
लटकत लट बाहु जुगल कठ फंदिनी ।
गौर-स्याम सिंधु नदी, संगम जल पावन अति,
रसिक भगत-मीन जीवन 'व्यास' वंदिनी ॥३०८॥

राग धनाश्री

सुनी न देखी ऐसी जोट ।
उपजी अबही कै पहिलैं ही, यह रूप-गुननि की पोट ॥
गौर-स्याम सोभा मानौं, कचन-मरकत के गिरि - कोट ।
भामिनि चलत न देखत चरननि, तुग कुचनि की ओट ॥
घटत न बढ़त एक रस दोऊ, जोबन - जोर झमोट$ ।
रति-रन वीर धीर दोऊ सनमुख, सहत समर-सर‡ चोट ॥
वृंदारन्य अनन्य खेत के समरस नित्य गभोट ।
'व्यास' उपासक प्रभुहिं न जानत, नीरस कवि-कुल-खोट ॥३०९॥

३. सुरतांत—

राग सारग

घूँघट-पट न सँभारत प्यारी ।
उर नख - अक कलक ससी, जनु तिलकन सरस सिंगारी ॥
मरगजी माल, सिथिल कटि-किंकिनि, स्वेद सलिल तन सारी ।
सुरति भवन मोहन बस कीने, 'व्यासदास' बलिहारी ॥३१०॥

राग सारंग व नट

सुनहु किसोर किसोरी चोरी प्रगटत भोर सिंगार ।
छूटी लट, पट लपटि परी छवि, पीत पिछौरी सार ॥
अग सुरग दुरंग हठीले, गाँठि-गठीले हार ।
दुगुन दसन मंडित गडनि पर, खडित अधर उदार ॥
कुच नख-रेख, निमेखनि नैननि, सैन सुबेष सुढार ।
सुरति-समर-सुख सूचत मोहन, उपजत कोटि विकार ॥
गौर-स्याम सलिता-सागर मिलि, बिसरी बिधि कुल धार ।
'व्यास' स्वामिनी के रस-बस हरि, कीने मार सुमार ॥३११॥

---

† छंदि (ग), चद मद (क, च, छ) ‡ चंदिनी (क, ग), चंद चंदिनी (छ)
$ झमौट (क), छचोट (ग), छकोट (च, छ)
‡ समर सर (क), असम सर (ग, च, छ)

अति आवेस केस विगलित जनु, दामिनि तर बरसत घन घोरी ।
निरखत अद्भुत छवि उपजत, जनु सुख सागर में बोरी ॥
मोहन-अंग अनंग-कीच महँ, नख-सिख कुंवरि चबोरी† ।
रसिक-सिरोमनि गुनसागर की, सींव सुदृढ़ हरि तोरी ॥
हित चित दासी करि परिहासी, कर अंचल झकझोरी ।
पुजवत आस 'व्यास' की जुग-जुग, राज करौ यह जोरी ॥३१२॥

गावति आवति* पिय सँग स्यामा ।
केलि-संग तें भोर चले उठि, विधु सम मनहु त्रिजामा ॥
छूटी लट, टूटी मुकुतावलि, लर लटकति अभिरामा ।
उरज करज अंकित मृगमद मनु, माह मौरे हैं आमा ॥
विलुलित कटि पर अरुझाने पट, तरनि रुनित मनिदामा ।
जनु संग्राम-विजय-सुख सूचत, बाजत काम-दमामा ॥
विहसति हँसति विखंडित सैननि, वक्र विलोकनि वामा ।
'व्यास' स्वामिनी की उपमा कह, ललकौ काम ललामा ॥३१३॥

राग देवगधार

आवत, गावत प्रीतम दोऊ बने मरगजे वागैं ।
सुरत-कुंज तें चले प्रात उठि, पिय पाछैं धन आगैं ॥
छूटी लट, टूटी वनमाला, अध घूँघट, चल पागैं ।
फूले अधर पयोधर मंडित, गंड विराजत दागैं ॥
नख-सिख विसिख कुसुम की सेना, रन छूटी जनु वागैं ।
'व्यास' स्वामिनी कौ सुख सर्वसु, लूट्यौ स्याम सभागैं ॥३१४॥

राग सारंग

झूलत कुंजनि कुंजकिसोर ।
सुरत रंग सुख सैननि सूचत, नैन रँगीले भोर ॥
सिथिल पलक महँ वंक विलोकनि, विहसनि चित-वित-चोर ।
फिरि-फिरि उर लपटात, समात न, फूले तन कुच-कोर ॥
अधर मधुर मधु प्याइ जिवाये, विवि वर वदन चकोर ।
मादक रस रसना न अघात, लहत मंडल चल छोर ॥
वीच-वीच नाँचत मिलि गावत, कल सुर-मंदिर घोर ।
रीझि पुलकि चुंबन करि कुलकत, झुलवत जोवन-जोर ॥
हरिवंसी फूलत हरिदासी, निरखत सुरत हिंडोर ।
'व्यासदास' अंचल चंचल करि, मोद-विनोद न थोर ॥३१५॥

---

† चबोरी (क), चनोरी (च, छ)

* गावति आवति (ग, च, छ), नीकें गावत (क)

राग षट

आजु पिय के सँग जागी भामिनी ।
चोरी प्रगट करन तेरे अँग, रति रँग राचे जामिनी ।।
भूषन लट अँचलु न सँभारति, हसति लसति जनु दामिनी ।
पुलकित तनु, स्रम-जलकन सोभित, बेपथजुत गजगामिनी।।
फूले अधर, पयोधर, लोचन. उर, नख, भुज अभिरामिनी ।
गडनि पीक मषी न दुरावति, 'व्यास' लाज नहिं कामिनी ।।३१६।।

राग देवगधार

कहाँ निसि जागे रसिक सुजान ।
सुरत रग, अग-अँग रचे हैं, दुरवत अपनै जान ।।
नैन कपोल पीक रस मंडित, खंडित अधरनि पान ।
विगलित केस कुसुम-कुल बरषत, उर लागे लख* बान ।।
मनिमय माल हृदै आलकृत, कुच जुग उरज वितान ।
मानहुँ उड़गन सहित गगन महँ, मिले उभै ससि-भान ।।
नख-सिख प्रति, रतिरस बरषावति, विटकुल नृपति‡ निदान ।
विथकित कोटि 'व्यास' कवि मति, या छबि की उपमा आन ।
'व्यास' स्वामिनी के डर मोहन, कहत आन की आन† ।।३१७।

राग गौरी

आजु पिय के सँग जागी रात ।
दुरति न चोरी कुँवरि किसोरी, चीन्हैं परसत गात ।।
पुलकित कपित गातनि संकित, बात कहत तुतरात ।
जावक, पीक, मखी रँग रंजित, सारी स्वेत चुचात ।।
छूटी चिकुर चद्रिका, उरजनि पर लटकति लर-पाँत ।
मानहुँ गिरवर कंचन ऊपर, मेघ घटा धुरवात ।।
खंडित अधर पीक गंडनि पर, लोचन अलस जभाँत ।
हँसत अकोर देत, चित चोरत, अंग मोर ऐंडात ।।
कहा-कहा रति बरनौं वैभव, फूली अंग न मात ।
वेगि देखाउ बहुरि वह कौतिक, 'व्यासदास' अकुलात ।।३१८।।

---

* लषि (क), नख (च, छ)

‡ नृपति (क, च, छ,), निपट (ग)

† यह चरण केवल (क) प्रति में उपलब्ध हुआ है ।

राग सारंग

देखि सखी, आँखिन सुखदैन दोऊ जन ।

बिथुरी - अलक, पीक - पलक, खडित - अधर,
मँडित गड, सिथिल-वसन गौर-साँवरे तन ।।
नव निकुंज, कुसुम-पुंज रचित सैन, मैन-केलि,
कलित दुहूँ अग - अंग, स्रम-जलकन ।।
आवेस अरुन चकित नैन चाह, बिवस कमल बैन ,
सैननि कछु कहत 'व्यास' दासी जन ।।३१६।।

आज कछु तन की छबि फबि आई ।

कहत न बनति देखि मुख सुख अति, दुख पुनि कहत न जाई ।।
निसि की बिपति बिसरि गई, प्रात की संपति उर न समाई ।
रग दुरायें दुरत न अगनि, कहि दीनी चतुराई ।।
व्याकुलताई तकत लालचिन, लाज सरीर सुहाई ।
बिकल वेदना अधिक व्याधि की, मिटत न पीर पराई ।।
जाकी प्रकृत बिकृत रस राच्यौ, तासों कछु न बसाई ।
सुनत हिये में राखि 'व्यास' की स्वामिनि पिय पै आई ।।३२०।।

राग सारंग

बने अंग-अग जनु रंग नग चोखे ।

केसरि, चोवा, हीरा, मरकत, लाल, काल बल ओखे ।।
गौर - स्याम सोभा बादर में, उपमा-सागर सोखे ।
पाँचि पिरोजा पदिक पदारथ, पुंज गुंज सों जोखे ।।
पोति जंगालि जोति नहिं मोतिहिं, स्वाँति बूँद पय पोखे ।
बिबिध बरन बन-दामिनि दारयौ, कुसुमनि कों संतोखे ।।
कचन - घट बिद्रुमहिं परी चिट, और सबै निरदोखे ।
'व्यास' स्वामिनी की छबि बरनत,कबिन परत दिन धोखे ।।३२१।।

राग सारंग

कामवधू कदुक सों क्रीडत, सुनि राधा, पिय सनमुख आवत ।
कमल पटल तजि, तव मुख सनमुख,देखि तू मधुपावलि धावत ।।
सभ्रम भामिनि चितवहिं पिय चुंबत ललित रतिहिं उपजावत ।
छल-बल करि हरि राधा बिहरत,देखत 'व्यास' सखी सचु पावत ।।३२२।।

४. मनन-विहार—

राग सारंग व गौरी

पिय प्यारेहिं कहाँ छाँड़ि आई।
लैन गई ही दैन परम सुख, मुख दिखाइ दुख लाई।।
अंग अनगनि की सी नगरी, नागर सुबस बसाई।
दोऊ सुरत परस्पर राचे, थाती लूटि लुटाई।।
वंक निसंक ससंक नैन छवि, स्याम-अरुन-सित झाई।
एक चोर पहँ चोर-मंडली, कैसैं दुरति दुराई।।
देखत कुच नख-रेख निमेष लगावति, हँसनि सुहाई।
बिहरत 'व्यास' स्वामिनी भोर, किसोर हियैं न समाई।।३२३।।

विराजत स्याम उनीदे नैन।
अरुन अलस इतरात रँगीले, सूचत रति-रस-चैन।।
निसि कौ अनुभव भोर न भूलत, चितु-वितु चोरत सैन।
भ्रुव-विलास कल हास न विसरत, जुव सों कहैं जु बैन।।
अजहूँ कर कुंचित रँग रंजित, सकुचत कुचनि गहै न।
उर कंपित, मुख चुंबन रस सुख, जात बनित घर ऐन।।
अजहूँ बाहु उछाहु करति बल, भैंटत भुजहिं† गहै न।
‡वलित कुटिल कटि ललित नेति रट, भामिनि, भारु सहै न।।
औरौ कोक-कला अँग-अंग नचावति गुन-गति मैन।
अद्भुत कथा 'व्यास' के प्रभु की मोपै कहत बनै न।।३२४।।

राग बिलावल व बिहागरौ

सैनन बिसरे नैननि भोर।
बैन कहत कासों पिय हिय तें, बिहँसत कितव किसोर।।
दुख मेंटत भेंटत तुमकों नहिं, चुंबन, देत न थोर।
काहि देत जोवन-धन करि गहि, लैं कुचकोर अकोर।।
काके पाँइ गहत मेरे प्यारे, कासों करत निहोर।
कौनै बिकल किये नव नागर, तुम पनिहाँ तुम चोर।।
निजु विहारि आरोपि अंत.पुर, कोपि मानगढ़ तोर।
'व्यास' स्वामिनी बिहँसि मचाई, सुरत-समुद्र हिलोर।।३२५।।

---

† भुजहिं (क), तरुनी (ग, च, छ)

‡ चलत (क)

निरखि मुख कौ सुख, नैन सिरात ।
सैननि कौ सुख कहत बनै न, निमेष ओट मुसिक्यात ॥
अंग-अंग आलिंगन के रस, रोमनि पुलक चुचात ।
कुच गहि चुंबन करत, अधर - मधु पीवत, जीवत गात ॥
'व्यास' वंस निधि सब निसि लूटी, किसोर भोर पछतात ॥३२६॥

या तें माई, तेरे नैन विसाल ।
या तें उनमद पिय पुतरिन में, घरु कीनौ नँदलाल ॥
याही तें बिंबाधर - जलधर, बरषावति सब काल ।
याही तें तृषित पपीहा-पिय कौं करत सदा प्रतिपाल ॥
याही तें कुच सकुचत नाहीं, पीन कठोर रसाल ।
ता तें हरि मन कूँ† हरि लीनौ, कसि कंचुकि-बँद जाल ॥
याही तें तुव चरन - कमल की, पिय पहरी उर माल ।
या तें मान - सरोवर बूड़त, उबरे कुँवर मराल ॥
बोलनि, चितवनि, हँसनि छबीली, गावन, नाचन चाल ।
श्री'व्यास'स्वामिनिहिं बरनि सकै को,नीरव कु-कवि सृगाल ॥३२७॥

५. रसोद्गार—

राग गौरी

नैननि नैन मिलत मुसिक्यानी ।
मुख सुखरासि निरखि उर उमगत, दुख करि लाल लजानी ॥
आरज-पथ बेपथ करि भाज्यौ, संका सकुचि डरानी ।
धीरज सटकत हू नहिं मटक्यौ, मानु गयौ अभिमानी ॥
आस गई उपहास त्रास सँग, सुधि - बुधि अंग समानी ।
रह्यौ न अंतरु डरु करि दूती, सब धूती मुरझानी ॥
तन सौं तन, मन सौं मन मिलयौ, ज्यौं पिय पय में पानी ।
रसिकनि की गति 'व्यास' मंद पै कैसैं जात बखानी ॥३२८॥

राग गौरी

आजु लवगलता गृह विहरत, राजत कुंजविहारी ।
कुसुम-निकर सचि, ललित सेज रचि, नखसिख कुँवरि सिंगारी ॥
प्रथम अग-प्रति-अग सग करि, मुख-चुंबन सुखकारी ।
तब कंचुकि - बँद खोलत, बोलत चाटु बचन दुखहारी ॥
हस्तकमल करि विमल उरज धरि, हरि पावत सुख भारी ।
बधू कपट भुज पटनि दुरावति, कोप भृकुटि अनियारी ॥

---

† मन कूँ (क), मान कु (ग); मानिक (च,छ)

नीवी मोचत मुंच अलंकृत, नेति कहत सुकुँवारी ।
चिबुक चारु टक टोलनि बोलनि, पिय कोपित है प्यारी ।।
नैन सैन मधु बैन हँसन जब, कोटि चंद उजियारी ।
कोक-कुसल रसरीति प्रीति-वस, रति प्रगटत पिय-प्यारी† ।।
अधर-सुधा-मद मादक पीवत, आरजपथ सों सींव विदारी ।
बृंदावन - लीला - रस - जूठनि, बाइस 'व्यास' बिटारी ।।३२९।।

राग सारंग

बन की कुंजनि - कुंजनि केलि ।
विविध बरन वीथिन महँ वीथी, बिगसित नव द्रुम-बेलि ।।
तिन महँ सहज सेज पर स्यामा - स्याम विराजत खेलि ।
अगनि कोटि अनंग रंग छवि, सुरत-सिंधु महँ झेलि ।।
मुख-विधु-वारिज पर लट लटकति,अंसनि पर भुज मेलि ।
मादक अधर - सुधा - मधु पीवत ,जीवत नवल नवेलि ।।
जोबन जोर किसोर जगे रस, निसि भोरहिं* अवहेलि ।
'व्यास' स्वामिनिहिं सेवत मोहन, निज बैभव पग पेलि ।।३३०।।

६. वसन— राग कमोद

सोहत सिर सार$ की उढैनी ।
नारी कुंजर कौ लहँगा, कटि किंकिनि पर रुरकत है वैनी ।।
तनी तरतनी कंचुकि की कसि, लेत उसास्म उरज उर उमगे,
रहसि स्यामहिं मिलि मृगसावक-नैनी ।
रति-रस-सूर'व्यास'की स्वामिनि दामिनि सों चचल घन महँ,
जनु बरषावति रसन‡ हसति चैनी ।।३३१।।

७. स्नान समय— राग कमोद

जुगल जन§ राजत जमुना-तीर ।
नंदनँदन - बृषभाननंदिनी, क्रीडत❀ कुंज - कुटीर ।।
कुसुम - सेज - सजि साज सुरति कौ, सोंधौ भूषन चीर ।
कल सीकर मकरंद कमल के, परसत मलय समीर ।।

---

† यह चरण (क)प्रति में नहीं है । * भोरहिं (ग, च, छ), वासर (क)

$ सारी (क) ‡ सरनि (क, छ)

§ जन (च, छ), जल (क, ग) ❀ क्रीड़त (क) कृतरुचि (ग, च,छ)

कुच गहि चुंवन करत परस्पर, परिरंभन रस - वीर ।
मुख मुसक्यात गात पुलकित सुख, मुखरित मनिमंजीर ॥
खर नख सर उर उरजनि लागत, नभ गत सही सुभीर ।
वैन कहत रस ऐन सैन दै, नैननि करै अधीर ॥
विगलित केस सुदेस रोम, वरषत सौ मनु स्नमनीर ।
विरह - जनित दुख वाके वैरी, मारि करै सब कीर ॥
विविध विहारनि ललितादिक की, दूरि करत सब पीर ।
'व्यास' किसोर भोर नहिं विछुरत, जोवन-जोर सरीर ॥३३२॥

८. वैनीगुहन— राग सारंग

पाछैं वैठे मोहन जू मृगनैनी की वैनी गुहत,
सोभा न कही परै, देखत नैन सिरात ।
नख - छवि रवि जानि पानि - कमल फूले,
निकसि चली अलिसैनी अधरात ॥
मानहुँ वारिज विधु सो रिपु - मति तजि,
सदल* सुधा पीवत न अघात ।
स्याम - भुजगिनि के डर डोरी वाँधत,
'व्यास' की स्वामिनी कों सुंदर अकुलात ॥३३३॥

राग नट

वैनी गुही मृगनैनी की पिय ।
चंपकली सोहति अलकनि विच, मोहति मन नैननि सुख लागत,
निरखि आरसी उमग भई जिय ॥
नखसिख अग वनाइ रंग - रस, रचि मिलवत हिय सों हिय ।
गुन-गन- निपुन 'व्यास' की स्वामिनि, रति महँ गति उपजावति,
गावत सी ताता थेईऽ तताथिय ॥३३४॥

राग कमोद

पाटी सिलसिली सिर लसति ।
सहज सिंगार सुकेसी केसनि, स्वरनि जूथिका लसति ॥
रंगभरे नग माँग विराजत, लाजत मुक्ता, मनिनि खसति[१] ।
मृगनैनी की वैनी मानहुँ स्याम भुवंगिनि विधु मधुहिं[२] ग्रसति ॥
अनुपम छवि देखैं दवि रहै सुखमा, सकुचि रमापति पछताय हँसति ।
'व्यास' स्वामिनी पिय के हिय ते निमिप न इत-उत धसति ॥३३५॥

---

* सवदल (क) ऽ ताता थेइ (क) ताथेई (ग) तत् थेई (च, छ)
[१] मन खत [क] [२] मधुर [क]

९. नैन-वर्णन—

राग बिलावल व बिहागरौ

राधा, तेरे नैननि काहू की दीठि लगी सी ।
लगत न पलक जम्हाँति, मनौ खिजति सब राति जगी सी ।।
झलमलाति ऐंडाति दूध सौं, डारत लाज भगी सी ।
लटकति लट मनौ हाथ देत, मोहन ठगु आजु ठगी सी ।।
कज्जल - बिंदु डिठौना से कछु, पीक - पराग पगी सी ।
'व्यास' वचन सुनि विहसति, अति आनंद-सिंधु उमगी सी* ।।३३६।।

अंजन पनच धनुष सम भौहैं ।
वंक निसंक अनी अनियारे, लगत नैन सरसौंहैं ।।
मुख सुखरासि, नाग की फाँसि बँध्यौ मोहन-मृग मोहैं ।
स्यामहिं डर उपज्यौ देखत, जनु कामिक सिंघ बिछोहैं ।।
तजैं पीतपट नागरनट, जानत मानत‡ बलदोहैं ।
'व्यास' स्वामिनी त्रास हारि हँसि, कुच-गिरि पर आरोहैं ।।३३७।।

राग सारंग

नैन कर सायल से बिडरे ।
मोहन रूप अनूप हरे तृन, चाखत गर्व भरे ।।
मनि ताटंक जुगल फंदा, लट फाँसी देखि डरे ।
भौंह कमान बान विनु जानैं, आतुर जियहिं हरे ।।
सरनु तक्यौ कच विपिन सघन में, मदन-बधिक निदरे ।
'व्यास' त्रास कर भाजत वागुरि, घूघट माँझ परे ।।३३८।।

राग भोपाली

नैन खग उड़िबे कौं अकुलात ।
उरजन डर बिछुरे दुख मानत, पल पिंजरा न समात ।।
घूंघट विटप छाँह विनु विहरत, रविकर-कुलहिं डरात ।
रूप अनूप चुनौ, चुनि निकट अधर सर देखि सिरात ।।
धीर न धरत, पीर कहि सकत न, काम-बधिक की घात ।
'व्यास'स्वामिनी सुनि करुना हँसि, पिय के उर लपटात ।।३३९।।

---

† 'दूध मौ' (ग), 'दूध सौं' (क), दृगन सौ' (छ), दृग सौ' (च),
* 'उमगी सी' (च,छ), 'सीम उमगी मी' (ग), 'सीम उमड़ी मी' (ख),
‡ मानत (क), मानहु (ग), मानहुँ (च, छ),

राग सारंग

नैन छवीले कतहिं दुरावति ।
घूँघट - पट - पिंजरा महँ मानहुँ, खंजन जोट चुरावति ॥
लेत उसास कुचन पर चोली के बँद कतहिं दुरावति ।
'व्यास' स्वामिनी विहँसि,विरह-बंधन ते पियहिं छुड़ावति ॥३४०॥

राग धनाश्री

नैन बने खंजन से खेलत ।
चपल पलक तारे अति कारे, बंक निसंक ठगौरी मेलत ॥
भृंग, कुरंग, मीन, कमलनि की भाँति,कांति छवि कवि अवहेलत ।
अंजनरेख विसिख-मद गंजन,सैन चलनि मैननि पग पेलत ॥
घूँघट - पट महँ चितै, कुँवर कौ चितु चोरति, रति-सिंधुहिं मेलत ।
'व्यास' स्वामिनी तेरौ प्यारौ, बड़भागी सुखरासि सकेलत ॥३४१॥

राग सारंग

नटवा नैन सुघंग दिखावत ।
चंचल पलक सबद उघटत हैं† थ थं तत् थेई थेई कल गावत ॥
तारे तरल तिरप गति मिलवत, गोलक सुलप दिखावत ।
उरप भेद भ्रू-भंग संग मिलि, रतिपति कुलनि लजावत ॥
अभिनय निपुन सैन सर ऐंननि, निसि वारिद बरषावत ।
गुनगन रूप अनूप, 'व्यास' प्रभु निरखि परम सुख पावत ॥३४२॥

राग भूपाली

चितै मन मोहत पिय कौ नैन ।
सरवस हरत करत रों रों सुख, चल अलकनि विच सैन ॥
भ्रु वविलास कल हास मनोहर, प्रगट नचावत मैन ।
'व्यास' स्वामिनी की अद्भुत छवि, कवि पै कहत‡ बनै न ॥३४३॥

राग कमोद व कान्हरौ

मन मोह्यौ री मेरौ नैननि ।
चितवति ही चित-चितु इनि चोर्‌यौ, फोर्‌यौ तनु धनुसर* सैननि ॥
यह छवि कहूँ न है, नहिं ह्वै है, कवि बपुरा कहि सकत न बैननि ।
यह गति खंजन, मीन, कमल, अलि, सुनी न ।देखि मिटैं ननि ॥
याही तें तेरे खरैं प्यारे, जाते मोहन बसतु सु ऐननि ।
कच-कुच-चिबुक-भौंह मनु नेरे, श्री 'व्यास' स्वामिनी चैननि ॥३४४॥

---

† तट (क) ‡ कवि पे कहत (ख, छ), मोपै कहत (क), कहत (ग)

* धनुसरे (क)

राग गौरी व षट

नैननि ही की उपमा कौ को है री ।
सैननि ही मैननि उपजावति, भौंहनि मन मोहै री ॥
बारिज, अंग, विहंग, मीन, मृग, विनती सुनि को है री ।
अंजन पर खंजन मधुकर, वलि जाति गात मोहै री ॥
जिन महँ बसत लसत अति मोहन, रति-सुख-रस दोहै री ।
'व्यास' स्वामिनी सिखयौ मोहन, वसीकरन सोहै री ॥३४५॥

निरुपम राधा नैन तुम्हारे ।
वंक-विसाल-स्याम-सित-लोहित, तरलित - तुंग अन्यारे ॥
अंजन छवि खंजन-मद-गंजन, मीन पानि बुडि हारे ।
निसि ससि डरत, पकजकुल सकुचत, वधिकन मृगज विडारे ॥
पीक पलक भुव अलक कुटिल, विकट निकट घुंघरारे ।
डरत न, हरत परायौ सरबस, 'व्यास' प्रान-धन वारे ॥३४६॥

राग कल्यान

कुंडल जुगल फंदन डर लोल, द्वै गोलक घट तें सटके ।
सुख पायौ इनि लोभिनि मिलि, मकरंद-वृंद-रस गटके ॥
मिलत सहे* सुदेस परिहरि, दोऊ सरवम देत न मटके ।
घूँघट-पट-पिंजरा मे निज कुल, निरखत कोरन ठटके† ॥
कातरता तजि, चातुरता सजि, निजु कचुकि महँ लटके ।
तोसों जोरि हित, मोसों तोरि चित, तातें मैं नहिं हटके ।
'व्यास' स्वामिनी तेरे कारन, धन वन - कुंजनि भटके ॥३४७॥

राग नट

बने राधा के नैन सुरंग ।
झलकत पलक अंक छवि लागत, बिडरे मनहुँ कुरंग ॥
मानहुँ कमल परागहिं चाखत, तारे चंचल भृंग ।
गोलक विमल सरोरुक खेलत, मीन मनहुँ भ्रुव भग ॥
भृकुटि कटाच्छ - वान मोहन मन, वेधत व्याधि अनंग ।
'व्यास' स्वामिनी नागरनटहिं नचावति सरस सुधंग ॥३४८॥

१०. मुख-वर्णन— राग बिलावल व बिहागरौ

गौर मुख चंद्रमाँ की भाँति ।
सदा उदित वृंदावन प्रमुदित, कुमुदिनि - वल्लभ जाँति ॥
नील निचोल गगन में सोभित, हार तारिका - पाँति ।
झलकति अलक, दसनि-दुति दमकति, मनहुँ किरनि-कुल-काँति ॥

* 'सहे' (ग), 'सहेली' (क, च, छ) † पटके (क)

गंड-कोप पर स्रम-जल-ओस जु, अधरनि सुधा चुचाति ।
मोहन की रसना सु चकोरी, पीवति रस न अघाति ॥
हास कलाकुल सरद सुहाई, तन-छवि चाँदिनि राति ।
नैन कुरंगनि, कटि सिंघनि डर, उन पर अति अनखाति ॥
नाह निकट, नहिं राहु विरह डर, पट-सोभा न समाति ।
देखत पाप न रहति, 'व्यास' तन दासिनि ताप बुझाति ॥३४९॥

राग सारंग

राधावदन चंद्रमा की जुन्हाई, सीतल सुखदाई ।
नंदकिसोर-चकोर पियतु हू, अरु पूजी न अघाई ॥
हरपत स्याम तनूरुह भूरुह, वरपत स्रम-जल-ओस सुहाई ।
अधर सुधा मकरंद माधुरी, वृंदाविपिन पुरंदर पाई ॥
हास-कला छवि* पूरन मंडल, संतत राकातिथि जु वढ़ाई ।
भूषन-निकर किरन नग परसत, विरह-तरनि§ तन-ताप बुझाई ॥
महाराज वृषभान-घरनि-वपु, प्राचीदिसि जु जननि जग गाई ।
वल्लभकुल सागर अति प्रमुदित, निरखत 'व्यासदास' वलि जाई ॥३५०॥

राग नट

प्यारी तेरे वदन-कमल-रस अटक्यौ लालन-अलि ।
तन सों तन, मन सों मन अरुझ्यौ, न सकतु चलि ॥
तुव वृंदावन कनक वेलि सी, रही उरजनि फलि ।
यह सुख निरखत 'व्यासदास' जाइ वलि ॥३५१॥

११. हास—

राग नट

हँसत ज्यौं-ज्यौं ही री ! त्यौं-त्यौं दसन—
लसत, मनहुँ सरद-ससि कोटि उज्यारी ।
वरपत रस विंबाधर-जलधर,
पीवत चातिक-कुंजविहारी ।
नैननि सैननि दै चितु चोरत,
लै भ्रूभंग अनंग नचावत प्यारी ।
गावत मोहन मृगहिं रिझावत, छाती सों—
लगावति, निरखि 'व्यास' जुग जुवती वारी ॥३५२॥

---

* विरह तरनि (क), विरह तरन (ग); विहरत गति (च, छ),
§ फुल (क);

१२. उरज वर्णन—

राग सारंग

उरज जुगल पर सहज स्याम-छवि, उपमा कहि सब कवि पचिहारे ।
रूप - बरन - गुन जस - रस राचे, सुख की रासि दुखारे ॥
कर-कमलनि† मकरंद पीवत अलि, चलिहिं न सकत सुखारे ।
मानौ नूत मंजरिनि बैठे, कोकिल करत कुकारे$ ॥
नखसिख सुंदर कनकलता के, फल जस रसमय भारे ।
मानौं हितकरि बदन दिठौना, कज्जल-बिंदु अन्यारे ॥
बिनु भूषन भूषित पट सुंदर, सहज सिंगार बिसारे ।
'व्यास' स्वामिनी वे री, मेरे प्रानन के रखवारे ॥३५३॥

राग सारंग व नट

सबै अंग कोमल उरज कठोर ।
कहि काहे तें आपुन गोरे, सुंदर स्यामल बोर* ॥
ते बाँधे रिस कें कचुकि महँ, ये मेरे चितचोर ।
तोरि तनी चमकत जोवन - बल, माँगत नैन अकोर ॥
मोहू पीठि दई इन लोभिनि, कीनौ कपट न थोर ।
ताकौ फल पावत हैं निसदिनु, दस नख की झकझोर ॥
निर्दय हृदय भेदत जु बैर करि, डरत न अपने जोर ।
'व्यास' स्वामिनी इन से येई, प्रान-जीवन-धन मोर ॥३५४॥

राग कमोद

सब अंगनि के हैं कुच नाइक ।
जिन पर पहिलैं दृष्टि परत ही, कया‡ होत मन भाइक ॥
मन कौ दुख न रहत मुख देखत, ताप नसावत काइक ॥
पीर, ब्याधि मैटत देखत ही, कर परसत सुखदाइक ॥
दोऊ सूरवीर रति - रन में, टरत न सनमुख पाइक ।
मेरौ उर बेधत तो कारन, सहत नखर नख - साइक ॥
घूंघटपट, अंचल, चोलीबँद, ये सब मेरे घाइक ।
'व्यास' स्वामिनी प्रेम-नेम तें, हौं कछूक तो लाइक ॥३५५॥

---

† कर कमलनि (क),   कनक कमल (ग, च, छ);
$ कुकारे (क),   कुरारे (ग, च, छ),
* ओर (क),   गोर (च, छ)
‡ कया (क, ग, च),   कथा (छ).

राग धनाश्री

वधिक हू तें अधिक उरज की चोट* ।
अनी अन्यारे वान-धनुष विनु, तकि वेधत तन-ओट ॥
मोहन-मृग मोह्यौ विनु नादहिं, लगत न जानत चोट ।
'व्यास' वरावस हाव कियौ हठि, चंचल अंचल ओट ॥३५६॥

राग पट व गौरी

सव अंगनि महँ उरज निसंक ।
चोली कसैं वसैं अंचलु मे, तऊ न होत ससंक ॥
आगैं-आगैं फिरत सवनि के, सकुचत नहिं सकलंक ।
पहलैं दीठि परत ही, पीठि न देत, लगावत लंक ॥
वाल काल तव वाल विधू, निरखत आँकौ भरि अंक ।
सदा सकाम हृदय के भेंटत, मेटत दारिद - अंक ॥
गौर - स्याम सोभा - सागर जनु, कचन-मरकत - पंक ।
'व्यास' स्वामिनी द्वै निधि वीच, वसाये रति रस रंक ॥३५७॥

राग सारंग

तन-छवि के फल उरज अन्यारे ।
सहज स्वरूप सुवेस सुरेसी, गौर - गात सित - कारे ॥
मन-मोहन सुख-दोहन देखत, प्रीतम पलक विसारे ।
सरवस लुटत छुटत मानो माई, मनमथ-वान अन्यारे ॥
तोरत तनी तमकि चोली की, जोवन - जोर उघारे ।
'व्यास' न त्रास करत विषयनि सों, रति-रन खर नख हारे ॥३५८॥

राग पट

याही तें माई कुचनि के ओर भये कारे ।
ये पिय के नैननि मे वसत, इनकें पिय के तारे ॥
भेंटत दुख मेटत सखि उर में, नाहिन गड़त अन्यारे ।
रति विपरीत मीत से लागत, जद्यपि जोवन भारे ॥
हाथनि माझ सांझ समात, रहत वासर अति वारे ।
अंचर डारि, फारि चोली पट, सुभट लौं फिरत उघारे ॥
श्रीफल, कनक, कलस, गजकुंभ, कविन छवि ऊपर वारे ।
'व्यास' स्वामिनिहिं लागत प्यारे, मोहन के रखवारे ॥३५९॥

---

* चोट (च, छ); जोट (क, ग);

१३. चरण-वर्णन—

राग षट

सुभग गोरी के गोरे पाइ ।
स्याम काम-वस जिनहिं हाथ गहि, राखत कंठ लगाइ ।।
कोटि चंद नख-मनि पर वारौं, गति पर हंस कराइ ।
नूपर-धुनि पर मुरली वारौं, जावक पर व्रजराइ ।।
नॉचत रास रंग महँ, सरस-सुधंग दिखावत भाइ ।
जमुनाजल के दूर करत मल, चरननि पंक छुटाइ ।।
सघन कुंज बीथिन मे पौढ़त, कुसुमनि सेज बनाइ ।
कुमकुम-रज-कपूर-धूरि, भुरि की छबि बरनि न जाइ ।।
धनि बृषभान, धन्य बरसानौ, धनि राधा की माइ ।
तहाँ प्रगट नटनागर खेलत, रति सों रति पछिताइ ।।
ताके परस सरस बृंदावन, बरषत सुखनि अघाइ ।
ताके सरन रहत का कौ डर, कहत 'व्यास' समुझाइ ।।३६०।।

राग गौरी

सुभग सुहाग कौ चीन्हौ प्यारी, तेरे चरननि सोहै ।
जिनकी रज राजत बृंदावन, देखत ही मोहन-मन मोहै ।।
गौर-अग-छवि स्यामहिं फबि गई,सकल-लोक चूडामनि जो है ।
'व्यास' स्वामिनी की उपमा कों,भुवन चतुर्दस कामिनि को है ।।३६१।।

१४. अंग-वर्णन—

राग बिलावल व बिहागरौ

सुभग राधामोहन के गात ।
विहरत अंग-अग बिबि तन-मन, सहज मधुरता तात ।।
निरुपम अति उपजति छबि, कविकुल उपमा कों अकुलात ।
वर वंधुक अति मूक होत सव, मन मनसाहि लजात ।।
कोटि-कोटि जो कीजै बुधि-बल, सरवा सिंधु न मात ।
कैसैं 'व्यास' रक की वसनी, लक-सुमेरु समात ।।३६२।।

राग बिलावल व बिहागरौ

आजु अति सोभित सुंदर गात ।
अरुन सुलोचन पिय-दुख-मोचन अति आतुर अकुलात ।।
डरत न हरत परायौ सरवस, मंद-मंद मुसक्यात ।
मानहुँ रंक महा-निधि पाई, फूले अंग न मात ।
'व्यास' कपट-फल तब पावहुगे, जबहिं मदन-सर-घात ।।३६३।।

राग घट

कौन-कौन अंगनि के रंग - रूप बरनौं ।
तिनके रस बिवस स्याम, रहत सदा सरनौं ॥
कामातुर कुँवर धाइ, धरत सीस गौर - चरनौं ।
अधर - सुधा - पान, मिटत बिरह - ताप जरनौं ॥
मधुर बचन - रचना सुनि, अति जुडात करनौं ।
नैननि की ओट होत, आनि बनत मरनौं ॥
'व्यासदास' आस अधिक, अनत नहीं सरनौं ॥३६४॥

राग सारंग

देखत नैन सिरात, गात सब नागरता की खानि ।
कोटि चंद्रमनि मंद करत, मोहन-मुख मृदु-मुसकानि‡ ॥
खजन, मीन, मृगज, कंजनि, मनहरति चितै नैनानि ।
कोटि काम - कोदंडनि खंडन, भ्रू-भंगन की बानि ॥
केस निचय घन रुचि जस कारी, कुंतल अलि बलि जानि ।
उरज - करज गजकुंभ - हेमघट, श्रीफल-छवि की हानि ॥
दाख सिता मधु सुधा मुधा तें, अधरामृत पहिचानि ।
बाहु बिलोकत उपजी सकुच, मृनाल भुजंग लतानि ॥
दसननि देख दुरी दामिनि, दार्‌यो उर अति अकुलानि ।
'व्यास' स्वामिनी स्याम-भामिनी, सब अंगनि सुखदानि ॥३६५॥

राग नट व खट

देखि सखी, राधामुख चारु ।
मनहुँ छिडाइ लियौ इनि सब उपमनि कौ रूप - सिंगारु ॥
दार्‌यौ दामिनि, कुंद मंद भये, दसननि है सतु सारु ।
बिद्रुम वर बंधूक बिंब मिलि, अधरनि है रस - भारु ॥
सुक, किंसुक, तिलकुसुम तज्यौ मृदु, निरख नासिका ढारु ।
सुभग कपोलनि बोल दियौ तनु, मधुपनि अधिक उदारु ॥
खजरीट, मृग, मीन, कमल, नैननि कीनौ सब आरु ।
अजन भौंहनि धनुप कियौ रद, चल सैननि सिरदारु ॥
चंदन-बिंदु ललाट इंदु सम, अलकनि किरनि प्रसारु ।
नकबेसरी तरौना तरका, स्रवन कुरंग उफारु ॥

---

‡ मुख मृदु मुसकानि (च, छ), मुख मुसिक्यान (क), मुख मुसकान (ग)

स्यामल रसमय चिकुरनि के डर, मेचन पर्‌यौ बिडारु ।
बैनी लट पटतरहिं डरानौं, भुजगनि गह्यौ पतारु ॥
स्याम सहित स्यामाहिं विलोकत, भूल्यौ रतिहिं भरुतारु ।
कमला कहति सुनहुँ पति, दंपति पर वारौं संसारु ॥
गौर - स्याम सोभा - सागर कौ, नाहिन वारापारु ।
'व्यास' स्वामिनी की छबि आगैं, सकल सरूप उगारु ॥३६६॥

राग कमोद

क्रीडत कुंज कुरंगज‡ - नैनो ।
सोभा-सिंधु न मात गात महँ, कुच श्रीफल रुचि दैनी§ ॥
कुंजनि सुरत भानु करि कोकिल, चाल मरालनि लैनी ।
चौकी की चमकनि के आगैं, दामिनि भई कुचैनी ॥
वसि पताल व्याल नहिं आवत, जानि मन्यारी वैनी ।
उरजनि पर नख-अंक मनहुँ विधु-सुधा स्रवन घन मैनी ॥
मानहुँ कनक - कलस पर दीनी, हेम चौर छवि छैनी ।
रसना एक अनेक मधुर - गुन, बरनत वनहिं न भैनी ॥
'व्यास' स्वामिनी की चलि सैननि, बानन हूँ तें पैनी ॥३६७॥

१५. षोड़श शृंगार-वर्णन—

राग सारंग

आजु बनी बृषभानुदुलारी ।
अंगराग भूषन पट रचि रुचि, मोहन अपने हाथ सिंगारी ॥
चिकुरनि चंपकली गुहि बैनी, डोरी रोरी माँग सँवारी ।
मृगज बिंदुजुत, तिलक इंदु छबि, झलकत अलक, मनहु अलिनारी ॥
स्रवननि खुटिला खुभी झलमली, नैननि अंजन-रेख अन्यारी ।
नासापुट लटकनि नकबेसरि, भौंह तरंग भुजंगनि कारी ॥
मदहास वसि वलि दामिनि, जलधर - अधर कपोल सुढारी ।
कंठ पोति†, उर-हार, चारु कुच, गुरु नितंब, जंघनि अति भारी ॥
गजमोतिन के गजरा, हाथनि चारु चुरी, पहुँचिन पर वारी ।
नील कचुकी, लाल तरौटा, तनसुख की तन झूमक सारी ॥
नखसिख कुसुम - बिसिख, रस बरषत, रोमनि कोटि सोम उजियारी ।
'व्यास' स्वामिनी पर तृन तोरत, रसिक निहोरत जय-जय प्यारी ॥३६८॥

---

‡. कुरंगज (च, छ), रंग पकज (क, ग)

§ काम चढाइ स्याम अँग कहँ मनहुँ सुरत रंग चैनी । (च, छ) प्रति मे दूसरे चरण पर अतिरिक्त पंक्ति है । † पोति (क), जोति (ग, च, छ)

राग कान्हरौ

आजु बनी वृषभानुदुलारी ।
नव निकुंज विहरत प्रीतम सँग, मंदपवन, चाँदिनी उज्यारी ॥
भूषन भूषित अंग सुपेसल, नीलवसन तन झूमक मारी ।
चिकुर-चंद्रकनि चंपकली गुहि, सिर सीमंत सुकंत सँवारी ॥
मनिताटक विलोल कपोलनि, नासामनि लटकति लटकारी ।
झलकति अलक, तिलक भौंहनि छवि, नैननि अंजन-रेख अन्यारी ॥
स्याम दसन सित चौका चमकत, अधर-विंव प्रतिविंव विहारी ।
कुच-गिरि पर घनस्याम†-कचुकी,कृस कटि,जघनि नितवनि भारी ॥
तरुवनि कुमकुम, नखनि महावर, पद मृगमद चूरा चौधारी ।
नखसिख सुंदरता की सीवाँ, 'व्यास'स्वामिनी जय पिय-प्यारी ॥३६९॥

राग सारंग

सुभग सुहागिल नवल दुलारी ।
नखसिख अंग रंगसागर-छवि, नागर सुहथ सँवारी ॥
गजमोतिन सिर सुंदर वैनी, जनु अहिवधू-मन्यारी ।
चिकुरनि चंपकलिन की रचना, सैंदुर सरस पनारी ॥
अलक, तिलक झलकत गंडनि पर, तार्टकन लटकारी ।
भौंह - धनुष सर नैन-मैन हन, अंजन-रेख अन्यारी ॥
अधर-सिंधु-सर राधा-मोहन,विहँसत दसननि मनि उजियारी।
सोभित स्यामलविंदु चिवुक, सुक नासा ललित रवारी ॥
वाहु - मृनाल नाहु के असनि, पीन - पयोधर भारी ।
नील कचुकी, लाल तरौटा, लटकत झूमक सारी ॥
गुरु,नितंव किंकिनि-रव कृस-कटि, जघननि वीच विहारी ।
मुखरित मनिमंजीर अधीर करति, रति गति की चारी ॥
निभृत निकुंज भवन महँ, सुखपुंजनि वरषत पिय-प्यारी ।
विविध विनोद मोद दिन देखति, 'व्यासदासि' वलिहारी ॥३७०॥

राधिका मोहन की प्यारी ।
नखसिख रूप-अनूप गुन-सीमा,नागरी श्रीवृपभानुदुलारी ॥
वृंदाविपिन निकुंजभवन तन, कोटि चंद उजियारी ।
नव-नव प्रीति प्रतीति रीति-रस-वस किये कुंजविहारी ॥
सुभग सुहाग प्रेमरँग राची, अँग-अँग स्याम सिंगारी ।
'व्यास'स्वामिनी के पदनख पर,वलि-वलि जात रसिक नर-नारी॥३७१॥

† घनस्याम (ग, च, छ), घरिस्याम (क).

१६. नवलता-वर्णन—

राग धनाश्री

दिनहिं दिन होत कंचुकी गाढ़ी ।
बैठत पौढ़त चलत नई छबि, सभ्रम पियहिं देखि कैं ठाढी ॥
पोर्षा रस प्यौसार माइ कैं, खात दूध की साढ़ी ।
बोलत, चितवत, हँसवत धोखें, रात रूठ जब करत उकाढी ॥
'व्यास' स्वामिनी के गुन गावत, रसिक अनन्य सुढाढ़ी ॥३७२॥

राग सारंग

छिनही छिन जोवन-सलिता बाढ़ी ।
स्याम सजल घन रतिरस बरषत, गिरत करारिन चाढ़ी ॥
सोभित भँवर - फैन कुल - पंकज, पोषत पै दधि साढ़ी ।
कुच-कठोर चकवनि पर कचुकि, चीन तरंगिनि गाढ़ी ॥
कंज-मृनाल, व्याल, गज, खंजन, केलि त्रास गहि काढ़ी ।
मीन - मकर बंसी में बींधे, मृगमाला ढिंग ठाढ़ी ॥
पथिक न वारपार पावत, जस गावत दादुर - ढाढ़ी ।
'व्यासदास' खग उपवन सेवत, नेह सनेह न आढ़ी ॥३७३॥

राग सारंग

नव-जोबन-छबि फबति किसोरिहिं, देखत नैन सिरात ।
बलि-बलि सुखद मुखारबिंद की, चंद बृंद दुरि जात ॥
गौर ललाट - पटल पर सोभित, कुंचित कच अरुझात† ।
मानहुँ कनक-कंज मकरंदहिं, पीवत अलि न अघात† ॥
दुखमोचन लोचन रतनारे, फूले जनु जलजात ।
चंचल पलक निकट स्रवननि के, पिसुन कहत जनु बात ॥
नकबेसर बंसी के संभ्रम, भौंह - मीन अकुलात ।
मनि ताटक कमठ घूँघट दर, जाल बींध पछितात ॥
स्याम कंचुकी मॉझ सॉझ, फूले कुच-कलस न मात ।
मानहु मद गयंद - कुंभनि पर, नील बसन फहरात ॥
नखसिख सहज सुंदरिहिं बिलसत, सुकृती स्यामल गात ।
यह सुख देखत 'व्यास' और सुख, उड़त* पुराने पात ॥३७४॥

---

† (क) प्रति मे ३, ४ थी पक्तियाँ नहीं हैं ।
* उड़त (च, छ), उड़ै (ग)

नव रँग, नव रस, नव अनुराग-जस, नव गुन, नव रूप, नव जोवन-जोर ।
नव वृंदावन, नव तरुवर घन, नव निकुंज क्रीडत नवलकिसोर ।।
नव घन, नव दामिनि, नव बूँदैं, नव राग-रागनिऽ सुनि नटत नवल मोर ।
नवल चूनरी, नवल पीतपट तन, नवल मुकुट, नव सिरपाटी फूल जोर ।।
नव - नव चुंबन, नव परिरंभन, नव कच मीडत नव कुच कठोर ।
नवल सुरत हाव-भावनि प्रगटत, देखत 'व्यास'हिं नव प्रीति न थोर ।२७५।

राग गौड़मलार

नव निकुंज सुख पुंज नगर कौ, नागर साँचौ भूप ।
मृगज, कपूर, कुमकुमा, कुंकुम-कीच, अगर, दिस धूप ।।
सग पडंग सुधंग सुदेसी रागिनि - राग अनूप ।
जीवत निरखि लाड़िली राधा रानी कौ गुन - रूप ।।
नव-नव हाव-भाव अँग-अंग, अगाध सुरत रसकूप ।
'व्यास' स्वामिनी सों हरि हार्‌यौ, सरवस रति-रन-जूप ।।२७६।।

राग कल्याण

चंद्र बिंब पर वारिज फूले ।
ता पर फनि के सिर पर मनिगन, तर मधुकर मधुमद मिलि भूले ।।
तहाँ मीन, कच्छप, सुक, खेलत, बंसीहिं देखि न भये बिकूले ।
विद्रुम दार्‌यौ में पिक बोलत, केसरि - नख - पद नारि गरूले ।।
सर मे चक्रवाक, बक, ब्यालिनि, बिहरत बैर परस्पर भूले ।
रंभा-सिंध बीच मनमथ घरु, ता पर गान - धुनि सुनि सुख-मूले ।।
सब ही पर घनु बरषत, हरषत, सर - सागर भये जमुना - कूले ।
पूजी आस 'व्यास' चातक की, स्थावर - जंगम भये बिमूले ।।२७७।।

१७. मोहन रस— राग कमोद

मदनमोहन माई मन-मोहनियाँ ।
लटकत हँसि उर के लटकन ज्यौं, चढत अचानक कनियाँ ।।
सीस-टिपारौ, स्रवननि - कुंडल, कंठ सु कंचन-मनियाँ ।
पीत पिछौरी, लाल लाग कटि, कसि किंकिन मनि तनियाँ ।।
बिहँसि कपोल बिलोल बिलोचन, नमित भौंह चल अनियाँ ।
सुखद सुखारबिंद अवलोकत, नाचत मोर नचनियाँ ।।

ऽ नवरग रागनि (च, छ) नवरंग गवन (ग), नवरंग रागनि (घ)
अनुमानित पाठ—नव राग-रागनि ।

अंग-अंग में छवि अति प्रगटत, कोटिक चंद किरनियाँ ।
राई नोंन उतारि, तोरि तृन, वारि पियहु किन पनियाँ ॥
चित-वित हरत, बेनु-धुनि करत, मैन हू पाँय लगनियाँ ।
'व्यास' कहै, को मानैं यह रस, जानैं जान मिलनियाँ ॥३७८॥

राग सारंग

मोहन-बन की सोभा स्याम ।
स्याम-हरित दुति तन महँ उपजति, सो छवि कवि अभिराम ॥
वदन चंद करि रजित दोऊ, मानहु सरदनि-जाम ।
भूषन उडगन दमकत, नील निचोल गगन सुखधाम ॥
अधर अरुन पल्लव† मनु सोभित, विहँसनि कुसुमनि वाम ।
श्रीफल-कुच काँपि सु कल फूले, लाजत मौरे आम ॥
चालि दृगंचल चंचल, खजन, मीन, मृगज, अलिजाम ।
कुंजनि कुहुक-कुहुक पिक कूजत, पियहिं वढ़ावत काम ॥
सकल अग घनस्याम वनहिं नव, पोषत सुरस ललाम ।
'व्यास' स्वामिनी कौ रस वैभव, गोपी-ग्वाल सुदाम ॥३७६॥

राग धनाश्री

मोहन माई राधिका कौ कत ।
विहरत बृंदावन-घन-वीथिन, वसन सु सदा वसत ॥
नव-निकुंज प्यारी सँग अँग-अँग, सुख पुंजनि वरसंत ।
प्रगट करत रस-रीति छवीलौ, प्रीतहिं नाहीं अत ॥
गनतु न काहू जोवन के वल, जनु हाथी मैमत ।
रूप-अनूप देखि जग भूल्यौ, मुदित जल थल जीव-जंत ।
वडभागी अनुरागी नागर, सुवर कुवँर भगवत ।
'व्यास' सहे उपहास स्याम, सौभागिन नेह जरत ॥३८०॥

१८. जोरी जू कौ सनेह--

राग गौरी

राधा-मोहन सहज सनेही ।
सहज रूप, गुन सहज लाडिले, एक प्रान द्वै देही ॥
सहज माधुरी अग-अग प्रति, सहज रची वन-गेही ।
'व्यास' सहज जोरी सो मन मेरे, सहज प्रीति कर लेही ॥३८१॥

---

† पल्लव सोभित [क, ग], पल्लव सुसोभित [च, छ]

राग कान्हरौ

एक प्रान द्वै देही, सहज सनेही, गोरे-साँवरे ।
प्रीत-रंग अँग-अंग रचे हो, ज्यौं हरदी-चूनौ मिलि अरु रचत आँवरे ॥
रूपरासि - गुन अधिक आगरे, राधा - मोहन नाँव रे ।
सुख - सागर झेलत, खेलत बरसाने नँदगाँव रे* ॥
वृंदावन - घन - कुंजनि में रति, पुलिन मनोहर ठाँव रे ।
मंद - हँसनि - छवि कोटि चंद - रवि, 'व्यास'हिं लागत झाँव रे ॥३८२॥

राग गौरी

मोहन मोहनी संग ।
सुख में, रस में, आनंद मे, गुन - गन मे, संपति अंग ॥
सहज-प्रीति, रस-रीति-वपु धर्यौ, रचे सहज रस-रंग ।
सहज विलास रास में, सहज माधुरी उरज - उतंग ॥
सहज वसन - भूषन में, सहज विनोद मोद अनुरंग ।
सहज सु राग-भोग मे, सहज सखी सेवत सुख अभंग ॥
सहज मृगज, मलयज, कुंकुम, कर्पूर सुगंध, लवंग ।
'व्यास'सहज विधु सरद बसत, विपिन व्रज वारि विहंग ॥३८३॥

सहज वृंदावन, सहज विहार ।
सहज स्याम-स्यामा दोऊ कामी, उपजत सहज विकार ॥
सहज कुंज रस - पुंजनि वरषत, सहज सेज-सुख सार ।
सहज सैन नैननि दै, सहज हँसनि, भ्रुवभंग सिंगार ॥
सहज उमँग भेंटत, दुख मेंटत, पीन पयोधर भार ।
सहज अधर मधु चुंबति, सहज सचिक्कन बगरे बार ॥
सहज गंड खंडित दरसित जनु, विकसे सुपक्व अनार ।
सहज सुरति विपरीत, सहज कुंजनि किये मार सुमार ॥
सहज 'व्यास' सहचरि झकझोरत, अचल चंचल हार ।
सहज माधुरी-सागर नागर, धन्य अनन्यनि के आधार ॥३८४॥

राग सोरठा

मेरौ स्याम सनेही गाइयै ।
वृंदावन कौ चंद्रमा, राधा - पति गति जो पाइयै ।
छैल छबीलौ भाँवतौ, नैननि ही माँझ दुराइयै ॥
निरधन कौ धनु स्यामलौ, भागिनि पायौ न दिखाइयै ।

---

* नंद गाँवरे (च); नंद गावरे (छ); गाँवरे (ज); गाउरे (ग)

अंग - अंग सब रंग भरयौ, मुख देखत ताप बुझाइयै ॥
जासों बिछुरन कबहूँ नहिं, ता हरि सों हित उपजाइयै ॥
सब सुखदाता जगतपिता के ह्वै‡, अनत न जाइयै ।
हरि सों प्रीति प्रतीति करी अब, मन मनसा न चलाइयै ॥
कौतिक अवधि विनोद की लीला - रस - सिंधु बढ़ाइयै ।
स्याम - सिंघ के सरन रहत, माया - हिरनी बिझुकाइयै ॥
तब सुख - संपति जानबी, जबै एक चित्त मन लाइयै ।
देखि बिहरत जुगल किसोर,'व्यास'तब दासिनि कौं सिर नाइयै ॥

राग मोतिला

मेरौ स्याम सनेही गाइयै। तातें बृंदावन रज पाइयै ॥
श्री राधा जाकी भाँवती, करि कुंजनि - कुंजनि केलि ।
तरुन तमालै अरुझी मानौं, लसत कनक की बेलि ॥
महा मोहनौ मोहियौ, रति - रास - बिलासनि लाल ।
कुच-कमलनि रस बस कियौ, लट बाँध्यौ मनहुँ मराल ॥
नैन - सैन - सर मनु बिंध्यौ हो, तनु बेध्यौ कल गान ।
अंजन - फंदनि कुँवर-कुरंग बँध्यौ, चलि भौंह - कमान ॥
नकबेसरि - बसी लग्यौ, छबि - जल चित चंचल मीन ।
गिधयौ अधर - सुधा दै, बदन - चकोर कियौ आधीन ॥
अंग - अंग रस - रंग में हो, मगन भये हरि नाह ।
'व्यास' स्वामिनी सुख-नदी, पिय-संगम-सिंधु प्रवाह ॥२८६॥

१६. गान रस— राग धनाश्री

जैसैं ही जैसैं ही गावै मेरौ प्रीतम, तैसैं ही तैसैं ही हौं मिलि चलौं ताहि ।
नीचैं लेत ऊँचै लैउँ सम नेम दोऊ, घोर मैंवथोर निषाद* निबाहि ॥
सुघर - राइ गुन - सागर नागर न थहायौ जाइ जाहि ।
'व्यास' की स्वामिनी मोहन सों वादु भयौ, विकट औघर† गाइ रिझाहि ॥

ताल मंदिर सुर सब ही पह‡ आवत, सोई-सोई वादिजे जु गावै थोरि ।
कठ सुकंठ रागरंग सचि काचिहिं मति,
सुघरु क्यों मानें साँची थोरि यै भली कोर ॥
जो तुम हीं पै ह्वै आवै प्रीतम, तौ दैहौं नव उरज अकोर ।
'व्यास' के प्रभु कहि घटि-बढ़ि आवत, रवकि भेटिहै जोवन-जोर ॥२८८॥

‡ के ह्वै (ग, च, छ), कों छाँडि (क), * मे व थोर निषाद (क), मै वहोर निषादहि (ग), † औवर (क,च,छ), औघट (ग), ‡ पह(च,छ,ग); यह(क),

राग षट

मृगनैनी पिकबैनी तू राधिका, विनती सुनि, नैंक गाउ री ।
पचमसुर आलापि, तासु हरि, पट - राग के पट तान सुनाउ री ॥
सरस विरस बुद्धि तोही यह पावत, याही ते लालच कीजतु तू गुनराउ री ।
'व्यास'की स्वामिनि, तेरे दरस-परस बिनु,मो अनुचर कहँ अनत न सहाउ री॥

लाल कों धीरज न रह्यौ, ललना के गावत ।
सुनत ही सुख लागै, बूझे तें भरमु भागै,
अनुराग गिरि पर्यौ बैनु बजावत ॥
रंग कौ रसरंग न भायौ, तान तरंगनि छायौ,
प्रिया बाहु बिच नाहु लगावत ।
'व्यास की स्वामिनि हियौ† पियहिं लगावति,
चेर्यौ कुँवर अधर - मधु प्यावत ॥३६०॥

राग कमोद

रसिक - सिरोमनि ललना - लाल मिले सुर गावत ।
मत्त मधुर विवि धुनि सुनि कोकिल कूजत‡, तन-मन-ताप बुझावत ॥
मोर मंडली नाँचति प्रमुदित, आनँद नैननि नीरु बहावत ।
मंद - मंद घनवृंद - गाज लजि, सीतल जल - सीकर बरसावत ॥
नाद-स्वाद मोहे गो, गिरि, तरु,खग,मृग, सर, सरिता सचुपावत ।
वृंदाविपिन - विनोदी राधा-रवन विनोद, 'व्यास' मन भावत ॥३६१॥

राग कमोद व सारंग

बहुत गुनी मैं देखे सुने री, सुधि न परै राधे तेरे गान की ।
मोहू कछू गर्व हुतौ री गुन कौ, हौं पचिहार्यौ,
समुझि न परै कछू तेरे तान की ॥
तू जानत, गति रेख नेम की,
ताल मदिर घोर सुर - बधान की ।
'व्यास' की स्वामिनि, तेरे गावत कछु,
सुधि न रही मेरे लोचन कान की ॥३६२॥

---

† यौ (क)

‡ मत्त मधुर विवि धुनि सुनि कोकिल कूजत (ग),
मत्त मधुर विवि धुनि सुनि कोकिल कूजित (च);
मत्त मधुर विवि धुनि सुनि कोकिल कूंजित (छ),
मद मधुर धुनि सुनि कोकिल पुत्र निलग्न (क),

राग कमोद व कान्हरौ

जोई भावै सोई क्यों जानैं री परत गाइवौ।
कोऊ अनी बानी गिररी लै, कोऊ औघर सुर बढ़ाइवौ ॥
कठिन है रंगमहल कौ रिझाइवौ, सहचरि कहाइवौ।
यह सब छवि तबही फबि आवै,
जब 'व्यास' स्वामिनी के चरन - कमल - मकरंद पाइवौ ॥३६३॥

राग कल्याण

गावत गोरी नैन चलावत।
सुघराई तन मुख सनमुख करि, बिहसि दसन चमकावत ॥
रीझत सुघर नव तरुनि नागरी, सुनि धुनि पिकहिं चुनावत।
तान बँधान तकहि तकि मारत, मोहन-मृगहिं गिरावत ॥
लेत उसास कठिन-कुच उकसत, स्यामहिं काम बढ़ावत।
'व्यास' स्वामिनी आतुर पिय कौं, रबकि कंठ लपटावत ॥३६४॥

राग गौरी

मेरे भाँवते की भाँवती।
जाति अहीरी आहि कुँवर सँग, सुघर अहीरी गावती ॥
रास - धरनि पर तरनिसुता-तट, अंग सुधग दिखावती।
नदत मृदग संग ललितादिक, करतल ताल बजावती ॥
रसिक-अनन्य न होते जो, बृषभान - घरनि नहिं जावती।
'व्यास' स्वामिनी बिनु बृंदावन, ब्रजगोपी न कहावती ॥३६५॥

राग गौरी

गोरी गायौ, सुनि स्याम रिझायौ।
लटक्यौ मुकुट,पीतपट झटक्यौ,चटक्यौरी, नासापुट सुदर,कर तें वैनु गिरायौ॥
नैननि असुवा गिरत स्रमित अति, कंपित जानि रवकि उर लायौ।
'व्यास' की स्वामिनि कुजमहल में, अधर - सुधा - रस प्यायौ ॥३६६॥

नागरो* नट नारायन गायौ।
तान - मान - बधान सप्त सुर, राग सों राग मिलायौ ॥
चरन घूँघरू, जत्र भुजन पर, नीकौ झमक जमायौ।
तत-थेई,तत-थेई लेत गति में गति, पति ब्रजराज रिझायौ ॥
सकल त्रियन में सहज चातुरी, अग सुधग दिखायौ।
'व्यास' स्वामिनी धन्य-धन्य राधा, रास में रंग मचायौ ॥३६७॥

---

* कीर्तन सग्रह, भाग१, पृष्ठ ३०६ से सकलित

२०. भोजन-विलास—

राग धनाश्री

आजु बनी कुंजनि ज्यौनार ।
जैंवत स्याम परोसति स्यामा, नखसिख अंग उदार ।।
सपरि स्वेद जल-गंडुक‡ कर गहि, धोइ कमलदल थार ।
अमित अरुन सुपक्व अधर, षट-रस मादिक आहार† ।।
दरस सुगंध सुस्वाद तहाँ पुट, रुचिकर मधुर सुखार ।
माँगि सबै सब लेत देत सुख, तन-मन स्वाद सुसार ।।
रोम-रोम आनंद सोमकुल, स्रवत सुधा मधु धार ।
सर्वसु देत न डर भयौ दातहिं, जाचक कीन सँभार ।।
लालच ही की लटी लोलता, चलत न लागी वार ।
ऐसें ही विविध विहार विलोकत, 'व्यासदास' बलिहार ।।३६८।।

राग आसावरी

बनी बन आजु की ज्यौनार ।
जैंवत राधामोहन अँग-सँग, उपजति कोटि विकार ।।
धूमकेतु मकरध्वज मानहु, जानि दुख-इंधन भार ।
सुरति सुदारि चिर कुंचित, आतुर तजि आचार ।।
संतत सद्य सुवास गातरस, मीठौ देत डकार ।
कुसुम-पत्र-पत्रावलि रचिकरि, नैन चषक सुखसार ।।
तृपित न भई, छुधा न गई, अँचवत अधरामृत-धार ।
'व्यास' स्वामिनी भोग भोगवत, हरि-गुन-सिंधु अपार ।।३६९।।

राग कान्हरौ व कमोद

मेरे माई, स्यामा-स्याम खिलौना ।
पलक ओट जिन होहु लाडिले, अनत करौ जिन गौना ।।
प्रीति-रीति-परतीति बढावत, मेलि परस्पर टौना ।
निसिदिन कुंजनि-कुंजनि विहरत, वृषभान-नंद के छौना ।।
हँसत बदन सुख-सदन छबीले, चितवत लोचन-कौना ।
चार भुजनि के बल आलिंगन, उरज होत नहिं* बौना ।।
दरस-परस, रस-भोजन करि कें, अधरामृत के लेत अचौना ।
बाइस 'व्यास' बिटारौ रति-सुख-जूठनि हू कौ दौना ।।४००।।

---

‡ गण्डूष (च, छ); गडूक (ग), कडूक (क),
† आधार (ग), * नहि (ग, च, छ); अति (क),

२१. आरती— राग धनाश्री

आरती कीजै जुगलकिसोर की ।
नखसिख अंग बलैया लीजै, साँझ-दुपहरी-भोर की ।।
भूषन-पट नागरि-नट अद्भुत, चितवनि चंचल कोर की ।
'व्यासदासि'छवि नैननि फबि रही, अंचल चंचल छोर की ।।४०१।।

२२. बलैया— राग गौरी

राधा जू के वदन की बलि जैहौं ।
कोटि मदन, बसंत रवि-ससि, करि न्यौछावर दैहौं ।।
हँसत दामिनि लसति दसननि, अधर बिंब रसाल ।
नासिका सुक मुक्त-फल छवि, तिलक मृगमद भाल ।।
लोल लट सुकपोल स्रवननि, खुभी† खुटिला चारु ।
अलक झलकत झलमली छबि, नील सिर पर सारु ।।
भृकुटि-भंग-तरंग उपजति, चिबुक स्यामल बिंदु ।
'व्यास' स्वामिनि नैन सैननि, बस किये गोबिंदु ।।४०२।।

राग जयतिश्री

मोहन-मुख की हौं लेउँ बलाइ ।
बोलत, चितवत, हँसत, लसत, छवि उपजत कोटिक भाइ ।।
भँवरन कौं सभ्रम करि भँवरिन, भैंटत अलकनि आइ।।
खेलत नैननि सौं खजन, भुव धनुषहिं रहैं डराइ ।।
दार्यौ दसन जानि सुक दाता, भँवरनि बँधि* अकुलाइ ।
अधर सुधाकर मानि चकोरी, दुख मैंटत सुख पाइ ।।
वाम कपोल विलोल कुटिल लट, उरज रही अरुझाइ ।
स्याम भुजंगिनि मनहु सुधा-घट, पीवत हू न अघाइ ।।
निरुपम कहू उपमा थोरी सब, मन में रही लजाइ ।
'व्यास' स्वामिनी विहसि मिली, हँसि चुँवनि दै पछिताइ ।।४०३।।

२३. वन-विहार— राग गौरी व गौड़मलार

देखौ माई, सोभा नागर-नट की ।
विहरत राधा के सँग निरखि, बिलखि कमला-रति सटकी ।।
सुरत स्रमित प्यारी प्रीतम के कंठ भुजा धरि लटकी ।
मनहु मेघमंडल में दामिनि, चंचलता तजि अटकी ।।

---

† पुभी (क), पुमी (ग, छ), * विधु (ग),

मोहन करजनि बीच सोभियत, सुंदरता कुच-घट की ।
मानहु कनक-कमल पर हंस, चरन धरि भँवरनि हटकी ।।
कुच गहि चुंबन करत, अधर खंडित हू कुंवरि न मटकी ।
मानहु निकट चकोर चोंच गहि चंद सुधा-मधु गटकी† ।।
गौर गंडस्थल मंडित स्याम - वदन गति नैक न ठटकी ।
मानहु नूत मंजरी के रस, अनत न कोइल भटकी ।।
देखत ही सुख कहत न आवै, क्रीडा वसीवट की ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि वरनत, कविनु लिलारी पटकी ।।४०४।।

राग गौरी

देखौ माई, सोभा नागर-नट की ।
मानौ चपल दामिनी, जामिनि मेह सनेहनि अटकी ।।
कुंज-सयन कमनीय किसोरी, राजति पिय उर लटकी ।
कोमल सुंदर पानि जुगल महँ छवि उपजत कुच-घट की ।।
जनु वारिज पर मधुकर जोरी, हंस बैर करि हटकी ।।
परिरंभन चुंबन करि, कर धरि, अधर-सुधा-मधु गटकी ।
मनो चकोर मिथुन-मधु पीवत, वन गति विधु संकट की ।।
लोचन सफल करत निजु दासी, अति आतुर नहिं लटकी ।
परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि, सरवस देत न मटकी ।।४०५।।

राग सारंग

समाइ रहे गातनि में गात ।
निकसत नहीं निकासे, प्यासे रस पीवत न अघात ।।
गौर-स्याम-छवि की उपमा कह, कोटिक कवि अकुलात ।
मधुर बैन सुनि सैननि‡ सोभा, सिंधु न सीप समात* ।।
वसीकरन आकरपन मोहन - मंत्र वरन लपटात ।
सहज रूप - लावन्य नदी महँ, गुन - नौका न समात ।।
कुंज - कुटीर तीर जमुना के, खेलत वीस विहात ।
'व्यास'विपिन वैभव सुनि सिर धुनि,कमलापति पछितात ।।४०६।।

---

† गटकी (च, छ); घटकी (ग),
‡ मैननि (क, ग); मैननि नैननि (च, छ);
* न सीप समात (क), न मात (ग, च, छ);

२१. आरती— राग धनाश्री

आरती कीजै जुगलकिसोर की ।
नखसिख अंग वलैया लीजै, साँझ-दुपहरी-भोर की ।।
भूषन-पट नागरि-नट अद्‌भुत, चितवनि चंचल कोर की ।
'व्यासदासि'छवि नैननि फवि रही, अंचल चचल छोर की ।।४०१।।

२२. बलैया— राग गौरी

राधा जू के बदन की बलि जैहौं ।
कोटि मदन, वसत रवि-ससि, करि न्यौछावर दैहौं ।।
हँसत दामिनि लसति दसननि, अधर बिंव रसाल ।
नासिका सुक मुक्त-फल छवि, तिलक मृगमद भाल ।।
लोल लट सुकपोल स्रवननि, खुभी† खुटिला चारु ।
अलक झलकत झलमली छवि, नील सिर पर सारु ।।
भृकुटि-भग-तरंग उपजति, चिबुक स्यामल विंदु ।
'व्यास' स्वामिनि नैन सैननि, वस किये गोविंदु ।।४०२।।

राग जयतिश्री

मोहन-मुख की हौं लेउँ वलाइ ।
वोलत, चितवत, हँसत, लसत, छवि उपजत कोटिक भाइ ।।
भँवरन कौं संभ्रम करि भँवरिन, भैंटत अलकनि आइ।।
खेलत नैननि सौं खजन, भुव धनुषहिं रहैं डराइ ।।
दार्‌यौ दसन जानि सुक दाता, भँवरनि बँधि* अकुलाइ ।
अधर सुधाकर मानि चकोरी, दुख मैंटत सुख पाइ ।।
वाम कपोल विलोल कुटिल लट, उरज रही अरुझाइ ।
स्याम भुजंगिनि मनहु सुधा-घट, पीवत हू न अघाइ ।।
निरुपम कह उपमा थोरी सव, मन में रही लजाइ ।
'व्यास' स्वामिनी बिहसि मिली, हँसि चुँबनि दै पछिताइ ।।४०३।।

२३. बन-विहार— राग गौरी व गौड़मलार

देखौ माई, सोभा नागर-नट की ।
विहरत राधा के सँग निरखि, विलखि कमला-रति सटकी ।।
सुरत स्रमित प्यारी प्रीतम के कंठ भुजा धरि लटकी ।
मनहु मेघमडल मे दामिनि, चचलता तजि अटकी ।।

---

† पुभी (क), पुमी (ग, छ), * विधु (ग);

कहहु कृपा करि कैसैं आये, बहुत सही सुख - हानि ।
मद अंतिका मषी जावक रँग, कहाँ रँगाये पानि ॥
जानति हौं पर धन रस - लंपट, कपट सम्हारी थानि ।
कैतव कपट तजत नहिं कबहूँ, 'व्यास' वृथा पहिचानि ॥४११॥

राग सारंग

आजु पिय काके हाथ बिकाने ।
ताही कौ भाग सुहाग छबीलौ, जाके उर लपटाने ॥
सुरत रंग की अंगनि उपमा दुरति न, बनति बखाने ।
उर नख-रेख अंग सोहत, मानौ ससि-गन गगन समाने ॥
पीक-लीक नैननि फिरि आई, सोभित पल अलसाने ।
मानौ अरुन पाट के फंदनि, द्वै खंजनि अरुझाने ॥
पीक अधर अंजन रस राचे, परत नहीं पहिचाने ।
मानौ सरद - ससि निसि के प्रात, सुधाकन वारि निधाने ॥
बसन रँगमगे†, केस रँगीले, बिगलित स्वेद चुचाने ।
मानहुँ भूमि - पपीहा कारन, घूमि घटा‡ घहराने ॥
गडनि मनि - ताटंक अंक जनु, रथ चकपैया वाने ।
वाहनि कुंडल-मकर थके जनु, मनसिज कियौ पयाने ॥
सनमुख पाँइ न परत इतै धर, कुँवर कहा अकुलाने ।
लै धन चले चोर ज्यौं भोरहिं, कुसमैहिं§ देखि डराने ॥
उघरि गई मुलमा की बाजी, स्याम कपट मन आने ।
करत कितव की आस 'व्यास', सुनि बहुत लोग पछिताने ॥४१२॥

२६. चरण-स्पर्श-रस — राग नट

बसीठी सैननि ही जोरी ।
रूठेहूँ न तजी चंचलता, लानत चित-वित चोरी ॥
कुंचित नासा, लोल कपोलनि, मोहति मन मुख मोरी ।
अंग-अंग प्रति रति-रस लालच, साहस चिबुक टटोरी ॥
काम-कनक-सिंहासन तरलित, सिथिल बसन कटि डोरी ।
काँपत कुच,कर,जघन,अधर, उर, स्रमजल पुलक न थोरी ॥
नैननि राची, भौंहनि बिरची, हँसि पिय कुँवरि निहोरी ।
कैतव गुरु गोपाल 'व्यास' प्रभु, चरन गहे, लट छोरी ॥४१३॥

---

† रंगमगे (च, छ), रंग में (क);
‡ कारन घूमि घटा (च, छ); कानन रस घन घुम (-)
§ कुसमैहि (च, छ); परगमहि (क)

२४. रसावेश—

राग कल्याण

चपल चकोर-लोचन मेरे तरसत, देख्यौ री चाहत वदन-मयंकहिं ।
घूघट-पट महँ कतहिं दुरावति, कृपन दुरत ज्यों देखत रंकहिं ॥
तो बिनु मोकों ठौर न और कहुँ,इतनौ भरोसौ करि अब जिनि संकहिं ।
बिहँसि लगी पिय के हिय राधा, 'व्यास'की स्वामिनी हठ मेटति कलकहिं॥

निरखि मुख सुख पावत मेरे नैन ।
स्रवन सिरात गात उमगत सब, सुनत छबीले बैन ॥
बिहसनि बंक बिलोकनि† भौहैं, धनुष तें चलै सर-सैन ।
रोम-रोम गति सोम बिराजति, कोटि - कोटि रति-मैन ॥
महा माधुरी सिंधु समात न, अंग साँकरे ऐन ।
श्री'व्यास' स्वामिनी की अदभुत छवि कवि पहँ कहत बनै न ॥४०८॥

राग कान्हरौ

नैन सिराने री प्यारी देखत मुख ।
सुनि राधा, बाधा न रही अब, तैं कीनौ मो पर रुख ॥
स्रवन सीतल भये वचननि सुनि, सुनत गये दारुन दुख ।
'व्यास' की स्वामिनि सों मिलि बिहरत,नख-सिख भयौ री परमसुख

२५. प्रियाजी के व्यंग वचन—

राग देवगधार

अब मैं जाने हौ जू ललन$, ताही पै सिधारियै जहाँ नवौ* नेहरा ।
मुख को हला - भला यों मोहो सों करन आये,
जिय की और सों, तुम बिन सूनौ है जू वाकौ गेहरा ॥
निसि के चिह्न प्रगट देखियत अंग प्रति अंग,
काहे कों दुराव करत नख - रेख लागे देहरा ।
'व्यास' के स्वामी स्याम बेगि पाँय धारियै,
नातर भीजैगौ पीरौ पट, आवत है जू मेहरा ॥४१०॥

राग देवगधार

आजु पिय पाये मैं जानि ।
कहत वचन वृषभानकिसोरी, तुम्हरी कहाँ लगि कीजै कानि ॥
सूचत सुरत - प्रसग सकल अँग, कतहिं दिखाये आनि ।
अधरनि - अंजन, नयन पीक-रस, उर नख - रेख सुवानि ॥

---

† बिलोकनि (ग, च) बिलोकनी (क) बिलकनि (छ)
$ ललन (च, छ) ललना (क, ग) * नयौ (क), नवौ (ग, च, छ)

कहहु कृपा करि कैसैं आये, बहुत सही सुख - हानि ।
मद अतिका मपी जावक रँग, कहाँ रँगाये पानि ॥
जानति हौं पर धन रस - लंपट, कपट सम्हारी थानि ।
कैतव कपट तजत नहिं कबहूँ, 'व्यास' वृथा पहिचानि ॥४११॥

राग सारंग

आजु पिय काके हाथ विकाने ।
ताही कौ भाग सुहाग छबीलौ, जाके उर लपटाने ॥
सुरत रंग की अंगनि उपमा दुरति न, बनति बखाने ।
उर नख-रेख अंग सोहत, मानौ ससि-गन गगन समाने ॥
पीक-लीक नैननि फिरि आई, सोभित पल अलसाने ।
मानौ अरुन पाट के फंदनि, द्वै खंजनि अरुझाने ॥
पीक अधर अंजन रस राचे, परत नहीं पहिचाने ।
मानौ सरद - ससि निसि के प्रात, सुधाकन बारि निधाने ॥
बसन रँगमगे†, केस रँगीले, बिगलित स्वेद चुचाने ।
मानहुँ भूमि - पपीहा कारन, घूमि घटा‡ घहराने ॥
गडनि मनि - ताटंक अक जनु, रथ चकपैया बाने ।
वाहनि कुंडल-मकर थके जनु, मनसिज कियौ पयाने ॥
सनमुख पाँइ न परत इतै धर, कुँवर कहा अकुलाने ।
लै धन चलै चोर ज्यों भोरहिं, कुसमैहिं§ देखि डराने ॥
उघरि गई मुलमा की बाजी, स्याम कपट मन आने ।
करत कितव की आस 'व्यास', सुनि बहुत लोग पछिताने ॥४१२॥

२६. चरण-स्पर्श-रस— राग नट

बसीठी सैननि ही जोरी ।
रूठेहूँ न तजी चंचलता, जानत चित-वित चोरी ॥
कुंचित नासा, लोल कपोलनि, मोहति मन मुख मोरी ।
अंग-अंग प्रति रति-रस लालच, साहस चिबुक टटोरी ॥
काम-कनक-सिंहासन तरलित, सिथिल बसन कटि डोरी ।
कंपित कुच,कर,जघन,अधर, उर.स्रमजल पुलक न थोरी ॥
नैननि राची, भौंहनि बिरची, हँसि पिय कुँवरि निहोरी ।
कैतव गुरु गोपाल 'व्यास' प्रभु, चरन गहे, लट छोरी ॥४१३॥

---

† रंगमगे (च, छ), रंग मे (प);
‡ फागन घूमि घटा (च, छ); फानन रस घन घुन (–)
§ धुनमैहि (च, छ); पम्मांहि (क)

२४. रसावेश—

राग कल्याण

चपल चकोर-लोचन मेरे तरसत, देख्यौ री चाहत वदन-मयंकहिं ।
घूघट-पट महँ कतहिं दुरावति, कृपन दुरत ज्यों देखत रंकहिं ।।
तो बिनु मोकों ठौर न और कहुँ,इतनौ भरोसौ करि अब जिनि सकहिं ।
बिहँसि लगी पिय के हिय राधा, 'व्यास'की स्वामिनी हठ मेटति कलंकहिं।।

´ निरखि मुख सुख पावत मेरे नैन ।
स्रवन सिरात गात उमगत सब, सुनत छबीले बैन ।।
विहसनि बंक बिलोकनि† भौहैं, धनुष तें चलै सर-सैन ।
रोम-रोम गति सोम बिराजति, कोटि - कोटि रति-मैन ।।
महा माधुरी सिंधु समात न, अंग साँकरे ऐन ।
श्री'व्यास' स्वामिनी की अद्भुत छवि कवि पहँ कहत बनै न ।।४०८।।

राग कान्हरौ

नैन सिराने री प्यारी देखत मुख ।
सुनि राधा, बाधा न रही अब, तैं कीनौ मो पर रुख ।।
स्रवन सीतल भये वचननि सुनि, सुनत गये दारुन दुख ।
'व्यास' की स्वामिनि सों मिलि विहरत,नख-सिख भयौ री परमसुख

२५. प्रियाजी के व्यंग वचन—

राग देवगधार

अब मैं जाने हौ जू ललन$, ताही पै सिधारियै जहाँ नवौ* नेहरा ।
मुख को हला - भला यों मोहो सों करन आये,
जिय की और सों, तुम बिन सूनौ है जू वाकौ गेहरा ।।
निसि के चिह्न प्रगट देखियत अंग प्रति अंग,
काहे कों दुराव करत नख - रेख लागे देहरा ।
'व्यास' के स्वामी स्याम बेगि पाँय धारियै,
नातर भीजैगौ पीरौ पट, आवत है जू मेहरा ।।४१०।।

राग देवगधार

आजु पिय पाये मैं जानि ।
कहत वचन वृषभानकिसोरी, तुम्हरी कहाँ लगि कीजै कानि ।।
सूचत सुरत - प्रसंग सकल अंग, कतहिं दिखाये आनि ।
अधरनि - अंजन, नयन पीक-रस, उर नख - रेख सुवानि ।।

---

† बिलोकनि (ग, च) बिलोकनी (क) बिलकनि (छ)

$ ललन (च, छ) ललना (क, ग) * नयौ (क), नवौ (ग, च, छ)

कहहु कृपा करि कैसैं आये, वहुत सही सुख - हानि ।
मद अंतिका मषी जावक रँग, कहाँ रँगाये पानि ॥
जानति हौं पर धन रस - लंपट, कपट सम्हारी थानि ।
कैतव कपट तजत नहिं कबहूँ, 'व्यास' बृथा पहिचानि ॥४११॥

राग सारंग

आजु पिय काके हाथ विकाने ।
ताही कौ भाग सुहाग छबीलौ, जाके उर लपटाने ॥
सुरत रंग की अंगनि उपमा दुरति न, वनति वखाने ।
उर नख-रेख अंग सोहत, मानौ ससि-गन गगन समाने ॥
पीक-लीक नैननि फिरि आई, सोभित पल अलसाने ।
मानौ अरुन पाट के फंदनि, द्वै खंजनि अरुझाने ॥
पीक अधर अंजन रस राचे, परत नहीं पहिचाने ।
मानौ सरद - ससि निसि के प्रात, सुधाकन वारि निधाने ॥
वसन रँगमगे†, केस रँगीले, विगलित स्वेद चुचाने ।
मानहुँ भूमि - पपीहा कारन, घूमि घटा‡ घहराने ॥
गडनि मनि - ताटंक अक जनु, रथ चकपैया वाने ।
वाहनि कुंडल-मकर थके जनु, मनसिज कियौ पयाने ॥
सनमुख पॉइ न परत इतै धर, कुँवर कहा अकुलाने ।
लै धन चलै चोर ज्यों भोरहिं, कुसमैहिं$ देखि डराने ॥
उघरि गई मुलमा की वाजी, स्याम कपट मन आने ।
करत कितव की आस 'व्यास', सुनि वहुत लोग पछिताने ॥४१२॥

२६. चरण-स्पर्श-रस— राग नट

वसीठी सैननि ही जोरी ।
रूठेहूँ न तजी चंचलता, जानत चित-वित चोरी ॥
कुंचित नासा, लोल कपोलनि, मोहति मन मुख मोरी ।
अंग-अंग प्रति रति-रस लालच, साहस चिबुक टटोरी ॥
काम-कनक-सिंहासन तरलित, सिथिल वसन कटि डोरी ।
कंपित कुच,कर,जघन,अधर, उर. स्रमजल पुलक न-थोरी ॥
नैननि राची, भौंहनि विरची, हँसि पिय कुँवरि निहोरी ।
कैतव गुरु गोपाल 'व्यास' प्रभु, चरन गहे, लट छोरी ॥४१३॥

† रंगमगे (च, छ), रंग में (क),
‡ कारन घूमि घटा (च, छ); कानन रस घन धुव (क)
$ कुसमैहि (च, छ), पसमहि (क) ·

राग गौरी

छलबल छैल छुवत कत पाइ ।
अपनौ काजु सँवारि, और कौ काज बिगारत आइ ।।
सटपटात लपटात कपट, दुख देत सुखहिं दिखराइ ।
जामहिं जाइ दुरावत सोई, चोरी देत बताइ ।।
मानहु कीर चतुरई तुव तन, कहत महा पछिताइ ।
पोष्यौ भरयौ कहूँ हु कैतव, कहूँ लगाये घाइ ।।
नैन पिसुनता करत सैन दै, बरजत तुम अकुलाइ ।
कुटिल सग भ्रू-भंग रग सुख, कहत रहै मुसक्याइ ।।
घर कौ चोर बिकारी सों कछु काहू कौ न बसाइ ।
'व्यास' स्वामिनी विहसत, मोहन कंठ रहे लपटाइ ।।४१४।।

राग गौरी व कल्याण

नटनागर कौ औसरु देखत, रसिक-सिरोमनि रीझि रह्यौ ।
सरस बजावत नाँचत गावत, अंग दिखावत रंग रह्यौ ।।
राग - तान - बंधान मिलि, देसी सुधंग न परत कह्यौ ।
जो कछु गुन की मन महँ उपजी, सो नखसिख तर लै निबह्यौ ।।
मोहत धुनि सों लाज छाँडि पुनि, कौतुक देखत जग उमह्यौ ।
'व्यास' स्वामिनिहिं रीझि लट्ट ह्वै, हारि मानि पिय चरन गह्यौ।।४१५।।

राग केदारौ व बिभास

चाँपत चरन मोहनलाल ।
प्रजंक पौढ़ी कुँवरि राधा, नागरी नव बाल ।।
लेत कर धरि परसि नैननि, हरषि लावत भाल ।
लाइ राखत हृदै सों, तब गनत भाग बिसाल ।।
देखि पिय की अधीनता भई, कृपासिंधु दयाल ।
'व्यास' स्वामिनि लिये भुज भरि, अति प्रवीन कृपाल ।।४१६।।

२७. बतरस—

राग आसावरी (मूलताल)

मोहनी कहत मोहन सों बात ।
कोमल मधुर मनोहर धुनि सुनि, पिय के स्रवन सिरात ।।
सरस अधर-मधु मादक बरषत, रसिक कुँवर पीवत न अघात।
जनु अलि - लंपट के मुख मेलत, मकरंदहिं जलजात ।।

दंपति की छवि निरखि दामिनी, दारयौ, कुंद लजात ।
मानौ कोकनद माँझ किरनिका केसर तृषित* बसात ॥
नैननि नैन मिलत सैननि दै, मंद - मंद मुसिक्यात ।
जनु खंजन खेलत प्रतिबिंबनि, जल में चंचल गात ॥
रसना एक अनेक रूप - गुन, बरनत कवि अकुलात ।
कोटिक 'व्यास' करत हू बुधि बल, सरवा सिंधु न मात ॥४१७॥

राग कान्हरौ

जो तू राधा, मन-क्रम-बचन परम हितु मो पर ,
करि आई,तौ बलि§ बलि बलि कुमया नहिं कीजै ।
नैंकु सुदृष्टि कै मो तन जो चितवौ तौ ,
अपनौ जीवन जनम सुफल करि लीजै ॥
तेरे रूप-रंग-रस चितु चहुँट्यौ, तो सी कौन जाहि मन दीजै ।
तो सी तुही तातें 'व्यास' की स्वामिनि,कंठ लागि अधरामृत पीजै ॥४१८॥

राग सारंग

तन-मन-धन न्यौछावरि ताहि हौं दैहौं ,
जो मोसों कहै वेगि राधा है आवत ।
ताही कौ हौं सदा सेवक हौं, जोई प्यारिहिं रूसियै छलबल कै मनावत ॥
और सब भली सखी सहेली, हित - चित करि तेरे जिय भावत ।
पुजवत मेरी आस 'व्यास' दासी, चौंप लागैं मोहि तोहि मिलावत ॥४१९॥

राग कमोद

सुन सुंदरि, इक बात कहत हौं ।
मेरी‡ गति - मति तुही, कृपा तेरी चाहन मैं चहत हौं ॥
सर्वोपरि मेरौई भाग, जु तेरे संग रहत हौं ।
तू जु मोहिं अपनौं करि जानत, हौं पुनि इतौ लहत हौं ॥
मेरे छमि अपराध जु बरसौ, करजनि उरज गहत हौं ।
खंडत तेरे अधर मधुर धरि, हौं अति पीर सहत हौं ॥
निर्दय बहुरि भेंट तोही हौं, दुखसागर न थहत हौं ।
'व्यास' स्वामिनी अंग संग के, रगहिं लै निबहत हौं ॥४२०॥

---

* कोकनद मॉझ करन का के सर ताम (क), कोक नंद माझ कठिन का केसर तृसत (ग); कोक नद मॉझ किरनिका केसर तृषित (च, छ);

§ बेनि (ग);

‡ मेरी (क); तेरी (ग, च, छ);

राग धनाश्री

तब मेरे नैन सिरात किसोरी, जब तेरे नैन निहारौं ।
कोटि काम-रति, कोटि चंद, वदनारबिंद पर वारौं ।।
तव मुख-सुख जब तेरे प्यारी, पावन नाम उचारौं ।
हाथ सनाथ होत, जब तेरे अंग सुधंग‡ सिंगारौं ।।
स्रवन स्रवन तब ही, जब तेरे गुन-गन सुनत उधारौ ।
तव रसना रसमय, जब तेरे अधर-सुधाहिं न हारौं ।।
उर कौ जुर डर जात न तब, जब भुजन बीच तें टारौ ।
तब बुधि-मन-चित मेरौ हित, जब रूप अनूप विचारौ ।।
तब मम मोर-मुकट साँचौ, सब सेजमहल रज झारौं ।
तव बंसी-धुनि जगत प्रसंसी, जब तुव गुननि§उचारौं ।।
तू भूषन धन जीवन मेरैं, यह ब्रत मन प्रतिपारौं ।
'व्यास' स्वामिनी के तन-मन पर, राई-लौन उतारौं ।।४२१।।

राग देवगधार

कुँवरि, छबीली तेरी बतियाँ ।
सुनत सिरात स्रवन, मन आनँद, सुख पावत अति छतियाँ ।।
बिहँसत नयन, कपोल, अधर, भ्रुव, उपजावत गुन-गतियाँ ।
अँग-अँग फूल निरख नकबेसर, उर लटकति लटपतियाँ ।।
गावत लेत उसास उरज उमगत, मारति करि घतियाँ ।
'व्यास' स्वामिनी मेरौ सरबसु, लूटि लेत निज थतियाँ ।।४२२।।

राग गौरी

कहत दोऊ मिलि मीठी बातैं ।
मन-मन बिहँसत, नैन नचावत, अधर-सुधा मधु मातैं ।।
अनतहिं चितु,चितवत दोऊ अनतहिं,लखत न कोऊ घातैं ।
कछु वे गहत, कहत कछु वे, दोऊ खात न पेट समातैं ।।
तन-मन मिलि अरुझे, जनु कोटिक चंद अमाउस रातैं ।
गौरस्याम सागर मिलि बाढ़यौ,'व्यास'अंगनि रंग चुचातैं ।।४२३।।

राग गधार

रूप तेरौ री, मोपै बरन्यौ न जाइ ।
रोम-रोम जो रसना पावौं, तौ गाऊँ तेरौ गुन अघाइ ।।
कोटि जतन जो कीजै, कैसैं हू सरवा सिंधु न माइ ।
कैसैं 'व्यास' रंक की वसनो, लक-सुमेरु जराइ ।।४२४।।

---

‡ सुधग (क), सुम ग (ग), सुमंग (च, छ)

§ तुव गुननि उचारौं (क), तव जसु न बिसारौं (ग), तव जस न बिसारौं (च,छ),

२८. स्तुति-रस— राग सारंग व देवगंधार

सुनि राधे, तेरे अंगनि पर सुंदरता न बची ।
लोक चतुर्दस नीरस लागत, तैं रस - रासि सची ।।
पद-नख की छवि निरखि,बिलखि रति, कमला आइ लची ।
तो कारन सुत - पति - गृह सब तजि, गोपी रास नची ।।
किसलय दल, कुसमनि की सैया, कौतिक अवधि रची ।
सहज माधुरी रोमनि बरषत, रति - रन - कीच मची ।।
तो सी नार, न पुरुष स्याम सौ, विधि बेकाज पची ।
'व्यास' सुमेरु कोटि की पटतरि, क्यों पावै घुँघची ।।४२५।।

राग बसंत

सुंदरता की रासि नागरी, देखत नैन सिरात ।
अगनि कोटि अनग वारियतु, विहँसि कहत जब बात ।।
कोटि कल्प कोऊ जो जीवै, रसना कोटिक जात ।
निरुपम नख की छवि उपमा कहँ*,कोटिक कवि अकुलात ।।
लोक चतुर्दस की वरु तरुनी - तरुन, सुनत बलिजात ।
नयन - स्रवन - उर - अयन सांकरे,सोभा - सिंधु न मात ।।
बड़भागी अनुरागी मोहन, हिलत मिलत न अघात ।
धन्य 'व्यास' की ठकुराइनि, राधा कहि स्याम सकात ।।

राग बिहागरौ

मुख-छवि देखत नैन लचे ।
मान कृत अपमान बिसरे, पलक प्रेम नचे ।।
अधर, दसन, कपोल, भौंहनि, रूपसिंधु सचे ।
मनहुँ मुक्ता - लाल - कंचन - इन्द्रनील - खचे ।।
लोल लोचन सैन सर पै, मैन ओल बचे ।
अलक झलकनि नासिकामनि, हँसनि रंग रचे ।।
भोर जुगलकिसोर, जोवन - जोर तमकि तचे ।
'व्यासदास'हिं रंगरासहिं देत मार मचे ।।४२७।।

राग देवगधार

रूप - गुन - सुख कौ रस राधिका पायौ,
सुजस और त्रियनि कों छोई आग ।
अति करुनाकरि पिय हित कारनि,
कुच-वटि भरि राख्यौ प्रेम ही कौ पाग ।।

---

* कहँ (च, छ), कहं (ग); कहि (क);

छिन - छिन भोग करत, काम-रोग नासै,
याही तें न कह्यौ परै‡‡ मोहन जू कौ भाग ।
रोम-रोम प्रति 'व्यास'हिं कोटिक रसना होंय,
तौ न बरन्यौ परै§ प्यारी कौ सुहाग ॥४२८॥

राधिका सम नागरी प्रवीन को नवीन सखी,
रूप - गुन - सुहाग - भाग आगरी न नारि ।
वरुन-नागलोक*, भूमि, देवलोक की कुमारि,
प्यारी जू के रोम ऊपर डारौं सब वारि ॥
आनँदकंद नंदनंदन जाके रस रंग रच्यौ,
अंग वर सुधग नच्यौ मानत हँस हारि ।
ताके बल गर्व भरे रसिक 'व्यास' से न डरे,
लोक - वेद, कर्म - धर्म छाँडि मुकुति† चारि ॥४२६॥

राग गौड़मलार

बनै न कहत राधा कौ रूप ।
बिहँसि बिलोकि बिमोह्यौ मोहन, बृंदावन कौ भूप ॥
अंगनि कोटि अनंग सोमकुल, एक अंग कौ कूप ।
नख - सिख भोग भोगवत नागर, अधर-सुधा-रस तूप ॥
लेत उसास वास मुख महकत, मनहुँ अगर कौ धूप ।
मानहुँ चंपे कौ बन फूल्यौ, गोरौ गात अनूप ॥
वाम पयोधर राजत मानहुँ, सुरत-जग्य कौ जूप ।
'व्यास' स्वामिनी सों विहरत ही, मोहन लगत सरूप ॥४३०॥

राग कल्याण

गुन-रूप की अवधि राधिका, तैं रसिक‡ राइ सिरोमनि बस कियौ ।
तन - मन - धन - जोवन भूपन, प्रानप्यारे कैं और न बियौ ॥
बोलत हँसत मिलत चितवत ही, मोहन कौ चित चोरि लियौ ।
नवनिकुंज बृंदावन विहरत, सीतल करत 'व्यास' कौ हियौ ॥४३१॥

---

‡‡ परै (च, छ), मेरे (क),　　§ परै (च, छ), परयौ (क),

* नागलोक (च, छ); नागश्रोक (क),　　† मुकुति (च, छ), मुक्ति (क),

‡ रसिक (क), परवसी (ग, च, छ),

राग कमोद

कुंज-कुंज प्रति रति बृंदावन, द्रुम-द्रुम प्रति रति-रंग ।
बेलि-बेलि प्रति केलि, फूल प्रति, फल प्रति बिमल बिहंग ।।
कंठ-कंठ प्रति राग-रागिनी, सुर प्रति तान-तरंग ।
गौर-स्याम प्रति, स्याम-बाम प्रति, अँग-अँग सरस सुधंग ।।
मुख प्रति मंद हास, नैनन प्रति सैन, भौंह प्रति भंग ।
रास-बिलास पुलिन प्रति, नागर नागरि प्रति कुल संग ।।
रूप-रूप प्रति गुन-सागर, सहचरि प्रति ताल-मृदंग ।
अधरनि प्रति मधु, गंडनि प्रति बिधु, उर प्रति उरज उतंग ।।
कहत न आवै सुख, देखत मुख मोहे कोटि अनंग ।
'व्यास' स्वामिनी राधहिं सेवत, स्याम धरै बहु अंग ।।४३२।।

राग देवगधार

सर्वोपरि स्याम की दुलिहिनि बहू ।
श्री वृषभानु भूप की बेटी, नंदराइ की पुतबहू ।।
बृंदावन-मंदिर की देवी, सुख-रति तरत सरद हू ।
रूप-अवधि गुन की निधि राधा, चरन-कमल-सरनैं रहू ।।
रसिक अनन्य धर्म आराधन, साधन की धारा गहू ।
केलि रँगीली बेलि, उरज फल, गंड-अधर मेवा महू ।।
अंग-अंग सत रंग भोगिया, भोग-भवन भामिनि सहू ।
वन अनुपम मनि मन जु सुरासुर-पद कौ 'व्यास' उपानहू ।।४३३।।

राग कल्याण

गौर अंग रंग भरी, दुसह बिरह-सिंधु तरी,
सुख गिरवर सर सुंदर स्याम-वंदिनी ।
प्रानरवन वदन-कमल, नयन-कुमुद मुदित करन,
हास-रस-बिलास सरद*-सूर-चंदिनी ।।
मोहन-मन चपल मीन, खंजरीट सरन† (‡),
रोमावलि नील छवि कालिंद-नंदिनी ।

---

* सरद (ग) सरस (क) † सरन (ग,छ); सरस (क)

‡ (क) प्रति में संकेत किया गया है कि लिपिकार को किसी विवशता से इस स्थल पर कुछ छोड़ना पड़ा है । तीन मात्रा का शब्द यथा 'दीन' आदि छंद की गति के अनुसार उपयुक्त बैठता है । अन्य किसी लिखित प्रति में यह पदांश मिले तो पाठक सूचित करने की कृपा करें ।

—संपादक

नव-नव निज बृंदावन, सुरत - पुंज कुंज-रवन,
प्रानवल्लभा करेनु दुख - निकदिनी ॥
नागर वर कर मराल मधुप जीव जीवका,
पीन तुंग उरज, जलज सुदृढ़ फदिनी ।
कृष्न - राधिका - प्रताप, सुनत दूरि होत ताप,
नेति-नेति वदति 'व्यास' निगम - छंदिनी ॥४३४॥

राग सारंग

बनी राधा-मोहन की जोरी ।
नील - पीत- पट भूपन - भूपित, गौर - स्याम तन गोरी ॥
दुख - मोचन चल लोचन चारौ चितै, करत चितचोरी ।
वंक निसक चपल भ्रुवभग, अनग नचावत होरी ॥
नाँचत अंग सुधंग किसोरहिं, सिखवत कुंवरिकिसोरी ।
गावत पियहिं रिझावति नागरि, सुखसागर मे बोरी ॥
नव - निकुंज कमनीय कुसुम - सयनीय सुरंग चँभोरी ।
विहरत 'व्यास' स्वामिनी की उपमा कहुँ भामिनि कोरी ॥४३५॥

राग देवगधार

राधाहीं आधीन किसोर
गौर अग के रग - सिंधु कौ, पावत नाहिंन हरि आदि - ओर ॥
महामाधुरी अधर-सुधा-विधु पियत, जियत उर चामुये कोर ।
मेघ सुदेस केसकुल देखत, नाँचत गावत मोहन - मोर ॥
मानसरोवर ऊपर निवसतु, लाल-मराल कमल - कुच कोर ।
स्वेद - सलिल - सरिता महँ विहरत, मीन मनोहर चचल चोर ॥
वरपत मेह सनेह बूँद चुनि, हरि - चातिक मधु जोबन-जोर ।
'व्यास' वैस - वस लूटत दोऊ, छूटत नाहिंन जानत भोर ॥४३६॥

२९. सखी की बिकानि—

राग कमोद

गौर - स्याम सुंदर मुख देखत मेरे नैन ठगे ।
मानहुँ चदकिरन - मधु पीवत, राति चकोर जगे ॥
सरद - कमल - मकरंद - स्वाद - रस, जनु अलिराज खगे ।
निरखत हास - विलास - मधुरता, लालच पल न लगे ॥
चचल चारु दृगचल चितवत, प्रेम - पराग पगे ।
भृकुटि, कुटिल कच, तरल तिलक, चितवत अँसुवा उमगे ॥
नासाभरनि, हँसनि दामिनि - छवि, दसन - फूल सुभगे ।
नखसिग अग निहारत, आरज - पथ ते 'व्यास' डगे ॥४३७॥

३०. उत्थापन समय —

राग सारंग

चलहि तू भेद की माई चाल।
गावत मनि - मंजीर बजावत, मिलवत गति झपताल ॥
झलकत अलक, छबीली भौंहैं, चंचल नैन बिसाल।
मानहुँ बधिक हरनि बिडरे खजन, मीन, मधुप, मृगमाल ॥
पीन गगन कुच उन्नत देखत, पग डगमगत रसाल।
मानहुँ फँदन के संभ्रम, मग तजत गयंद, मराल ॥
मंद हँसनि घूँघट में सोभित, उर लटकत लटजाल।
'व्यास' स्वामिनी तो तन देखत, स्याम भयौ बेहाल ॥४३८॥

राग पट

छूटी लट न सम्हारति गोरी, अंचल ढारैं आवति।
घूमत नैन, बैन तुतराने, लटकति अंग नचावति ॥
स्याम-अस भुज धरैं करे बस, हँसनि भौंह मटकावति।
सावधान परबसी यही रस, रीझि अधर - मधु प्यावति ॥
कबहुँक रति विपरीत मीत पर, सुख - वारिद बरषावति।
इहिं विधि विहरत संतत देखत 'व्यासदासि' सुख पावति ॥४३९॥

राग भूपाली

आवत सखि, चंदा साथ अँध्यारी।
घन-दामिनि चकोर - चातिक मिलि, मोरति राका प्यारी।
गज, मराल, केहरि, कदली, सर, बक, चकवा, सुक, सारी ॥
खंजन, मीन, मकर, कच्छप, मृग, मधुप, भुजंगिनि कारी।
कमल-मृनाल, लाल, मनि, मुक्ता, हीरा सरसु पवारी ॥
'व्यास' स्वामिनी की सुख - सपति लूटत कुंजविहारी ॥४४०॥

राग कमोद

उनीदे नैननि रसु।
सुरत - रंग रँगमगे लोल, डोल कछुक आलसु ॥
सिथिल पलक अलक झलक, झलमलात किरीट पसु।
कमल में अलि अरुझे, जनु प्रात करत गवन सहसु ॥
गर्व इतरात अति, गावत गति रन - जय - जसु।
स्याम - स्वामिनी स्याम - छवि 'व्यास' रसिक सरबसु ॥४४१॥

राग सारंग

सुरत-रँग राचे ललित कपोल ।
मधुर-मधुर कर रग नागरहिं, छवि न फवति गति गोल ॥
अधर दसन - नख अंक, पीक-रस, पकिल करत कलोल ।
अलक पलक प्रतिबिंबित, झलकत मनि-ताटक बिलोल ॥
विहँसत लसत वसत पिय नैननि, माँगत मैननि ओल ।
छूटी लट लटकति कुच-घट पर, नाहिंन नील निचोल ॥
जानि कमलदल आनि लचे, लंपट मधुपन के टोल ।
'व्यास' स्वामिनी भ्रुवविलास लव, मोहन लोने मोल ॥४४०॥

राग षट व गौरी

फिरत सँग अलिकुल - मोर - चकोर ।
घनरु जुन्हाई सरद वसत, मनहुँ हैं जुगलकिसोर ॥
निकट कुरग-कुरगिनि आवत, सुनि मुरली - धुनि घोर ।
'व्यास' आस करि त्रास तजत सर, चक्रवाक भरि भोर ॥४४३॥

१. वंसीवट कौ खेल—

राग विलावल

ठाढ़े दोऊ कुंजमहल के द्वारैं ।
राधामोहन मोहि लागतु है, तू देखियौ ,
नैकु नैन भरि सोभित अग सुठारैं ॥
अति आतुर तोहीं तन चितवत इकटक,
पलक लगत नहिं,लोचन-मीन लगैं ज्यों गारैं ।
'व्यास' स्वामिनी चितवत ही चुंवत ललित ,
विहँसि उरसि पिय लई.विहरत राख्यौ रंग अँध्यारै ॥

राग षट व टोडी

कुँवरि प्रवीन सुबीन वजावति ।
वसीवट निकट निकुंजनि वैठी, सुख पुंजनि वरषावति ॥
स्याम चुरी पहुँची कर सोभित, अँगुरिनि रग वढ़ावति ।
ताँति मोर नासारि पान सजि, हँसति द्रुति मन भावति ॥
उपजति राग-रागिनी अद्भुत, मोहन-मृगहिं रिझावति ।
सुर - वयान - तान - मानहिं मिलि, ग्रीवा-नैन नचावति ॥
गावत गीत मीत के स्रवननि, वर संगीत सुनावति ।
विवस जानि कुँवरहिं,करुनाकरि अधर-सुधा दै ज्यावति ॥

कोटि काम है स्यामहिं मोहति, हँसि-हँसि कंठ लगावति ।
लेति उसाँस देति कुच दरसन, परसत सकुचि दुरावति ॥
कुसुम-सयन पर कोक-कलाकुल,प्रगटति पतिहिं सिखावति ।
इहिं विधि रसिकनि की निधि राधा,'व्यास'हिं सुख दिखरावति ॥

राग केदारौ

देखि सखी, खेलत नागर-नट ।
अद्भुत बात कहत नहिं आवै, क्रीड़ा करत चढ़े बंसीवट ॥
मोहन के करजनि में सोभित, प्यारी के कुच-कनक-सुधा-घट ।
मानौ हेम-कमल पर मधुकर, रिस करि हंस गहै कर सकट ॥
चुंबन करत लरत नासा सुक, दारयौ दसन,स्वाद-रस लपट ।
नैननि चंचल खंजन विहरत, मधुर वचन बोलत कोकिल रट ॥
रति-रन साजत भाजत नाहिंन,नखसिख तें सब अंग-अंग सुभट ।
यह रस'व्यासदास'हिं न उबीठत,जद्यपि सेत भई सिर की लट ॥४४६॥

राग भूपाली व सारंग

लटकति फिरति जोवन-मदमाती, चंपक-बीथिनि चपक - बरनी ।
रतनारे अनियारे लोचन, दुखमोचन लखि लाजत हरिनी ॥
अंस भुजा धरि लटकति लालहिं,निरखि थके मद-गजगति करिनी ।
वृंदाविपिन विनोदहिं देखत, वैमानिक (मोहि) वृंदारकघरनी ॥
रास-विलास करत जहाँ मोहन,बलि-बलि धनि-धनि है बन-धरनी ।
श्री वृषभाननंदिनी के सम, 'व्यास' नहीं त्रिभुवन महँ तरुनी ॥४४७॥

३२. भेष-पलट—

राग कान्हरौ

कुँवरि कुँवर कौ रूप-भेष धरि, नागरपिय पहँ आई ।
प्यारिहिं हरि न मिले सकुची जिय,उपजी तब इक बुद्धि उपाई ॥
हौं वृंदावनचंद छबीलौ, राधा - पति सुखदाई ।
तू को प्रिया - प्रिया कह टेरत, तजि बनभूमि पराई ॥
कैसी तेरी तरुनि सुहागिल, कहि मो सों समुझाई ।
'राधा' नाम गाँव बरसानौ, बड़े गोप की जाई ॥
सुंदर पुरुष स्याम तन मोहन, प्रिया अधिक गोराई ।
तेरी सी उनहारि 'वारिहौं' जब मो तन मुसिक्याई ॥
नकबेसरि के वेह नेह में, मृगमद बाटि लगाई ।
'व्यास'स्वामिनी बिहँसि मिली जब, प्रगट जानि चतुराई ॥४४८॥

राग सारंग

वजावत स्यामहिं विसरी मुरली।

मोहन सुर अलाप जब गायौ, राधा चित-वित चुरली ॥
अरुन वरुन दिसि,निसि ससि विकसित,सकुचत कमलकली।
तमचुर-सुर सुनि मिलि विछुरी, चकवनि की जोट छली ॥
फूली धरनि सदा गति भूली, तनिसुता न चली।
विकल भँवर, पिक पथिक अचल पथ, रोकत कुंजगली ॥
स्थावर-जगम, संगम विछुरे, सब की गति बदली।
कै यह मरम जानि है महलनि, कैरु 'व्यास' बृषली ॥४५६॥

राग सारग

किसोरी सहचरि संग चली।

जिय की वानि हानि करि मानी, सुनि पिय की मुरली ॥
सुनत सुरनि सज्जित ह्वै लज्जित, उभकति कुंजगली।
मैन विवस ह्वै भई ठेन बीच ही, मोहन मिलि करम बली ॥
उर सों उरज मिलत न मिलत, सुखसागर बढ़े अली।
हरि-मधुपहिं मधु प्यावत 'व्यास' स्वामिनी-कमल कली ॥४५७॥

३६. रास—   राग सारग व गूजरी (चच्चरी)

नाँचति वृषभानकुँवरि हंससुता - पुलिन मध्य,
        हंस - हसिनी मयूर - मंडली बनी।
गावत गोपाललाल, मिलवत झपतार ताल,
        लाजत अति मत्त मदन कामिनी - अनी ॥
पदिक लाल कंठ माल, तरल तिलक भाल झलक,
        स्रवन फूल, वर दुकूल नासिकामनी।
नील कचुकी सुदेस, चंपकली कलित केस,
        मुखरित मनि दाम, बाम कटि सुकाछिनी ॥
मरकतमनि वलय राव, मुखर नूपुरनि सुभाव,
        जावकजुत चरननि नखचंद्रिका घनी।
मदहास, भ्रू विलास, रास - लास सुखनिवास,
        अलग लागि लेति सुघर राधिका धनी ॥
काम-अंध, कितव-बंध, रीझि रहे चरन गहे,
        साधु - साधु कहत रहत राधिका गनी।
भेंटति गहि वाँहु मूल, उरज परस भई फूल,
        'व्यास' वचन सानुकूल रसिक जीवनी ॥४५८॥

राग आसावरी तथा सारंग

वृषभान-नंदिनी सरद-चंदिनी नटति गोविंद-संगे ।
जगतचंदिनी,सूरनंदिनी-तट, वसीवट, नागर मिलि प्रगट सर सुधंगे ॥
रास रच्यौ गुनि रूप सच्यौ, न विनोद वच्यौ, देसी अँग-अंगे ।
तालि - मानि - वंधानि गति, रतिपति निरखि मन मान - भंगे ॥
ककन - किंकिन नूपुर - धुनि मिलि, सुनियत ताल मृदंगे ।
हस्तक मस्तक भेद दिखावत, उमगत उरज उतंगे ॥
भृकुटि - विलास, वंक अवलोकनि, मंद हास उपजत रंगे ।
'व्यास' स्वामिनी के रस गावत, तरु - मृग - भँवर - विहंगे ॥४५९॥

राग सारंग व सूहौ

विराजमान आन वृषभानकुँवरि गान करति,
रूप - गुन - निधान, सुभग स्याम-भामिनी ।
राग - तान - वान लगत,व्योम जान मान ढगत,
कोटि चंद मंद थकित, काम-कामिनी ॥
अंग वर सुधंग नचति,देखि सुघर सभा लजति मेघ - दामिनी ।
भ्रुव-विलास मंद हास, नैन वल विनोद-रासि,
कुँवर कंठ पासि दासि 'व्यास' स्वामिनी ॥४६०॥

राग सारंग

नदित मृदंग राइ, नटत गोपालराइ, गावति तरुनिमनि राधिका वनी ।
नागरि नव रूप गुन - आगरि, अलापति तान वितान तनी ॥
पंचम की धुनि सुनि सुक मुनिव्रत धर्‌यौ, थकित मदन-अनी ।
वछरा न छीरु पियैं,नाद के आनंद जियैं, उलटी सलिता वहै मोहित फनी ॥
द्रुमकुल कुसुमनि वरषत, गुलम-लता खग जय-जय,
'व्यास' स्वामिनी रसिक कुँवर सिर मुकुट-मनी ॥४६१॥

राग सारंग

अंग अंग प्रति सुधंग, रंग गति तरंग संग,
रति - अनंग - मान - भंग मनि - मृदंग वाजैं ।
सुर-वंधान गान - तान मान जान गुन-निधान,
भ्रुव-कमान, नैन-वान सुर-विमान छाजैं ॥
उरप,तिरप,सुलप सुवरि,अलग लाग लेति कुँवरि,
वृंदचाल ताल रसिक लाल लाजैं ।
'व्यास दासि' रंग रासि, देखति मुख सुख विलास,
काम विवस स्याम-वाम सुरति साज साजैं ॥४६२॥

राग कामोद

नाँचत नंद-नंदन बृषभान-नंदिनी बनी,
रास-रंग अँग संगीत तरनि-तनया तीरे।
राका निसि सरद-ससी कर रंजित बृंदावन,
फूलि रही जाइ जुही, मलय धीर समीरे॥
घुँघरी पद बाजति कटि किंकिनी, कर कंकन रव,
कंठमाल, स्रवन फूल, चल दुकूल धीरे।
मंद हास, मधुर बैन, भ्रू विलास, नैन सैन,
देखत सुख मुख भगत ताप, होत हृदै सीरे।
पंचम धुनि गावत पटु, तान सुनि बिमान बिकल,
बृंदारक-बृंद-बधू बिगलित खीरे।
कुसुमावलि बरषि, हरषि स्याम कहैं होरी हो,
बार फेर देत 'व्यास'हिं भूषन पट पीरे॥४६३॥

राग विलावल

स्याम-वाम अंग सग, नाचति गति वर सुधंग,
रास-लास रंग भरी सुभग भामिनी।
तरनि-तनया-तीर खचित, मृदुल कनक रचित हीर,
त्रिगुन सुख समीर, सरद-चंद जामिनी॥
चरन रुनित नूपुर, कर ककन, कटि किंकिनी धुनि,
सुनि खग-मृग मोहि गिरत काम-कामिनी।
पंचम सुर गान तान, गगन सघन भये आन,
भगन मगन जान, गिरत मेघ-दामिनी॥
झपतालै चालि उरपि, लेति तिरप मान सुखहिं,
चंद सुघर औघर वर सुलप गामिनी।
नयन लोल, मधुर बोल, भृकुटि भग, कुच उतग,
हँसति पियहिं बिवस करति 'व्यास' स्वामिनी॥४६४॥

राग आसावरी

नाँचति नव रंग संग, अंग छबिन माई।
गावति मन भावति, गति देसी दिखराई॥
सनमुख रुख स्याम-गौर, गातनि महँ झाई।
विकसित वदनारविंद, सोभा अधिकाई॥
चरन पटकि, नैन मटकि, वक भ्रुव चलाई।
हस्तक चल, मस्तक कल, कुच वर सुखदाई॥
कौतिक-निधि राधा कौ गुन-गन कह्यौ न जाई।
काम-बिवस स्याम 'व्यास' स्वामिनी उर लाई॥४६५॥

राग कल्याण

सॉवरे गोरे सुभग गात, सुरति रस चुचात,
देखत नैना सिरात, रोम-रोम सुख सॉति ।
सुरंग वीथिन महँ गावत, नॉचत नव अंग-अग रग भरे,
अंसनि सुख वाहु धरि, लटकति लट-पॉति ॥
पलटे दुहूँ निचोल, वोलत मधुर वोल,
हँसत कपोल लोल, सोभित छवीली भॉति ।
वाजत ताल मृदंग, देखि 'व्यासदासि',
रंगरासि फूली न अंगनि समॉति ॥४६५॥

राग सारंग

नॉचत गोपाल वने, राधा संग गावैं ।
वृंदावन रास रच्यौ, लाल वेनु वजावैं ॥
गौर-स्याम वाहु जोर, मंडली वनावैं ।
मनहुँ हेम-मरकत-मनि-मालहिं नचावैं ॥
भूपन-पट, तन-छवि, घन-चपलाहिं लजावैं ।
मोर-मुकुट कोटि-कोटि मदन-मद नसावैं ॥
कंकन,किंकिनि,नूपुर-धुनि,मुनिहिं मोह वढ़ावैं ।
नाग, तान, मान, सुर-विमान, वन वुलावैं ॥
उरप, तिरप, सुलप, सुघर,औघर गति भावैं ।
अंग-अंग वर सुधग, रंग कहि न आवैं ॥
चंद-वदन, द विहँसि, नैननि मटकावैं ।
कवहुँ नाहु प्यारी गहि, वाहु उर लगावैं ॥
जय-जय धुनि सुनि सुरेस,सुमननि वरषावैं ।
'व्यासदास' रंगरासि चरन-रेनु पावैं ॥४६७॥

अंग-अंग सरस सुधंग रंग रचत, नॉचत वृंदावन-चारी ।
विविध-वरन मन-हरन वसन,तन भूपन भूपित पिय-प्यारी ॥
ताल मृदंग संग, ललितादिक ललित वजावति करतारी ।
मोहन-धुनि सुनि मुनि-मन मोहे,खग-मृग कुल मुनिव्रत धारी ॥
राधा गुन-सागर अगाध पतिहिं रिझावति, गति न्यारी ।
औघर सुघर मान महँ, मोहन धाइ धरी उर सुकुमारी ॥
अद्भुत छवि कवि कहि न सकत कछु, हँसत लसत सोभा भारी ।
'व्यास' स्वामिनी के पटतर कहूँ त्रिभुवन मे उपमा हारी ॥४६८॥

राग भैरव

स्यामा सँग स्याम नचत, रास-रंग गुननि खचत,
ससि अखंड मंडल हँसि सरद-जामिनी।
तरनि-तनय कछू मृदुल,अच्छ ससित रज पुनीत,
त्रिविध-पवन ताप-दवन काम-कामिनी।।
चरन चलित, बाहु वलित, ललित गान,कलित तान,
मान-सुर-बँधान, तिरप लेत भामिनी।
वर सुधग रंग ताल, मनि मृदंग, चंद चाल,
लाल सुघर, औघर गजराज-गामिनी।।
रिझै पतिहिं गति दिखाइ,लेति कुँवर कंठ लाइ,
स्याम-घटा माँझ मनहुँ दुरति दामिनी।
नैन सैन भ्रू विलास, मंद हास सुख-निवास,
सुनि-सुनि मुनि बोलत जय 'व्यास' स्वामिनी ।।४६६।।

राग सारंग

बृषभानकुँवरि गान करत वंसीवट मूले। नाँचत गोपाललाल अंग-संग झूले।।
कुंज-भवन कोक-कुसल सुरत-डोल झूले।
दसन-अधर-नैन निरखि 'व्यास' विकच फूले ।।४७०।।

राग केदारौ

स्याम-नटवा नटत राधिका संगे।
पुलिन अदभुत रच्यौ,रूप-गुन-सुख सच्यौ,निरखि मनमथ-वधू मान भंगे।।
तत्त थेई-थेई, मान सप्तसुर पट गान, राग-रागिनी, तान स्रवन भगे।
लटकि मुँह मटकि, पद पटकि, पटु झटकि,
हँसि विविध कल माधुरी अंग-अंगे।।
रतन कंकन क्वनित किंकिनी नूपुरा, चर्चरी ताल मिलि मनि-मृदंगे।
लेति नागर उरपि, कुँवरि औघर तिरप, 'व्यासदासि' सुघर वर सुधंगे।।

राग कान्हरौ

सुघर राधिका प्रवीन, वीना वर रास रच्यौ,
स्याम संग वर सुधग तरनितनया-तीरे।
आनँदकंद वृंदावन, सरद-चंद, मंद पवन,
कुसुम-पुंज ताप-दवन धुनित कल कुटीरे।।
रुनित किंकिनी सुचारु, नूपुर मनि वलय हारु,
अंग रव मृदंग तार, तरल तिरप चीरे।
गावति अति रंग रह्यौ, मोपै नहिं जात कह्यौ,
'व्यास' रस प्रवाह वह्यौ, निरखि नैन सीरे ।।४७२।।

राग गौरी

पखावज ताल रवाब बजाइ।

सुलप लेत दोऊ सनमुख, मुख मुसकित नैन चलाइ॥
पद पटकनि, नूपुर - किंकिनि - धुनि सुनि न नवेरी जाइ।
उरप मान मँह, तिरप मान लै, सुर - बंधान सुनाइ॥
देसी सरस सुधग सुकेसी, नाँचत पियहिं रिझाइ।
काम विवस स्यामहिं तकि स्यामा, रवकि कंठ लपटाइ॥
गुनसागर की सीवाँ उमगी, कवि न छविहिं कहि जाइ।
'व्यास' स्वामिनी कौ सुख सर्वसु, लूटत मोहनराइ॥४७३॥

राग कान्हरौ

नाँचत नँदनंदन वृषभान-नंदिनी समीप,
देखि चंद भूलि रह्यौ, कलप जामिनी।
नख प्रति प्रतिरूप ठानि, भूपन उड़वृंद जानि,
आनि चरन भजत, तजत गगन धामिनी॥
नील पीत वर दुकूल, गौर-स्याम अंग फूलि,
अग मिले हरषि वरष मेघ दामिनी।
वर सुधंग रंग रचे, दंपति गति रीझि लचे,
विगत गर्व अर्व - खर्व काम - कामिनी॥
पंचम स्वर गान, मधुर तान, सुर बँधान,
मान लेति तिरप राधिका गजराज-गामिनी।
वारि फेरि देत हार, हरि उदार कहत रहत,
हो हो हो साधु - साधु 'व्यास' स्वामिनी॥४७४॥

राग केदारौ

नाँचत गोपाल वनै नटवर वपु काछैं।
गावति गति मिलवत अति, राधा के पाछैं॥
किंकिनि, कंकन, नूपुर धुनि ताल मृदंग सोहैं।
मद हास, भ्रू-विलास, सैननि मन मोहैं॥
तरुवर, गिरिवर, मृग नाद - वान पोहैं।
वृंदारक - वृंद - वधू तारक विधु मोहैं॥
समीर, नीर पंगु भयौ, वालक न पय - प्यावैं।
'व्यास' सकल जीव - जंतु नाद - स्वाद ज्यावैं॥४७५॥

३७. संभ्रम मान—

प्रियतम के हृदय में अपना प्रतिबिंब देख,कर श्री राधा जी कहती हैं—

राग सारंग

पिय के हिय तें तू न टरति री।
मेलि ठगौरी खेलि स्याम सों, मोहू तें न डरति री॥
मेरौ नाह कि तेरौ कहि धौं, जासों प्रीति करति री।
हौं इनकी प्यारी तू न्यारी, हौं ही बकत अरति री॥
जद्यपि रूप-रासि तेरे अँग, निरखत आँखि जरति री।
जोबन - जोर ,किसोर-चंद कौ, चितु-बितु चाह हरति री॥
इतनौ सुनत कुँवर के तन तें स्वेद - नदी उतरति री।
हँसि हरिराम*'व्यास'की स्वामिनि,लालहिं अंक भरति री॥४७६॥

सखी-वचन मानिनी प्रति:—

राग गौरी व भैरव

काम-कुंज-देवी जय राधिका बर दायिनी,
निस्चै देहि प्रियै बृंदावन - बृंद - बासिनी।
करत लाल आराधन, साधन बल कर प्रतीति,
नामावलि मंत्र जपत, जय विलासिनी॥
प्रेम पुलक गावत गुन, पावन मन भावन अति,
नाँचत गति रीझि, देखि मंद हासिनी।
अंगन पट - भूषन पहिराइ, आरसी दिखाइ,
तोरत तृन लै बलाइ, सुख - निवासिनी॥
कर जोरें, चरन गहत, कहत चाटु वचनावलि,
विनती सुनि दास की, दुखरासि - नासिनी।
प्रतिपालय करुनालय मो सों जिनि मान करै,
देहि प्रिय प्रान वदत 'व्यास दासिनी'॥४७७॥

श्री प्रिया जी के वचन सखी प्रति:—

राग मलार

तू कत मोहिं मनावन आई।
कोटि वार वरजेहू, पिय चंचल की टेव न जाई॥
मो देखत अपनें उर मोहन, सुंदर वसन दुराई।
मोहू तें गुन - रूप - आगरी, ता तें तन - मन भाई॥

* हरिराम (ग, च, छ), हरि दास (क)

मो सों विरति वढ़ी वा सों रति, करि तव हौं विसराई ।
करि अपराध साधु ह्वै बैठे, तोहिं सिखै चतुराई ॥
पट-भूषन तजि, छल करि नागर, तन कुमकुम लपटाई ।
'व्यास' स्वामिनी निरखि हँसी. सुंदर हँसि कंठ लगाई ॥४७८॥

राग सारंग

रूसैं हू न तजी चतुराई ।
सकति वसीठी सीठी जानत, नैननि सैन चलाई ॥
आजु नेह सों वात कहत, सुनि स्रवननि रुचि उपलाई ।
विनु काजैं रूठे, झूठौ दुख पावति, कहत लुगाई ॥
आपुन सों सव भले कहावत, हरत न पीर पराई ।
तव ताकौ अपराध न दुरिहै, कहि दैहै जल-झाँई ॥
इतनौ कहि, जमुना महँ मुख देखत ही लाज गँवाई ।
स्याम काम-वस 'व्यास' स्वामिनी, राखी कठ लगाई ॥४७६॥

३८. श्री लाल जी के वचन श्री प्रिया जू प्रति—

राग सारग

वाधा दै राधा कितहिं गई ।
वृंदाविपिन अछत प्यारी विनु, सव विपरीति भई ॥
मेरे मंद भाग तें, काहू पोच प्रकृति सिखई ।
मुख सुखरासि, उरज देखे विनु, क्यों जीवै विपई ॥
ताके प्रान रहैं क्यों जिय, वह अधर-सुधा अँचई ।
'व्यास' स्वामिनी विहँसि मिलत ही, वाढ़ी प्रीति नई ॥४८०॥

राग नट

काहे कों लाड़िली, मो सों मान करति ।
मेरी प्रकृति जैसी, तैसी तुहि जानति, गुन अपगुन कत जिय महँ धरति ॥
ताही पर कीजै कोप,जाही सों सपने हू न वीच,नीच कामहिं पाछैं हू डरति ।
'व्यास' स्वामिनी तू चतुर-सिरोमनि,औचका पाछे तें नीकें आँकौ भरति ॥

राग सारग

विरह-व्याधि तन वाढ़ी, राधा करि उपचारु ।
दै अधरामृत, मृतक-रसाइन, कुच-गुटिका घटिका उर डारु ॥
रोग-हरन निज चरन-सरोरुह, नैननि धरि कर-पंकज चारु ।
अंगराग-अँजना सु देहि अव, अंजन-पीक लीक गदसारु ॥
प्रतिपालय, करुना-वरुनालय, तो विनु अनत नहीं निस्तारु ।
यह सुनि व्रत तजि,पिय अँग-अंगनि'व्यास'स्वामिनी करत विहारु॥४८२॥

राग-कमोद व झझौटी (इकताल)

मान-दान दै री, प्रान राखि लै ।

विनती सुनि, मुनिव्रत तजि वलि जाऊँ, रिस सलिता की सींव नाखि लै ॥

तोहि बृषभानु की सौंह बेगि कहि, जिय के प्यारे, अधर-सुधा तू चाखि लै ।

विरह-सिंधु हौंमगन होत कुच-तुंबिनि दै, उछारि जो न पत्याहितौ 'व्यास' साखि लै

राग बिलावल

राधा प्यारी, हो मान न कर ।

अंतर-विरह-दहन तन जारत, वरषावहिं बिंवाधर-जलधर ॥

विनु अपराधहिं कोप न कीजै, दीजै हो प्यारी,
प्रान दान धन, राधा ! तेरौ हौं अनुचर ।

'व्याससखी' तन मद हास करि, कठ लगाइ लयौ सुंदरवर ॥४८४॥

राग केदारौ (ताल चौताल)

मुख-छवि अद्भुत होत रिसानैं ।

नैनिनि की सैननि महँ सुंदरि, तेरे हाथ बिकानैं ॥

तारे तरले वक भ्रुव ओट, मनहुँ मनसिज सर तानैं ।

पलक अलक मिलि अनखि करति हँसि, ताहि वदों जु वखानैं ॥

विहँसत अधर कपोल ओल, मनु माँगत नित पहिचानैं ।

चमकत दसन दामिनी मानहुँ, पट-घट अरि अरुझानैं ॥

फरकत उर, भुज करत चोंचि इत, जघननि स्वेद चुचानैं ।

तोरत अग रंग भरि पुलकित, रिसि न तजत अकुलानैं ॥

अपनौ काज विगारति नाहिंन, आतुर कुसल सयानैं ।

'व्यास' उसास लेत दोऊ जन, रवकि कंठ लपटानैं ॥४८५॥

राग केदारौ

मान तजि मानिनि, वदन दिखाउ ।

दुख-मोचन तेरे दरसन बिनु, लोचन जरत, बुझाउ ॥

मद मधुर मृदु कोकिल के से, अपने वचन सुनाउ ।

पंचम सुर पटतार अलापति, तू षटरागहिं गाउ ॥

परम भाग मेरौ अब सुंदरि, देखे तेरे पाउ ।

'व्यास' स्वामिनी विहँसि मिली, हँसि बिरह-सिंधु की नाउ॥४८६॥

राग कल्याण

तेरौ जानि कुँवरि, मैं जान्यौ ।

मोहू से अनुचर कौ, तैं अनुराग नहीं पहिचान्यौ ॥

तो विनु मोहिं अनाथ जानि, अब मदन वान संधान्यौ ।

चंदन, चंद, पवन तन जारत, करतु कछू नहिं कान्यौ ॥

तेरे विरह भयौ दारुन दुख, कैसैं जात वखान्यौ ।

तेरे चरन-सरन हौं सुंदरि, 'व्यास' सखी गहि आन्यौ ॥४८७॥

राग गौरो

मेरे तू जिय में वसति, नवल प्रिया प्रान-प्यारी ।
तेरेई दरस-परस राग-रंग उपजत, मान जिन करि हा, हा री ।
तू ही जीवन, तू ही प्रान, तू ही सकल गुन-निधान,
तो समान कोऊ और नाहिंन मो कों हितकारी ।
'व्यास' की स्वामिनि, तेरी माया तें, मैं पायौ है नाम विहारी ।।४८८।।

३६. श्री लाल जी के वचन सखी प्रति—

राग धनाश्री

गोरी एक सीख सुनि, हित-वात कहौं ।
प्रान मान सों वैरु वढ़यौ, क्यों दारुन विपति सहौं ।।
दुख की रात विहात न सुख विनु, क्यौं करि कुंज रहौं ।
को तन-ताप वुझावै कहि धौं, का के पाँइ गहौं ।।
जान अधीर पीर को मेटै, जानत जुगति न हौं ।
जोवन-मतहिं मिलत 'व्यास' कहि, आनँद लै निवहौं ।।४८६।।

राग कमोद

सहचरि, मेरौ सँदेसौ कहियहु ।
करि मनुहारि, वारि जल पीजहु, पद-पंकज गहि रहियहु ।।
जो कछु कहैं किसोरी मो सों, तू सव सनमुख सहियहु ।
मेरे ओर तें वडी वेर लौं, कुच-आँकौ भरि रहियहु ।।
मेरे दुख-सागरहिं सोखि, सुख-सागर जल थल लहियहु ।
इतनौ करत 'व्यास' स्वामिनि कहँ, पिय-हिय ओर निवहियहु ।।४६०।।

राग गौरी

कौन सों कहियै दारुन पीर ।
सुनि ललिता, वनिता विनु छिनु-छिनु, जैसी सहत सरीर ।।
जीवन रहत जीवका विछुरै, का की कुंज-कुटीर ।
मदन-दहन उर जारत, उमगि वुझावत लोचन-नीर ।।
प्रान पयान करतु अनदेखैं, देखैं धरत न धीर ।
दरसन आस उसास रही, दुखदानि सखिनि की भीर ।।
भूषन दुख-पूपन तन लागत, धूमकेतु सम धीर ।
मालावलि व्यालावलि, मुकुट कुकुट, वंसी खरतीर ।।
कटक किसलय-सेज, चंद्रमा-चंदन गरल-समीर ।
सुनत भयानक मोर, चकोर, हंस, पिक, मधुकर, कीर ।।
करुनाकरि सहचरि लै आई, ये दोऊ रति-रनधीर ।
विहरत 'व्यास' स्वामिनिहिं वाढ़ी, सुरत-नदी गंभीर ।।४६१।।

राग-कमोद व झझौटी (इकताल)

मान-दान दै री, प्रान राखि लै ।
विनती सुनि, मुनिव्रत तजि बलि जाऊँ, रिस सलिता की सींव नाखि लै ॥
तोहि बृषभानु की सौंह बेगि कहि, जिय के प्यारे, अधर-सुधा तू चाखि लै ।
विरह-सिंधु हौं मगन होत कुच-तुंबिनि दै, उछारि जो न पत्याहि तौ 'व्यास' साखि लै

राग बिलावल

राधा प्यारी, हो मान न कर ।
अंतर-विरह-दहन तन जारत, बरषावहिं बिंबाधर-जलधर ॥
बिनु अपराधहिं कोप न कीजै, दीजै हो प्यारी,
प्रान दान धन, राधा ! तेरौ हौं अनुचर ।
'व्याससखी' तन मंद हास करि, कंठ लगाइ लयौ सुंदरवर ॥४८४॥

राग केदारौ (ताल चौताल)

मुख-छवि अदभुत होत रिसानैं ।
नैननि की सैननि महँ सुंदरि, तेरे हाथ बिकानैं ॥
तारे तरले बंक भ्रुव ओट, मनहुँ मनसिज सर तानैं ।
पलक अलक, मिलि अनखि करति हँसि, ताहि बदौं जु बखानैं ॥
बिहँसत अधर कपोल ओल, मनु माँगत नित पहिचानैं ।
चमकत दसन दामिनी मानहुँ, पट-घट अरि अरुझानैं ॥
फरकत उर, भुज करत चोवि इत, जघननि स्वेद चुचानैं ।
तोरत अंग रंग भरि पुलकित, रिसि न तजत अकुलानैं ॥
अपनौ काज बिगारति नाहिंन, आतुर कुसल सयानैं ।
'व्यास' उसास लेत दोऊ जन, रवकि कंठ लपटानैं ॥४८५॥

राग केदारौ

मान तजि मानिनि, बदन दिखाउ ।
दुख-मोचन तेरे दरसन बिनु, लोचन जरत, बुझाउ ॥
मद मधुर मृदु कोकिल के से, अपने वचन सुनाउ ।
पंचम सुर पटतार अलापति, तू षटरागहिं गाउ ॥
परम भाग मेरौ अब सुंदरि, देखे तेरे पाउ ।
'व्यास' स्वामिनी बिहँसि मिली, हँसि बिरह-सिंधु की नाउ ॥४८६॥

राग कल्याण

तेरौ जानि कुँवरि, मैं जान्यौ ।
मोहू से अनुचर कौ, तैं अनुराग नहीं पहिचान्यौ ॥
तो बिनु मोहिं अनाथ जानि, अब मदन बान संधान्यौ ।
चंदन, चंद, पवन तन जारत, करतु कछू नहिं कान्यौ ॥
तेरे बिरह भयौ दारुन दुख, कैसैं जात बखान्यौ ।
तेरे चरन-सरन हौं सुंदरि, 'व्यास' सखी गहि आन्यौ ॥४८७॥

राग गौरी

मेरे तू जिय में बसति, नवल प्रिया प्रान - प्यारी ।
तेरेई दरस - परस राग - रंग उपजत, मान जिन करि हा, हा री ।
तू ही जीवन, तू ही प्रान, तू ही सकल गुन-निधान,
तो समान कोऊ और नाहिंन मो कों हितकारी ।
'व्यास' की स्वामिनि, तेरी माया तें, मैं पायौ है नाम विहारी ॥४८८॥

३६. श्री लाल जी के वचन सखी प्रति—

राग धनाश्री

गोरी एक सीख सुनि, हित-बात कहौं ।
प्रान मान सों बैरु बढ़यौ, क्यों दारुन विपति सहौं ॥
दुख की रात विहात न सुख विनु, क्यौं करि कुंज रहौं ।
को तन - ताप बुझावै कहि धौं, का के पाँइ गहौं ॥
जान अधीर पीर को मेटै, जानत जुगति न हौं ।
जोवन-मतहिं मिलत 'व्यास' कहि, आनँद लै निवहौं ॥४८९॥

राग कमोद

सहचरि, मेरौ सँदेसौ कहियहु ।
करि मनुहारि, वारि जल पीजहु, पद-पंकज गहि रहियहु ॥
जो कछु कहैं किसोरी मो सों, तू सब सनमुख सहियहु ।
मेरे ओर तें बडी बेर लौं, कुच - आँकौ भरि रहियहु ॥
मेरे दुख-सागरहिं सोखि, सुख-सागर जल थल लहियहु ।
इतनौ करत 'व्यास' स्वामिनि कहँ, पिय-हिय ओर निवहियहु ॥४९०॥

राग गौरी

कौन सों कहियै दारुन पीर ।
सुनि ललिता, वनिता विनु छिनु-छिनु, जैसी सहत सरीर ॥
जीवन रहत जीवका विछुरै, का की कुंज - कुटीर ।
मदन - दहन उर जारत, उमगि बुझावत लोचन - नीर ॥
प्रान पयान करतु अनदेखैं, देखैं धरत न धीर ।
दरसन आस उसास रही, दुखदानि सखिनि की भीर ॥
भूषन दुख - भूषन तन लागत, धूमकेतु सम धीर ।
मालावलि व्यालावलि, मुकुट कुकुट, बसी खरतीर ॥
कटक किसलय - सेज, चंद्रमा - चंदन गरल - समीर ।
सुनत भयानक मोर, चकोर, हंस, पिक, मधुकर, कीर ॥
करुनाकरि सहचरि लै आई, ये दोऊ रति - रनधीर ।
विहरत 'व्यास' स्वामिनिहिं वाढ़ी, सुरत - नदी गंभीर ॥४९१॥

राग जयतिश्री

क्यौं सखी, जामिनि जाम बिहात ।
कछु बाधा न रही, राधा बिनु प्रान छूटिहैं प्रात ।।
दुख-सागर महँ मोहिं छाँडि गई, भामिनि भर अधरात ।
कुंज-महल महँ, अंधकूप जनु, कोऊ न पूछत बात ।।
हौं बलि ताकी ललिता, मोहिं मिलावै गोरे गात ।
तब नैननि तें मैन निकसिहै, जब देखौं उर जात ।।
सुनि आरतहिं पुकारत, प्यारी पियहिं मिली अकुलात ।
पियत किसोर-चकोर बदन-बिधु, अधर-सुधाहिं चुचात ।।
रति-लंपट नटनागर सरबस, रस लूटत न अघात ।
'व्यास' स्वामिनी के रस-सागर, स्याम-गात न समात ।।४६२।।

राग केदारौ तथा सारंग

चलि ललिता, क्यौं हू कै बोलौ, राधा मानिनि आवै हो ।
अधर-बिधुहिं मुख में बरषावै, प्राननि मरत जिवावै हो ।।
बरषत मदन, काम की चोटहिं, उरजनि ओट बचावै हो ।
राधा-बल्लभ गहि भुज-पल्लव, दुखितहिं कंठ लगावै हो ।।
सुनि बिहँसी बृषभान-नंदिनी, लालहिं मोद बढावै हो ।
'व्यास'स्वामिनी आसा पुजवति,हँसि रति-रास नचावै हो ।।४६३।।

राग सारंग

नैंक सखी राधा पुनि आवति ।
नूपुर-धुनि सुनियत हैं निकटहिं, बिकट बीथिन कोऊ ऐसैं ही गावति ।।
अरु गोरे अंगन कौ परिमल महकत, मैं पहिचान्यौं मदन बढ़ावति ।
इतनी कहत 'व्यास' की स्वामिनि रहसि-बिहँसि,
पिय-उर लागी, सुरत-पुंज कुंजनि बरषावति ।।४६४।।

४०. सखी बचन श्री प्रिया जू प्रति—

राग भूपाली

अजहूँ माई, टेव न मिटति मान की ।
जानति पिय की पीर, न मानत सौंह बबा बृषभान की ।।
कुसुमित सेज भयानक लागत,भवन पवन गति खान की ।
बन की संपति कहि न जात सखि,सहि जात बिष जान की ।।
भूषन-बसन सुहात न गातन, बिकल सुरति नहिं गान की ।
चातिक-कृष्नहिं तृष्ना बाढ़ी, जलधर-अधर सुपान की ।।
सुनि पिय उरज ओटि दै, चोट बचाई, मदन-बान की ।
'व्यास'स्वामिनी हरि-जाचक कौं, दानी प्राननि दान की ।।४६५।।

राग कल्याण

सुख के सरीर महँ, अगनित दुखरासि,
कैसैं कै समात री, कहि धौं राधिका प्यारी !
यह मेरे जिय कौ संसय तू दूरि करि, जे तीन्यौं फिरि हौंइ सुखारी ॥
थोरै ही कहैं हम, वहुत समझि, तू अति सयानी जानी कुंजविहारी ।
'व्यास'हिं जानि निज दासी, मान मनावौ,
हँसि पियहिं मिलौ श्री वृषभान-दुलारी ॥४६६॥

राग षट

कवहूँ तैं काहू कौ कह्यौ न कियौ ।
जुरत वसीठी तैं सीठी करि डारी, हठ करि कछु न लियौ ॥
नैननि तोहि कुटिलता सिखई, और न हेत वियौ ।
कठिन कुचन की संगति कौ फल, ह्वै गयौ कठिन हियौ ॥
विनु अपराधहिं साधु पियहिं, तैं कवहुँ न चैन दियौ ।
सरधा हू तें कृपन अधर - मधु, पिय न अघाइ दियौ ॥
सुनत चली आतुर ह्वै, चातुरता विसरी सखियौ ।
'व्यास' स्वामिनी भेंटत ही, मेरौ मोहन मरत जियौ ॥४६७॥

मानि न मानि लड़ैती, तोहिं मनमोहन वोली ।
चाहत फिरत तोहि, हौं कुंजनि-कुंजनि वूझत डोली ॥
तो कारन रचि-पचि पिय पठई, चंप-कलिन की चोली ।
सुंदर गोरे गात पहिरि चलि, नील सारि पचतोली ॥
पाइन परति करति हौं विनती, तो सों वोलत वोली ।
लेत वलाइ करति हौं हा, हा, अव जिन होइ अवोली ॥
प्रान - दान दै चली अली सँग, प्रीति वढ़ी निरमोली ।
'व्यास'स्वामिनिहिं कुँवर मिले हँसि,कंचुकि-नीवी-वँद खोली ॥४६८॥

राग सारंग

नवल नागरी मान न कीजै पिय सों ।
वहुत वार मैं तू सिखराई, तो विनु छिन क्यों—
जीवै विषई, नागरु रूस्यौ अपने जिय सों ॥
तोहिं जनाउ दयौ मैं चितकैं, तो तें होइ सु तू करि ,
को जु वरावरि करि सकै सुंदरि वृषभान - धिय सों ।
दीन वचन सुनि उठि चली अली सँग,सहज सनेह रँग ,
सदमत 'व्यास'स्वामिनी हँसि कुँवर लगाइ लियौ हिय सों॥४६६॥

राग स्यामगूजरी

विहरत मोहन कुंज-कुटीर।

सुनि प्यारी, तो विनु छिनु पिय के, प्रान न रहत सरीर ॥
छवि दबि गई मुखारबिंद की, तरलित सरस समीर।
विरह-दहन तन जरत बुझावत,बरषि नैन-घन पीवत नीर ॥
बेपथ स्वेद सहित‡ पुलकावलि, चलि नहिं सकत अधीर।
कहत रहत राधा विनु कब लगि, धरियै मन में धीर ॥
सहचरि 'व्यास' बचन सुनि सुंदरि,बेगि चली पिय तीर।
कंठ लगाइ लये, अधरामृत प्याइ, हरी तन-पीर ॥५००॥

राग गौरी

कहाँ लगि कहियै दुख की बात।

सुनि राधा, तेरे बिछुरत, पिय के सीदत सब गात ॥
गिर-गिर परत सम्हार न तन की, चलत चरन अरुझात।
यह बदनारविंद देखे विनु, लोचन-अलि अकुलात ॥
अंग निरंग भये जैसें हिम, मारुत सुख तजि लात।
मन मनसा सँग उड़े फिरत, ज्यौं विटप पुराने पात ॥
दासिनि सों कर जोरि निहोरत, हरि पूछत कुसलात।
प्रान-अधारहिं बेगि मिलावौ, पुनि पाइँन लपटात ॥
कुंज-भवन कल गावत अलि,सुक,पिक बोलत न सुहात।
हा राधे, रव रटत अटत वन, नैननि नीर चुचात ॥
तो विनु भामिनि, कोटि कलप सम, जामिन-जाम विहात।
सुनि करुना करि'व्यास'स्वामिनी,पियहिं मिली मुसिक्यात ॥५०१॥

राग सारंग

विहारी वन विलपत विरही।

जो न पत्याउ सुनहि स्रवननि दै, हा राधा, टेक रही ॥
स्याम जपत तो नाम, काम-सर की तन चोट सही।
तेरे दरस-परस की आसा, छूटत देह रही ॥
तू दाता ह्वै लची, परायौ सरवस चाँपि रही।
चरन गहत हू कहत कछू नहिं, सैन दै विहँसि रही ॥
'व्यास' स्वामिनी मिलि प्रीतम कों, बढ़ाइ सुरत रही ॥५०२॥

‡ स्वेद सहित (क), स्वाद रहित (ग, च, छ)

राग नट

समझि राधिका, कीबौ अब मान।
तेरे दुसह विरह, प्रीतम कौ दुखित रहत सखि प्रान ॥
रस में विरस न कीजै सुंदरि, तो तें को अतिजान।
दारुन विपति परत पिय कों, तो विन सुखदानि न आन ॥
तुव गुन-रूप-सील-छवि क्यों, को कवि पहँ जात वखान।
मीठी 'व्यास' वसीठी जोरी, मिलि कीनौ वंधान ॥५०३॥

राग सारंग

मान तें होत निसा - रस हानि।
तो वोलि-वोलि वूझत है री, वेगि चलहि सुखदानि ॥
विलपत कुंज - कुटीर, कुँवर की पीर धोर पहिचानि।
मृत भय दासहिं दै अधरामृत, जीवैं सिर धरि पानि ॥
चेतै स्रवनन टेर सुनावहि, इहि रव मधुरी वानि।
कर सों उरज मिलाउ चरन करि, गोरी राखहि कानि ॥
आतुर चली अली सँग, चातुरता विसरी हित जानि।
'व्यास' स्वामिनी कंठ लगावति, रसिकहिं रति-रस सानि ॥५०४॥

मेरे कहैं न मानति तू, सर्वोपरि मोहन की भामिनि ॥
प्रानरवन सों हिल-मिलि खेलि, सरद की जामिनि।
तोहि सपथ वृपभान ववा की, मान करहिं जिनि ॥
चलि वलि जाँउ मुखारविंद की, मुख विहँसि लसति सैननि गजगामिनि।
विछुरि विराजति नहीं 'व्यास' की स्वामिनि, ज्यों घन दामिनि ॥५०५॥

काम सों स्यामहिं काम पर्यौ।
वन वसंत वैरिनि मिलि तो विनु, दीन जानि निदर्यौ ॥
हा राधे ! हा कुँवरिकिसोरी ! विलपत विपति भर्यौ।
जैसैं पंक - कूप महँ विंधयौ, कौन करी निकर्यौ ॥
वरसत मनसिज पीर वीर अति, पति धीरज न धर्यौ।
जैसैं दृढ़ वागुर महँ उरझयौ, सु को जु मृग विडर्यौ ॥
लाल भयो वेहाल विरह वस, पहिलौ सुख विसर्यौ।
जैसैं वृपभ वल गह्यौ अजासुत, वचनु न मुख उचर्यौ ॥
कौन - कौन दुख वरनौं पिय कौ, जो दुख करनि कर्यौ।
'व्यास' स्वामिनी करुना करि, हरि कौ सव ताप हर्यौ ॥५०६॥

लाडिली मान मनावौ, पिय कौ मुख चाहि ।
तो बिनु दीन, मीन ज्यौ जल बिनु, ता सों कहा रिसाहि ।।
जलधर-अधर राखि, मोहन - चातिक की मेटि तृषाहि ।
बेगि किसोर - चकोरहिं, चद्रवदन की प्याउ सुधाहि ।।
जैसी प्रीति रीति कर आये, तैसी ओर निवाहि ।
सुनत बचन करुना करि 'व्यास' स्वामिनी मिली ललाहि ।।५०७।।

पिय पर जिय तें करहि न रोष ।
तेरे तामस तमुरानौ मोहन - मुख - पंकज - कोष ।।
साँची झूँठी बात सुनत तू, करत नहीं निरजोष ।
कवन भवन तें सुंदर देख्यौ, जाहि लगावत दोष ।।
उठि चलि बेगि जाँउ बलिहारी, अधर-सुधा दै स्यामहि तोष ।
सुनत बचन प्यारेहिं मिलत ही, मिट्यौ 'व्यास' कौ सोष ।।५०८।।

राग नट

ठाढ़े लाल कुंज - महल के द्वारें ।
हा राधा ! बिलपत मनमथ - डर, सुनि री करत पुकारें ।।
इक - इक मूँठि पाँचसर बरषत, मोहन गात उघारें ।
अंचल कवच उढ़ाउ स्याम - उर, डारत काम बिदारें ।।
तेरौ बिरह बढ़्यौ है वैरी, दिनहीं डारत मारें ।
जीवै मृतक तबहिं नैननि पर, पीन - पयोधर डारें ।।
नैकु कृपा करि मुख महिं बरषहि, अधर-सुधा-रस-धारें ।
'व्यास' स्वामिनिहिं मिलि नागर, रति-रन कह भयौ उतारें ।।५०९।।

राग कमोद

सब निसि ढोवा करति किसोरहिं, भोर मान-गढ़ टूट्यौ ।
गोरे गात गढ़ौई गाढ़ै, मनु सेनापति कौ सत छूट्यौ ।।
स्याम-अंग सों निकस्यौ ज्यों छल, दलबल तें जनु खूट्यौ ।
उरनि डरनि रनभूमिन छूटी, जद्यपि काम-सुभट हू कूट्यौ ।।
सहस बाँह सुनि राखि सहज ही, सुख-सागर जनु फूट्यौ ।
'व्यास' स्वामिनी मिली बाँह दै, पुनि लचि लालन लूट्यौ ।।५१०।।

कह्यौ मानि री मेरौ भामिनि !
कुंज-महल तल मोहन बिलपत हा, हा, कैसी कामिनि ।।
बेलिय बिटप न बिछुरि बिराजत, जैसें घन बिन दामिनि ।
ऐसें जोटहिं ओट न सोभा, बिधु बिनु सरद की जामिनि ।।
इतनौ सुनि उठि चल अली सँग, गावत अति अभिरामिनि ।
बीचहिं भेंटि, मेटि पिय कौ दुख, 'व्यासदास' की स्वामिनि ।।५११।।

सुचित ह्वै सुनि सखि, बात नवीन ।
तेरे कोप धोप दै संगी, दुखित करें सब दीन ॥
जीव जीवका विन क्यों जीवै, निराधार आधीन ।
हानि दानि की जाचक विमुखै, कैसैं चलै प्रवीन ॥
पियत पपीहा घन ही कों, वन सेवत जियहिं न मीन ।
प्रान दान कौ देहि चकोरहिं, भयौ चंद्रमा खीन ॥
यह विचित्र जो मानसरोवर, हंस होय क्यों छीन ।
वन वसि करत विलाप भोगवत, करि प्रलय प्राचीन ॥
मुनि - मन धीर नहीं पर पीर, सु मिले हरषि कर पीन ।
'व्यास'स्वामिनी सुखहिं दियौ दुख,करिकैं हरि वल हीन ॥५१२॥

वृंदावन-गोरी, मान री मान निहोरौ ।
तो सी चतुर सुजान आन को, मोहन है अति भोरौ ॥
प्रान-रवन के भवन गवन करि, मन महँ धरि हठ थोरौ ।
अति कै कोप ओप नाहिन कछु, स्याम भयौ तन गोरौ ॥
छमि अपराध साधु तेरौ उर, पिय-हिय सों हित जोरौ ।
'व्यास'स्वामिनी मिलि प्रीतम सों,मचकति सुरत हिंडोरौ ॥५१३॥

स्याम सरोवर कौ जल छीन ।
गोरे गात मेघ वरषे विनु, तन-मन लागत दीन ॥
आस नितव विंव कंदावलि, तुचा कमलिनी - पात ।
नाल-मृनाल जघन-भुज, कर-पद-कमल, सुदल कुम्हिलात ॥
लोचन-हीन मीन पिय के विनु, कुंडल मकर थके ।
केस - सिवाल निरख भूषन - गन, सख - सीप अटके ॥
रोमावलि उपवन वहि वोलत, वानी कोकिल - कीर ।
मुख इंदीवर विकसत नाहिंन, कूजत मधुप अधीर ॥
सुरत-जलद-रस पूरित सर, ऊसर वसि 'व्यास' गँभीर ॥५१४॥

राग नट

कौन समै सखी अवहिं मान कौ ।
सरद निसा गई,अरुन दिसा भई, होत न उदौ भान कौ ॥
दधि-भाजन घनघोरि घमर ब्रज, सुनियत सवद गान कौ ।
चकई वोलत, भँवरन गुंजत, तोहि स्वाद नहिं कान कौ ॥
विलपत रुदन करत तन छाँड़ै, लोभ करत नहिं प्रान कौ ।
लेत उसास वास लै तेरी, करि विस्वास सुदान कौ ॥

चौंकि चितै उझकत तेरौ पथ, आहट सुनतहिं पान कौ ।
धरकि धरनि पर लुठत उठत नहिं, डरु करत पंचवान कौ ।।
रति के भूखे पतिहिं परोसति, भोजन अंग - दान कौ ।
'व्यास'स्वामिनी दियौ आचवनु,कुँवरहिं अधर-पान कौ ।।५१५।।

राग देवगधार

रति विहात न वन-वन भटकैं ।
तो विनु छिनु जुग सत सम लेखत, मोहन रति-गृह अटकैं ।।
सभ्रम हरि जु जुन्हाई भेटत, चकृत पान के फटकैं ।
तुव पथ जोवत, रोवत ठाढ़े, तर हरि वंसीवट कैं ।।
जमुना-जल झंपत अति कंपित, मानत नाहिंन हटकैं ।
क्यों करि धीर धरै अलि लपट, या मुख कौ मधु गटकैं ।।
इतनौ सुनि मुनिव्रत तजि नागरि, आई नागर - नट कैं ।
'व्यास' आस पुजई, हँसि वस कियौ, लालन भौंहनि मटकैं ।।५१६।।

राग गौरी

मान-गढ़ चढ़त सखी कत आजु ।
स्याम कामबस घेरि सुदृढ़ कै, करिहै अपनौ काजु ।।
तेरे सुभट कटकई जोरि, तोरि हित करत अकाजु ।
मन सेनापति मिल्यौ वाहि लै, जाहि लग्यौ सब काजु ।।
मेरौ कह्यौ सुनहि किनि, पियहिं अकोर उरज दै गाजु ।
'व्यास' वचन सुनि कुँवरि निवाज्यौ,स्याम लियौ सिरताजु ।।५१७।।

राग कल्याण

सँदेसौ कह्यौ दूतिका आनि ।
अनबोलैं सब अंग दिखाये, नागरि लैहै जानि ।।
वदन पसारि निमेषनि विनु चितयौ, सिर पर धरि पानि ।
कान कुकाइ, गाइ -हँसि नाच्यौ, धरनि गिरनि मुरझानि ।।
पुलकित,कंपित, स्वेद भेद तन, अँसुअनि आँखि चुचानि ।
मूँदत स्रवन, उसास कंठ धरि, फारत पट दुखदानि ।।
वनमाला तोरति, जोरति कर, पाँइ परति मुसकानि ।
सीतल भेंटि कमल उर पहँ धरि, कदलि - खंभ लपटानि ।।
औरौ विपदा सुनि मुनिव्रत तजि, छूटी जिय की वानि ।
'व्यासदास' के समुझि विनोदनि, कुँवर जिवाये आनि ।।५१८।।

राग सारंग

आवति जाति विहानी रात ।
समुझायें समझत नहिं तू सखि, ता ऊपर अनखात ।।
देखौ चकई पियहिं मिलन कों, अति आतुर अकुलात ।
चचल भँवरनि भँवर मिलन कों, कमल कोष मँड़रात ।।
तेरे विरह हमारीउ अँखियन, अँसुवा उमगि चुचात ।
सु करि जु तो तें होइ सयानी, पाँ लागति मुसक्यात ।।
इतनौ सुनि मुनि व्रत तजि नागरि, पिय के हिय लपटाति ।
विहरत देखि, 'व्यास' निज दासी, फूली अग न मात ।।५१८।।

राग देवगिरी व गंधार

क्यौं मन मानै गोरी कैसैं इन बातनि ।
येही काज कों मनावन आई, मान किये कौ—
दुख - सुख उपजतु देखैं पिय - गातनि ।।
स्याम लै आपने काज कों बावरे,
वधिक तें अधिक जानत घातनि ।
'व्यास'कौ स्वामी कोकिला हू तें कपटी, अपनी—
चौप अपन्याइत करि पुनि अत मिलै पितु-मातनि ।।५२०

राग सारंग

देहि सखि, पियहिं प्रान कौ दान ।
तू अति चतुर उदार - सिरोमनि, करत कृपनता मान ।।
वन विलपत, मुख देखे विनु, दुख पावत रूप - निधान ।
उठि चलि करुनावंत कंत की, तन - वेदन पहिचान ।।
जियत स्याम तव नाम गाइ गुन, करि - करि रूप-वखान ।
पतति पतत्र पत्र - रव सुनि - सुनि, पथ जोवत दै कान ।।
सारंग - नैनी चली अली सँग, सुनि सारँग की तान ।
'व्यास' स्वामिनी रति - रन जीति, हन्यौ नू पुर नीसान ।।५२१।।

राग धनाश्री

तेरे दरसन कहँ सुनि राधा, प्रीतम अति अकुलात ।
रात विहात न भटकत कुंजनि, विलपत काल न जात ।।
विसर्‌यौ वैनु रैनु तन लागी, पीरै पट न सुहात ।
गुंजा विपति-पुंज - मनि - भूषन, गिरत गात निरधात ।।
पुलकित, कंपित, स्वेद स्रवत अति, नैननि नीरु चुचात ।
तेरे कुच - आलिंगन विनु क्यों, उर - संताप वुझात ।।
मिली 'व्यास'की स्वामिनि करुना-सिंधु,रसिक पीवत न अघात।।५२

राग कान्हरौ

कुँवरि करि प्रान-रवन सों हेत।
तेरें त्रास उसास न आवत, मोहन भयौ विचेत ॥
तोहू अछत मदन कदनानल, स्यामहि अति दुख देत।
जलधर-अधर वरषि किनि सींचहिं, सुरति वीज कौ खेत ॥
त्राहि, विरहि-विपदा तें सुंदरि, कुँवरहिं हमहिं समेत।
तो विनु वृंदावन हम कहँ भयौ, कारागृह सकेत ॥
आतुर हमहिं निहोरत, पाइँनि परतु, वलैया लेत।
प्यिहिं मिली हँसि'व्यास'स्वामिनी, सुख सागर कौ खेत ॥५२३॥

राग कान्हरौ

कहा भयौ जो प्रान-रवन तें वारिक चूक परी ॥
ठाकुर लेइ सँवारि वेगि ज्यौं, सेवक तें विगरी ॥
तेरे डर कर काँपत पिय के, पियरि परी मुखरी।
अलकनि ओट, पलक नहि नैननि, हिरनी सी विडरी ॥
अधर दुरावत उरहिं धकधकी, सुधि - बुधि सव विसरी।
लेति उसास, 'व्यास' प्रभु कौ उपहास करहि जिन री ॥५२४॥

राग सारंग

गावत प्यारौ, राधा! तेरौ जसु।
तेरोई नाम जपति अरु विलपत है, काम कों स्यामहिं संक सु ॥
कह्यौ न परै दारुन दुख प्यारो, तेरे विरह मोहन के कंठ रह्यौ असु।
'व्यास'स्वामिनी,करुना करि राख्यौ,हरि चाख्यौ अधर-सुधा-रसु॥५२५॥

मानसरोवर हंस दुखारौ।
सीतल कमल-खंड-मंडन विनु, कैसैं होत सुखारौ ॥
नीर छीर नहिं निवरत प्यासै, विलपत ह्वै गयौ कारौ।
मुकताफल विन दीन छीन भयौ, जोवन-धन कौ गारौ ॥
खंजन मीन मधुप देखे विनु, जानत जग अँधियारौ।
'व्यास' हंसिनी विहँसि मिली, निजु अंग चुनायौ चारौ ॥५२६॥

कोप करति कत वात कहे तें।
रास रजनि में विरस होत सखि, पिय सों रूसि रहे तें ॥
धरमु न रहतु नाइका कौ कछु, पति कों विपति सहे तें।
कीरत विमल वाढ़िहै जुग-जुग, प्रीति ओर निवहे तें ॥
वलि-वलि जाउँ रहै न कछू सुख, चंचल मन उमहे तें।
यह सुनि पिय के हिय लपटानी, 'व्यास'हिं चरन गहे तें ॥५२७॥

राग जयतिश्री

करि प्यारी, पिय कौ सनमान ।
मानिनि ! मान मनायौ, वलि जाउँ, सुनि विनती दै कान ॥
सुंदर सुघर रसिक कुँवरहिं तू, निज अनुचर करि जान ।
तू जीवन-धन भूषन हरि कैं, तो विन सरन न आन ॥
तौ हू अछत मृदुल उर वेधत, विरह - वधिक कौ वान ।
अधर - पान प्रीतम माँगत सखि, दै विवि उरज प्रधान ॥
मदन भुजंग गरल की औषद, तुव अधरामृत - पान ।
तेरौ प्यारौ जाचक जाचत, तोपै जीवन - दान ॥
तो विनु दीन छीन विलपत ज्यों, जल विनु मीन तजत है प्रान ।
सु करि जु तो तैं होइ सयानी, तो सौ कौन सुजान ॥
तो विनु विपिन भयानक, कुंजमहल अति करत विथान ।
फूल त्रिसूल, दुकूल दहन सम, चंद्र किरनि जनु भान ॥
धीर - समीर तीर से लागत, करत भँवर - पिक गान ।
मोर - मुकट सिर, भार हार सखि, चंदन गरल वितान ॥
कहौं कहाँ लौं, कहौ धीर की पीर, सखी जिय जान ।
हा राधे, हा कुँवरिकिसोरी, विलपत रूप - निधान ॥
सुख - साधन सव दुख-भाजन भये, कहत न वनै वखान ।
करुना-सिंधु 'व्यास' की-स्वामिनि, पियहिं मिली तजि मान ॥५२८॥

राग मारू व मालव

आवत जात सवै निसि निघटी, अजहू मान निवारियै मानिनि !
तेरौ मग जोवत मनमोहन, तुव पटतर कोऊ और न भामिनि !
तुही राज, तुही पाट, तुही तन, तुही मन, तुही प्रानन की प्यारी गजगामिनि !
कुंज-महल में तलप साजि वैठे, वेगि पाँउ धारियै, 'व्यास' की स्वामिनि !

राग सारंग

तुम विनु स्याम भयौ अति दीन ।
जैसैं जल विनु जेठ की सलिता, कैसैं जीवत मीन ॥
कृपन गाँव में कैसैं जीवै, जाचक वपुरा छीन ।
तो मुख विनु वृंदावन कौ सुख, कुँवरहिं लागत खीन ॥
चंदहिं लग्यो चकोर, व जैसैं चातृक घन - आधीन ।
ऐसैं तेरे अंगन के रस, जीवत कुँवर प्रवीन ॥
जैसैं सकल कला - गुन प्रगटत, नहिं जानत गुनहीन ।
ऐसैं 'व्यास' स्वामिनी कुच विच, प्रीतम कीनौ लीन ॥५३०॥

राग केदारौ

रजनी त्रिक्षन होत, तुव न मान हीनौ।
काहे को कुँवरि, ऐसौ हठ कीनौ॥
चदा द्युति मद, तारागन - छवि छीनौ।
तू अनारिनि सरस लागतु नवीनौ॥
कुमोदनी कुंदन की कली कुम्हिलानी।
रति - रस रिस भरी तैं न प्रीति ठानी॥
अरुन बरन दिसा, रवि प्राची अनुरागी।
नैन - कोर ओर निरख तू न प्रेमपागी॥
बिकसन लागे कमल, मधुप मधुर बोलैं।
बाँके, बड़े टौनहा, ये तौन नैन खोलैं॥
'व्यासदासि' कहत हौं, कह्यौ मान मेरो।
जानौंगी, जो लालजी सों मान रहै तेरौ॥५३१॥

राग जयतिश्री

कहाँ लौं कहियै दुख की बात।
सुनि सुंदरि, तो बिनु सुंदर कौ, जैसैं द्यौस बिहात॥
एक संदेसौ कहि पठयौ पिय, आतुर अति अकुलात।
तौ जीवैं जो मेरी सखी, दिखावै तू उरजात॥
मोहिं बहुत सुख ह्वै है, मेरी दूतिहिं उर लपटात।
मेरौ हियौ सिरैहै दूतिहिं, चुंबन दै मुसिकात॥
जो कछु सहचरि कहै, सु मेरौ कह्यौ जानिबौ जात।
'व्यास' बिनोद समुझि हँसि प्यारी, पिय सँग बिहरत प्रात॥५३२॥

कहौं का सौं, समुझै को बात ?
जानै जान सयान कहैं-हू, मानैं मन अकुलात॥
कैसैं जियै चकोर कहा पियैं, चदहिं गगन समात।
पियै न वारि बिडार्यौ चातृक, करि मन घन की बात॥
दीन न होत मराल, मीन - कुल सर सूखै मरि जात।
माधूकरी न माँगत मधुकर, गिरत कमलदल पात॥
वारि बियारि झकोर दुखित ह्वै, गिरि पर मेघ चुचात।
कनक चुरायैं बिनु कनक चुरी ये, सहज सुखी न अघात॥
मृगतृष्णा लगि दुहुँदिसि धावत, व्याकुल मृग न बुझात।
'व्यास'वचन सुनि मुनि मिल खेलत, सोच सकुचि पछितात॥५३३॥

राग नट

तू नैंक देखि री, प्रीतम कौ मोहन - मुख ।
गौर चरन पर, अरुन-स्याम छवि, मनौ विधुकुल सों करत कमल रुख ।।
अरु लोचन जल-बिंदु विराजत, मनहुँ मधुप मधु वमत मानि दुख ।
आरत जानि आनि उर लालहिं, 'व्यास' स्वामिनी देति सुरत-सुख ।।५३४।।

राग पट (गजतिताल)

सुनहि सुचित ह्वै सुंदरि, गुपत सँदेसौ स्याम कह्यौ ।
कठिन दह्यौ जिहिं वारक चाख्यौ, ताहि न रुचित मह्यौ ।।
सुवसु सरोवर सूखि गये हू, दादुर धीर रह्यौ ।
पावस ऋतु बिछुरें सब सूखें, चातक सबै सह्यौ ।।
उपहति बहुत सहंत मृग, बन सों प्रीति-रीति निवह्यौ ।
एक-एक अँग के सुख बिनु,दुख-सागर नहिं परतु थह्यौ ।।
सब कोऊ अपनौ हठ पोषत, करि जेही जु गह्यौ ।
'व्यास' स्वामिनी सुनत मिली हँसि, करुना-सर उमह्यौ ।।५३५।।

राग केदारौ व कमोद

पीन पयोधर दै मेरी दीनैं ।
अधर-सुधा मधु प्याइ जिवावहु, बिरह-रोग बलहीनैं ।।
ओली ओटत चोली के बँद, खोलन दै आधीनैं ।
कुच गहि चुंबन - दान लैन दै, चरन-कमल-रज-लीनैं ।।
अपनैं अंग नगन के घर मे, मिलन दै स्याम नगीनैं ।
'व्यास' स्वामिनी सुनि रति-सलिता, पोषत मोहन-मीनैं ।।५३६।।

४१. श्री लाल जू की उत्सुकता—

राग बिलावल

बोलन लागे री, तमचुर मधुर बोल ।
अज हूँ न आई प्रान प्यारी, फूलन लागे कमल - टोल ।।
वरुन - दिसा खसत ससि, कज-कोप मधुप लोल ।
मदन - दहन ताप ज्वलित, अग-राग कुसुम झोल ।।
पिय-बिलास[1] सुनत निकट, मिलत कप पुलकित कपोल ।
बिहरत 'व्यास' स्वामिनी मोहन, बस कीनौ बिनु मोल ।।५३७।।

1. बिलाम (क, ग), बिलाप (च, छ),

राग धनाश्री

देखि धौं री, इहिं मग राधा आवति ।
तन चमकत,भूपन-धुनि सुनियत,अरु गुन-गति लै गावति ।।
अद्भुत राग-रागिनी-घन वरषत, आनँद-सिंधु बढ़ावति ।
सौंधौ महकि रह्यौ तन गोरे,अंग परसि सब ताप बुझावति ।।
'व्यास'स्वामिनी उझकि औचका, पियहिं हिय सों लावति ।।५३८।।

४२. सखी वचन श्री लाल जू प्रति—

राग कान्हरौ, बागेश्वरी (मूलताल) व सारग

अब हीं आवैगी पिय, प्यारी ।
काम पोच अति, स्याम सोच तजि, सुनहु मते की—
बात स्रवन दै, तनक रही उजियारी ।।
जैसी तुमहिं चोंप, तैसीयै उनहिं जानि ,
मोहि संतोष आनि, जाउँ वलिहारी ।
धीर धरहु मन, पीर सहहु तन, तुम जु कहावत—
सूर सब ही विधि, कहा करै वह नारी ।।
अरबरात, हौं अब ही देखि आई ,
बिकट बीथिनु धाई, देह न सिंगारी ।
'व्यास'की स्वामिनि दामिनि सी चमकति,लखी न परति,
अँग - अँग लपटानी बिहरत बिहँसि बिहारी ।।५३६।।

४३. सखी के चोज के वचन—राग कमोद

कहि या सों तोहिं कौन सिखाई ।
तू गोरी यह स्याम किसोरी, धन्य तुम्हारी माई ।।
इहिं वन कब कौ वास तुम्हारौ, कहि मो सों समझाई ।
अदभुत रूप तुम्हारौ देखत, नैननि नहीं अघाई ।।
तुम राधा मोहन हू तें सूझत अग-अग अधिकाई ।
कोटिक कवि रसना पावैं हू , मुख-छवि कहत न जाई ।।
इतनौ सुनत मान तजि मानिनि, कौतिक देखन आई ।
'व्यास' स्वामिनी नागर हँसि कैं, सरस हियैं लपटाई ।।५४०।।

राव देवगिरि

आज वन एक कुँवरि वनि आई ।
ताहि देखि रीझे मनमोहन पिय, ता तें तू न मनाई ।।
बाजत ताल मृदंग सग उहि, अग सुधंग दिखाई ।
गावति, हस्तक-भेद दिखावति, नख-सिख स्याम वनाई ।।

रास-रसिक सौं हिलमिलि खेलति,सब विधि सुघर सुहाई ।
मोहिं पत्याहि न, तौ तू ही चलि, बलि वृषभान-दुहाई ॥
वचन मानि धुनि सुनि दुख-सुख करि,सहचरि उर लपटाई ।
बिन कुच सकुच समझि'व्यास'स्वामिनी,हँसी रसिक रिझाई ॥५४१॥

राग बिलावल

ऐसी कुँवरि, कहाँ पिय पाई ।
राधा हू तें नख सिख सुंदर, अब लौं कहाँ दुराई ॥
का की नारि, कौन की बेटी, कौन गाँव ते आई ।
सुनी न देखी ब्रज - बृंदावन, सुधि-बुधि हरति पराई ॥
या कौ सुभग सुहाग भाग अति, भाम जुवति मन भाई ।
या ही के रस - बस ह्वै तुम, वृषभान-सुता बिसराई ॥
यह विनोद सुनि देखन आई, रवकि कंठ लपटाई ।
'व्यास' स्वामिनी बिहँसि मिली तहाँ,सरस सुधंग नचाई ॥५४२॥

राग धनाश्री

सुनि राधा,मोहन हौं दूती, कपट वचन कहि-कहि बौराई ।
तोहिं मनावन मोहिं पठै पुनि, दूती एक अनत दौराई ॥
मैं अपनौ सौ बहुत कियौ, पै कहा करौं लंपट अधिकाई ।
अति सूरौ जो चनावचूरौ, तौ पूरौ गिरि भेद न जाई ॥
चलि हौं कौतिक तोहि दिखाऊँ,सुंदरि एक ललन पै आई ।
तोहू ते गुन - रूप - आगरी, मानहुँ रंक परम-निधि पाई ॥
इतनौ सुनि उठि चली अली सँग,रुचिकरि कुँवरि कंठ भुज नाई ।
अंगनि-अंग परसि हँसि दोऊ,'व्यास'गिरे आतुर मुसक्याई ॥५४३॥

राग गौरी •

सुनि गोरी, तैं एक किसोरी वन मे देखी जात[1] ।
ता बिनु दीन छीन हौं डोलत, कोऊ न बूझत बात ॥
तेरी सी उनिहारि, नारि के सबै लुभारे गात ।
चितवत चलत अधिक छबि उपजति,कोटि मदन-सर-घात ॥
तू अपनौ ब्यौरो कहि मो सौं, अधर नैन मुसिक्यात ।
'व्यास' स्वामिनिहिं वार न लागी, स्याम-कंठ लपटात ॥५४४॥

---

[1] यह पद 'किसोरी देखी बन में जात' स्थायी से भी प्रति (ग, च, छ), में दूसरी बार लिखा गया है ।

राग गौरी

मोहन की देही उलट रची री ।
भई स्याम तें पीत घरनि, दुख - तरनि प्रताप तची री ।।
नैननि - सर बूडत, विरह - दहन तें जरत बची री ।
हा राधे, रव स्रवन सुनत ही, अज हूँ न निठुर लची री ।।
चदन, चद, पवन, वन घन करि, दुख की रास सची री ।
तो विनु अनत न सरन मीत कहँ, मीति सभा बिरची री ।।
इतनी सुनि उठि चली अली सँग, अंग सुधंग नची री ।
'व्यास' स्वामिनी रति-रस वरषति,रति-रन-कीच मची री ।।५४५।।

राग बिलावल

कहँ न पत्यैहै कोऊ वात ।
स्याम काम - वस गौरे ह्वै गये, राधा के से गात ।।
जैसौई ध्यान धर्‌यौ तैसेई भये, अधर, गड, उरजात ।
नख-सिख अंग अनंग मोहियत, देखत नैन सिरात ।।
वह गुन - रूप तो हू में है सखि, फूल झरत मुसिकात ।
गज-मराल-गति निरखत मोहे, रति - मनसिज सघात ।।
अपनी जोरिहिं भेंट्यौ चाहत, ललिता की वलि जात ।
तैं ही रस में बिरस कियौ, अब कौन काज पछितात ।।
कंठ वाहु धरि चली अली कैं, सुनि अदभुत अकुलात ।
'व्यास' स्वामिनी परसत मोहन, धरनि गिरे लपटात ।।५४६।।

राग देवगंधार

कोऊ राधाहिं देहु जनाउ ।
ठाढ़ी सखी कुंज के द्वारैं, कुँवरि बेग दै आउ ।।
कौतुक एक अचभे कौ सखि, निरखत नैन सिराउ ।
इन तुम ऐसौ सुन्यौ न देख्यौ, कीजै या पर भाउ ।।
सुदरि एक हौन आई तव, सहचरि करि चित - चाउ ।
मेटन कहति कुटेव कुँवर की, छलवल करति सहाउ ।।
यह सुनि आनि पॉउ गहि भेंटि, मेटि दुख मुख दिखराउ ।
'व्यास' आस मोहन की पुजई, मिटि गयौ वात वढ़ाउ ।।५४७।।

राग सारंग

मोहन - मुख देखत छूट्यौ मान ।
नैन लालची हँसि लपटाने, छवि मह दव्यौ सयान ।।

मंद हँसनि सब कौ धीरज हरि, चित चेत्यौ करि गान ।
घूँघट - पट उभयौ चलि सैननि, लग्यौ मैन कौ बान ॥
विकल जानि,गहि पानि,आनि उर, विरच्यौ सुरत-वितान ।
'व्यास' स्वामिनी पियहिं सुनायौ, रति-रन कौ जु निसान ॥५४८॥

४४. अभिसार— राग कमोद

मोहनी मोहन की प्यारी ।
सुरत सेज, लै चली अली सँग, कोटि चंद-चाँदिनी उज्यारी ॥
नारीकुंजर कौ लहँगा, अँगिया कारी झूमक सारी ॥
कंकन, किंकिनि, नूपुर बाजत, लाजत कोटि-काम बलिहारी ।
अँग-अँग सोभित नाना भूषन, सहज रूप-गुन - गान सिंगारी ॥
दृष्टि कमल-दल पथ रच्यौ पिय,हिलगनि उरज माँह अनियारी ।
'व्यास'स्वामिनी के सँग विहरत, विरह चमूँ अनियास विडारी ॥५४६॥

रजनीमुख सुखरासि चली ।
पिय सुरति - सेज सजि स्याम, बाम अँग रँगी अली ।
बदन चंद कर रंजित, विविध सुगंध सुवासित कुंज गली ॥
कुमकुम-रज-कपूर - धूर पर, चरननि परसत चंपकली ।
सेज रचत उझकत द्वारै, हँसि भेटत, मोहन करमवली ॥
ताल तमालहिं अरुझी ललना,कनकलता.कुच फलनि फली ।
रग रह्यौ क्यों कह्यौ परै, देखत दुरि सुखहिं'व्यास'वृपली‡॥५५०॥

राग कान्हरौ

चलत तू भेद की माई चाल ।
रचि-रचि चरन धरति मति उपजत, देखि लजाने कीर-मराल ॥
किंकिनि-कंकन-नूपुर-धुनि सुनि, नटत मृदंग सुधग सुताल ।
हस्त-कमल हस्तकनि दिखावत, मनु मिलवत अरु बाहु-मृनाल ॥
अचल माँझ न चचल कुच-घट,मटकि चटकि चित हरत रसाल ।
मुरि मुसक्याति भाँति सौं चितवत, काम करत स्यामहिं बेहाल ॥
गावत, काम-बान तकि मारत, विथकित मोहन-मन मृग-माल ।
इहि विधि'व्यास'विहरि भामिनि सँग,जीवन कौ फल पायौ लाल ॥५५१॥

‡ परै 'व्यास' देपत सुपहि दुरि दुपली (क)
देखत दुरि सुखहिं 'व्यास' वृपली (ग च, छ)

राग बिलावल, बिहागरौ

बिहरत गौर - स्याम सरीर।
कुसुम - कुल सयनीय रचि, कमनीय भूषन - चीर॥
सीत सीकर - निकर, मंजुल कंज - कुंज - कुटीर।
नदति भृंग, कुरंग, केकी, कोक, कोकिल, कीर॥
बिकच, वकुल, गुलाब, चंपक, केतकी, करवीर।
तरनिजा बल बीच कल, पट वास वहत समीर॥
चंद्र - किरनि तुषार - मंडित, विटप दल वा नीर।
हरित गिरि - भू - पथ पंकित, स्रवत गो-धन - छीर॥
अमित नव कपूर, कुमकुम, मृगज, मलय, उसीर।
बिमल बृन्दाविपिन बाढ़ी, सुख - नदी गंभीर॥
अंग - अंग अनंग - सायक, सहत नहिं तन पीर।
'व्यास' त्रास न करत स्यामा - स्याम रति - रन - धीर॥५५२॥

४५. श्री किसोरी जू के प्रेम के बचन—

राग मलार तथा कल्याण

बोल बँधान न मान करौ, अपराधहिं हौं न छमौंगी।
लवा-लूतरी अब न मानिहौं, देखत कछू* कहौंगी॥
दुरुख दुभाषहिं साख नहीं कछु,इकरुख दुखहिं डहौंगी।
आतुर होइ न चतुर स्याम सुनि, हौं फिरि पाँइ गहौंगी॥
बरबट लटपट गइत 'व्यास' की, प्रीतिहिं लै निबहौंगी॥५५३॥

राग जयतिश्री

कबहूँ अब न रूसिहौं प्यारे।
सदा तूठि हौं सुख दै प्रीतम, कृतिहिं न मानत कारे॥
तुम बडजीव, जीविका हौं, पिय ! तुम अखियाँ, हौं तारे।
तुम मन, हौ मनसा, तुम चित, हौं चिता प्रान-पियारे !
तुम सरीर, हौं अतरजामी, हौ धन, तुम रखवारे।
तुम विपई, हौं विपय, भोगता तुम, हौं भोग ललारे !
हौं चाँदिनी, चकोर तुम हौ,हम घन,तुम चातक वर न्यारे।
हौं जलरुह, तुम अलि, हौं जल, तुम मीन अधीन हमारे॥
हम - तुम बृंदावन की संपति, दंपति सहज सिंगारे।
'व्यासदासि' रस - रासि हमारी, लूटत कोटि चिसारे॥५५४॥

---

* कछू (ग, च, छ), कछु न (क)

राग धनाश्री

सुनहि पिय. जिय तें हौं न रिसानी ।
तुम्हरे मन कौ मरमु लेत ही, अरु चित काज निसानी ।।
साँचे ही दुख पायौ, सुंदर मुख-कमल-कांति कुम्हिलानी ।
मेरौ कोप जानिबौ झूठौ, सदा मौन अभिमानी ।।
प्रगटी ऊपर सबै कालिमा, भीतर कौनैं जानी ।
उर न समाति विपति की संपति, सुनियत कपट-कहानी ।।
लेत उसास आस करि हरि-हरि कहि, सहचरि मुसिकानी ।
समुझि विनोद 'व्यास' की स्वामिनि, स्याम-कंठ लपटानी ।।५५५।।

राग कान्हरौ

मान करत मैं कीनौ, फिर पाछैं पछितानी ।
रस में विरस कियौ क्यौं प्रीतम, सुनत तुम्हारी करुना - बानी ।।
हम तुम एक प्रान द्वै देही, सहस सनेही ज्यौं पय पानी ।
कहनि,रहनि,गति,मति,रति एकै,प्रीति-रीति क्यौं जाति बखानी ।।
मेरौ तनु तुम्हरौ भूषन-धन, यहै हिलग सकल जग जानी ।
ता तें तुम सौं लाड़ करति हौं, जा तें तुम नाहिंन अभिमानी ।।
जो हौं करति सोई सब छाजत, तुम सौ पति. बन सी रजधानी ।
ललिता सी सहचरि अनुगत अब,'व्यासदासि'मम हाथ बिकानी ।।५५६।।

४६. सेज्या रस—

राग बिलावल

स्याम - सुंदरी सुवेस, बदन - कमल भँवर - केस,
वृंदावन पुन्य देस, नव नरेस प्यारे ।
कंठ बाहु मेलि केलि करत, हरत सब कौ मन,
डरत नाहिंन जोवन - जोर बिलसत न सम्हारे ।।
नव निकुंज, सुखनि पुंज बरषत अति हरषत दोऊ,
मंद हँसनि दूरि करत कोटि चंद उज्यारे ।
गावत कल, नाँचत थल, भृकुटि भंग, लोचन चल,
अंग - अंग रंग भरे भाँवते हमारे ।।
विचित्र पत्र - सेज रची, विविध माधुरी न बची,
निरखि मदन - घरनि लची, तन - पट न सँभारे ।
विनोद-रासि राधिका कौ कौतुक सखी वृंद देखि,
'व्यासदासि' दारुन दुख मेटि, प्रान वारे ।।५५७।।

राग बिलावल, बिहागरौ

बिहरत गौर - स्याम सरीर ।
कुसुम - कुल सयनीय रचि, कमनीय भूषन - चीर ।।
सीत सीकर - निकर, मंजुल कंज - कुंज - कुटीर ।
नदति भृंग, कुरंग, केकी, कोक, कोकिल, कीर ।।
विकच, बकुल, गुलाब, चपक, केतकी, करवीर ।
तरनिजा बल बीच कल, पट वास वहत समीर ।।
चंद्र - किरनि तुषार - मडित, विटप दल बा नीर ।
हरित गिरि - भू - पंथ पंक्ति, स्रवत गो-धन - छीर ।।
अमित नव कपूर, कुमकुम, मृगज, मलय, उसीर ।
बिमल बृन्दाविपिन बाढ़ी, सुख - नदी गभीर ।।
अग - अग अनंग - सायक, सहत नहिं तन पीर ।
'व्यास' त्रास न करत स्यामा - स्याम रति - रन - धीर ।।५५२।।

४५. श्री किसोरी जू के प्रेम के बचन—

राग मलार तथा कल्याण

बोल बँधान न मान करौ, अपराधहिं हौं न छमौंगी ।
लवा-लूतरी अब न मानिहौं, देखत कछू* कहौंगी ।।
दुरुख दुभापहिं साख नहीं कछु, इकरुख दुखहिं दहौंगी ।
आतुर होइ न चतुर स्याम सुनि, हौं फिरि पाँइ गहौंगी ।।
बरबट लटपट गइत 'व्यास' की, प्रीतिहिं लै निबहौंगी ।।५५३।।

राग जयतिश्री

कबहूँ अब न रूसिहौं प्यारे ।
सदा तूठि हौं सुख दै प्रीतम, कृतिहिं न मानत कारे ।।
तुम बड़जीव, जीविका हौं, पिय ! तुम अखियाँ, हौं तारे ।
तुम मन, हौ मनसा, तुम चित, हौं चिता प्रान-पियारे ।
तुम सरीर, हौं अतरजामी, हौं धन, तुम रखवारे ।
तुम विषई, हौं विषय, भोगता तुम, हौं भोग ललारे ।
हौं चाँदिनी, चकोर तुम हौ, हम घन, तुम चातक वर न्यारे ।
हौं जलरुह, तुम अलि, हौं जल, तुम मीन अधीन हमारे ।।
हम - तुम बृदावन की संपति, दपति सहज सिंगारे ।
'व्यासदासि' रस - रासि हमारी, लूटत कोटि विसारे ।।५५४।।

---

* कछू (ग, च, छ), कछु न (क)

राग धनाश्री

सुनहि पिय, जिय तें हौं न रिसानी।
तुम्हरे मन कौ मरमु लेत ही, अरु चित काज निसानी ॥
साँचे ही दुख पायौ, सुंदर मुख-कमल-कांति कुम्हिलानी।
मेरौ कोप जानिवौ झूठौ, सदा मौन अभिमानी ॥
प्रगटी ऊपर सबै कालिमा, भीतर कौनैं जानी।
उर न समाति विपति की संपति, सुनियत कपट-कहानी ॥
लेत उसास आस करि हरि-हरि कहि, सहचरि मुसिकानी।
समुझि विनोद 'व्यास' की स्वामिनि, स्याम-कंठ लपटानी ॥५५५॥

राग कान्हरौ

मान करत मैं कीनौ, फिर पाछैं पछितानी।
रस में विरस कियौ क्यौं प्रीतम, सुनत तुम्हारी करुना - बानी ॥
हम तुम एक प्रान द्वै देही, सहस सनेही ज्यौं पय पानी।
कहनि, रहनि, गति, मति, रति एकै, प्रीति-रीति क्यौं जाति वखानी ॥
मेरौ तनु तुम्हरौ भूषन-धन, यहै हिलग सकल जग जानी।
ता तें तुम सौं लाड़ करति हौं, जा तें तुम नाहिंन अभिमानी ॥
जो हौं करति सोई सब छाजत, तुम सौ पति, वन सी रजधानी।
ललिता सी सहचरि अनुगत अब, 'व्यासदासि' मम हाथ बिकानी ॥५५६॥

४६. सेव्या रस—

राग बिलावल

स्याम - सुंदरी सुवेस, वदन - कमल भँवर - केस,
वृंदावन पुन्य देस, नव नरेस प्यारे।
कंठ बाहु मेलि केलि करत, हरत सब कौ मन,
डरत नाहिंन जोवन - जोर विलसत न सम्हारे ॥
नव निकुंज, सुखनि पुंज वरषत अति हरषत दोऊ,
मंद हँसनि दूरि करत कोटि चंद उज्यारे।
गावत कल, नाँचत वल, भृकुटि भंग, लोचन चल,
अंग - अंग रंग भरे भाँवते हमारे ॥
विचित्र पत्र - सेज रची, विविध माधुरी न बची,
निरखि मदन - बरनि लची, तन - पट न सँभारे।
विनोद-रासि राधिका कौ कौतुक सखी वृंद देखि,
'व्यासदासि' दारुन दुख मेटि, प्रान वारे ॥५५७॥

राग सारंग

विहरत नवल रसिक राधा संग ।
रचित कुसुम सयनीय, भामिनी - कमल बिमल, हरि - भृंग ।।
अधर - पान - परिरभन-चुंवन, विलसत कर जुग उरज उतग ।
नीवी बधन मोचत, सोचत, नेति वचन सुनि अधिक उमंग ।।
नैन सैन, परिहास-वचन कहि, हँसत लसत पुलकित भ्रुव-भग ।
कबहुँक प्यारो मुरली वजावति, मोहन अधर धरत मुख चग ।।
नवनिकुंज रति पुंजनि बरषत, सुख सूचत, नखसिख अंग-अंग ।
बीच-बीच पंचम सुर गावत, सुनि धुनि विथकित 'व्यास'-कुरग ।।५५८।।

राग सारंग

नमो नदनदन-घरनि व्रजजुवति मुकुट-मनि, राधिका सकल गुन रस-निवासे ।
राग-रागिनी गान, सप्तसुर पट ताल, सूलक लगिनि मान रग रासे ।।
सरद-ससि विमल निसि मृदुल पुलिनस्थली,
नलिन, अलि, हस कुल, पिक विलासे ।
अंग सुधंगमय निपुन अभिनय, नौतन वयनि, कल सयनि, मद हासे ।।
कुसुम-सयनीय पर कुँवर कमनीय भुज, कुचनि विच अधर मधु-रस विकासे ।
सुरत-रस-सिंधु मन मगन राधा-रवन, निरखि सखि वृंदावन 'व्यासदासे' ।।

राजत निकुंज-महल ठकुरानी ।
कुसुम - सेज पर पौढ़ी स्यामा, राग सुनत मृदु बानी ।।
ललिता चरन पलोटत, लाल - दृष्टि ललचानी ।
पॉइ परत सजनी के मोहन, हित सों हा - हा खानी ।।
भई कृपाल लाल पर ललिता, दें आज्ञा मुसकानी ।
आऔ मोहन, चरन पलोटौ, जैसै कुँवरनि जानो ।।
आज्ञा दई सखी कों प्यारी, मुख ऊपर पटतानी ।
वीन वजाय, गाय कछु तानन, ज्यों उपजै सुखसानी ।।
गावन लगे रसिक मन - मोहन, तब जानी महारानी ।
उठ वैठी श्री 'व्यास' की स्वामिनि, वृंदावन की रानी ।।५६०।।

४७. विहार—

राग सारंग

राधे जू अरु नवल स्यामघन, विहरत वन-उपवन, वृंदावन ।
ललित लता प्रति लता माधुरो, कुंज-पुंज फूले तिन के तन ।।
भँवर गुंज कोकिलाऊ न वोलत, मुनि - पछी वैठे समूह - गन ।
नैन चकोर भये देखत हैं, प्रेम - मगन भीजे तिन के मन ।।

मिथुन-हास-परिहास-परायन, कोक-कलानि-निपुन राधा-धन ।
रिझयौ नवल कुँवर वर प्यारौ, लै उछंग पुलकित, आनँद-घन ॥
हरिवंसी - हरिदासी बोली, नहिं सहचरि समाज कोऊ जन ।
'व्यासदासि' आगै ही ठाढ़ी, सुख निरखत बीते तीनों पन ॥५६१॥

राग सारग

विहरत राख्यौ रंग अँध्यारे ।
परे पीठ दै रूसत हू, दोउ लपटि भये नहिं न्यारे ॥
चंचल अंचल सनमुख ह्वै, लै उसास दै गारे ।
बरबट ही आँकौ भरि, बधन करि, हँसि नैन उघारे ॥
अति आवेस सुदेस देखियत, दूरि करत पट फारे ।
'व्यास' स्वामिनी रूठी तूठत, पिय के दुखहिं बिसारे ॥५६२॥

राग बिलावल

छबीले रंगनि अंग रचे ।
विहरत रसिक निकुंज - भवन में, रति-सुख-पुंज सचे ॥
कितव किसोर चोर लौं सरबस, लूटत रात पचे ।
अति आवेस मदन बैरी पर्ह, मारत भले बचे ॥
खडित गंड कपोलनि उमग, विदारत कुचनि लचे ।
जनु रन में जूझत ह्वै जोधा, तामस तमकि तचे ॥
आसन करत देत मुख बास, सैन रस ऐन मचे ।
मानहुँ रंग-महल मे नटवा, सरस सुधग नचे ॥
निरखि विनोद 'व्यासदासिन' के, नैन कमल विकचे ।
पुतरिनि मे प्रतिबिंबित जनु, मरकत-मनि-कनक खचे ॥५६३॥

राग सारग

अति सुख सुनत छबीली बतियाँ ।
क्रीडत कुँवर काम-कुंजनि पर, रति-रस-पुंज, सरद-ससि-रतियाँ ॥
कचुकि - नीवी-बधनि मटकत, पटु नागर - नट नाटक ब्रतियाँ ।
गौर-स्याम कर कलह करत हू, विलसत अपनी थतियाँ ॥
छलबल चुंबन करि परिरंभन, सैन चलनि अनभतियाँ ।
हँसत लसत भौंहनि मटकावत, उपजत गुन-गन - गतियाँ ॥
उर ते उरज न टरत, हरत दुख, मुख लटकत लट-पतियाँ ।
देखत 'व्यासदासि' बडभागिनि, नैन सिरावत छतियाँ ॥५६४॥

बृंदावन कुंज-कुंज केलि-बेलि फूली ।
कुंद - कुसुम, चंद, नलिन, विद्रुम-छबि मूली ।।
मधुकर, सुक, पिक, मराल, मृगज सानुकूली ।
अद्‌भुत घनमडल पर दामिनि सी भूली ।
'व्यासदासि' रंग-रासि देखि देह भूली ।।५६५।।

राग देवगधार

विराजत बृंदाविपिन बिहार ।
यह सुख बैननि कहि न परै सखि, नैननि कौ आहार ।।
गौर - स्याम सोभा - सागर कौ नाहिंन पारावार ।
बलि-बलि कहत, रहत पिय-हिय पर, पीन पयोधर भार ।।
सनमुख सैन - सरन सहि सुंदर, कीन्हे मार सुमार ।
सुधा-सिंधु मुख में बरषावत, बर बिधु अरुन उदार ।।
भुजनि भेंटि दुख मेटि बिरह कौ, बिहसत पर्‌यौ बिडारु ।
खर नख कुंदकली दसननि पई, छलबल नहीं उबार ।।
कुच - गहि चुंबन करत हरत मनु, कछू न राखत सार ।
पट - भूषन अंगनि के अंग, सुरत - रस - रंग सिंगार ।।
'व्यास' स्वामिनी, कुँवर कंठ पर मानहुँ चंपक - हार ।।५६६।।

राग सारंग

क्रीडत कुंज-कुटीर किसोर ।
कुसुम-पुंज रचि सेज हेज मिलि, बिछुरि न जानत भोर ।।
स्याम काम वस - तोरि कंचुकी, करजनि गहि कुच-कोर ।
स्यामा मुंच - मुंच कहि, खंडित गड अधर की ओर ।।
नागर नीवी - बंधनि मोचत, चरन गहि करत निहोर ।
नागरि नेति - नेति कहि, कर सौं कर पेलत गहि डोर ।।
मत्त-मिथुन मैथुन दोऊ प्रगटत, वरवट जोवन - जोर ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत,भये सखि लोचन चोर ।।५६७।।

विहरत दोउ ललना - लाल ।
रसिक अनन्य सरस सुख - कारन, वैरिन के उर-साल ।।
कुंज - महल में हेज सेज पर, चपक वकुल गुलाल ।
उडत कपूर - धूरि कुमकुम - रंग, अंगराग वनमाल ।।
गौर-स्याम परिरंभन रालत, पीवत वाहु - मृनाल ।
मानहुँ कनक - वेलि वेली सौं, उरझी तरुन तमाल ।।

कुच गहि चुंबन करत, डरत नहिं, पीवत अधर - रसाल ।
नीवी मोचत नेति वचन सुनि, सोचत नहीं गुपाल‡ ॥
जघनि परस पुलकावलि वेपथ, कल कूजित नव बाल ।
भृकुटि - विलास हास मृदु बोलत, डोलत नयन विसाल ॥
उरजन पर कच सोभित,जनु कमलनि पर चुगत† मराल ।
रति-विपरीति राधिका निरतति, बजति नीवी जति ताल ॥
अंग सुधंग रंग - रस बरषत, हरपत सहचरि जाल ।
वृंदाविपिन राधिका - मोहन, 'व्यास' आस प्रतिपाल ॥५६८॥

राग बिलावल

स्याम गूजरी कहाँ,अति कोमल सरल किसोर ।
सुनि सुकुँवारि कहाँ अति कठिन, कुटिल नख-सिख अँगतोर ॥
कहाँ कपोल गोल मृदु मंजुल, कहाँ नखर रस कोर ।
कहाँ बिंबाधर जलधर सम, कहाँ दसन अन्यारे ओर ॥
कहाँ कुँवर कौ साधु हृदय, कहाँ तव कुच पीन कठोर ।
कहाँ अनुराग, सनेह कहाँ दृढ़ बाँहनि बंधन जोर ॥
कहाँ दीन आधीन, कहाँ तुव बंक नैन चित-चोर ।
'व्यास' स्वामिनी रसिक प्रीत के नाते कह्यौ सुथोर ॥५६९॥

राग कल्याण

ललन की बतियाँ चोज सनी ।
परम कृपाल चितै करुनामय, लोचन - कोर - अनी ॥
उमगि ढरे दोऊ सुरत - सेज पै, टूटी तरकि तनी ।
परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि, बकसति मौज घनी ॥५७०॥

राग सारंग व बिहागरौ

वृंदावन सुख-पुंजनि बरषत कुंजनि-कुंज बिहार ।
तहाँ सेज पर दोऊ बिहरत, जीवन - प्रान - अधार ॥
अंगराग, भूषन - पट भूषित, नख सिख - सजि सिंगार ।
अति आतुर चातुरता बिसरी, लूटत मदन - बिकार ॥
सोई - सोई करत न डरत हठीले, जोई-जोई परत विचार ।
मानहुँ कनक - कामिनी कौतुक, जूझत सुभट जुझार ॥
किंकिनि-नूपुर - धुनि सुनि प्रमुदित, उपजत कोटिक मार ।
मानहुँ निडर नट पद पटकत, तोरत अति गति तार ॥
बिंबाधर - जलधर झर लायौ, बढ़े सुरत के सार ।
'व्यास' स्वामिनी कुच-तुंबनि पर, हरें - हरें कीने पार ॥५७१॥

---

‡ गुपाल (ग), गुलाल (क, च, छ) † चुगत (क); चुग (ग, च, छ)

पिय - मधुपर्हि मधु प्यावति,ज्यावति राधा कमल - कली ।
अधर - माधुरी छिन न तजत, सेवत कुच कुंजगली ॥
मनहुँ हेम ऋतु हित न तज्यौ, चितु दै नहिं विचली ।
संतत सरद, वसंत कंत कहँ, रति - सुख फलनि फली ॥
सहज प्रीति, रस - रीति - सरोवर, सोभा अंग भली ।
'व्यास' स्वामिनी के रस वस भे, मोहन करम वली ॥५७२॥

राग सारंग

स्याम कैं गोरी सहज सिंगार ।
कंचन तन, हीरा दसनावलि, नख मुकता सुखसार ॥
कुच-कलसन महँ प्रान-रतन धरि, अधर-सुधा आधार ।
चरन सिरोमनि कर, नैननि धरि, भुज चंपक मनि-हार ॥
अंग - अंग सेवा रस मेवा, बन - विहार आधार ।
परिरंभन पट - भूषन चुंबन, चितवनि हँसनि भँडार ॥
पिय के गंड अधर, रसना, मुख सुखमय जूठौ थार ।
'व्यासदासि' दिन पीक पियत, वडभागिनि लेत उगार ॥५७३॥

राग सारंग व बिहागरौ

सखि अनुसरत स्याम रिसात ।
समझि अनादर रसिक उजागर, कंठ - उर लपटात ॥
नैंक टेढी भौंह के डर, नैननि नीर चुचात ।
मनहुँ मुक्ता चुनत वाल मराल, चिंचु न मात ॥
मनहुँ कंचन - कमल के रस - लोभ, अलि अरुझात ।
वदन चुंबन करत बरवट, सुनत परिभव बात ॥
कुटिल लोचन देखि तिहिं छिनु, स्रवन स्रम-जल गात ।
मनहुँ चंद तुषार बरषत, सरद पुरइन पात ॥
पीठि दीनैं होत सनमुख, करनि गहि उरजात ।
मनहुँ जुग जलजात उपवन, हंस - चरन सुहात ॥
अब न ऐसौ मान कीजै, नमित कैतव गात ।
'व्यास' प्रभु की गति न जानत, बिरस कवि सनिपात ॥५७४॥

राग कमोद

अंग - अंग रंग भरे, सुरति - समर - खेत खरे,
गौर - स्याम काम - धाम कुंज - पुंज राजैं ।
सैना छवि, सैनक फवि, आगैं सजि उरज,
वृंदावन वीर खेत चीर कवच साजैं ॥५७५॥

निरखि सखि, स्यामा विहरति पिय सों।
मुख महँ अधर, नाहु बाहुन महँ, बिछुरत नाहीं कुच जुग हिय सों ॥
लट में लट, पट मे पट अरुझे, तन मे तन, मन में मन हिय सों।
मिलि बिछुरी न 'व्यास' की स्वामिनि, ज्यौं खाँड़ मिलि पिय सों ॥५७६॥

४८. विपरीत-विहार—

राग देवगधार

आज बन विहरत जुगल-किसोर।
सुरत रास नाँचे सब रजनी, बिछुरत नाहिन भोर ॥
कामिनि कुटिल तमकि तन झूलति, रति बिपरीति हिलोर।
कामी करत बयारि, स्रमित प्यारी बसनाचल-छोर ॥
बिगलित केस कुसुम-कुल बरषत पिय पर, जनु घन घोर।
अधरामृत माते कोऊ काहू गनत न, जोवन-जोर ॥
हरि-उर ऊपर बिलसत दोऊ, पीन पयोधर टोर।
मानहुँ गौर-स्याम सुख-सागर, तरलित तुंग हिलोर ॥
मंद हास परिहास-परायन, भ्रकुटि कुटिल चित-चोर।
बिबि मुख-चंद-सुधा-रस पीवत, लोचन चारु चकोर ॥
कबहूँ कामिनि के हरि पाँइन, लागत लेत निहोर।
झिलत, मिलत, सुख निरखत 'व्यास' हिं, आनँद बढ़्यौ न थोर ॥५७७॥

आज बन विहरत जुगल-किसोर।
सघन निकुंज-भवन महँ विहरत, सहज सयान प्रीति नहिं थोर ॥
गौर-स्याम तन नील-पीत पट, मोर-मुकुट सिर डोर।
भूषन, मालावलि, सज मृगमद, तिलक भाल भरि ओर ॥
प्रथम अलिंगन-चुंबन करि, अधरन की सुधा निचोर।
मानहुँ सरद-चंद की मधु, चातिक तृषित चकोर ॥
मंद हँसन मन मोह्यौ भृकुटिन, नैननि चित बितु-चोर।
करजनि जुगल उरज-रस-आतुर, कसि कंचुकि-बँद तोर ॥
कोमल मधुर बचन-रचना रचि, नागर नीवी छोर।
सरस जघन परसत सुख उपजत, कुँवरि हँसी मुख मोर ॥
कोक-सुरत-रस बीर धीर दोऊ, कहत रहत हो, हार।
सिथिल नैन पिय के देखत, विपरीति 'व्यास' रस-रति गोर ॥५७८॥

राग सारग

वन विहरत वृषभान-किसोरी ।
कुसुम - पुंज सयनीय, कुंज कमनीय, स्याम -रँग वोरी ।।
नीवी-ग्रथन छोरत, मुख मोरत,पिय चिबुक चारु टकटोरी ।
ओली ओढ़ि खोलि चोली, दुख मेटि भेटि कुच जोरी ।।
सरस जघन दरसन लगि,चरन पकरि हरि कुँवरि निहोरी ।
मदन - सदन कौ वदन विलोकत, नैननि मूँदति गोरी ।।
केस करषि आवेस, अधर खडित, गडनि झकझोरी ।
रति विपरीति, पीत छवि स्यामहिं,फवि गई अंगनि रोरी ।।
विविध बिहार माधुरी अदभुत, जो कोऊ कहै सु थोरी ।
जाहि प्यास या रस की ता सों, 'व्यास'प्रीति नित जोरी ।।५७६।।

राग जयतिश्री

गोरी-गोपाललाल विहरत वनवासी ।
सघन कुंज तिमिर - पुंज हरत, करत हाँसी ।।
अधर - पान - मत्त, नैन - सैन भुव - विलासी ।
अकोर उरज दै किसोर, बाँधे लट - पासी ।।
कच धरि हरि चुंवन करि, भुजन वीच गाँसी ।
कर अचल चंचल अति, हित की निजु दासी ।।
विपरित रति रंग रचे, अंगनि छवि भासी ।
'व्यास' निरखि मुदित, निगम - सिंधु - सींव नासी ।।५८०।।

राग बिलावल

निरखि सखि ! विविमुख, नैन सिरात ।
रति विपरीति मीत स्यामल पर, सोभित गोरे गात ।।
लट में लट, पट में पट अरुझे, उर में उर नव जात ।
मुख में अधर, नाहु बाहुनि में, सुदृढ़ बँधे, वलि जात ।।
चद-वदन रस नदकिसोर - चकोर पीवत न अघात ।
'व्यास' स्वामिनी पिय सँग विहरति, मान-सीस दै लात ।।५८१।।

विहरत राधा कुंज लसी री ।
सीस सुगंध, मंद मलयानिल, सीतल सरद - ससी री ।।
करुनारस वरुनालय नख-सिख, मोहन अग गसी री ।
विपरित रति वितरति पिय ऊपर, अधर - सुधा वरसी री ।।
मानहुँ पावस ऋतु कौ आगम,घन - दामिनि विगसी री ।
रूप - सील - गुन सहज माधुरी, रोम - रोम वरसी री ।।
यह छवि 'व्यास' सेप-चतुरानन वरनत वैस खसी री ।।५८२।।

राग कल्याण

रूपवती, रसवती, गुनवती राधा प्यारी,प्रकट करत अति सरस सुधग।
उरप, तिरप, गति - भेद लेति अति, नटवति, मिलवति तान-तरंग॥
रिझवति मोहनलालहिं छाती सों लगाइ लेति,देति अधर-मधु प्रीत अभंग।
कोकवती रति विपरित गति वितरति, निरखत'व्यास'हिं सुख अँग-अंग॥

राग गौरी

प्रगटत दोऊ सुरत सुधग।
नव निकुंज - मंदिर मृदु तालिम, उपजत कोटिक रंग॥
मनिमय वलय किंकिनी, नूपुर, वाजत ताल - मृदंग।
उरप - तिपर, आलिंगन - चुंबन, लेत सुलप अँग संग॥
अलग लाग आतुर नागर नट, कर जुग उरज उतंग।
रति विपरीत मान भईं नागर, दसन अधर अनुषंग॥
लोचन लोल विलोल चरन - कटि, मंद हास, भ्रू - भंग।
यह छवि कहत 'व्यास' कवि भूलत, सेप अनंत अनंग॥५८४॥

४६. सुरत-युद्ध—

राग नट

मानौ माई, काम - कटकई आवत।
मद गयंद चंचल आगैं दै, अंचल ढाल ढुलावत॥
घूँघट - छत्र छाँह, विगलित कच, मानौ चौंर ढुरावत।
कुच जुग कठिन सुभट,कवची-पट सजि, लट-असि चमकावत॥
कोकिल सी धुनि गावति, कीर धीर सहनाइ बजावत।
झाँझि भारही, रुंज भँवर, नूपुर नीसान बजावत॥
अंग - अंग चतुरंग सैन - रव, नव नागरहिं चुरावत।
'व्यास' स्वामिनिहिं बाँह बोल दै,सहचरि हरिहिं मिलावत॥५८५॥

मदन दल साजैं प्यारी आवत।
रजनी मुख मो तन मुख कीनै, सघन निसान बजावत॥
कवची पहरि सुभट आगैं करि, मदन-गयंदै सनमुख लावत।
नैन बाँधि बानैत बने अति, उर काँपतु जग असि चमकावत॥
सनमुख धनुष-बान अनियारे, ऐंचत पनच कान लौं लावत।
मोहिं प्रवीन जानिकैं इकलौ निदरनि, राग मलारनि गावत॥
जोवन मदमाती नहिं सकुचत, कोऊ बीच करहु डरपावत।
कहि व्यौरौ हँसि,जोरि बसीठी,'व्यास'सखी दै बाँह मिलावत॥५८६॥

राग षट

गौर - स्याम बाने तनैंत सजि, सनमुख चमूँ चली ।
बाम अंग तामस तकि तमके, सुनत दाम तवली ।।
अपनी जय-जस कहि ,ममिता करि, जूझत जुगल बली ।
बिरद बिबस चमकनि आयुध की, सोभा लगत भली ।।
कुच, कपोल, कर, अधर, नैन, भुव की मति-गति बदली ।
स्रमित परस्पर अमृत पिवावत, ज्यावत मिथुन-थली ।।
'व्यास' किसोर भोर नहिं बिछुरत, कोक-कला-कुसली ।
रसिकनि की रसना रस चाखत, बिकल बिरस बगली ।।५८७।।

राग मारू

आजु अति कोपे स्यामा-स्याम ।
वीर खेत बृंदावन दोऊ, करत सुरत - संग्राम ।।
मर्मनि कंचुकि-वर्म, सुदृढ कुच चर्मनि, लट करवाल ।
अंग-अंग चतुरंग सैन (वर), भूषन रव-दुंदुभि-जाल ।।
गौर - स्याम बानैत बने, निजु बिरदावलि प्रतिपाल ।
अचल चंचल धुजा-पताका, (छबि) केस चमर बिकराल ।।
भौंह - धनुष तें छूटत चहुँ दिसि, लोचन - बान बिसारे ।
भेदत हृदय - कपाटनि निर्दय, तोवर उरज अन्यारे ।।
दसन-सक्ति, नख-सूलनि बरषति, अधर, कपोल बिदारे ।
घूंघट, घुघी, मुकुट, टोपा, कवची, कंचुक भये न्यारे ।।
जीती नागरि, हारे मोहन, भुज संकट मे घेरे ।
पीन पयोधर, हार नितंब, प्रहार किये बहुतेरे ।।
प्रनय-कोप बोली कैतव, अपराध किये तैं मेरे ।
परम उदार 'व्यास' की स्वामिनि, छाँडि दिये करि चेरे ।।५८८।।

राग षट

जोवन-बल दोऊ दल साजत, राजत खेत खरे ।
गौर - स्याम सैनिक सनमुख, रजनीमुख कोप भरे ।।
दस नख - बान प्रहार सहत दोउ, उरज - सुभट न टरे ।
भागत नहिं लागति छति अधरनि, दसनायुध निदरे ।।
नैन - सिलीमुख छूटत, अंगनि फूटति डर न डरे ।
मानहुँ मत्त गयंद - गयंदिनि, वन अहँकार परे ।।
तन सों तन, मन सों मन अरुझ्यौ, धीर न प्रभु बिचरे ।
'व्यास' हँसत दोऊ कुंज - सैन ते, प्रात समय निकरे ।।५८९।।

सुरत रन स्यामा-स्याम जुझार ।
वीर खेत वृंदावन विरचे, कुंजराज के द्वार ॥
नख-सिख अंग सुभट दल साजैं, भूषन पट सिंगार ।
सेज सुरति आरूढ़ गूढ़ गति, उपजति कोटि विकार ॥
कर उरजन सों लरत, टरत नहिं, लागत नख-सर सार ।
सनमुख अधर, दसन सहि जूझत, खंडित गंड उदार ॥
घूमी-घूमि सुभट दोऊ जन, रोस भरे न टरे सुकुँवार ।
अति आवेस केस विगलित, गिरत न लागी वार ॥
बाँधि चतुर भुज-पासि परस्पर, गौर - स्याम सुख लार ।
'व्यास' स्वामिनी के रसवस, हरि कीने मार सु मार ॥५६०॥

राग विहागरौ

सुरत-रन वीर दोऊ धीर सनमुख लरत ।
इतहिं नागरि कुँवरि, उतहिं नागर कुँवर ,
मल्ल प्रति मल्ल अँग सग तालिम करत ॥
अग प्रति अंग सैनिक सुभट साजि-दल,वलय नूपुर-घोष, रोष-नीसान हत ।
दसन तोमर सकति सूल,लागत हूल,अधर खंडित,गंड पीक,स्रोनित स्रवत ॥
कुंज-सयनीय रथ-रूढ, सारथि सखी गूढ,विगलित केस-चँवर धुज फरहरत ।
खर नखर वान छूटत,कवच कंचुकी,सुदृढ फूलत उरज,सूर नहिं डर डरत ॥
वाहु जुग वधननि बाँध नँदनंदनहिं,राधिका जयति आचरति विपरीति रत ।
रमित संग्राम भर, स्रमित स्यामहिं जानि ,
'व्यास' निज दासि कर-कमल अंचल चलत ॥५६१॥

राग कल्याण

मेरे तनु चुभि रहे अंग अन्यारे ।
टारे हू नें टरत न सुंदरि, उर ते पीन पयोधर भारे ॥
मेरे नैन - कुरगनि वेधत, तेरे लोचन - वान विसारे ॥
तेरे दसन प्रचंडनि मेरे, अधर गंड खंडनि कर डारे ॥
अति निसंक तेरे खर-नखरनि, मेरे गातनि अग सिंगारे ।
नख-सिख कुसुम विसिख सर वरषत, 'व्यास'स्वामिनी तो सों हारे ॥

बाँके नैन अन्यारे वान ।
चितवनि फंदनि महँ मोहन - मृग, अरुझ गिर्‌यौ विनु गान ॥
कियौ महाउ अधर करुना करि, दियौ सुधाधर - पान ।
गहि-भुजमूल कुचनि बिच राखे वाहु, नाहु के प्रान ॥
रति-रन मिथुन लरत भट दोउ, बाजत दाम निसान ।
'व्यासदास' के नैन - चकोरी, पीवत कोकिल - गान ॥५६३॥

तृतीय परिच्छेद

समय के पद



१. श्री गुरु-मंगल—

राग सूहौ, बिलावल (रूपक ताल)

जय-जय श्री गुरु सुकल - बंस उदित भयौ।
ऊग्यौ है जस-भान, तिमिर जग कौ गयौ॥
गयौ जग कौ तिमिर सजनी, ताप तीनौं स्रम घटे।
पंच रस कौ तत्व लै, सिंगार प्रेम सुखनि जटे॥
पियत निसदिन तत्सुखी सुख, नवल तन सहचरि नयौ।
जय-जय श्री गुरु सुकल-बंस उदित भयौ॥
जय-जय श्री गुरु सुकल,भक्ति हित अवतरे।
कर्म-ज्ञान कौं छाँडि, प्रेम-पथ अनुसरे॥
अनुसरे प्रेम सुपंथ दृढ़, आगम - निगम कथि जो कह्यौ।
सुनि गिरा अगनित जीव उधरे, भक्ति-रस भक्तनि-लह्यौ॥
लोभ - रत अरु क्रोध कामी, चरन परसत सब तरे।
जय-जय श्री गुरु सुकल भक्ति हित अवतरे॥
जय-जय श्री गुरु सुकल सहचरी प्रिया की।
सदा बसैं नव कुंज चाह लखि पिया की॥
पिया उर की जानि बपु दो, प्रान एक सहज सदा।
दोऊ रस बिबस जब होत सजनी,प्रेम-रस छबि छकि-मदा॥
बौरात से बिबि बचन बोलैं, सुधि नहीं कछु जिया की।
जय-जय श्री गुरु सुकल सहचरी प्रिया की॥
जय-जय श्री गुरु सुकल,मोहिं सरबसु दियौ।
उरझे प्राननि प्रान निवारत सुख हियौ॥
हियौ सुख धसि चाह सजनी, जुगल हिय दरसाइयौ।
अंग - अगनि चछु - रसना, प्रीत सौं उर - लाइयौ॥
दई 'व्यासदासि'हिं पीकदानी, बास दंपति हिय नयौ।
जय-जय श्री गुरु सुकल मोहिं सरबसु दियौ॥५८४॥

२. श्री राधा मंगल—

राग अलैया, बिलावल (मूलताल)

श्री वृषभान-किसोरी सुंदरि, वृंदावन की रानी जू।
चंद-बदन, चंपक - तन गोरे, स्याम - बरनि जग जानी जू॥
सुक सनकादिक नारद जाकी, गुपति रति-गति पहिचानी जू।
ताकी महिमा श्री हित हरिवंस, रसिक जयदेव बखानी जू॥
ताहि 'व्यास' कैसैं कै बरनै, हरि सुदरि मति दैहै जू।
जो नर-नारी भगति चाहि है, सो निसदिन सुनि कैहै जू॥
राधा-मंगल नाम अनभतौ, पतितन कौ पावन है जू।
रुचि करि गावत हरिहिं सुनावत, सो वृंदावन में बसि है जू॥
जो कोऊ कोटि कलप लहुँ, जीवै, रसना कोटिक पावै जू।
तदपि रुचिर बदनारविंद की, सोभा कहत न आवै जू॥
कोटि मदन - लावन्य सुभग तन, मोहन के मन भावै जू।
नाँचति गावति क्रीडति नागरि, पिय नागरहिं रिझावै जू॥
नख-सिख सुंदरता की सीवाँ, कौतिक अवधि किसोरी जू।
रसना एक अनूपं[|] रूप गुन, जो कछु कहैं सो थोरी जू॥
निसदिन कुंज-भवन प्रीतम सँग, सुरत-सिंधु महँ बोरी जू।
एक प्रान द्वै देह रीति यह, प्रीति सबनि सो तोरी जू॥
सहज सिंगार लाड़िली सुंदरि, उपमा तरुनी को है जू।
विविध विलास हास रस बरषत, सैननि मोहन मोहै जू॥
झूमक सारी, कारी अँगिया, पीन पयोधर सोहै जू।
कनक-कमल की कली अली जुग, अनी अन्यारिन मन पोहै जू॥
केस सुदेस अलक घुँघराले, तरल तिलक भौहनि मटकै जू।
ऐन नैन की सैन अन्यारी, प्रीतम के उर खटकै जू।
बेसर गजमोती झलकत, उर कारी लट लटकै जू॥
अरुन कपोल विलोल तरकुली, खुटिला चुटिलहिं हटकै जू।
दारयौं-दसन विंब सरसाधर, वदन सदन बीरी जु रची जू॥
मधुर बचन कोकिल सी कूजति, पिय स्रवननि सुख-रासि सची जू॥
बलि-बलि जाऊँ मुखारविंद की, कोटि मदन-सोभा न बची जू।
चितवनि ऊपर सब जग वारौं, जा मो विधि बेकाज पची जू॥

| अनूप (ग), अनेक (च, छ)

पोति जँगाली गरे लरैं द्वै, मुक्ताफल उर माला जू ।
चौकी चमकति कुच बिच मृगमद, तिलक कियौ गोपाला जू ॥
बने नवैया अति चौपहलू, सोभित बाहु - मृनाला जू ।
कर कंकन पौंची मखतूली, चचरि चुरी जु रसाला जू ॥
मेंहदी नखनि, अँगुरियन मुँदरी, नग अगनि अति छाया जू ।
हरि ससार बासना सृंखल तजि, बाँधे राधा भाया जू ॥
आदि अंत छूटत नहिं जैसैं, विषयनि बाँधति जाया जू ।
हाव भाव करि पिय पर बरषति, रति-सुख पोषति काया जू ॥
कटि केहरि किंकिनि तिरनी, जघन नितंबनि भारी जू ।
चरन महावर, नूपुर बाजत, मनि - चूरा चौधारी जू ॥
नख-सिख पर भूषन सौंधे भूषित, पिय कुँवरि सिंगारी जू ।
'व्यास' स्वामिनी के पद-नख की, कमला करति न सारी जू ॥५६५॥

३. ब्याहुलौ— राग जयतिश्री

मोहन मोहनी कौ दूलहु ।
मोहन की दुलहिनि मोहनी सखी, निरखि-निरखि किनि फूलहु ॥
सहज ब्याह उछाह, सहज मंडप, सहज जमुना के कूलहु ।
सहज सवासिनि गावति नाँचति, सहज सगे समतूलहु ॥
सहज कलस कंचन कल भाँवरि, सहज परस भुजमूलहु ।
सहज बने सिरमौर, सहज भूषनि तन, सहजई नवल दुकूलहु ॥
सहज दाइजौ बृंदावन - धन, सहज सेज - रति झूलहु ।
सहज सनेह रूप - गुन 'व्यास'हिं, सपनैं हू जिनि भूलहु ॥५६६॥

राग गौरी

सहज दुलहिनी श्री राधा, सहज साँवरौ दूलहु ।
सहज ब्याह बृंदावन, निरखि - निरखि किनि फूलहु ॥
सहज कुंज सुख - पुंज, महल मंडप छाये ।
सहज सवासिन दासिन, हरषि मंगल गाये ॥
गाइ मंगल कलस पूज्यौ, पाँइ परि बिनती करी ।
बलि जाऊँ सुखद मुखारबिंदहिं, देखत तन - वेदन हरी ॥
बिधि रवानी जगति जानी, जमुना कुल- देवी पूजी ।
कंचन-मनि मय बन भूमि बिराजै, और मति नाहीं दूजी ॥
बिटप - बेलि बुलाइ न्यौते, बिबिध बरन बनैं घने ।
फल फूल न्यौते देत, लाजै बरपि, मधु तन - मन सने ॥

लगुन सुहाई पून्यौ निस की, ससि-जुन्हाई फूलि रही ।*
तहाँ बाँधि कंकन सरद बिहँसी, हरद-केसरि-छवि लगी ।
रति लिखति मृगमद बदन मरवटि, देखि हँसि आपुन ठगी ।।
बाजे बाजत बैनु धेनु-धुनि, सुनि मुनि मोहे जू ।
ताल, पखावज, रुंज, ढाँफ, झप, झिरनाँ-रव सोहे जू ।।
मन सरस अन्हवाइ दोऊ, अंग पट भूषन सजे ।
निरखि वेस निमेष बिसरे, कोटि मनसिज मन लजे ।।
मोर-मुकुट सिर गुंजा मनि, झलक अलक घुँघरारे जू ।
स्रवननि कुंडल चमकत, सोभित गंड सुढारे जू ।।
दसन-दारयौं, बदन बिहसत, अधर-पल्लव छवि लगी ।
सुवासारी नाक बेसरि, लाल मोती मनि जगी ।।
नैननि अंजन-रेख अन्यारी, भौंहैं अति चंचला ।
पीत पिछौरी, सारी, चोली पर चौकी चल अंचला ।।
बाँधि अंचल गाँठि चंचल, राम-बेदी पर बने ।
सात भाँवरि देत सब निसि, अंग रंगनि मिलि सने ।।
अधर-सुधा ज्यौनार करत, न अघाने प्रीतम दोऊ ।
दरस-परस सुख-सुख दूधाभाती करत, न लखत कोऊ ।।
मोर-प्रोहित बोलि, जित-तित भँवर-भाटन जसु कह्यौ ।
कुल-बधू-कोकिल गारि दै, मनुहार करत न रस रह्यौ ।।
रूप-निधाना पलटत मुख पाना, चतुर सुजानी जू ।
घर बात लुटाइ मिली वृषभान-नंद की रानी जू ।।
करहिं कंकन, कटि सु किंकिनि, चरन नूपुर बाजहीं ।
मोहनी जोबन चाल देखत हंस-गन-कुल लाजहीं ।।
जुग-जुग दंपति रति-रस बरषत, अति हरषत ब्रजवासी जू ।
गावत गोपी मिलि, नाँचत हरिवंसी-हरिदासी जू ।।
यह ब्याहु बरनत-सुनत अति सचु, भगति-संपति पाइयै ।
'व्यास' वृंदाविपिन बसिकैं, बहुरि अनत न जाइयै ।।

राग सारंग

बिहरत वृंदाविपिन बिहारी ।
दूलहु लाल, लाडिली दुलहिनि, कोटि प्रान ते प्यारी ।।

---

* यह एक चरण (ग) प्रति तथा (च) प्रति में प्राप्य है, इसके जोड़ का दूसरा चरण उपलब्ध नहीं है ।

वाम गौर स्यामल कल जोरी, सहज रूप सिंगारी ।
कुसुम-पुंज कृत सैन कुंज महँ, चंद-वृंद अधिकारी ॥
कुँवर कुँवरि गहि चोली खोली, तिरनी तरलित सारी ।
नागरनट के पटहिं झटक, हँसि मटकत नवल दुलारी ॥
सुरति-समर महँ सनमुख राति, दोऊ अनी अनयारी ।
'व्यास' काम-वल जीते रति-रन, विहँसि वजावति तारी ॥ ५९८ ॥

४. श्री लाल जू की बधाई—

राग गौड़ मलार

गोपी गावति मंगलाचार ।
कान्ह कुँवर प्रगटे जसुदा कें, वाजत वैनु - पखावज - तार ॥
घर-घर तें वनि-वनि सब दौरीं, भूपन-पट सजि-सजि सिंगार ।
फल, मंगली, दूध, दधि, रोचन, हाथन सोभित कंचन-थार ॥
राधा लै वृषभान-घरनि मन, आई चंचल अंचल हार ।
विहँसे लटकन ललनहिं देखत, लोचन चार मिलत नहिं वार ॥
नाँचत ग्वाल हरषि हेरी दै, गाइ वुलाइ गिरत न समार ।
व्रज-जन घर-घर द्रव्य लुटावत, सरवस दीनौ नंद उदार ॥
मागध, सूत, वदीजन, प्रोहित, असीसत सवै सिंह-दुवार ।
'व्यासदास' के स्वामी प्रगटे, लाल उसास कँपे भुव-भार ॥५९९॥

राग सारंग

नंद - वृषभान के हम भाट ।
वदौं हो‡ व्रज-वल्लभ-कुल कों, मेट हमारी वाट ॥
भूपन-वसननि आज लुटावहु, अरु गायन के ठाट ।
ऐसौ देहु जु मोल लैंहि हम, मथुरा की सब हाट ॥
इद्र - कुवेर हमारे भाऍं, व्रज के गूजर-जाट ।
वढौ वस हरिवंस 'व्यास' कौ, वास चीर के घाट ॥ ६०० ॥

राग गौरी

चलहु भैया हो ! नंद-महर-घर, वाजति आजु वधाई ।
जनम्यौ पूत जसोदा रानी, गोकुल की निधि आई ॥
कोऊ वन जिन जाउ गाय लै, आवहु चित्र वनाई ।
करहु कुलाहल. नाँचहु - गावहु, हेरी दै-दै भाई ॥
छिरकत चोवा - चदन - वंदन, हरदी - दूब सुहाई ।
माखन - दूध, दही कौ कादौं, भादौं मास मचाई ॥

‡ वढो हो (ग), उदै भयौ (च, छ)

नाँचत गोपी मंगल गावति, घर-घर तें सब आई।
विहँसत वदन, नैन-तन पुलकित, उर आनँद न समाई॥
बाजत झाँझ, मृदंग, चंग, डफ, बीना, बैनु सुहाई।
जय-जय धुनि बोलत, डोलत मुनि, कुसुमावलि वरषाई॥
परम उदार सकल ब्रजवासिन, घर-घर बात लुटाई।
जाचक धनी भये वडभागी, 'व्यास' चरन-रज पाई॥६०१॥
नंद-महर-घर बाजै बधाई, बाजै हो माई, बाजै बधाई।
जनम्यौ पूत जसोदा के घर. ब्रज की जीवनि आई।
नाँचत गोपी-ग्वाल रंगीले, अँग-अँग चित्र बनाई।
माखन, दूध, दही, हरदी लै, गोरस-कीच मचाई॥
बाजत ढोल, मृदंग, रुंज, आवज, उपग, सहनाई।
राइ गिरी गिरि अरु निसान-धुनि, तिहूँ लोक मे छाई॥
वृपभान राइ सुनि आइ, सबनि पहिराइ, चले सुख पाई।
रसिक अनन्य साधु सब फूले, आनँद हिय न समाई॥
सुर-नर मुनि जै-जै बोलत सब, चिरजीवौ जु कन्हाई।
देति वसन, पसु, मानिक,मोती, नंद-महरि घर बात लुटाई॥
ब्रज-वासी लूटत सब हारे, यह लीला अधिकाई।
गोकुल राज नंद-नंदन कौ, 'व्यासदास' बलि जाई॥६०२॥

राग टोड़ी चौताल व श्रीराग—

चिरजीवै यह महरि जसोदा! बालक तेरौ माई।
सुनहि नंद ब्रजराज भैया से, सरबसु खर्चु बजाउ बधाई॥
जीवन-जनम सफल भयौ तेरौ,जाकें जनम्यौ कुँवर कन्हाई।
लोक चतुर्दस भई भैया हो, ब्रजवासिनि की आज बड़ाई॥
माखन, दूध, दही, हरदी लै, गोपी - ग्वालन दूब बधाई।
नाँचत, गावत, करत कुलाहल, हेरी फेरी दै-दै भाई॥
तरुनी-तरुन तरल फूले सब, अति उदार घर बात लुटाई।
भई भावती बात भैया से, आजु कृपनता देहु बहाई॥
नारी पर - पुरषै नहिं जानति, पुरुप न जानत नारि पराई।
हँसि हाथा दै, लै कनियाँ कै. करत परस्पर नंद-दुहाई॥
भूपन-वसन परस्पर लूटत, खूटत नाहिं इत्ती बहुताई।
प्रोहित-भाट-जसौंदी-जाचक,महाधनिक भये सब सिधि पाई॥
कोऊ बन जिनि जाउ गाइ लै,आवहु नख-सिख चित्र बनाई।
खग,मृग, गिरि,तरु,सलिता फूली,'व्यास' आस करि कीरति गाई॥

राग टोड़ी

ग्वाल-गोपी नाँचत गावत, प्रेम मुदित जसुदा-सुत ज्यावत ।
फूले अंग न मात परस्पर, करत जुहार चारु सिर नावत ॥
श्री वृषभान सुनंद उपनंदहिं, आनंद में नंद बबा नचावत ।
अति उदार सर्वसु पसु-बसु दै, रुचि रोचन दधि-दूध बधावत ॥
नैननि-सैननि मटक लटकि हँसि, झटकत पटकत कंठ लगावत ।
सूपु उलारि उडेलहिं मुसकति,सुखमय मुख लखि आँखि सिरावत ॥
मार मच्यौ माखन - गो-दधि कौ, भादौं झर कादौंहिं मचावत ।
जय-धुनि सुनि कुसुमावलि बरषत, हरषत देव निसान बजावत ॥
कंसहिं दुख, साधुन सुख तन-मन,'व्यास' न त्रास, चरन-रज पावत ॥

राग आसावरी (ताल सूधौ)

ब्रज-मंडलन दुख कदन जनम्यौ, जसुदा के माई आज ।
रंक मनौं निधि पाई, आनँद कह्यौ न जाई, बजत बधाई इकछत राज ॥
दूध-दधि-दूब लेत परस्पर, कंचन - मानिक - मोती-भूषन - गन-नाज ।
छिन-छिन लेन देत हू उमह्यौ, विमुख नंद कौ नंदन भयौ, गरीब-निवाज ॥
कंचन-कलस रस भरे सिर धरि चलीं, मुदित मंगल गावैं जुवति-समाज ।
गाइ सँवारि ग्वाल अँग-सँग हेरी देत फेरी दै,नाँचत भयौ है भैया सब काज ॥
जै जै जै कहत चहुँ दिसि मुनि-मानव,प्रगट्यौ रसिक कुँवर सिरताज ।
'व्यास'से पतित अगनित भवतारिबे कौं,राधिका-रवन भयौ सिंधु कौ जहाज ॥

५. श्री लाड़िली जू की बधाई—

राग सूहौ

सुख वृषभान जू के द्वारैं ।
जहाँ राधिका-स्याम विराजत, अंग अनंग सिंगारैं ॥
विकट साकरी-खोर फिरत दोऊ, कुँवर-कंठ भुज डारैं ।
गिरत फूल सिर तें पद परसत, तरुवर किसलय डारैं ॥
तिमिर-पुंज घन कुंजनि महँ, देखत मुख-चंद उज्यारैं ।
दुहुँ दिसि सब निसि विहरत कामी, बिछुरत नहीं सकारैं ॥
बन की छवि कवि - कुल न कहत, बनै न बात विचारैं ।
'व्यास' स्वामिनी रूप-गुन सीवाँ, नैननि सुखद निहारैं ॥६०६॥

राग सारंग

आजु वृषभान कें आनंद ।
वृंदावन की रानी राधा, प्रगटी आनँद-कंद ॥
जसुदादिक आईं सब गोपी, प्रफुलित आनन-चंद ।
गो-धन ग्वाल सिंगारि लै आये, ब्रजपति बाबा नंद ॥

फूले ब्रज-बासी सब नाँचत, प्रमुदित गावत छंद ।
माखन-दूध-दही कौ काँदौ, तन कुमकुम मकरंद ।।
देत परस्पर हीरा हाटक, साटक सुरभि अमंद ।
प्रगट भये सुख-पुंज, 'व्यास' के दूरि गये दुख-दंद ।।६०७।।

प्रगटी हैं वृषभान-नंदिनी, चलहु बधाई बाजति ।
भादौं मास उज्यारी आठैं, मंद-मंद घन-माला गाजति ।।
ब्रज-बनिता धावति, कल गावति, आवति गॉंउ गॉंउ ते राजति ।
विगलित बसन, रसन लट लटकत, नॉंचति पर पुरुषहिं नहिं लाजति ।।
फूलो फिरत नंद की रानी, देति बसन, पसु भ्राजति ।
उदै भयौ ब्रज-वल्लभ-कुल कौ, 'व्यास' सबनि पर छाजति ।।६०८।।

राग जयतिश्री व देवगधार

आजु बधाई है बरसानैं ।

कुँवरि किसोरी जनम लयौ, सब लोक बजै सहदानैं ।।
कहत नंद वृषभान राय सौं, और बात को जानैं ।
आजु भैया हम सब ब्रजवासी, तेरेई हाथ बिकानैं ।।
या कन्या के आगैं. कोटिक बेटन को अब मानैं ।
तेरे भलैं भयौ सबही कौं, आनँद कौन बखानैं ।।
छैल-छबीले ग्वाल रँगीले, हरद-दही लपटानैं ।
भूषन-बसन विविध पहिरैं तन, गनत न राजा-रानैं ।।
नॉंचत, गावत प्रमुदित ह्वै, नर-नारिनु को पहिचानैं ।
'व्यास' रसिक सब तन मन फूले, नीरस सबै खिसानैं ।।६०९।।

राग सारग

भैया आज रावल बजति बधाई ।

ढोल-भेरि-सहनाई-धुनि सुनि, खबर महावन आई ।।
यह देखौ वृषभान-भवन पर, बिमल धुजा फहराई ।
दूब लयैं द्विज आयौ तब ही, कीरति कन्या जाई ।।
नंद-जसोदा फूले तन-मन, आनँद उर न समाई ।
मंगल- साज लियैं ब्रज-बनिता, गावति गीत सुहाई ।।
चोवा, चंदन, अगर, कुमकुमा, भादौं कीच मचाई ।
'व्यासदास' कुँवरि मुख निरखत, कुसुमावलि बरषाई ।।६१०।।

नाँचत नद, जसोदा गोरी ।
श्री बृषभान - नंदिनी प्रगटी, नंद-नंदन की जोरी ॥
ब्रजवासिनि कें होइ कुलाहल, देखति कुँवरि - किसोरी ।
बाल,बृद्ध,नर,नारिनि के सुख, 'व्यासहिं' प्रीति न थोरी ॥६१६॥

६. पालनों-झूलन—

सुवरन - पलना ललना - लाल झूलहु ।
अंग-अंग प्रति गुन-गन निरखत, दुख मोचत लोचन अति फूलहु ॥
मुख महँ अधर पयोधर उमहे, नाहु - बाहु महँ तूलहु ।
गौर - स्याम गंड खंडित नख, पद मंडित कबहुँ दुकूलहु ॥
सो रस स्रवन सिथिल तन, मन सुख बाढ़्यौ भालन झूलहु ।
'व्यासदासि' रस - रासि दृगंचल, चचल अंचल दूलहु ॥६१७॥

७. सरद्-रासोत्व— राग सारंग

नॉचति नागरि नटवर - बेष धरि, सुखसागरहिं बढावति ।
सरद सुखद निसि-ससि-गो-रजित, वृंदावन-छवि रुचि उपजावति ॥
ताल लये गोपाल लाल सँग, ललिता ललित मृदंग बजावति ।
हरिवंसी - हरिदासी गावति, सुघर प्रवीन रबाब बजावति ॥
मिस्रित धुनि सुनि खग - मृग मोहित, जमुना जल न बहावति ।
हरषित रोम तन, सोम थकित धर ब्योम बिमान गिरावति ॥
लेत तिरप विगलित मालावलि, कुसुमावलि बरषावति ।
जय - जय साधु करत हरि सहचर, 'व्यास' चिराक दिखावति ॥६१८॥

राग केदारौ तथा कल्याण

रसिक सुंदरि बनी रास - रंगे ।
सरद-ससि जामिनी, पुलिन अभिरामिनी, पवन सुख भवन बन विहंगे ॥
नीलपट भूषननि नटवर सुबेस धरि, मदन मुद्रा बदन कुच उतंगे ।
चरन नूपुर रुनित, कटि किंकिन क्वनित, कर कंकनचुरी रव भंगे ॥
चरन धरनी धरति, लेत गति सुलप अति, तत्त थेई-थेई नदति मनि-मृदंगे ।
चरचरी ताल में तिरप बाँधति बनी, तरकि टूटी तनी, वर सुधंगे ॥
मन्द्र सुर गान, पट - तान - बंधान में, मान औघर सुघर अंग - अंगे ।
सरस मृदु हासिनी नैन सैननि लसति, निरख त्रिभुवन-बधू - मान - भंगे ॥
विविध गुन माधुरी सिंधु में मगन,दोऊ लसत, गोरी बसति पिय उछंगे ।
थकित चंदन - पवन - चंद - मंदार कुल, सोम बरषति 'व्यासदासि' संगे ॥

राग कमोद

नमो जुग-जुग जमुना-तट रास ।
सरद सरस निसि चंद-चंद्रिका, मारुत मदन-सुवास ॥
नटवर वेष सु रेख राधिका, अंग सुघंग निवास ।
देसी सरस सुदेस दिखावति, नैननि नैन मिलास ॥
तिरप मान महँ तान लेत दोउ, सुर बंधान उलास ।
औघर सुघर अतीति अनागति, रीझि जनावति हास ॥
दंपति की गुन-गति निरखति रति, कोटि मदन-मद-नास ।
अति आवेस केस कुल विगलित, वरषत कुसुम विकास ॥
बाहुनि बीच नाहु गोरिहिं गहि, लेत मधुर मधु ग्रास ।
विवस भये रस-लपट जानति, रस महँ लाज-विनास ॥
'व्यास' स्वामिनी पियहिं हियैं दै, लीनौ कुंज-अवास ॥६२०॥

राग विहागरौ

दोऊ मिलि देखत सरद-उजियारी ।
बिछी चाँदनी मध्य पुलिन के, तास जरी फुलकारी ॥
सेत बादलौ, सेत किनारी, ऐसी है यह सारी ।
हीरन के आभूषन राजत, जो वृषभान-दुलारी ॥
मोतिन की मालावलि उर महँ पहरैं कुंज-विहारी ।
रतन जटित सिरपेच, कलगी, मोर-चंद्रिका न्यारी ॥
सखियाँ संग एक सीं सुंदर, मानौ चंद्र-कला री ।
बाजे बहु बाजैं अरु गावैं, सब निरतत बारी-बारी ॥
यह सुख देखत नंद लाडिलौ, अरु कीरति की प्यारी ।
इनकी प्रीति रीति भक्तन सौं, 'व्यासदास' बलिहारी ॥६२१॥

राग केदारौ

† पिय कौं नाँचन सिखावत प्यारी ।
वृंदावन में रास रच्यौ है, सरद-चंद-उजियारी ॥
मान गुमान लकुट लियैं ठाढ़ी, डरपत कुंज-विहारी ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत, हँसि-हँसि दै कर-तारी ॥६२२॥

---

† प्रति (छ) में यह पद ६ चरणों का है। तीसरा और चौथा चरण उस प्रति के अनुसार इस प्रकार है—

ताल, मृदंग, उपंग बजावति, प्रफुल्लित है सखी सारी ।
बीन, वेनु-धुनि, नूपुर हुमकन, मृग-मृग दसा बिसारी ॥

राग पूरवी सारंग

जमुना-तट दोऊ नाँचत नागर नट, कुँवरि नटी ।
देखत कौतुक भूलि रह्यौ ससि, आनँद-निसि न घटी ।।
वाजत ताल, मृदंग, उपंग, अंग सुधग ठटी ।
लटकति लटपट झटकि पटकि पद, मटकति भृकुटि-तटी ।।
मानहुँ सनमुख सिंधुहिं मिलि, रस-सरिता भरि उपटी ।
हस्तक मस्तक भेद दिखावत, गावत एक गटी ।।
तान, वँधान बेधि सुर वनिता, विथकित लाज कटी ।
नारद - सारद और गुनी की, परदा सबै फटी ।।
लोक चतुर्दस माँझ 'व्यास' की स्वामिनि गुननि गटी ।।६२३।।

राग सारग

नाँचति गोरी, गोपाल गावै ।
कोमल पुलिन कमल-मंडल महँ रास रच्यौ,
स्यामा - स्यामल सखि, मोहन वैनु वजावै ।।
सरद-चाँदिनी,मंद पवन बहै दुहूँ दिसि,फूलजाति परिमल मनभावै ।
कनक-किंकनी-धुनि सुनि खग-मृग आकर्षत, वन मधु वरषावै ।।
लटकति लट भुज मुकुट विराजति,
पटकति चरन धरनि सों कुमकुमहिं उडावै ।
उरप - तिरप गति मान बढ़ायौ,
हस्तक मस्तक भेद जनावै, अंगनि सरस सुधग दिखावै ।।
रूप - रासि गुन - गन की सीवा,
भृकुटि विलास हँसि कें प्यारेहिं रिझावै ।।
विच - विच कच - कुच परसति हँसि करि,
परिरंभन - चुंवन दै रस - सिंधु बढ़ावै ।
नव रँग कुंज - विहारी - प्यारी खेलति देखि,
जाऊँ वलिहारी यह सुख 'व्यास' भागनि पावै ।।६२४।।

राग केदारौ, चौतारौ, सारग

आज अति वाढ़्यौ है सखि, रग ।
सुघरि लेति औघर गति सुलप, सु रेख दिखावति अग ।।
स्यामा-स्याम रास वनि नाँचत, वाजत ताल-मृदंग ।
गावत सुर वधान तान महँ, नागरि लेत सुधंग ।।
हस्तक मस्तक भेद दिखावत, नचावत भृकुटि अनग ।
'व्यासदास' कौ हित करि दीनौ, चारु चरन-रज संग ।।६२५।।

राग सारंग

बन्यौ वन आजु कौ रस-रास ।
स्यामा-स्यामहिं नाँचत गावत, बाढ्यौ विविध विलास ॥
सरद विमल निसि ससि-गो-मंडित, दुहुँ दिसि कुसुम-विकास ।
भूषन पट अटके नट-नागर, उड़ति पराग सुवास ॥
अंगनि कुँवरि अनंग नचावति, भृकुटि भंग मुख-हास ।
नव नागरि इक निसान बजावत, सुनत सकल सुख 'व्यास' ॥६२६॥

राग सारंग

मोर सिंगारे नाँचत, गावत किसोरी संग ।
आगैं पाछैं कछिनी, टिपारे सिर लटकत,
नील पिछौरीनि छवि उनन, नमित बदन सोहै अंग ॥
मोहन कौ वैनु सुनियत है अनुराग बढ्यौ
नैंन स्रवन तन नीर अधीर दुहूँ राखति रंग ।
'व्यास' की स्वामिनि आगैं औसर सब बन्यौ,
पाछैं दामिनी चिराक, घन - घोर मृदंग ॥ ६२७ ॥

नाँचत दोऊ वृंदावन महँ ।
स्यामा-स्याम मिले सुर गावत, छवि उपजत आनन महँ ॥
गौर-स्याम नट, नील-पीत पट, प्रतिविंवित नग तन महँ ।
जनु उद्योत वलाहक मानियत, धनुष दामिनि दमकत घन महँ ॥
सहज स्वरूप सु गुनि की सीमा, कहत न बनै वचन महँ ।
'व्यास' स्वामिनी कुँवरहिं रीझि रिझावत राखि कुचन महँ ॥६२८॥

राग सारंग

कृष्न भुजंगिनि वैनी नाँचति, गावति गौरी आसावरी ।
बाहु-बाहु-असनि पर विलसति, उपजति कोटिक भाव री ॥
वालय बाल किंनरी सी सुनि, बिछुरत बन मृग मावरी ।
खग नग धम पर स्वर बदले, पुलकित वन दाव री ॥
सुख-सागर की सीमा उमगी, त्रिया तरंगिनि नाव री ।
'व्यास' स्वामिनी की उपमा कहँ, कौन कामिनी बावरी ॥६२९॥

राग सारंग

नाँचत गोपाल बने गोपिन संग गावै ।
मोहत मन, सोहत बन नैंननि सिरावै ।
अंग-अंग वर सुधंग राधहिं नचावै ॥
पंचम सुर गान-तान-मान मिलि बढ़ावै ।
उरप-तिरप, सुघर सुलप प्यारेहिं रिझावै ॥

चरन-रेनु उर लगाइ, रीझि वैनु बजावै ।
मद हास निरखि, काम स्यामहिं सिर नावै ॥
नागर गुन-सागर कौ पार कौन पावै ।
कहत कोटि 'व्यास' थके देखत बनि आवै ॥६३०॥

राग सारंग

बन महँ कुंजनि-कुंजनि केलि ।
जमुना-पुलिन कमल-मंडल महँ, रहे रास-रस झेलि ॥
बीथिन वर विहार गहवर गिरि, लीला ललित सुवेलि ।
खोरि, खरिक प्रति रचना सखी री, जानि बाहु गल मेलि ॥
रस-सरिता झिरना सौरभ-जल, अवगाहत पग पेलि ।
'व्यास'स्वामिनी विरमित छिनु-छिनु,निसदिन पिय सँग खेलि ॥६३१॥

राग गौरी

प्यारी राधा के गावत-नाँचत, मोहन रीझि रहे सिर नाइ ।
तिरप-मान-अधान-तान सुनि, बिथकित ब्रज-कन्या रहीं मुरझाइ ॥
गुन-सागर की हो, सीमा उमगी, सकत न कोटिन मदन थहाइ ।
'व्यास'स्वामिनी अधर-सुधा दै,नवल कुँवर लयौ है कंठ लगाइ ॥६३२॥

राग केदारौ

सरद सुहाई जामिनि, भामिनि रास रच्यौ ।
बंसीबट जमुना-तट सीतल, मंद सुगंध समीर सच्यौ ॥
बजत मृदंग-ताल राधा सँग, मोहन सरस सुधंग नच्यौ ।
उरप-तिरप गति सुलप लेत अति, निरखत बिथकित मदन लच्यौ ॥
कोक-कला संगीत गीत रस रूप, मधुरता गुन न बच्यौ ।
भृकुटि-विलास हास अवलोकत, 'व्यास' परम सुख नैन खच्यौ ॥६३३॥

राग बिलावल

प्यारे नाँचत प्रान-अधार ।
रास रच्यौ बंसीबट, नट-नागर वर सहज सिंगार ॥
पाँइनि की पटकार मनोहर, पैंजनि की झनकार ।
रुनझुन किंकिनि - नूपुर बाजत, संग पखावज तार ॥
मोहन धुनि मुरली सुनि कर तब, मोहे कोटिक मार ।
स्थावर जंगम की गति भूली, भूले तन - व्यौपार ॥
अंग सुधंग अनंग दिखाइ,रीझि सरबसु दोऊ देत उदार ।
'व्यास' स्वामिनी पिय सों मिलि, रस राख्यौ कुंज-विहार ॥६३४॥

राग केदारौ

दुलहिन - दूलहु खेलत रास ।
धीर समीर तीर जमुना के, जल-थल कुसुम-विकास ।।
द्वादस कोस मंडली जोरी, फिरत दोऊ अनयास ।
बाजत ताल मृदंग संग मिलि, अंग सुधंग विलास ।।
थके विमान गगन धुनि सुनि-सुनि, ताननि कियौ बिसास ।
मोहन मुरली नैंक बजाई, श्री - पति लियौ उसास ।।
नूपुर - धुनि उपजाइ बिमोह्यौ, संकर भयौ उदास ।
कंकन-किंकिनि - धुनि सुनि नारद, कीनौ कहूँ न वास ।।
या रस कों गोपिनि घर छॉड़्यौ, सह्यौ जगत-उपहास ।
यह लीला मन महँ आवत ही, सुकदेव बिसर्‍यौ 'व्यास' ।।६३५।।

राग सारंग व कान्हरौ

आजु बनी अति रास मंडली, नदी जमुना के तीर सहेली ।
नॉचति गति वृषभान - नंदिनी, मकर चंदिनी राति नवेली ।।
मानहुँ कोटिक गोपी धावति, फिरति राधिका तरल अकेली ।
संभ्रम तितनेई रूपनि धरि, हरि आतुर कठन भुज मेली ।।
अदभुत कौतुक प्रगट करत दोउ, नॉचत - मॉचत ठेला - ठेली ।
अति आवेस केस पट - भूषन, सिथिल सिंधु-रस मेला-मेली ।।
जय-जय धुनि सुनि खग-मृग मोहे, पुलकित धन्य कुंज तर केली ।
विविध विहार 'व्यास' की स्वामिनि, मोहन सों मिलि खेली ।।३३६।।

राग टोड़ी

देसी सुधंग दिखावति नैननि, हस्तक मस्तक गति भुव - भंग ।
कठ सुकंठ राग - रँग राची, मान लेत मुख मुखर मृदंग ।।
कटि त्रुटि मानहुँ ग्रीव चरन मिलि फिरत,
कुलालि चक्र सौ लखत न बनत तरंग ।
'व्यास' स्वामिनी कौ कौतुक देखत, विनु पखियन ऑखियॉ-
पिय की, खग सॅग फिरत दोऊ स्रवन-कुरंग ।।६३७।।

राग सारंग

छबीलौ वृंदावन कौ रास ।
जा पर राधा मोहन - विहरत, उपजत सरस विलास ।।
जीवन मूरि कपूर - धूरि जहँ, उड़ति चहूँ दिसि वास ।
जल-थल कमल - मंडली विगसत, अलि मकरंद निवास ।।

कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि, खग-मृग तजत न पास ।
तान-बान सुर जान विमोहित, चंद सहित आकास ।।
सुख-सोभा रस-रूप प्रीति-गुन, अंगनि रंग सुहास ।
दोऊ रीझि परस्पर भेटत, छाँह निरखि बलि 'व्यास' ।।६३८।।

रास रच्यौ वन कुंजविहारी ।

सरद-मल्लिका देखि प्रफुल्लित, वनि आई पिय-प्यारी ।।
वाम स्याम के स्यामा सोभित, जनु चाँदनी अँधियारी ।
भूषन-गन तारका तरल छवि, वदन-चंद उजियारी ।।
कोमल पुलिन कमल-मंडल महँ, मंडित नवल दुलारी ।
वाजत ताल मृदंग संग नव, अंग सुधग सिंगारी ।।
रति-अनंग अभिमान भंग ह्वै, पद-रज घसत लिलारी ।
तान-बान सुर जान विमोहत, मोहन-गर्व प्रहारी ।।
सहज रूप-गुन-सागर नागर, बलि लीला अवतारी ।
'व्यास' विनोद मोद रस पीवत, जीवत विबस विहारी ।।६३९।।

राग जयतिश्री

रच्यौ स्याम जमुना-जल पर रास ।
संग राधिका अंग रंग छवि, सब गुन-रूप निवास ।।
विविध कमल-मंडल की सोभा, जल-थल कुसुम-विकास ।
उडुगन सहित सकल राका निसि, चरननि तन आकास ।।
भूषन-धुनि सुनि हंस-हंसिनी, मधुप न छाँड़त पास ।
पद पटकत, वन छींटन छिरकत, लेति मान तजि त्रास ।।
लेति नाक की भौंरी नागरि, गावत पियहिं निवास ।
रीझि सुघर वर कंठ लगाई, पाँइ गहे मुख वास ।।
इहिं विधि भामिनि भावहिं भजि, अवतार कदंब उदास ।
आनँद-सिंधु मगन ह्वै 'व्यास', विसरि प्रपंच विलास ।।६४०।।

राग अड़ानौ

वंसीवट के निकट हरि रास रच्यौ, मोर-मुकुट और ओढ़ैं पीत पट ।
वृंदावन नव कुंज सघन घन, सुभग पुलिन अरु जमुना के तट ।।
आलस भरे उनींदे दोउ जन, श्री राधा प्यारी, नागर नट ।
'व्यास' रसिक बलि रीझि-रीझि कै, लेत बलैया कर अँगुरिन चट ।।६४१।।

राग बिहागरौ

देखि सरद कौ चंदा नँद-नंदा बन रास रच्यौ री।
बिच गोपी बिच स्याम छबीलौ, राधा संग नच्यौ री॥
मनहुँ नील मनि कंचन-माला, मंडल खंड खच्यौ री।
अंग सुधंग दिखावत,गावत,सुनि धुनि मदन लच्यौ री॥
भृकुटि-बिलास हास-रस बरषत, जमुना-पुलिन मच्यौ री।
सीतल मंद सुगंध त्रिविध, ता सौरभ सरस सच्यौ री॥
नित्यविहार निहार मुक्तिपति, तू बेकाज पच्यौ री।
मोद-विनोद रास निज दासि 'व्यास' सुख-पुंज सच्यौ री॥६४२

राग धनाश्री

राजत दुलहिनि-दूलह संग।
रास रच्यौ राधा-मोहन मिल, गुन-सागर भिल रंग॥
कमल-मंडली पुलिन-खंड मे, चंद-किरन अनुषंग।
गावत कोकिल कल सुर, बाजत भूषन ताल-मृदंग॥
बीच-बीच मुरली मन चुरली, बाजत सुख मुखचंग।
सुघर सु केकी देसी दिखावत, लालहिं फबत सुधंग॥
चंचल चरननि, अंचल अति गति, उपजावति भ्रू-भंग।
स्वेद-बिंद गोबिंद कलानिधि, पौंछत उरज उतंग॥
हस्तक, मस्तक, भेद दिखावत, गावत गिरत अनंग।
गौर छटा-छबि मे दबि निकसत, सॉवल के सब अंग॥
बिहँसत दुरि दामिनि धुनि सुनि-सुनि, मोहे वारि बिहंग।
सैननि निरखत फूले 'व्यासदासि' के नैन-कुरंग॥६४३

राग सारंग

अपनैं बृंदावन रास रच्यौ, नॉचत प्यारी पिय संग।
सब्द उघटत स्याम नटवर, मनौं कल मुखचंग॥
बिविध बरन संगीत-अभिनय-निपुन, नख-सिख अंग।
सा रे ग म प ध नी सप्तम सुर, गान-तान-तरंग॥
सिद्ध रागिनी, राग सारंग सहित, सरस सुधंग।
धननन तननन तक-तक थुंग, रुनित मृदंग॥
तरल तिलक ललाट कुंचित, चपल चिकुर सुभंग।
चंद सत (सम) ताटंक मंडित, गंड जुगल सुरंग॥
मंद हास-बिलास, दसननि दमक दामिनि-भंग।
हार चंचल, प्रगट अंचल मधि उरज उतंग॥

वलय - नूपुर - किंकिनी - रव, वलित ललित - सुलग ।
भ्रुव - भंग तक्र चंद कर्तरि - भेद, रस अनुषंग ॥
थकित सुक, पिक, हंस, केकी, कोक, भृ ग, कुरंग ।
'व्यास' स्वामिनि नित्य विहरति, प्रनय कोटि अनंग ॥६४४॥

८. बसंत— राग बसंत

देखि सखी, अति आज वन्यौ री, बृंदाविपिन समाज ।
आनंदित ब्रज-लोग भोग सुख, सदा स्याम कौ राज ॥
राधा-रवन वसंत रचायौ, पंचम धुनि सुनि कान ।
धरनि गिरत सुर-किंनर-कन्या, विथकित गगन विमान ॥
कुलकित कोकिल कुंजनि ऊपर, गुंजत मधुकर - पुंज ।
बाजत महुवरि, वैनु, झाँझ, डफ, ताल, पखावज, रुंज ॥
केसरि भरि-भरि लै पिचकारी, छिरकत स्यामहिं धाइ ।
छिरकि कुँवरि बूका भरि चोवा, लई कंठ लपटाइ ॥
मुकलित बिबिध बिटप-कुल बरषत, पावन पवन पराग ।
तन-मन-धन न्यौछावर कीनौ, निरखि 'व्यास' बड़भाग ॥६४५॥

चलि चलहिं बृंदावन बसंत आयौ ।
झूलत फूलनि के भँवरा, मारुत मकरंद उड़ायौ ॥
मधुकर, कोकिल, कीर, कोक मिलि, कोलाहल उपजायौ ।
नाँचत स्याम बजावत, गावत, राधा राग जमायौ ॥
चोवा, चंदन, बूका, वंदन, लाल गुलाल उड़ायौ ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत,रोम-रोम सचु पायौ ॥ ६४६ ॥

ऋतु बसंत मयमत कंत सँग, गावति कुँवरि किसोरी ।
सुर - बंधान - तान सुनि मोहन, रीझि कहत हो, होरी ॥
रंग - छींट - छवि अंग विराजत, मंग जलज मनि रोरी ।
बीथिन बीच कीच मची, मानसरोवर केसरि घोरी ॥
बाजत ताल मृदंग, वेनु, डफ, मन मुहचंग उमग न थोरी ।
उड़त गुलाल - अबीर, कीर - पिक बोलत मोरन - मोरी ॥
छूटी लट, टूटी मालावलि, विगलित कंचुकि, फटि डोरी ।
'व्यास' स्वामिनी स्याम अंग भरि,सुख-सागर महँ बोरी ॥ ६४७ ॥

नाँचत मोहनी मोहन संग धुनि बाजै,
सुनि सुरत मदन रति गावत बसंत ।
राग - रंग रह्यौ, रस कौ प्रवाह बह्यौ,
मोपै नहिं परत कह्यौ, तान मान गुन-गति न अंत ॥

मधु पटवी सुवास फूलनि कौ रंग जाकौ,
कीच वीच वीथिन के, राजत वृंदावन सुकंत ।
गौर-स्याम तन छींट छवीली. छवि फवि गई 'व्यासहिं',
कहि क्यों आवै, सगन मगन भयौ मन मयमंत ॥६४८॥

खेलति राधिका, गावति वसंत ।
मोहन संग रंग सों देखति सब सोभा, सुख कौ न अंत ॥
बाजत ताल मृदंग, झाँझ, डफ, आवज, बीना, बीन सुकंत ।
चोवा, चंदन, बूका, बंदन, साखि गुलाल कुम-कुम उड़ंत ॥
मौरे आम काम उपजावत, गावत कोकिल मनौं मयमंत ।
गुंजत मधुप-पुंज कुंजनि पर, मंजु रेन मलयज वहंत ॥
गौर-स्याम-तन छींटन की छवि, निरखि विमोहे कमलाकंत ।
'व्यास' स्वामिनी के बन विहरत, आनंदित सब जीव-जंत ॥६४९॥

खेलत वसंत कंत-कामिनि मिलि, हो - हो बोलत, डोलत फूले ।
सुख-सागर गावत दोऊ नाँचत, नट-नागर वंसीवट मूले ॥
मौरे आमनि कोकिल कूजति, फूल झूमकनि अलिकुल भूले ।
विविध रंग छिरकति छवि अंगनि, भूषन भूषित चित्र दुकूले ॥
पर-नारी पर-नाहु वाहु गहि विगत लाज जोवन-मद भूले ।
'व्यास' स्वामिनी सँग हरि विहरत, विलपत पथिक-वधू जन सूले ॥६५०॥

वसंत खेलत विपिन - विहारी ।
ललित लवंग - लता - वीथिन में, संग वनी वृषभान - दुलारी ॥
सखिन ओट दै कुँवरहिं छिरकति, राधा भरि पिचकारी ।
लाल गुलाल चलावति तकि-तकि, कुँवरि वजावति हँसि दै तारी ॥
वरसाने तें गोपी आईं, स्यामहिं देत काम - वस गारी ।
छल करि आँकौ भरि, काजर लै आँखि आँजि, पहिरावति सारी ॥
सैननि ही मन की जव पाई, रूख कीनौ है राधा प्यारी ।
'व्यास' स्वामिनी विहँसि मिली, मोहन की छवि करत न न्यारी ॥६५१॥

वसंत खेलत राधिका प्यारी ।
गावत, नाँचत, वैनु वजावत, अंस-भुजा धरि कुंजविहारी ॥
साखि, जवादि, कुमकुमा, केसरि, छिरकत मोहन झूमक सारी ।
उड़त अवीर पराग गुलालहिं, गगन न दीसै दिनु भयौ भारी ॥
मधुकर, कोकिल कुंजनि गुंजत, मानौं देत परस्पर गारी ।
नख-सिख अंग वनीं सब गोपी, गावति देखत चढ़ीं अटारी ॥
ताल, रवाव, मुरज, डफ बाजत, मुदित सबै वृंदावन-नारी ।
यह सुख देखत नैन सिरावैं, 'व्यासहिं' रोम-रोम सुख भारी ॥६५२॥

लाल-बिहारी प्यारी के सँग, वसंत खेलत बृंदावन में ।
गौर-स्याम सोभा सुख-सागर मोद-विनोद समात न मन में ॥
तनसुख की चोली कुमकुम रँग, भीजि रही न देखियत तन में ।
उरज उघारे से अनियारे, चुभि रहे नागर के लोचन में ॥
धाइ धरी कामिनि मोहन पिय, हियैं लसति, दामिनि ज्यों घन में ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि-छीटैं, प्रतिबिंबित मोहन-आनन में ॥६५३॥

खेलत राधिका-मोहन मिलि माई, आई री वसंत पंचमी ।
कठ बाहु धरि नाहु छबीलौ छिरकत अरगजा,
गावत नाँचत हो - हो होरी, हो धमारि जमी ॥
मौरे आम काम उपजावत, फूले फूलनि की न कमी ।
'व्यास' बिपिन वैभव अवलोकत, नारायन विसरी लछमी ॥६५४॥

राग सारंग

नाँचत गोप, पराग - फूल-फल, मधु-धारा महँ धरनिहिं बोरी ।
पुलकि-पुलकि गौ,गिरि,गोपीकुल,सर उमगत, सरिता गति थोरी ॥
इहिं विधि डोल वसत माधुरी, सुंदर बृंदावन महँ घोरी ।
स्याम तुम्हारे राज, लाज तजि, 'व्यास' निगम दृढ़ सीवाँ तोरी ॥६५५॥

६. होरी की धमार—

राग गौरी

आजु बनी नव रंग किसोरी ।
कुँवर-कंठ भुज मेलत-झेलत, खेलत फाग कहत हो-हो री ॥
बाजत ताल, मृदंग, झाँझ, डफ, सहचरि गावति कीरति कोरी ।
उड़त अबीर गुलाल चहूँ दिसि, चंदन, बंदन, चोवा, रोरी ॥
कारी अँगिया झूमक सारी, तन भूषित भूषन सिर डोरी ।
प्रथम मगलाचरन कियौ पिय, मंगल कलस पूजि झकझोरी ॥
केसरि भरि पिचकारी छिरकत, लूटत विधि खूटति नहिं थोरी ।
साखि,जवादि,कपूर,धूरि मिलि,मुदित उड़ावनि भरि-भरि झोरी ॥
नाहिंन कोऊ काहू सूझति, चतुर सखीनु चुराई गोरी ।
करि हाँसी ललितादिक दासी, अंचलु गाँठि कुँवर जौं जोरी ॥
चाहति फिरत राधिका-स्यामहिं, निरखि हँसी सुंदरि सुख मोरी ।
मन भायौ फगुआ लै छाँड्यौ, मोहन ठग्यौ गाँठ तब छोरी ॥
बिहँसि मिली प्रीतम कों प्यारी, जनु आनंद - सिंधु महँ बोरी ।
चरन गहे नागरि के नागर, करि आलिंगन चिबुक टटोरी ॥

वरषत विटप-पराग फूल-फल, मधु-धारा महँ धरनि हिलोरी ।
पुलकि-पुलकि गोपी-कुल, सर उमगत, सरिता गति थोरी ।।
इहिं विधि डोल वसंत - माधुरी, सुंदर बृंदावन महँ घोरी ।
स्याम तुम्हारे राज लाज तजि,'व्यास'निगम दृढ़ सींवाँ तोरी ।।६५६।।

राग सारंग

अव हो हरि ! प्यारे सो खेलहु ।
आँकौ भरि भेटौ, दुख मैटौ, सुख - सागर उर झेलहु ।।
कुँवर नाह की वाँह पानि गहि, कंठ आपनैं मेलहु ।
'व्यास'हिं यह उपहास स्याम लगि, लोक-वेद पग पेलहु ।।६५७।।

खेलत फाग फिरत दोऊ फूले ।
स्यामा-स्याम काम-वस नाँचत, गावत सुरत - हिंडोरे झूले ।।
बृंदावन की सपति दोऊ, नागर - नट वंसीवट मूले ।
चोवा, चदन, वदन छिरकत, छींट छवीले गात दुकूले ।।
कोलाहल सुनि गोपी धाईं, विसरे गृह - पति, तोक झरू ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत,नैन-कुरंग रहे तकि भूले ।।६५८।।

राग गौरी

ये चलि,ललन भरहिं मिलि चलि हो, चलि अलि वेगि गिरिधरन भरहिं मिलि ।।
अली चली गिरिधरन भरन कों, पहरैं सुरँग दुकूल ।
नवसत-अभरन साजि चली सव, अगनि - अंगनि फूल ।।
सनमुख आवत होरी गावत, सखन सहित वलवीर ।
उभै मदन - दल उमड़े मानहुँ, जुरे सुभट रन-धीर ।।
महुवरि, चंग, उपंग, वाँसुरी, वीना, मुरज, मृदंग ।
ढोलक, ढोल, झाँझ, डफ वाजत, कह्यौ न परत सुख-रंग ।।
व्रज जन वाला, रसिक गुपाला, खेलत रँग भरे फाग ।
तान तरगनि मुनि - गन मोहे, छाइ रह्यौ अनुराग ।।
रतन जटित पिचकारिन भरि-भरि, छिरकत चतुर सुजान ।
कनक-लकुटि छैलन पर टूटति,फिरत कुँवरि जू की आन ।।
छूटति वसन, टूटति मनि-माला, धरत भरत भुज पेलि ।
लाल गुलाल आनन पर वरषत, करत चपल कल केलि ।।
इक भानपुरा की अमान गूजरी, फूली अंग न माइ ।
छैलनि देखि कहूँ ज्यौं आई, हलधर पकरे धाइ ।।

आईं सिमिट सबै ब्रजबाला, लेति आपनैं दाइ।
मानौं ससि अवनी पर घेर्‌यौ, उडगन पहुँचे धाइ॥
एकै धाइ धरत आँकौ भरि, एक मरोरति कान।
इक सनमुख ह्वै साजि आरतौ, बहु पूजा सनमान॥
जोरि सखन मन-मोहन धाये दाऊ जू की भीर।
जुवती-जूथ सनमुख ह्वै उमड़े, कूकें देत अहीर॥
जुवतिनि नैन-सैन-भेदनि में, मोहन लीनौ घेरि।
मधुमंगल हँसत दूरि भयौ ठाढ़ौ, सुबल बजावत भेरि॥
मोहन पकरि जूथ में ल्याईं, पूजा रचित बनाइ।
दधि-अच्छत-रोरी कौ टीकौ, गनपति-गौरि मनाइ॥
एकै कुच बिच लेत लाल कौं, लाइ रहत उर मेलि।
मानहु तरुन तमालहिं लपटीं, कनकलता बहु मेलि॥
गौर लेप मोहन मुख लेप्यौ, लिखी छबीली भौंह।
ये ढोटा बृषभानराइ के, सुबल तुम्हारी सौंह॥
पकरि श्रीदामा चोबा माडौ, लै आये भरि बाथ।
नंदराइ यह ढोटा जायौ, दयौ हमारे साथ॥
भजि मनसुख जसुमति पै आयौ, कहत आतुरे बोल।
बृषभान-पुरा की जोर गूजरी, भैयन लै गईं बोल॥
चली महरि तब यह सुख देखन, जोरि आपनौ बृंद।
सुर-नर-मुनिजन एक भये हैं, थकित भये रवि-चंद॥
देखति सोभा ब्रजपति रानी, आनँद मन महँ होइ।
आजु रोहिनी भाग हमारौ, 'ताहि न पूजै कोइ॥
तब रोहिनि-ललिता जू बोलीं, आगैं आवहु भाम।
कर जोरैं हम करत बीनती, चलहु हमारे धाम॥
तब ललिता राधा पै आई, बात सुनहुँ दै कान।
बडी महरि अपनैं घर बोलति, पायौ चाहति मान॥
तब राधा सखियन पै आई परत सबन के पाँइ।
गावत, खेलत, हँसत, हँसावत, चलहु महरि कें जाँइ॥
इतनौ सुनत सबै जुर आईं, चलीं महरि के द्वार।
ब्रजपति-रानी दृष्टि परी तब, भाजि गये सब ग्वार॥
आगैं ह्वै रोहिनी जू आईं, अरघ-पाँवड़े देति।
कंचन-थार उतारति रानी वारि बलैया लेति॥

रतन जटित सिंहासन आन्यौ, दियौ किसोरिहिं राज ।
बाबा जू अब करत बीनती, मोल लये हम आज ॥
अगनित सेवा गनौं कहाँ लगि, भूषन - वसन अमोल ।
प्रेम मगन नँदरानी बरषति, कहत वचन मधु बोल ॥
नौतन भूषन खुले वसन तन, उपजत कोटिक भाइ ।
प्रथम उतीरन दये 'व्यास' कों, विमल - विमल जस गाइ ॥६५६॥

१०. डोल— राग बसंत व सारंग

स्यामा-स्याम बने बन झूलत, मरकत - कनक - हिंडोरैं ।
ऋतु वसंत अनुराग फाग सब, खेलत केसर घोरैं ॥
बाजत ताल, मृदंग, झाँझ, डफ, मुरली मिलैं सुर थोरैं ।
गावत मोहन की मोहन धुनि, सुनि सब कौ चित चोरैं ॥
झूका जोवन - जोर देत दोउ, कुलकि - पुलकि झकझोरैं ।
स्याम काम - बस चोली खोलत, आतुर निसि के भोरैं ॥
डाँडी छाँड़ि करत परिरंभन, चुंबन देति निहोरैं ।
सैननि बरजति पियहिं किसोरी, दै कुच - कोर अकोरैं ॥
खैंचत पट लंपट नट-नागर, झटकति नीबी - बधन छोरैं ।
नेति - नेति सुनि रहत लाल, निहोरत चिबुक टटौरैं ॥
देखि सखिन गुलाल उड़ायौ, निरखत छबि कर जोरैं ।
'व्यास' स्वामिनी राजति स्यामहिं, सुखसागर में बोरैं ॥६६०॥

राग सारंग

फूलत दोऊ झूलत डोल ।
रच्यौ अलौकिक कौतुक निरखत, रति-पति दीजतु ओल ॥
पिय-प्यारी उर सौं उर जोरैं, अधरन सौं अधर कपोल ।
चारयौ बाहु पीठि पर दीठि, नाहु पर कुचनि विलोल ॥
जोवन - जोर देत दोऊ झोका, चंचल अलक निचोल ।
मुंच - मुंच रव नेति - नेति, नवनागरि बोलति बोल ॥
तन सौं तन, मन सौं मन उरझ्यौ, बाढ़ी प्रीति अमोल ।
परिरंभन-चुंबन रति - लंपट, नीबी - बंधनि खोल ॥
बाजत ताल पखावज, आवज, डफ, ताल, दुंदुभी, ढोल ।
बीथिन बीच कीच अगरजा की, गावति सहचरि टोल ॥
सुक, पिक, मोर, मराल, मधुप, मृग, मुदित पुलिंदनी कोल ।
'व्यास' स्वामिनी कौ जस गावत, मधुऋतु होली होल ॥६६१॥

राग मलार

भूलत फूलत कुंजबिहारी ।

दूसरी ओर किसोर - वल्लभा, श्री बृषभान-दुलारी ।
कुलकत - हँसत खसत कुसुमावलि, सुंदर भूमक सारी ।।
कबहुँक पटतरि भुलवति गावति, प्यारिहिं पिय रसिया री ।
देखति नैन सफल करि खेलत, कोटि 'व्यास' बलिहारी ।। ६६२ ।।

११. फूल-रचना—

राग कल्याण

फूलन कौ भवन,फूलन कौ पवन बहै, फूलन की सेज रचि,फूलन के चँदोये ।
फूलन की सारी-चोली पहिरैं प्यारी, देखत फूलैं मोहन के नैननि के कोये ।।
परिरंभन - चुंबन तन फूले, सुरति विवस सब राति न सोये ।
फूले उरज करज परसत ही, पान करत फूले अधर निचोये ।।
यह सुख निरखि 'व्यास' सखी फूलीं, फूले अंग न मात सकल दुख खोये ।।

फूली फिरति राधिका प्यारी, पहिरैं फूलन की डँडिया ।
नख-सिख फूलन ही के भूषन, पहिरैं फूलन की अँगिया ।।
फूले वदन सरोज पयोधर, फूली अलक पलक अँखियाँ ।
नाँचति,गावति राग वसंतहिं, सुनि फूली मोहन की छतियाँ।।
चोवा - चंदन भरि पिचकारी, छाँड़त नंदनँदन रसिया ।
केसरि-साख, गुलाल लाल पर,बरपि हरपि बृषभान-धिया ।।
बजत मृदंग,उपंग,ताल,डफ, रुंज, रवाब, झाँझि,डफिया ।
हाव-भाव परिरंभन देखति, 'व्यास' भई परवसिया ।। ६६४ ।।

१२. जल-क्रीड़ा—

राग घट

जमुना-जल खेलत जुगल किसोर ।

सुरत विवस सब राति जगे दोउ, कोउ न बिछुरत भोर ।।
पानि कमल-मुख जल भरि तकि-तकि,छिरकत वोट हिलोर ।
नैननि नीर लगत नहिं सकुचत, अरुझत जोवन-जोर ।।
बुड़की लै उछरत एकहिं सँग, अंग सहत झकझोर ।
तरत न डरत प्रवाह पग पेलत, खेलत मिलि दुरि चोर ।।
करतल - ताल बजावत, नाँचत, गावत मंदिर घोर ।
'व्यासदासि' की स्वामिनी पियहिं मिली दै उरज अकोर ।। ६६५ ।।

राग धनाश्री

मान करि मानसरोवर खेलति ।
ग्रीषम ऋतु रजनी सजनी सँग, विरह-ताप पग पेलति ।।
बुड़की लै जल ही जल आये, हरि सहचरि कौ वपु धरि ।
थाह लेत ही जहाँ राधिका, धाइ धरी आँकौ भरि ।।
परिरम्भन - चुंबन पहिचान्यौ, नागरि जान्यौ नागर ।
इहिं विधि जल-थल विहरत छलबल,'व्यास' प्रभू सुख-सागर ।।६६६।।

राग सारंग

रति-रस सुभग सुखद जमुना-तट ।
नव-नव प्रेम प्रगट वृंदावन, विहरत कुँवरि नागरि, नागर नट ।।
सीतल तरल तरंग अबु - कन, वरषत पद्म - पराग पवन 'वर ।
कुसुमित अमित कुसुम - कुल परिमल, फूलत जुगल किसोर परस्पर ।।
विविध विलास रास परमावधि, गावति मिलि दोऊ रीझति अति ।
मधुप, मराल, मोर, खंजन, पिक,विथकित अद्भुत कोटि मदन - रति ।।
कुमकुम कुसुम - सयन मंजुल मृदु, मधु पूरित कचनमय भाजन ।
रजनीमुख सनमुख दल साजत, सुभटन जूझत लाज न ।।
अति आतुर कचुकि - बँध खोलत, बोलत चाटु वचन रचना रचि ।
नेति-नेति कल बोल स्रवन सुनि, चरन - कमल परसत मोहन लचि ।।
इहिं विधि करत विहार मगन दोऊ, पोषत रति - सुख - सागर ।
'व्यास' ललित लीला ललितादिक, देखत रसिक उजागर ।।६६७।।

१२. मान की मलार—

राग मलार

मान-विमान चढ़ी तू धावति ।
पाछैं लाग्यौ फिरत कुँवर, ताहू तू मुख न दिखावति ।।
तेरी कानि करत वन निविड़, निकुंजनि निकस न पावति ।
तो विनु काम विवस स्यामहिं, कत वन-वीथी अरुझावति ।।
सनमुख हरि आये सहचरि ह्वै, रवकि कंठ लपटावति ।
दै चुंवन हँसि 'व्यास' स्वामिनी, प्रगट वेद बौरावति ।। ६६८ ।।

राग कामोद

निसि अँधियारी दामिनि कौंधति, राधिका प्यारी विनु कैसैं रहैं वृंदावन ।
घुमरि-घुमरि घन - धुनि सुनि दादुर, मोर, पपीहा सुघर मलार सुनावन ।।
उनमद मदन महीपति दल सज, विरही कौ बल धीर हलावन ।
कोटिक कहि-कहि मैं समुझाई,'व्यास' स्वामिनी मान न कीजै सुनि स्रावन ।।

राग मलार

सावन मान न कीजै माननि !
काम नृपति दल साजै आवत, पठयौ बादर धावनि ॥
दादुर, मोर, पपीहा बोलत, कोकिल-सब्द सुहावनि ।
गर्जत सावन आयौ बन-घन, दामिनि-असि चमकावनि ॥
निसि अँधियारी बिहारी आयौ, पैयाँ लागि मनावनि ।
'व्यास' स्वामिनी हँसि उर लागी, तन की तपन बुझावनि ॥६७०॥

राग मलार

होति कत पियहिं मिलन कों सीरी ।
उठि चलि बेगि राधिका, वह देख पस्चिम खसित ससी री ॥
तेरे नाम-रूप-गुन की छबि, मोहन-उर माँहि बसी री ॥
आवत जात मनावत 'व्यास' सखी की बेंस खसी री ॥६७१॥

मनावौ मानिनि मान अली री ।
बिलपत बिपिन अधीर स्याम, कहि पठई बात भली री ॥
घन-दामिनि कबहूँ नहिं बिछुरत, मधुकर-कमल-कली री ।
सारस, कोक, मराल, मीन जल, प्रीति रीति कुसली री ॥
सहचरि-बचन रचन सुनि सुंदरि, मुरि मुसकाइ चली री ।
'व्यास' त्रास तजि बिहरत दोऊ, रति-संग्राम बली री ॥६७२॥

राग मलार

स्याम कौ काम करत अपमान ।
सुंदर सुघर कुलीन दीन अति, दाता रूप - निधान ॥
ता सों रूसत क्यों मनमान्यौ, जान्यौ तेरौ ज्ञान ।
साधुहिं हठ अपराध लगावति, ब्यौरौ करति सयान ॥
तेरौ नाउँ जपत बिलपत री, करत रहत गुन-गान ।
मोहू कल बत-रस बौरावति, बाढ़त बहुत बखान ॥
बचन सुनत उठि चली अली सँग, छोड़्यौ निजु करि मान ।
पिय के हिय हँसि लगी, 'व्यास' की स्वामिनि दै जिय-दान ॥६७३॥

मान न कीजै मानिनि वर्षा ऋतु आई ।
अंग-अंग मिलि गाउ राधिका, राग मलार सुहाई ॥
बिनु अपराधहिं रूसनौं छाँड़ि दै, श्री वृषभान - दुहाई ।
'व्यास' स्वामिनी साँवरे सुंदर, पाँइनि लागि मनाई ॥६७४॥

१४. रस की मलार—

राग मलार

प्यारी के नाँचत रंग रह्यौ ।

पिय के बैनु बजावत गावत, सुख नहिं परत कह्यौ ॥
कोमल पुलिन नलिन-मंडल महँ, त्रिविध समीर वह्यौ ।
विथकित चंद मंद भयौ, पथ चलिवे कहँ रथ न रह्यौ ॥
कंकन - किंकिनि-नूपुर सुनि, मुनि-कन्यनि कौ मन उमह्यौ ।
उलट वह्यौ जमुना कौ जल, सब ही के नैननि नीर वह्यौ ॥
अंग सुधंगनि देखत, गर्व-पर्वत तें मदन ढह्यौ ।
तिरप, उरप, सुलपनि की गति कौ, पति नहिं मरम लह्यौ ॥
निरखत स्यामहिं काम बढ़्यौ, रस-भंग न परत सह्यौ ।
'व्यास' स्वामिनी नैन - सैन दै, नागर विहँसि गह्यौ ॥६७५॥

राग मलार

पावस की सोभा अधिकाई ।

गगन सघन वन मिले विराजत लाजत उपमा देति सकुचि दवि,
अध ऊरध छवि कही न जाई ॥
दोउ नाइक संवट पट साजैं, गावत नाँच-
बजावत, रीझत रूप की निकाई ।
विविध वरन मन-हरन छवीले, नाना धुनि स्रवन सिरानैं,
बरषत - हरपत विधि सुहाई ॥
मंद हास कल, भ्रू-विलास चल, नैन सैन, सुख बैन, ऐन भरि,
उमगि चले तिहिं सागर माई ।
जीव - जंत मयमंत भये सब, तरनि-तनया परिताप गये,
'व्यास'हिं प्यास न भई अघाई ॥६७६॥

पावस ऋतु कौ रास पुलिन महँ स्याम रच्यौ ।
तैसौई घुमरि-घुमरि घन वरषत, गावत-नाँचत रंग सच्यौ ॥
कहत रमा वृंदावन रूप, सील, गुन, रसु न वच्यौ ।
ताल, मृदंग, झाँझ, डफ वाजत, सुनत स्रवन सुख-पुंज खच्यौ ॥
कुँवरि सुकेसी मिलवत देसी, नटवर अंग सुधंग सच्यौ ।
मंद हँसन सैननि रति नाँचति, चल भ्रू-भंग अनग लच्यौ ॥
'व्यास' सकल लोकन सौं मूरिख, विनही काज विरंच पच्यौ ॥६७७॥

मनिमय धरनि तरनितनया तट, नाँचत मोर किसोरी वर सुधग ।
राग मलार कोकिल कल गावत, बाजत मधुर धुनि मेघ-मृदग ॥
चँदवा चुंग टिपारे माथैं, कटि-काछनी, चद्रिका सुरंग ।
रिमझिम बूँद स्वेद-कन बरषत, चातक रव जनु ताल उपग ॥
तिरप किसोरी मोरनि सिखवति, सुलपि निपुन अभिनय सब अग ।
ग्रीवा नील पिछौरी चमकति दामिन हँसत लसत भ्रू - भग ॥
खग,मृग,गा,ागार,सलिता बिथकित, मोहे निसि ससि,पवन,अनंग ।
राधा - रवन प्रताप - दीप महँ,'व्यास' मुदित सुख परत पतंग ॥६७८॥

राग गौड़ मलार

बसीबट जमुना तट नाँचत, दोऊ वर सुधग ।
लाघवजुत सब्द कहत मृदु तत् तत्, थेई थेई, ता थु ग थु ग तान तरंग ॥
जानति सगीत साँचु सरस विरस विरम,लेत नैन,लोल लोचन भृकुटि भग ।
चिंद चाल - ताल, सुघर अवघर, गति निरखि थकित कोटि अनंग ॥
अलित वलित चक्र-सम षटचक्र-भेद, गगन में अति तिरप प्रवीन अग-अंग ।
रास रसिकनी 'व्यास' स्वामिनी रस राख्यौ,
रसिक कुंबर रीझि रहे, चरन गहे लै उछग ॥ ६७९ ॥

राग गौड़ गलार

नाँचत नटवा मोर सुधंग अंग, तैसैं बाजत मेह मृदग ।
कटि चद्रिका काछनी चमकति, सिरहिं सिखडि टिपारे चुंग ॥
तैसैंई कोकिल - कुल गाइन गावति, सुरति दिखावति मधुप उतग ।
तैसैंई मोहन राग मलारन बाजति, अभिनय निपुन राधिका कुच तुंग ॥
साख जवाद कुमकुमा नरषत, ललितादिकनि उमग ।
कुंज महल तहँ पवन केहल नहिं, 'व्यास' चिराक दिखावति संग ॥

१५. बिहार की मलार—

राग मलार

मानौ माई कुजन पावस आयौ ।
स्याम घटा देखत उनमद हो, मोरन सोर मचायौ ॥
दामिनि दमकति, चमकति कामिनि, प्रीतम उर लपटायौ ।
निसि अँधियारी,दिसि नहिं सूझति,काजु भयौ मन-भायौ ॥
डोलत वग बोलत घन-धुनि सुनि, चातक वदन उठायौ ।
बरषत धुरवा सीतल बूंदनि, तन-मन-ताप बुझायौ ॥
कुसुमित - धरनि तरनि-तनया तट, चद वदन सुख पायौ ।
'व्यास' आस सब ही की पूजी, सरिता सिंधु बढ़ायौ ॥६८१॥

राग मलार

सुरँग चूनरी भीजत, लाल ! उढ़ाउ पीत पट।
झला झकोरत आवत दुहुँ दिसि, निसि अँधियारी,
दामिनि कौंधति, वेगि चलहु प्रीतम बंसीवट ।।
बीथिनि बीच कीच मचिहै, तब मोहिं लयौ चहौगे कनियाँ,
कंटक विकट घने जमुना - तट ।
लई उछंग 'व्यास' की स्वामिनि रसिक-मुकुट-मनि,
धनि-धनि मोहन बार-बार कर परसत कुच - घट ।।६८२।।

जब जब कौंधति दामिनी, तब-तब भामिनी डराति, प्रीतम उर लागति ।
उन्मद मेघ घटा-धुनि सुनि निसि, पियहिं जगावति आपुनि जागति ।।
दादुर, मोर, पपीहा बोलत, मदमाती कोकिल बन रागति ।
कुंज - कुटीर 'व्यास' के प्रभु पै, श्री राधा रति पागति ।।६८३।।

हरषति कामिनि, बरषत दामिनि, मेघन की माला पहिरैं तन ।
विविध विराजत गिरिवर ऊपर उडत पताका
पाँति अरु सोभित सुरराज - सरासन ।।
बोलत चातक चंद्र - मँडल महँ, कुंजित—
कोकिल कल, खेलत खंजन ।
रेंगति चंद्र - वधू धुरवानि बिच - बिच,
कीच बन घन मई सौरभ समीरन ।।
गरजत सिंह, विथकित गज, हंस विहरत,
मीन - मधुप मिलि तन - मन ।
सर - सरिता - सागर भरि उमगे,
यह सुख पीवत 'व्यास' प्यास विन ।।६८४।।

राग मलार

प्यारी री ! मो पै कही न जाइ तेरे रूप की निकाई ।
लोक चतुरदस की सुंदरता, तेरे एक रोम अरुझाई ।।
तब राग मलारनि बाजति है,तब मोर-मंडली नाचति जु सुहाई ।
निविड़ निकुंज अँध्यारी जामिन, होड़ परी भामिनि—
दामिनि सों, 'व्यास' स्वामिनी हँसि कंठ लगाई ।।६८५।।

राग मलार

आजु कछु कुंजनि में बरषा सी।
बादल दल में देखि सखी री, चमकति है चपला सी॥
नान्ही-नान्ही बूँदनि कछु धुरवा से,पवन वहै सुख-रासी।
मंद - मंद गरजनि सी सुनियतु, नाँचति मोर-सभा सी॥
इद्रधनुष बग-पंगति डोलति, बोलति कोक-कला सी† ।
इद्रवधू छवि छाय रही मनु, गिरि पर अरुन घटा सी॥
उमँगि महीरुह सी महि फूली, भूली मृग - माला सी।
रटत 'व्यास' चातक ज्यों रसना, रस पीवत हू प्यासी॥६८६॥

१६. हिंडोरा—

राग कल्याण

देखौ गोरिहिं स्याम झुलावहिं।
वर्षा ऋतु बृंदावन हित करि, हरषि हिंडोरना गावहिं॥
डोलत बग,बोलत चातक-पिक,घन दामिनि बन-बन आवहिं।
रिमझिम बूँद परत तन भीजत, मन परिताप बुझावहिं॥
कबहूँ ,हिलमिल प्रीतम दोऊ, जोवन - जोर मचावहिं।
उर सों उरज परसि हँस रसिया,अधर-सुधा-रस प्यावहिं॥
बरषत विटप कुसुम-कुल व्याकुल,सुर-बनिता सिर नावहिं।
ताल-मृदंग बजावति दासी, 'व्यास'निरखि सचु पावहिं॥६८७।

राग सारंग

मेह सनेही स्याम के बृंदावन परवत।
दामिनि दमकति, चमकति कामिनि, झूलत दंपति तन मन हरषत॥
ललना-लाल हिंडोरा गावत, सुनि धुनि मुनिब्रत कौ मन करषत।
कुलकि - पुलकि वेपथजुत भेटत, उर उरजनि सों घरपत॥
झूका सह तन डाँडी गहत न, कर गहि चुंवन लेत न लरपत।
नैन-सैन दै हँसत-लसत दोऊ, 'व्यासदासि' विवि मुख सुख वरसत॥६८८॥

राग मलार

हिंडोरना झूलत नवलकिसोर।
वरपत मेह हरयारौ साँवन, जहँ - तहँ नाचत मोर॥
दामिनि दुरति,भामिनि छवि निरखति,चंचल अचल छोर।
डोलत वग, बोलत पिक - चातक, सुनत मंद घन - घोर॥

---

† कोक कला सी (ट), है कोकिला सी (च, छ)

हिय सों पियहिं लगाइ, मचायौ अवला जोवन - जोर ।
सीकत स्याम गिरत तें उवरे, कर गहि उरज कठोर ।।
पट - भूपन लट उरझि न छूटति, वाढ़ी प्रीति न थोर ।
कुच गहि चुंवन करि मुख देखत, सुख-सागर झकझोर ।।
गावति नॉचति सखी झुलावति, गति उपजत चित-चोर ।
राख्यौ रंग 'व्यास' की स्वामिनि, रति-रस-सिंधु-हिलोर ।।६८६।।

राग धनाश्री

जा के राधिका सी घरनि , तरनिजा - तट घर,
सो नागर - नट काहि न फूलै ।
वृंदावन सुघर ललितादिक दासी गावत्ति,
मुदित झुलावति,सुरति हिंडोरा निसि-दिन झूलै ।।
सो अवतार कदंव - मुकुट - मनि सुंदर,
सुघर स्याम - तन पीत दुकूलै ।
रास - विलास हास - रस वरपत,
सपनैं हू जिन 'व्यास'हिं भूलै ।।६६०।।

राग जयतिश्री

झूलत - फूलत रंग भरे मैन ।
सहचरि रॅग भरी गान करत कल, पावति अति सुख,
झुलवति हैं सव समुझति हैं सैन ।।
नख - सिख छवि वीजु परस्पर,
अधर अरुन वीरी विवि दैन ।
नासा - मोती थकित न चकित रहे,
गहे सेज जद्यपि चपल अन्यारे नैन ।।
उर नग मुकुर विलोकति नागर,
हँसत - लसत छवि कहत वनै न ।
उपमा जितीं तितीं सव वारीं, तुच्छ करि डारीं,
या छवि ऊपर अव कहा कहौं लहै कछु वैन ।।
हरिवसी, हरिदासी सनमुख,
कान लगै कछु वोलत वैन ।
'व्यासदास' कें चुभी, खुभी ग्रीवा भुज,
क्लिकि - क्लिकि प्रीतम उर लैन ।।६६१।।

चतुर्थ परिच्छेद

ब्रज-लीला

☆

१. रूप-माधुरी— राग गौड़ मल्हार

श्री बृषभान-सुता-पति वंदे। उदित मुदित मुख सुख मय चंदे॥
विगत विरह रोग, स्याम भँवर भोग, उरज-जलज मादक मकरंदे।
कुंज-भवन हित कुसुम-सयन कृत, सुरत-पुंज रस आनँद-कंदे॥
वलित नयन-भ्रुव, ललित वयन जुव, दलित मदन-मद, हास सु मंदे।
सहज स्वरूप दंपति,'व्यास'निरास संपति,दीन विपतिहर वर आनंदे॥६६२॥

राग कल्याण

मोहनी कौ मोहन प्यारौ।
आनँद-कंद सदा बृंदावन, कोटि चंद उजियारौ॥
ब्रज-वासिन कें प्रान-जीवन धन, गो-धन कौ रखवारौ।
नंद-जसोदा कौ कुल-मंडन, दुष्टनि मारनवारौ॥
चरन-सरन साधारन-तारन, आरत-हरन हमारौ।
नव-निकुंज सुख पुंजनि वरषत,'व्यास'हिंछिन न विसारौ॥६६३॥

राग सारंग

हरि-मुख देखत ही सुख नैननि।
निरखत रूप अनूप, निमेष लगत ही देत कुचैननि॥
वारैं घर-घर वात-बात सुनि, स्रवन भरत सुख-चैननि।
हस कोटि दामिनि प्रतिबिंवित, बिंवाधर रस ऐननि॥
बिनु दामनि हौं मोल लई इति, स्याम छवीले सैननि।
भौंह-धनुष तें चलत नयन-सर, भेदत उरज गुरैननि॥
रोम-रोम की छवि पर वारौं, कोटि सोम-छवि मैननि।
सहज मधुरता 'व्यास' मंद पै, कहत बनै क्यों वैननि॥६६४॥

राग धनाश्री

नंद बृषभान के दोऊ बारे।
बृंदावन की सोभा-संपति, रति-सुख के रखवारे॥
गोरी राधा, कान्ह साँवरे, नख-सिख अंग लुभारे।
वोलत,हँसत, चलत,चितवत, छवि वरनत कवि-कुल हारे॥
धीर समीर तीर जमुना के, कुंज-कुटीर सँवारे।
विविध विहारहिं विहरत दोऊ, सहज स्वरूप सिंगारे॥
रसिक अनन्य मंडली मंडन, प्रानन हू तें प्यारे।
जुगलकिसोर 'व्यास' के ठाकुर, लोक-वेद तें न्यारे॥६६५॥

राग नट व आसावरी

मनोहर मोहनी की भाँति ।
पलकनि नैन समात न देखत, नव विटपनि की पाँति ॥
कुंजनि गुंजत मधुप-पुंज, पिक कूजति कै इतराति ।
कुसुमित अमित कुसुम नव बेली, निरझर सुधा चुचाति ॥
मंद समीर धीर गति, चंद-किरनि मनि भुव मुसकाति ।
मिथुन प्रगट मैथुन रस-सिंधु, माधुरी सों बरषाति ॥
श्री 'व्यास'स्वामिनी पिय के हिय पर,बिलसत हू न अघाति ॥६६६॥

नैन सिरात गात अवलोकैं ।
इनि महँ सोभा - सिंधु समात न, पलक साँकरी ओकैं ॥
स्रवन होत सुख भवन हमारे, सुनत तुम्हारी टोकैं ।
कहा-कहा अनुभव कहियै हो, सकल कला-कुल कोकैं ॥
कुच कौ रस चाखत कर जैसैं, रुधिरहिं पीवत जोकैं ।
ऐसैं ही 'व्यास'रसिक रस-भोगी,बिरस दुखित सिर ठोकैं ॥६६७॥

राग धनाश्री

सब गुन गोरी तेरे गातिन ।
कछुक काम-बस स्यामल हैं कछु, मलय चंद निसि-प्रातनि ॥
मृगज, मीन, खंजन, गज, हंस, हेम कपट के भ्रातनि ।
घन, दामिनि, पचानन, सुक, पिक, मधुप सर - घातनि ॥
नागर राग बिराग लयै कछु, सुधी कृपन धन-दातनि ।
तव बिलास छबि कवि न अगोचर, कोटि कविन के तातनि ॥
सबै भाव मन में क्यों आवत, कहत सुनत सठ बातनि ।
'व्यास' रसिक तब फल पायौ, निरखत नैन समातनि ॥६६८॥

राग देवगधार

छिड़ाइ लये तैं मेरे नैन ।
बंक बिलोकि समार बिहँसि किये, भौंह-धनुष सर-सैन ॥
देखत गुन गति मति हरि लीनी, दै कजरा महँ ऐन ।
इन ही मेरौ मन मोह्यौ, ह्वै गई पलक सों ठैन ॥
तारे तरल पुतरिया कोये, रतिरस में यह मैन ।
सहज मोहनी इनही की यह, किधौं कियौ कछु तैन ॥
उन बधिकनि ये मृगज गीधे, बिधये लट फदनि चैन ।
बिलगु न मानैं हिलगि हिये की, 'व्यास' हिं कहत बनै न ॥६६९॥

राग गौरी (तिताला)

आजु मैं मोहन कौ मुख मोह्यौ ।
दह्यौ मथत अंचल चंचल छवि, देखि कुँवर उर जोह्यौ ॥
नैन-भँवर कुच-कमलनि अटक्यौ, लटकत लटकन खोह्यौ ।
विकल स्याम गैया के धोकैं, लोई बृषभ सौं दोह्यौ ॥
चितै विचेत भई मुहिं जानी, पानि जु हियौ टटोह्यौ ।
पर वस रसिक 'व्यास' कौ स्वामी, प्रीति-रीति - सर पोह्यौ ॥७००॥

राग सारग

गोविंद मेरे मन भायौ ।
आनँदकंद नंद-नंदन सखि, भागन ही मैं पाइ कंठ लपटायौ ॥
सुख-सागर महँ मगन भये इह, रस झर में जेहिं झर लायौ ।
को हौं, को वह, को निसि-वासर, वन किहिं बिसरायौ ॥
हिलग वावरी विलग न जान्यौ, विधि - संजोग वनायौ ।
जो पै 'व्यास' प्रभुहिं भाइ इतनौ, कु-लोक अलोकु अघायौ ॥७०१॥

राग देवगधार

मन मोह्यौ मेरौ मोहन माई ।
कहा करौं चित लगी चटपटी, खान-पान-घरु-बन न सुहाई ॥
विहँसनि बंक विलोकनि सैननि, मैन वढ़्यौ कछु कहत न जाई ।
अदभुत छवि वदनारबिंद की, देखत लोक - लाज बिसराई ॥
मेरैं साहस उनके वाहस, मनचीती बिधि भली बनाई ।
पालागौं यह कहहि कहूँ जिनि, विरस न जानैं लाज पराई ॥
रह्यौ न परतु, कह्यौ वहुतनि मिलि, है न होहि कबहूँ सुखदाई ।
'व्यास' त्रास करि को अब छाँड़ै, भागन पायौ कुँवर कन्हाई ॥७०२॥

राग धनाश्री

जो भावै सो लोगनि कहन दै ।
अवनि पिछौडौ पाँव न दीजै, न्याव मेटि प्रीति निवहन दै ।
हौं जोवन मदमाती सखी री, मेरी छतियाँ पर मोहन रहन दै ॥
नव-निकुंज पिय अंग संग मिलि,सुरति-पुंज रस-सिंधु थहन दै ।
या सुख कारन 'व्यास' आस कै, लोक-वेद उपहास सहन दै ॥७०३॥

राग आसावरी

गोविंद सरद - चंद वन मंद हासे सोहै ।
नटवर - वपु - वेप निरखि, सकल लोक मोहै ॥
मेघ स्याम पीत वसन, वनमाला सोहै ।
वरह-वात गुंज - पुंज, उपमा कौ को है ॥

बंसीवट बेनु - नाद, सब कौ मन मोहै ।
गोरी चितु चोरि लयौ, विकल वृषभ दोहै ॥
मोहन धुनि सुनत लोह चुंवक बिछोहै ।
'व्यास' मंद, स्यामहिं तजि और प्रभुहिं टोहै ॥ ७०४ ॥

राग सारंग

रंग भरे लालन आए मेरैं, हौं देखत भूलि रही ।
चित्र विचित्र बनाव कियौ अंग - अंग,
अनग कोटि वारौं, मोपै सोभा नहिं परति कही ॥
जब मुसक्याय चितै सैननि दै,
नैननि सों नैन मिलत मेरी बहियाँ गही ।
अति नवीन प्रवीन सब ही अंग, 'व्यास' कौ-
प्रभु चाहत सुरत - केलि - सुख ही ॥ ७०५ ॥

राग धनाश्री व आसावरी

माई री मेरैं मोहन आये ।
बहुत दिनन के बिछुरे, भाग बड़े घर बैठे पाये ॥
करि न्यौछावरि तन-मन-धन-जोवन, आनँद-गीत गवाये ।
चोवा - चदन चौक पूरि मैं, मंगल कलस पुजाये ॥
मगन भयौ मन मैं मनु हँसि, नैननि सैन मिलाये ।
कछुव न सकुच रही तिहि अवसर, उरज उमँगि उर लाये ॥
भये मनोरथ पूरन मेरे, सब परिताप बुझाये ।
'व्यास' काम - वस हम दोऊ जन, सिगरी राति जगाये ॥ ७०६ ॥

२. बाल लीला—

राग धनाश्री

कन्हैया ! देहि धौं, नैकु हेरी ।
अपनौ राग सुनाउ छबीले, हौं बलिहारी तेरी ।
मो सनमुख नैक गाइ बुलाउ, आँखि चाँपि नैकु डेरी ॥
बेनु बजाउ लटकि मेरे लटकन, नाँचहि दै - दै फेरी ।
सुनि मोहन, सब कियौ, दियौ सुख, 'व्यास' मोल बिनु चेरी ॥ ७०७ ॥

राग गौरी

आवो रे आउ भैया, से हे हेरी दीजे ।
गाइ बुलाउ दुहाउ छबीले, मथि - मथि घैया पीजै ॥
आस पास गोपाल मंडली, मिलि कोलाहल कीजै ।
मुहुवर बैनु बजावत गावत, आनँद ही तन भीजै ॥
गोरस बेचन जाति ग्वालिनी, घेरि दान किन लीजै ।
'व्यासदास' प्रभु भगरत घर, बन आनंदहिं सुख लीजै ॥ ७०८ ॥

ग्वाल-चबैनी ग्वाल चवात ।
मीठी लागत मोहन के सँग, घर की छाक न खात ॥
टोरि पतौवा जोरि पतोखी, पय पीवत न अघात ।
मधुर दही के स्वाद निवेरत, फूले अँग न समात ॥
कबहुँक जमुना - जल में पैरत, मोहन मारत जात ।
बूडक लै उछरत छलबल सों, स्याम - गात लपटात ॥
कबहुँक खग-मृग-भाषा बोलत, वन सिंघै न डरात ।
अद्‌भुत लीला देखि - देखि कैं, 'व्यासदास' बलि जात ॥ ७०६ ॥

३. दान लीला— राग गौरी

ऐसे हाल कीने री नागर नट ।
गोरस बेचन जाति अकेली, आनि पर्‌यौ औचक जमुना - तट ॥
फोरि मथनियाँ, तोरि मोतिनलर, छोरि कचुकी,
गहि झकझोरि अंचल चंचल लट ।
फारत पट, कुच-घट औघट री, 'व्यासहिं' देखत भागि चढ़्‌यौ वंसीवट ॥

चद्र-वदन चंद्रावलि गावै ।
सोने की मटुकिया पाट की इँडुरिया, सिर धरि गोरस वेचन आवै ॥
घेरें रे भैया हो, जैसैं जान न पावै,
इहि सघन कानन-वन ऊबट वाट-घाट धावै ।
आजु नंद बाबा की सौंह दान लै, तब छाँड़ौ याहि,
जोवन - गर्व यह अधिक कहावै ॥
बत-रस अटकति, भौंह - नैन मटकति, छल करि कुच - घटनि दुरावै ।
अंचल कचुकी लट गहतही रूठ्यौ देत, मुरली छिड़ाय लेत, अँगूठा दिखावै ॥
आजु हौं कन्हैया लूटी, मोतिन की लर टूटी,
चूरा चांपि फूटी, घर भूँठी ये बनावै ।
'व्यास' जोर न बीच होतौ, को जानैं कहा यह करतौ,
ऐसी बातें जोरि ब्रज माँझ सुनावै ॥७११॥

स्याम रोकत फिरौ आज ब्रज की गैल ।†
लेहौ संग ग्वाल, बछरा गाय चारौ जाय, दान कहा लेउगे करौ वन की सैल ॥
किये वन पात के चित्र सब अंग में, भये ठाढ़े आय करत मो सों फैल ।
अनकटोंटी बात करौ मनहिं बिचार कोऊ, ऐसौ भयौ नाहिं ब्रज में छैल ॥
जात हैं निस-दिना याही हम गैल में, दान कोई ना लियौ आज पाये पहैल ।
मदन मोहन कहैं 'व्यास' स्वामिनि सुनौ, धरौ मटुकी धरनि चलौ अपने महैल ॥

† कीर्तन सग्रह भाग १, पृष्ठ २४२ से सकलित

४. पनघट लीला—

कान्ह ! मेरे सिर धर गगरी ।
यह भारी पनिहारी कोउ न, मनसा पुजवत सगरी ॥
राति परी घरु दूर, डर वाढ़्यौ, मेरे सासुन नगरी ।
देहु पीतपट करहु इँडुरी, छाँड़हु छैल अचगरी ॥
अंचल गहि चंचल वन भगरत, नग वगरत लट वगरी ।
विहरति 'व्यासदास' के प्रभु सों,ग्वालिनि सुख लै डगरी ॥७१३॥

जमुना जातिही हौं पनियाँ ।
बीचहिं भई और की औरै, मिलि गये मन - मोहनियाँ ॥
मो तन विहँसि विलोक्यौ नागर,चल नैननि की अनियाँ ।
धीरज रह्यौ न कह्यौ परै कछु, रुकि लई हौं कनियाँ ॥
चिबुक पकरि चुंवन करि खोली,चोली छन तन तनियाँ ।
सघन कुंज लै गयौ लालची, हाथ परे 'कुच मनियाँ ॥
परी सुहस्त वैस ही भागन, पायौ प्रान - रवनियाँ ।
'व्यास' मिलाये केवल छैलहिं, चलत गैल पर धनियाँ ॥७१४॥

राग गौरी (तर्ज तिताला)

आजु जिन जाउ री माई कोऊ, पनघटि है मोहन फैंटी ।
नद - किसोर दुरयौ कुंजनि में, चोर देत है सैंटी ॥
वाट चली आवत ही वरवट, नागर नट सों भेंटी ।
परसत ही धीरज न रह्यौ तन,मनसिज आन खखेटी ॥
तोहि निहोरौ सुंदरि मेरौ, वचन मानि गुजरेटी ।
पुजई आस 'व्यास' के प्रभु की, कुसुम - सेज पर लेटी ॥७१५॥

राग सारंग

भूली, भरन गई ही पानी ।
गैल वतावहि छैल छवीलौ, तू न परति पहिचानी ॥
मेरी सासु त्रासु करिहै घर, मेरौ पति अभिमानी ।
कुल की नारिहिं गारि चढ़ै, जो वन में रैन विहानी ॥
भलकति गागरि अलक सलिल भई, सारी स्वेद चुचानी ।
सीत-भीत तें कंपु वढ़्यौ अति, विरति न जाति वखानी ॥
भागनि भेट भई तोही सों, भारनि चाँद पिरानी ।
नैंकु उतारहि पाँइ परत हौं, तो ते कौन सयानी ॥
दीन वचन सुनि सदय हृदय के,निरखत मुख मुसिक्यानी ।
पूजी आस 'व्यासदासी' की, देखत आँखि सिरानी ॥७१६॥

मंडप रच्यौ विमल बहु भाँति, खंभनि दियल वराइयौ ।
अंब-मौर, दल वंदनवार, सोभा कहत न आइयौ ॥
नंद बुलाये गोप वरात, मनभाये वागे दिये ।
पहुपमाल वर बीरी अनूप, भाँति-भाँति सौंधे लिये ॥
हय-गय पैदल - रथ आरूढ़ चँवर, - छत्र सोभा भई ।
वाजे अगनित गने न जाइँ, लोक-लोक प्रतिधुनि छई ॥
नंद-महर की चली वरात, वरसाने बृपभान कैं ।
ज्यों-ज्यों चलत नगर नियरात, त्यों-त्यों सुख स्याम सुजान कैं ॥

आगौनी करि सजननि भेंटि, वारौठी वहु विधि करी ।
देखत श्री मोहन कौ रूप, नर-नारिनि की गति हरी ॥
जनवासौ दै चरन पखारि, चार हुते जे सब किये ।
अँगन लिपाइ उज्यारे दीप, सजन बोलि भीतर लिये ॥
गोप जुगति सों चरन पखारि, बैठारे कर जोरिकैं ।
पातरि हरी बहुत, अति दौना, परसत वहुरि झकोरिकैं ॥
विंजन कौन गनै, पकवान सुवस पछ्यात्वरि चरपरी ।
महलनि चढ़ी देतिं तिय गारि, को वरनें आनँद घरी ॥
चौक पूरि विधि बेदी वानि, दूलहु स्याम बुलाइयौ ।
बैठे पंच सुजन सुख पाइ, हरि कों अरघु दिवाइयौ ॥
दच्छिन दिसि दुलहिन बैठारि, वेद मंत्र बिधि सब करी ।
भयौ व्याह सबकैं आनंद, साखि दुहूँ दिसि उच्चरी ॥

वाजन वहु विधि सवद, निसान, सुर-नर-मुनि कौतुक देखियौ ।
फूले दंपति अँग न समात, जनम सुफल करि लेखियौ ॥
दुलहिन लै जनवासैं आई, कीनौ आनंद वधावनौ ।
मुख देख्यौ दै रतन अमोल, पायौ मन कौ भावनौ ॥
प्रात कियौ पलकाचार, गौर-स्याम जोरी वनी ।
सोभा हो कछु कही न जाय, भुवन चतुर्दस के धनी ॥
हय, गय, हाटक, पट बहु मोल, गोप सबै पहिराइयौ ।
कलस पचहँड़े अगिनित और नग-मनि थार भराइयौ ॥
विदा करी, विनती कर जोरि, हौं सेवक करि जानिवौ ।
कीनी कृपा दीन जिय जानि, सजन भलैं करि मानिवौ ॥
ज्यों घन गरजैं, वजैं निसान, नंद कनक-जल वरपियौ ।
जाचक दान न चातक तूल, त्रिपत भये मन हरपियौ ॥

निरख बरात चली ज्यौनार, रानी जसुमति नंद की ।
मानिक-दीपक सँजोये थार, जननी आनँद-कंद की ॥
दूलहु-दुलहिनि आये पौरि राजत, ज्यौं घन-दामिनी ।
करति आरतौ आनंद रूप महरि, महर की भामिनी ॥
मान जिते तिन रोके दुआर, नेग बहुत भाँतिनि दिये ।
करे दान पाँवड़े अनेक, कनियाँ लै भाये किये ॥
जो सत सेप सहस मुख होइ, गुन-गन तौ न कहत बनैं ।
वेद -उपनिपद पायौ ना पार, और इतर नर को गनैं ॥
कंकन छोरत स्यामा-स्याम, निरखि वदन दंपति हँसैं ।
ताके भाग कहे नहिं जाँइ, जो गावै प्रिय हरि-जसैं ॥
चिरजीवैं जोरी संजोग, सकल लोक की संपदा ।
यह जस गायौ 'व्यास' अघाइ,जनम न परसै आपदा ॥
जीवत रसिक जुगल-रस गाइ,श्री वृंदावन के चंद कौ ।
नर-नारी गावत सुख पाइ, दरस करत नहिं द्वंद कौ ॥७२१॥

७. नृत्य संगीत विनोद—

राग गौड़ मलार

विराजमान कानन वृभषान-कुँवरि गान-तान-
वान हत विमान-काम कामिनी ।
प्रान-रवन मोहन-मन-मृग सुमार किये,
हो - हो रव वार-बार विकच जामिनी ॥
राग-रंग पवन पंग, सेप चलन मान-भंग,
नारद, सिव, सारद लजत भाम-भामिनी ।
निरवधि गुन-जलधि वृंद वृंदावन रस अगाध,
राधा-धव नव विहार 'व्यास' स्वामिनी ॥७२२॥

राग कान्हरौ

ठाड़ी भई रंगभूमि मे रँगीली प्यारी रेख प्रमान सों ।
तत्त थेई सब्द उघटि लाग डाट, तिरप बाँधि उरु चचमान सों ॥
नेत्र भेद, ग्रीवा भेद, हस्तक भेद करि रिझावति, गावति तान-बंधान सों ।
राग-रंग रह्यौ अति 'व्यास' के प्रभु स्याम सुजान सों ।

राग गौरी (अठताली)

नाँचति नागरि सरस सुघग ।
लाल बजावत ताल तरल गति, गावत सुघर नचावत अंग ॥
तत्त थेई-तत्त थेई थुंग-थुंग, धन्नन तन्ननना बाजत मृदंग ।

सप्त सुर गान रागिनि-राग-सागर मान-नागर,
तान-पट - वधान धुनि सुनि विगत गर्व अनंग ॥
कोटि कदर्प लावन्य मुख, चंद मंद, सुचि हास, चल नयन, भ्रू-भंग ।
रूप - गुन - निधान जान, दंपति रन समान,
आन 'व्यासदासि' रंग-रासि देखत सुख संग ॥ ७२४ ॥

राग मारुवौ (अठताल)

नटवति नट अग प्रति सरस सुधंग, रंग-रासि रसिक सरूप सुजान ।
नागर नटवर तार लये कर, उघटि सब्द,
थेई-थेई रूप-निधान करत कल गान ॥
उरप - तिरप-सुलप लेत, ध्रुवा धरु, चंद्र विवि विधि मान ।
रीझि मोहन उर लगावत 'व्यास' स्वामिनी, स्यामा भामिनी नहिं आन ॥

राग सारग

विहरत वनें विहारी - विहारिनि ।
रास - रग अँग संग रचे, गावत - नाँचत करतारिनि ॥
कुसमित मुकुट, काछनी झलमल, झूमक झमकत सारिनि ।
पटकत पद, लटकत मुख, नैननि वाँकी सैन विकारिनि ॥
तिरप लेत चंचल रस राख्यौ, उरज उघारिनि ।
स्याम काम-वस उर लपटानौ, निरखि निपट सुख नारिनि ॥
देखत कौतुक केकि, कपोत, सुक, पिक चढ़ि कुंज-अटारिनि ।
'व्यास'-स्वामिनी की छवि वरनत, कैसें फवै भिखारिनि ॥७२६॥

राग नट व आसावरी

मदनमोहन गावत लाल ।
विकट तान - वंधान मान - सुर, कोऊ न पावै ताल ॥
गति महँ गति, मति महँ मति उपजति, गुन गभीर रसाल ।
नारद, सारद, सिव, गधर्व, किंनरकुल कौ पर्‍यौ चाल ॥
सैननि ही समुझावति सखियनि, राधा परम कृपाल ।
श्री 'व्यास' स्वामिनिहिं रीझि कुँवर मिलि, उपज्यौ सुरत सुकाल ॥

राग गौरी

वजायौ कौनें वन महँ वैन ।
मोहनि धुनि सुनि मुनि-मन मोह्यौ, वाढ़्यौ नख-सिख मैन ॥
मोहन वीर सुर केताननि, वाननि वींधे उर कौ ऐन ।
तजियै सुत, पति, संपत, हीरा, भजियै कुसुमनि कौ सैन ॥

चली अली सब तजि, सुंदर पहँ आईं मेटि कु-चैन।
नैन चषक भरि पीवत जीवत, हरि-दरसन - पय - फैन॥
पिय कौ हियौ जानि, नहिं मानैं बचन, परसि पद - रैन।
'व्यास' स्वामिनी की सब सहचरि, रास नची दै भैन॥७२८॥

खंडिता वचन—

पगे रँगीले नैननि रंग।
अद्भुत छवि कवि कहि न सकत कछु, लाजत निरख कुरंग॥
मुक्ता, मरकत, लाल, कमल-रस, रचे कनक-जल अंग।
गोलक गति निर्मोल लोल मति, देखि लजाने भृंग॥
तारे चंचल पलक पुतरिया, देसी राय सुधंग।
चोज-चाव नव, हाव-भाव लव, सैननि नचे अनंग॥
कहिवे कहत उपमा भूँठी, खंजन, मीन, पतग।
अनत स्याम सर्वोपरि, सकुचत 'व्यास' स्वामिनी सग॥७२९॥

राग गौरी

भोर किसोर चोर लौं सकुचत, फूले अंग न मात।
चोरी फबी न थोरी, चारी करत तुम्हारे गात॥
नैन भरे सुख, चोर सैन दै, कहत गुपति की बात।
सनमुख पाँइनि परत डरत कत, सुख हू में पछतात॥
भागु रावरौ कपट करत हू, महँगे मोल बिकात।
सुनत अनादर हँसत जात, बरबट ही उर लपटात॥
सर्वसु दान 'व्यास' जैसैं लै, मीन अधीन अघात॥७३०॥

राग कल्याण

ओली ओढ़ति चोली तो सौं।
मम हिय पिय के बीच बसत कत, बैर करत बिनु काजहिं मो सौं॥
अरुन नैन के पलक किये जिहिं, ताहि कहाँ लगि कोसौं।
पारति बीच 'व्यास' के प्रभु सौं, ता पापिनि की नारि मसोसौं॥७३१॥

राग धनाश्री

सर्वसु लूटि छूटि क्यों आये।
सकुचि न कारी सारी ओढ़ैं, नैन न दुरत दुराये॥
लटपटी पाग, सटहटे पाँइ परत ही, तुम लखि पाये।
ता कहँ दुख दै सुख सनमुख कै, हम कहँ अति दुख लाये॥
नाक महावर काजर को रँग, अस सुरंग रंगाये।
एक घरी के बिछुरैं 'व्यास', त्रास तजि भये पराये॥७३२॥

राग देवगधार

आजु पिय ! राति न तुम कछु सोये ।

कौन भामिनि के भवन जगे हरि, जाके रस - वस मोये ॥
रति - रस उमगि चले नख - सिख अंग, नीरस अधर निचोये ।
खडित मंड पीक मुख की छवि, अरुन अलस अति पोये ॥
जावक, पीक, मषी - रस कुमकुम, स्वाद बासना भोये ।
लटकति सिर पगिया, लट विगलत, सुंदर स्वाँग सजोये ॥
तन-मन कारे होहिं न गोरे, कोटि वारि जो धोये ।
खोटी टेव न तजत 'व्यास' प्रभु, मैं कै वार विगोये ॥७३३॥

राग सारंग

राख्यौ रंग कौन गोरी सों ।

सुनहु स्याम फवि आइ कितव, तुमहिं लहनौं चोरी सों ॥
चदन - विंदु ललाट इंदु सम, सिर वदन रोरी सों ।
अधरनि अंजन - रेख न मेष, नैन अरुन तेरी सों ॥
भोर किसोर चोर लौं आये, प्रीति करत भोरी सों ।
सौंह करत, चीन्हें पर कछू वसाइ न वरजोरी सों ॥
नील निचोल प्रगट चोली, भूषन चूरा डोरी सों ।
जानति सबै 'व्यास' के स्वामिहिं प्रीति टराटोरी सों ॥७३४॥

मौंगे रहहु, तुम कहहु जिनि वात ।

सुनहु किसोर चोर तुम खोटे, आये प्रगट प्रभात ॥
सकुचत नख - कुच - अंक दुरावत, नील वसन महँ गात ।
मानौं द्वय राका-निसि ससि गन, घन में मुदित न मात ॥
ता महँ अद्भुत छवि उपजति, उर जावक जुत पद लात ।
मनहुँ सुधा-मधु वरषि मिले रिपु, मति तजि विधु जलजात ॥
पीक अधर खडित मषि - मडित, फूले अग न मात ।
मानहु विद्रुम मर्कत-मनि मिलि, कनक खचित मुसिकात ॥
लोचन पीक लीक रस - रंजित, अरुन अलस इतरात ।
जनु कुमकुम मकरद सु रंजित, भ्रमर भ्रमत न अघात ॥
जानत हू मानत नहिं चोरी, ता ऊपर अनखात ।
'व्यास' न करत त्रास दुख दाता, वरवट उर लपटात ॥७३५॥

राग कल्याण

आये माई प्रात कहाँ ते नाहु ।
गात चुचात सुरत-रस मोहन, नैननि बहुत उछाह ।
खंडत गंड, अधर मंडित, दर्पन तन धौं वाहु ॥
जैसी प्रभुता दिन-दिन बाढ़ी, कोटिक हाथ विकाहु ।
वा कहँ सुक्ख, अखिल दुख दै मोहि, पिय अब जिनि तुम लपटाहु ॥
जासों हिलमिलि राति पगे, अब वेगि तहीं तुम जाहु ।
सुनहु 'व्यास' के प्रभु तुम, ऐसौ कीनौ कपट निवाहु ॥७३६॥

मोहन न्याउ कहावत स्याम ।
भोर किसोर चोर लौं आये, जगे कौन के धाम ॥
कितवनि के भैयनि की लैंहु बलैया, हँसनि ललाम ।
मुख देखे विनु सुख न पाइयै, दुख न रहत सुनि नाम ॥
नख-सिख अंग अनंग संग रति, रंग रचे अभिराम ।
अद्भुत छवि की छटा विलोकत, लोचन मिलत न वाम ॥
महँगे मोल विकाने पर धन, जोवन-बल विन दाम ।
'व्यास'हिं है परतीति तुम्हारी, संगति कौ फल काम ॥७३७॥

भोर भयें आये पिय, जिय महँ सकुचात हौ, न सनमुख हू चितवत ।
वारक चूक परी तौ कहा भयौ, अवगुन-
करि, अस्रु न भरि, कत नैननि रितवत ॥
सब अंग रति-रस रँगे लाल, तुम याके-
रस-वस, नहीं जानत रैनि हू वितवत ।
का की आस 'व्यास' के स्वामिहिं टेव परी,
खोटी लोटि पोटि हारे हू जितवत ॥७३८॥

६. मान-प्रसंग—

राग धनाश्री

ललिता, राधाहिं नैकु मनाइ दै ।
बलि जाउँ नाम तेरे की, पर-दुख में सुखहिं जनाइ दै ॥
नागरि रस-सागर महँ मेरे, अंगनि रंग सनाइ दै ।
मेरे तीन जाचकनि, पाँच पदारथ वेगि गनाइ दै ॥
सुनि हँसि रहसि उरसि लपटानी, मन की बात बनाइ दै ।
'व्यास' स्वामिनी रति गुन-गति लै, सर्वसु पतिहिं रिझाइ दै ॥७३९॥

सुखद मुखारबिंद बिनु सुंदरि, स्यामहिं लगी चटपटी ।
पिय की बाधा मेटति राधा, छाँडहि टेव अटपटी ।।
मेरी मिलत बसीठी तेरी, सब ही बात लटपटी ।
'व्यास' स्वामिनी सुनत पियहिं मिलि, मेटी बिरह घटपटी ।।७४०।।

राग कल्याण

मेरौ कह्यौ मानि री भैनी ।
अटकरु पायौ नटनागर कौ, प्रान तू ही मृग-नैनी ।।
हिय में पियहिं राखि तू खेलति, कहत पिसुन चल सैनी ।
अंग अग-रति रंग रचे हौ,सूचति अति मोसों सुख-चैनी ।।
खंडित अधर, गंड पुलकावलि, सकसकाति सुख-ऐनी ।
चोली नैकु जु खोली सुंदरि, मनौ मदन की गिरी गुरैनी ।।
दुरत न चोरी कुँवरि किसोरी,कहत और सब छूटी बैनी ।
प्रगट पीक नख-लीक कुचनि जनु, कनक-कमल पर छैनी ।।
वक्र बिलोकनि, हँसनि छबीली, सकुच परम सुख दैनी ।
'व्यास' स्वामिनी स्याम - संग जनु, दूध-भात महँ फैनी ।।७४१।।

राग नट

वत-रस कति बौरावति मान दुरावति मेरौ ।
सुमुखी तुहीं दुख पावत रूसैं, प्रान - रवन बिलपत री तेरौ ।।
तेरौई चरन सरन सुंदर कौ, बिरह - सिंधु तरिबे कहँ बेरौ ।
कामहिं स्यामहिं कठिन परी सखी, तोही तें अब होत निवेरौ ।।
हा राधे ! हा प्रान - वल्लभा ! रटतु कुँवर कुंजनि करि फेरौ ।
'व्यास'स्वामिनी रहसि बिहँसि मिली,रसिक कियौ बिनु दामनि चेरौ ।।७४२।।

राग सारंग

मूरतिवंत मान तेरे उर, फब्यौ कठिन कुच भेष ।
याही तें सुख में दुख के मुख, हँसत न नैन निमेष ।।
प्रान-रवन की तजि परतीति, अनीति बढ़ावत तेष ।
सुभग जामिनी घटति भामिनी, रति बिनु जानि अलेष ।।
'व्यास' वचन सुनि पियहिं दियौ सुख,बरनत थिथके सेष ।।७४३।।

राग कल्याण

कठिन हिलग की रीति प्रीति करि, लपट पै न अघात ।
अति आतुर चातुरता भूलत, प्रीतम कह अकुलात ।।
परत तेल में माखी मरनि, न जानत दुख की बात ।
चचल चेंटी चाखि राव - रसु, प्रान बिसरि लपटात ।।

चंचल मिरिग घंट सुनि, सिर धुनि, बैठि बँधावत गात ।
परत पतंग दीपज्वाला महँ, आरत काहि डरात ।।
चोर, चकोर, मोर, निसि, ससि, घन देखत मैन सिरात ।
सब सों कपट करत अलि, कमलहिं जीवन दै अरुझात ।।
पावत कृपन धनहिं गहि राखत, काहू देत न खात ।
जियत महीरुह सरिता चातिक घन - बूँदनि चुचवात ।।
जा बिनु मीन, जलज नहिं जीवत, दादुर नहिं पछतात ।
'व्यास' वचन सुनि कुँवरि,कुँवर के कंठ लागि मुसकात ।।७४४।।

१०. रथ-यात्रा—

रथ चढ़ आवत गिरिधर लाल† ।
नव दुलहिन वृषभान - नंदिनी, नव दूल्है नँद - लाल ।।
निरखत नयन सिरात मुदित मन, मिटत विरह की ज्वाल ।
'व्यास' स्वामिनी - कंचन - वेली, लपटी स्याम - तमाल ।।७४५।।
तेरौई मान मनावत, रथ चढ़ आये री मदनगोपाल* ।
नव दुलही वृषभान-नंदिनी (नव) दूल्है नंद-कुमार ।।
निरखत नैनन वदन कमल-मुख मिटि है मदन विरह की ज्वाल ।
'व्यास' स्वामिनी-कंचन-वेली,लिपटी है मानौ स्याम-तमाल ।।७४६।।

११. विविध रस-वर्णन—

राग धनाश्री (अठताल)

कौन भामिनि त्रिभुवन महँ सुंदरि, राधिका नागरि सों करि सकै सारी ।
रूप - गुन - सील - उदार मुकुट-मनि, आलस-वस किये कुंजविहारी ।।
वायस हंसहिं को पटतरि करै, कंचन काँचहिं अंतर भारी ।
इमिली आमहिं, रावन रामहिं, केसर गेरु, छवि - रुचि न्यारी ।।
काम दुधा गाडरहिं न गायौ, हय रासभ सों उपमा न्यारी ।
मेवा खारी हींग - कपूरहिं, खीर खाँड कै सम न सवारी ।।
रवि उदौ ता सरि न अमावस, जामिनि कोटि ,चंद उजियारी ।
चपक सैंमर से धन, राजा रंकहिं इमग न न्यारी ।।
सुर नर मुनि, हरिदासनि कें सब, नारी हरिदासी नहिं डारी ।
'व्यास' अजू वा जुवति पाँ परसति, गनिका हू तें पति न विकारी ।।७४७।।

---

† कीर्तन सग्रह, भाग २, पृष्ठ २६५ से संकलित

* कीर्तन सग्रह भाग २, पृष्ठ २६६ से संकलित

मुख देखत दुख पावत नैन ।
काहू चोट, पीर अति काहू, मो पै कहत बनै न ।।
संपति-विपति निसि की विसरी, भोर भई कत ठैन ।
कपट-प्रीति कौ सिद्ध समात न, हृदय सांकरे ऐन ।।
निलज सलज सों वैर,घेरु घर-घर हू चलत सुनै न ।
लै उसास पितु पोषि 'व्यास' प्रभु कंठ लगे दै सैन ।।७४८।।

मनौ भई भूषन की सी पट-कुटी ।
वनी विचित्र उतंग तनी तन, देखति करति बट-कुटी ।।
कर गहि चुटी लुटी रति-रन महँ, जहाँ जमुना-तट-कुटी ।
'व्यास' स्वामिनी के आदेस, सुदेस भई व लट-कुटी ।।७४९।।

कह भामिनि, तू फूली फिरति ।
राति जगी नव रंगराय सँग,कतहि दुराव करति तू नागरि अंग-अग झिरति ।।
नैन - कपोल, अरुन उर नख-छवि, अधरनि रंग कुसम सिर किरति ।
'व्यास' की स्वामिनि जोवन-मद माती, गज-गामिनि कैसें घेरी घिरति ।।

अधर-सुधा-मद मोहन मोह्यौ ।
भुज-बंधन वँधवाइ पाइ सुख, कुच-गिरिवर भरतार चपि सोह्यौ ।।
खर नख-रेख, सुरेख गइ छवि, खडित दसन वसन रति मानत ।
गुरु नितव अँग हन आनंदित, कच करसत हरषत हँसि जानत ।।
रवनी कौ रति-रोष रवन कहँ, पोष रहतु अरु हरन मान कौ ।
'व्यास' काम गति वाम स्याम हू, तृपति न राधा सुरत दान कौ ।।

राग गौरी

लागी री मोहि तालावेली ।
स्याम काम-वस विलपत वन-वन फिरत हैं, अरु राधिका अकेली ।।
नैन चटपटी प्रीतम विछुरें, कहा करौं तन छुटत नाहिनैं सहेली ।
सुनत'व्यास'की स्वामिनि पिय सों,हियौ मिलावति,सुरत-सिंधु में खेलत झेली

राति अकेलें नींद न आवति ।
सुनि सखी, हौं पिय सों कत रूसी, पावस चितहिं चलावति ।।
वोलन लागे मोर - पपीहा, कोयल काम वढ़ावति ।
घन घोरत चित चोरत, कामिनि-दूती चमकि मनावति ।।
लै करि अपने साथ नैक महँ, सूनी सेज न भावति ।
प्रीतम विछुरे कौ दुख तेरे मुख की छवि विसरावति ।।
वोल वँधान भयौ, मिलि पौढ़त, उर सों उर लपटावति ।
कुच विनु सकुच न जानि'व्यास' की,स्वामिनि अति सुख पावति ।।

राग कल्याण

रूसत हू तूपत दोऊ मन-मन ।
मन वित्रस सैननि दै विहसत, वैन सुहात न कन-कन ।
नीवी छोरि निहोरति गोरी, मूँदि स्रवन कहै जन-जन ।।
गौर चरन हिय धरि पिय समुझि, वजावत किंकिनि खन-खन ।
ओलि पसारि खोलि चोली, दुख मेंटत भेटत थन-थन ।।
जमुना पावस ऋतु हित करि, दामिनि सों मिलि घन-घन
सुरति - सिंधु पोष्यौ मोहन-मुनि, कीनौ जप-तप वन-वन ।।७५४।।

राग रामकली

सदा वन वरषत साँवल मेहु री ।
अरु दामिनि कौंधति दुहुँ दिसि, निसि टूटे जुरत सनेहु री ।।
घूम-घुमरि नान्हीं बूँदनि लागत, अति जुड़ात तहँ देहु री ।
दादुर, मोर, पपीहा वोलत, डोलत छाँड़ें गेहु री ।।
हरित धरनि महँ वूढ़नि रेंगति, निरखत रहत न तेहु री ।
'व्यास' आस सब ही की पूजी, जीवन कौ फल लेहु री ।।७५५।।

राग कल्याण

कान लगि सुनहि सखी, तौ कहौं मते की वात ।
हानि कानि दोऊ न रहति री, पाँचनि में पछितात ।।
नैकु अँगुरिया परसत साधु, कुम्हड़े नौ मरि जात ।
सुनत मिलैं मुंह चार कनभरा, फूले अंग न मात ।।
नाहिंन लाज सकुच डर अपने, गुरुहिं दुरायैं खात ।
कहा द्वारि गारि भागनि वै सों, दूध पीयत अघात ।।
सुनत सखी लै उसर कुंज गई, सुंदरि अति अकुलात ।
'व्यास' त्रास तजि मिलत कपोलनि, चुंवन दै लपटात ।।७५६।।

राग पट व आसावरी

स्यामा-स्याम वलैया लैहौं । दुख-सुख तजि वृंदावन रैहौं ।।
अति पावन जमुना-जल न्हैहौं । व्रजवासिन की जूठनि खैहौं ।।
वंसीवट की छैयाँ रैहौं । कुंजनि छाँड़ि अनत नहिं जैहौं ।।
श्री राधा रूसी वेगि मनैहौं । क्रीड़ा-रस पीवत न अघैहौं ।।
सुंदर नाम स्याम गुन गैहौं । 'व्यास'कहत रासहिं मन दैहौं ।।७५७।।

पंचम परिच्छेद

रास पंचाध्यायी

★

छंद त्रिपदी

सरद सुहाई आई राति। दस दिसि फूलि रही बन-जाति।
देखि स्याम - मन सुख भयौ ॥
ससि - गो - मंडित जमनाकूल। बरषत बिटप सदा फल-फूल।
त्रिविधि पवन दुख - दवन है ॥
राधा - रवन बजायौ बैन। सुनि धुनि गोपिन उपज्यौ मैन।
जहाँ - तहाँ तें उठि चलीं ॥
चलत न दीनौ काहु जनाव। हरि प्यारे सों बाढ़्यौ भाव।
रास - रसिक - गुन गाइहौं ॥१॥
घरु-डरु बिसर्‌यौ बढ़्यौ उछाहु। मनचिंत्यौ पायौ हरि नाहु।
ब्रज - नाइक लाइक सुन्यौ ॥
दूध पूत की छाँडी आस। गो, धन, भरता किये निरास।
साँच्यौ हित हरि सों कियौ ॥
खान-पान तन की न सँभार। हिलग छुडाई गृह - व्यौहार।
सुधि - बुधि मोहन हरि लई ॥
अंजन - मंजन अंग - सिंगार। पट - भूषन, सिर छूटे बार।
रास - रसिक - गुन गाइहौं ॥२॥
एक दुहावत तें उठि भगी। और चली सोवत तें जगी।
उत्कंठा हरि सों बढ़ी ॥
उफनत दूध न धर्‌यौ उतारि। सीझी थुली चूल्हैंहि डारि।
पुरुष तज्यौ जेंवत हु ते ॥
पय प्यावत बालक धरि चली। पति-सेवा कछु करी अनभली।
धर्‌यौ रह्यौ भोजन भलौ ॥
तेल उबटनौ न्हैबौ भूल। भागनि पाई जीवन - मूल।
रास - रसिक - गुन गाइहौं ॥३॥
अंजत एक नैन बिसर्‌यौ। कटि कंचुकि लहँगा उर धर्‌यौ।
हार लपेट्यौ चरन सों ॥
स्रवननि पहिरे उलटे तार। तिरनी पर चौकी सिंगार।
चतुर चतुरता हरि लई ॥

जाकौ मन मोहन हरि लियौ। ताको काहू कछु न कियौ।
ज्यौं पति सौं तिय रति करै॥
स्यामहिं सूचित मुरली-नाद। सुनि धुनि छूटे विपय सवाद।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥४॥

मात, पिता, पति रोकी आनि। सही न पिय-दरसन की हानि।
सब ही कौं अपमानिकैं॥
जाकौ मन जासौं अटक्यौ। रहै न छिन ता बिनु हटक्यौ।
कठिन प्रीति कौ फंद है॥
जैसें सलिता सिंधुहिं भजै। कोटिक गिरि भेदत नहिं लजै।
तैसी गति इनकी भई॥
एक जु घर तें निकसी नहीं। हरि करुना करि आये तहीं।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥५॥

नीरस कवि न कहै रस-रीति। रसिकहिं लीला-रस परतीति।
यह सुख सुक-मति जानिवौ॥
व्रज-वनिता आईं पिय पास। चितवति सैननि भृकुटि-विलास।
हरि बूझी हरि मानि दै॥
नीकें आईं मारग माँझ। कुल की नारि न निकसैं साँझ।
कहा कहौं, तुम जोग्य हौ॥
व्रज की कुसल कहौ बड़भाग। क्यौं तुम आईं सुभग सुहाग।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥६॥

अजहूँ फिरि अपने गृह जाहु। परमेस्वर करि मानौ नाहु।
वन में वसिवौ निसि नहीं॥
वृंदावन तुम देख्यौ आइ। सुखद कमोदनि प्रफुलित जाइ।
जमुनाजल-सीकर घने॥
घर में जुवती धर्महिं फवै। ता बिनु सुत-पति दुखित जु सवै।
यह रचना विधिना रची॥
भरता की सेवा सुख-सार। कपट तजै छूटै संसार।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥७॥

वृद्ध, अभागौ जो पति होइ। मूरख, रोगी तजै न जोइ।
पतित अकेलौ छाँड़िये॥
तजि भरता रहि जारहिं लीन। ऐसी नारि न होइ कुलीन।
जस विहून नर्कहिं परै॥

बहुत कहा समझाऊँ आज। मोहू गृह कछु करनौं काज।
तुम तें को अति जानि है॥
पिय के वचन सुनत दुख पाइ। व्याकुल धरनि गिरीं मुरझाइ।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥८॥

दारुन चिंता बढ़ी न थोर। क्रूर वचन कहे नंद-किसोर।
और सरन सूझै नहीं॥
रुदन करत नदी बड़ी गँभीर। हरि-करिया बिनु को जानै पीर।
कुच-तुंबिनु अवलंब दै॥
तुम हरि बहुत हुती पिय आस। बिन अपराधहिं करत निरास।
कितव रुखाई छाँड़ि दै॥
निठुर वचन बोलहु जिनि नाथ। निज दासी जिनि करहु अनाथ।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥९॥

मुख देखत सुख पावत नैन। स्रवन सिरात सुनत कल बैन।
तव चितवन सरबस हर्यौ॥
मंद हँसनि उपजायौ काम। अधर-सुधा दै करि बिस्राम।
बरषि सींच बिरहानलै॥
जब तें पिय देखे ये पाँइ। तब तें हमैं न और सुहाइ।
कहाँ करैं ब्रज जाइकैं॥
सजन-कुटुंब-गुरु रही न कानि। तुम बिमुखै पिय आतम-हानि।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥१०॥

तुम हमकों उपदेसौ धर्म। ताकौ हम जानत नहिं मर्म।
हम अबला मतिहीन सब॥
दुखदाता सुत, पति, गृह, बंधु। तुम्हरी कृपा बिनु सब जग अंधु।
तुम सौ प्रीतम और को॥
तुम सौं प्रीति करहिं ते धीर। तिनहिं न लोक-बेद की पीर।
पाप-पुन्य तिनकैं नहीं॥
आसा पासि बँधीं हम लाल। तुम बिमुखै ह्वै हैं बेहाल।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥११॥

वेनु बजाइ बुलाईं नार। सिर धरि आईं कुल की गार।
मन-मधुकर लंपट भयौ॥
सोई सुंदर चतुर सुजान। आरजपथ तजै सुनि‡ गान।
तो देखत पुरुषौ लजै॥

‡ सुनि (च, छ), गुनि (ग)

बहुत कहा बरनै यह रूप। और न त्रिभुवन तरुन अनूप।
बलिहारी जा रूप की॥
सुन मोहन, विनती दै कान। अपयस है कीनौ अपमान।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥१२॥
बिरद तुम्हारौ दीन-दयाल। कुच पर कर धर, करि प्रतिपाल।
भुज दडनि खंडहु विथा॥
जैसै गुनी दिखावहि कला। कृपन करै नहिं हलहू भला।
सदय हृदय हम पर करहु॥
ब्रज की लाज बड़ाई तोहि। सुख पुजवत आई सब सोहि।
तुमहीं हमरी गति सब॥
दीन वचन जुवतिन तब कहे। सुनि हरि नैनन नीर जु बहे।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥१३॥
हरि बोले हँसि ओली ओड़ि। कर जोरे प्रभुता सब छोड़ि।
हौं असाधु, तुम साधु हौ॥
मो कारन तुम भई निसंक। लोक-वेद बपुरा कौ रंक।
सिंघ-सरन जबुक ग्रसै॥
बिनु दामन हौं लीनौ मोल। करत निरादर भई न लोल।
आवहु हिलिमिल खेलियै॥
मिल जुवतिन घेरे ब्रजराज। मनहुँ निसाकर किरन-समाज।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥१४॥
हरिमुख देखत फूले नैन। उर उमगे कछु कहत न बैन।
स्यामहिं गावत काम-बस॥
हँसत हँसावत कर उपहास। मन में कहत करौ अब रास।
गहि अंचल चंचल चलौं॥
लायौ कोमल पुलिन मँझार। नख-सिख नटवर अंग सिंगार।
पट-भूषन जुवतिन सजे॥
कुच परसत पुजई सब साध। सुख-सागर मन बढ़्यौ अगाध।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥१५॥
रस में बिरस जु अंतरधान। गोपिन कें उपजौ अभिमान।
बिरह-कथा में और सुख॥
द्वादस कोस रास परमान। ताकौ कैसें होत बखान।
आस-पास जमुना झिली॥

ता मर्हि मानसरोवर ताल। कमल विमलजलपरम रसाल।
खग-मृग सेवैं सुख भरे॥
निकट कलपतरु/ वंसीवटा। श्री राधा रति-गृह-कुंजनि-अटा।
रास – रसिक – गुन गाइहौ॥१६॥
नव कुंकुम जल वरसत जहाँ। उडत कपूर - धूरि जहँ तहाँ।
और फूल - फल को गनै॥
तहाँ स्यामघन रास जु रच्यौ। मर्कतमनि कचन सों खच्यौ।
सोभा कहत न आवही॥
जोरि मंडली जुवतिनि वनी। द्वै-द्वै वीच आपु हरि धनी।
अद्भुत कौतुक प्रगट कियौ॥
घूंघट मुकट विराजत सिरन। ससि चमकत मनौ कौतिक किरन।
।रास - रसिक - गुन गाइहौं॥१७॥
मनि-कुंडल ताटंक विलोल। विहँसति सज्जित* ललित कपोल।
नक-वेसरि नासा वनी॥
कठसिरी गजमोतिन - हार। चचर चुरी किंकिनि झनकार।
चौकी दमकै उरजन लगी॥
कौस्तुभमनि तें पोतिन जोति। दामिन हू तें दसननि दोति।
सरस अधर पल्लव वने॥
चिवुक मध्य अति साँवल विंदु। सवनि देखि रीझे गोविंद।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥१८॥
नील कचुकी माँडन लाल। भुजन नवैया उर वनमाल।
पीत पिछौरी स्याम-तन॥
सुंदर मुदरी, पहुंची पानि। कटि-तट कछनी, किंकिन वानि।
गुरु नितव वैनी रुरै॥
तारामंडल सूथन जवन। पाइनि पैजनि नूपुर सघन।
नखनि महावर खुलि रह्यौ॥
श्री राधा-मोहन मंडल माँझ। मनहुँ विराजत सध्या साँझ।
रास - रसिक - गुन गाइहौं॥१९॥
सघन विमान गगन भरि रह्यौ। कौतिक देखन जग उमह्यौ।
नैन सफल सव ही के भये॥
वाजत देवलोक निसान। वरसत कुसुम, करत सुर गान।
सुर - किंनर जै धुनि करैं॥

* सज्जित (न, छ), लज्जित (ग)

जुवतिन विसरे पति गति देखि। जीवन जनम सुफल करि लेखि।
यह सुख हमकों है कहाँ॥
सुंदरता गुन-गन की खान। रसना एक न परत बखान॥
रास – रसिक-गुन गाइहौं ॥२०॥
उरप लेति सुंदर भामिनी। मानौं नाँचत घन दामिनी।
जा छवि की उपमा नहीं॥
राधा की गति पिय नहिं लखी। रस-सागर की सीवाँ नखी।
वलिहारी जा रूप की॥
लेत सुघर औघर में मान। दै चुंवन आकरपति प्रान।
भेटत, मेटत दुख सवै॥
राखत पियहिं कुचनि विच वान। करवावत अधरामृत पान।
रास – रसिक-गुन गाइहौं ॥२१॥

भूषन वाजत – ताल मृदंग। अंग दिखावत सरस सुधंग।
रंग रह्यौ, न कह्यौ परै॥
कंकन, नूपुर, किंकिनि, चुरी। उपजत धुनि मिस्रित माधुरी।
सुनत सिराने स्रवन-मन॥
मुरली, मुरज, रवाव, उपग। उवटत सवदि विहारी संग।
नागर सव गुन आगरो॥
गोपिन मंडल मंडित स्याम। कनक नीलमनि जनौ अभिराम।
रास – रसिक-गुन गाइहौं ॥२२॥

पग पटकत लटकत लट वाहु। मोहन मटकत हँसत उछाहु।
अचल चचल झूमका॥
मीन कुंडल ताटंक विलोल। मुख सुखरासि कहै मृदु वोल।
गडनि मंडित स्वेद-कनि॥
चौंरी डोरी विलुलित केस। घूमत लटकत मुकट सुदेस।
कुसुम खसे सिर तें घने॥
कृष्न-वधू पावन गुन गाइ। रीझत मोहन कंठ लगाय।
रास-रसिक-गुन गाइहौं ॥२३॥

हरषति वेनु वजायौ छैल। चंदहिं विसरी घर की गैल।
तारागन मन में लजे॥
मोहन धुनि वैकुंठहिं गई। नारायन - मन प्रीति जु भई।
वचन कहत कमला सुनौ॥

कुंजबिहारी बिहरत देखि। जीवन जनम सफल कर लेखि।
यह सुख हम कों है कहाँ॥
श्री बृंदावन हम तें दूरि। कैसें कर उड़ि लागै धूरि।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥२४॥

धुनि कोलाहल दस दिसि जाति। कलप समान भई सुख राति।
जीव-जंत मैमंत सब॥
उलटि बह्यौ जमुना कौ नीर। बालक-बच्छ न पीवत खीर।
राधा-रवन ठगे सबै॥
गिरिवर तरवर पुलकित गात। गोधन-थन तें दूध चुचात।
सुन खग-मृग मुनिव्रत धर्‌यौ॥
फूली मही, फूल्यौ गति पौन। सोवत ग्वाल तजत नहिं भौन।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥२५॥
राग-रागिनी मूरतिवंत। दूलह-दुलहिन सरद-वसत।
कोक-कला संगीत-गुरु॥
सप्त सुरनि की जाति अनेक। नीकैं मिलवति राधा एक।
मन मोह्यौ हरि कौ सुघर॥
छंद ध्रुर्वानि के भेद अपार। नाँचत कुँवरि मिलैं झपतार।
सबै कह्यौ सगीत में॥
सरस सुमति धुनि उघटत सबद। पिक न रिझावत गावत सुपद।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥२६॥
स्रमित भई टेकत पिय-अंस। चलत सुलप मोहे गज-हंस।
तान-मान मुनि-मृग थके॥
चंदन चर्चित गोरी वाहु। लेत सुवास पुलकि तन नाहु।
दै चुंवन हरि-सुख लह्यौ॥
साँवल-गौर कपोल सुचारु। रीझ परस्पर खात उगारु।
एक प्रान, द्वै देह हैं॥
नाँचत,गावत गुन की खानि। राखत पियहिं कुचनि विच वानि।
रास-रसिक-गुन गाइहौं॥२७॥
अलि गावत, पिक नादहिं देत। मोर-चकोर फिरत सँग हेत।
घनऽरु जुन्हाई है मनौं॥
कुच,कच,चिकुर परसि हँसि स्याम। भौंह चलत नैननि अभिराम।
अंगनि कोटि अनंग-छवि॥

हस्तक भेद ललित गति लई। पट-भूषन तन की सुधि गई।
कच विगलित वाला गिरी॥
हरि करुना करि लई उठाइ। स्रम-कन पोंछत कंठ लगाइ।
रास - रसिक - गुन गाइहौं ॥२८॥

तिनहिं लिवाय जमुन-तट गयौ। दूर कियौ स्रम अति सुख भयौ।
जल में खेलत रँग रह्यौ॥
जैसैं मद - गज कूल विदार। ऐसैं खेल्यौ सँग लै नार।
संक न काहू की करी॥
ऐसैं लोक-वेद की मैंड़। तोरि कुँवर खेलै करि ऐंड़।
मन में धरी फबी सबै॥
जल-थल क्रीड़त व्रीड़त नहीं। तिनकी लीला न परत कही।
रास - रसिक - गुन गाइहौं ॥२६॥

कह्यौ भागवत सुक अनुराग। कैसैं समुझैं विनु वड़भाग।
श्री गुरु सुकल कृपा करी॥
'व्यास' आस करि वरनौं रास। चाहत हौं वृंदावन - वास।
करि राधे, इतनी कृपा॥
निजु दासी अपनी करि मोहिं। नित प्रति स्यामा सेऊँ तोहिं।
नव निकुंज सुख - पुंज में॥
हरिवंसी, हरिदासी जहाँ। मोहिं करुना करि राखौ तहाँ।
नित्य विहार अधार है॥
कहत सुनत वाढ़ै रस - रीति। स्रोतहिं - वक्तहिं हरि-पद-प्रीति।
रास - रसिक - गुन गाइहौं ॥३०॥

षष्ठ परिच्छेद

साखी



दोहा

१. गुरु-स्मरण—

हरि - हीरा गुरु - जौहरी, 'व्यास'हिं दियौ बताय ।
तन - मन आनँद - सुख मिलै, नाम लेत दुख जाय ॥ १ ॥
आदि, अंत अरु मध्य में, गहि रसिकन की रीति ।
संत सबै गुरुदेव हैं, 'व्यास'हिं यह परतीति ॥ २ ॥
'व्यास' भलौ अवसर मिल्यौ, यह तनु गुरु मुख पाय ।
फिरि पाछैं पछितायगौ, चौरासी में जाय ॥ ३ ॥

२. युगल चरण ध्यान—

'व्यासदास' से पतित सों, भृगु कौ पलटौ लेहु ।
उन उर दीनौ एक पग, तुम ये दोऊ देहु ॥ ४ ॥
जुगल चरन हिय ना धरे, मिले न संतन दौरि ।
'व्यासदास' तें जगत में, परत पराई पौरि ॥ ५ ॥

३. संत-प्रशंसा—

सती, सूरमा, सतजन, इन समान नहिं और ।
अगम पथ कों पग धरैं, डिगैं न पावैं ठौर ॥ ६ ॥
'व्यास' भक्ति कौ बन घनौ, संत लगे फल-फूल ।
पत्रनि-पत्रनि जल भिद्यौ, तरुवर साखा - मूल ॥ ७ ॥
'व्यास' न कबहूँ उपजिहै, बिपियन कें अनुराग ।
साधु-चरन - रज - पान बिनु, मिटै न उर कौ दाग ॥ ८ ॥
साधुन की सेवा कियें, हरि पावत संतोष ।
साधु-बिमुख जे हरि भजैं, 'व्यास' बढ़ै दिन रोप ॥ ९ ॥
हौं बलिहारी भक्त की, कर्‌यौ बहुत उपकार ।
हरि सौ धन हिरदय धर्‌यौ, छुड़ा दियौ संसार ॥१०॥
'व्यास' भक्त कें जाइयै, देखत गुन कौ हेत ।
सूरा ह्वै तौ उठि मिलै, नातर हारै खेत ॥११॥
'व्यास' बसेरौ कुंज में, बंसीवट की छाँह ।
हरि-भक्तन कौ आसरौ, राधा-बर की बाँह ॥१२॥

'व्यास' सु रसिकन की रहनि, बहुत कठिन है वीर ।
मन आनंद घटै न छिन, सहत जगत को पीर ।।१३।।
'व्यास' जगत में रसिक जन, जैसें द्रुम पर चंद ।
सत्त - चित्त - आनंदमय, भेद न जानत मंद ।।१४।।
रसिक कहैं सोई भली, बुरी न मानौ लेस ।
पद - रज लै सिर पर धरौ, यह 'व्यासै' उपदेस ।।१५।।
'व्यास' कठिन कलि-काल है, नाम-रूप अवगाहि ।
मिलि रसिकन सों निरंतर, नर - तन - हीरा पाहि ।।१६।।
'व्यास' बड़ाई और की, मेरे मन धिक्कार ।
रसिकन की गारी भली, यह मेरौ सिंगार ।।१७।।
'व्यास' रसिक वा सों कहैं, काटै माया - फंद ।
हरि-जन सों हिलमिल रहै, कबहू व्यापै न द्वंद ।।१८।।

४. हरिजन-महिमा—

'व्यासदास' हरिजन बड़े, जिनकौ हृदय गँभीर ।
अपनौ सुख चाहत नहीं, हरत पराई पीर ।।१९।।
'व्यास' जाति तजि भक्ति कर, कहत भागवत टेरि ।
जातिहिं भक्तिहिं ना बनै, ज्यों केरा ढिंग बेरि ।।२०।।
बृंदावन के स्वपच कौ, रहियै सेवक होय ।
तासों भेद न कीजियै, पीजै पद - रज धोय ।।२१।।
'व्यास' सुपच बहु तरि गए, एक नाम लवलीन ।
चढ़ै नाव अभिमान की, बूड़े कोटि कुलीन ।।२२।।
'व्यास' कुलीनिन कोटि मिलि, पंडित लाख-पचीस ।
स्वपच भक्त की पानहीं, तुलै न तिनके सीस ।।२३।।
'व्यास' रसिक जन ते बड़े, ब्रज तजि अनत न जाँय ।
बृंदावन के स्वपच लौं, जूठनि मागैं खाँय ।।२४।।
'व्यास' मिठाई विप्र की, तामैं लागै आग ।
बृंदावन के स्वपच की, जूठनि खैयै माँग ।।२५।।
'व्यास'हिं बाह्मन जिन गनौ, हरि-भक्तन कौ दास ।
राधावल्लभ कारनैं, सह्यौ जगत - उपहास ।।२६।।
मुहरैं-मेवा अनत के, मिथ्या भोग - विलास ।
बृंदावन के स्वपच की, जूठनि खैयै 'व्यास' ।।२७।।
'व्यास' बड़ाई छाँड़ि कै, हरि-चरनन चित जोरि ।
एक भक्त रैदास पर, वारौं बाह्मन कोरि ।।२८।।

बृंदावन कौ चूहरौ, बेचि खात है सूप ।
ताकी सरवर ना करै, आन गॉव कौ भूप ॥२६॥

हरि-जन आवत देखिकैं, फूलैं अंग न मात ।
तन-मन लै आगैं मिलैं, हिलमिल हरि-गुन गात ॥३०॥

'व्यास' वड़े हरि के जना, जिनके उर कछु नाहिं ।
त्रिभुवन - पति जिनके सुवस, और कहौ किहिं माहिं ॥३१॥

'व्यास' वड़े हरि के जना, जिन के हरि आधार ।
निसि - दिन ते माते रहैं, पियैं प्रेम चित धार ॥३२॥

'व्यास' बड़े हरि के जना, जिनके हरि आधार ।
निसि-दिन हरि के भजन में, घटत न कवहू प्यार ॥३३॥

'व्यास' वड़े हरि के जना, जिनकौ हरि सौ मित्त ।
निसि - दिन ते माते रहैं, सदा प्रफुल्लित चित्त ॥३४॥

'व्यास' वड़े हरि के जना, सदा रहत भरपूर ।
खात - खवावत घटत नहिं, ज्यों समुद्र के पूर ॥३५॥

'व्यास' वड़े हरि के जना, हरि कों अरप्यौ आय ।
निसि-दिन अति उल्लास मन, मुख सें हरि-जस गाय ॥३६॥

'व्यास वड़े हरि के जना, हरि-जस में भे लीन ।
तन - मन मनसा हरि विना, और कछू नहिं कीन ॥३७॥

'व्यास' वड़े हरि के जना, हरिहिं नवावत माथ ।
जिनके हिय में वसत है, तीन लोक कौ नाथ ॥३८॥

५. दीनता-गौरव—

'व्यास' दीनता पारसै, नहिं जानत जग अंध ।
दीन भये तें मिलत हैं, दीनबंध से वंध ॥३६

'व्यास' दीनता के सुखहिं, कह जानैं जग मंद ।
दीन भये तें मिलत हैं, दीनवंधु सुख - कंद ॥४०॥

६. दृढ़ विश्वास—

कोटि ब्रह्म ऐस्वर्जता, वैभव ताकी वार ।
'व्यासदास' की कुँवरि कों, अब को सकै निहार ॥४१॥

काहू कें वल भजन कौ, काहू कें आचार ।
'व्यास' भरोसे कुँवरि के, सोवत पाउँ पसार ॥४२॥

७. अनन्य-व्रत—

श्री राधा-वर ध्याय कें, और ध्याइयै कौन ।
'व्यास'हिं देत वनै नहीं, वरी - वरी प्रति लौन ।।४३।।
'व्यास'हिं अत्र जिन जानियौ, लोक-वेद कौ दास ।
राधावल्लभ उर वसे, औरनि ते जु उदास ।।४४।।
'व्यास' एक ही वात गहि, राधावल्लभ - धाम ।
और अनेक सु भक्त सों, मेरौ नाहिंन काम ।।४५।।
आन धर्म में मिल करैं, श्री हरि - भजन समान ।
जैसैं रतन अमोल कर, जानत नहीं अजान ।।४६।।
कर्म करैं भव तरन कों, उलटे पर भव माहिं ।
पैंड़े 'व्यास' अनन्य कौ, जो पै जान्यौ नाहिं ।।४७।।
वेद - पुराननि हू पढ़ैं, करैं सुकर्म सँजोय ।
'व्यास' सु जन्म अनन्य विन,एकौ गति नहिं होय ।।४८।।
सव तजि भजियै स्याम कों,स्रु ति-सु मृति कौ सार ।
'व्यास' प्रगट भागौत में, भृगु कीनौ निरधार ।।४९।।

८. मन की एकाग्रता—

भाव - भक्ति विनु चौहटौ, जहाँ भक्ति तहँ दोइ ।
'व्यास' एकता तव लखै, जवै एक चित होइ ।।५०।।
मन जो चरनन तर वसै, तन जो अनतहिं जाय ।
तनु चरनन मन अनत ही,ताहि न 'व्यास' पत्याय ।।५१।।
जो हरि चरननि चित रहै, तन जु कहौ किनि जाहु ।
तनु चरननि मन अनत हीं,ताहि न 'व्यास' पत्याहु ।।५२।।
'व्यास' जु मन चरनन लगै, तन के लगैं न काज ।
मन-तन करि सव तजि भजै, ताहि प्रेम की लाज ।।५३।।

९. प्रेम-भाव—

प्रेम अतनु या जगत में, जानैं विरला कोय ।
'व्यास' सतनु क्यों परसिहै, पचि हार्‌यौ जग रोय ।।५४।।
'व्यास' भाव विनु भक्ति नहिं,नहीं भक्ति विनु प्रेम ।
झूठी वातन कहकहै, क्यों सु कहावै हेम ।।५५।।
मो मन अटक्यौ स्याम सों, गढ़्यौ रूप में जाय ।
चहले परि निकसै नहीं, मनौ दूवरी गाय ।।५६।।
मोह मुख्य या जगत में, सो कहुँ पैयत नाहिं ।
काम प्रेम के कहन कों, रसना उठति कुकाहिं ।।५७।।

१०. कहनी-करनी—

'व्यास' न कथनी काम की, करनी है इक सार।
भक्ति विना पंडित बृथा, ज्यों खर चंदन - भार ॥ ५८ ॥
'व्यास' विदित चतुराइयनि, उपदेस्यौ संसार।
करनी-नाउ चढ़े विना, क्यों करि पावै पार ॥ ५६ ॥
'व्यास' बिवेकी संत जन, कहनि-रहनि में एक।
कहनि कहै, करनी करै, ज्यों पाथर की रेक ॥ ६० ॥
'व्यास' वचन मीठे कहै, खरबूजा की भाँति।
ऊपर देखौ एक सौ, भीतर तीन्यों पाँति ॥ ६१ ॥
मुख मीठी बातैं कहै, हिरदै निपट कठोर।
'व्यास' कहौ क्यों पाइहै, नागर नंद-किसोर ॥ ६२ ॥
वैर करै हरि-भक्त सों, मित्र करै ससार।
भक्त कहावै आप ते, मिटै न जम कौ द्वार ॥ ६३ ॥
'व्यास' भागवत जो सुनै, जाके तन - मन स्याम।
वक्ता सोई जानियै, जाके लोभ न काम ॥ ६४ ॥

११. प्रसादोत्कृष्टता—

स्वान प्रसादै छुइ गयौ, कौवा गयौ विटारि।
दोऊ पावन 'व्यास' के, कह भागौत विचारि ॥६५॥
करैं व्रत्त एकादसी, हरि - प्रसाद तें दूर।
बाँधे जमपुर जायँगे, मुख में परिहै धूरि ॥ ६६ ॥

१२. नाम-गुण-गान—

जिनकें मुख्य गोपाल जी, पावन हरिगुन-गीत।
तिनकों जुग-जुग जानिवौ, 'व्यासदास' के मीत ॥ ६७ ॥
'व्यास' नाम सम नाम है, नाम समान न कोय।
नामी ते प्रगट्यौ विदित, तदपि गरुवौ होय ॥ ६८ ॥
'व्यास' निरतर भजन करि, वा निष्काम, सकाम।
हाँसी साचे क्रोध करि, वटुक वीज हरि-नाम ॥ ६६ ॥
'व्यास' विभौ के मीत सब, अंत काल कोउ नाँहि।
ता तें तुम हरि कों भजौ, जम न गहैंगे वाँहि ॥ ७० ॥

१३. भक्ति-उपदेश—

जम की मार बुरी यहै, छुटै न और उपाय।
दृढ़ करिकै हरि-भक्त ह्वै, तब हरि-भक्ति सहाय ॥ ७१ ॥
खाइ, सोइ, सुख मानिकै, हरि-चरनन चित लाँय।
'व्यास' दास तेई वड़े, वे वैकुंठै जाँय ॥ ७२ ॥

हरि - हीरा निर्मोल है, निर्धन गाहक 'व्यास'।
ऊँचौ फल क्यों बावनहिं, चौंप करत उपहास ॥ ७३ ॥
'व्यासदास' की भक्ति में, नीरस करै उपाव।
ज्यों सिंहिन के चेंटुवन, दावन कहत* बिलाव ॥ ७४ ॥
'व्यास' भक्ति सहगामिनी, टेरैं कहत पुकारि।
लोक-लाज तब ही गई, बैठी मूड़ उघारि ॥ ७५ ॥
देखा-देखी भक्ति कौ, 'व्यास' न होत निबाह।
कुल-कन्या की हीस कें, गनिका करत बिवाह ॥ ७६ ॥
नर-देही द्वारौ खुल्यौ, हरि पावन की घात।
'व्यास' फेरि नहिं लगतु है, तरुवर टूट्यौ पात ॥ ७७ ॥
श्री हरि-भक्ति न जानहीं, माया ही सों हेत।
जीवत ह्वै हैं पातकी, मरिकै ह्वै हैं प्रेत ॥ ७८ ॥

१४. बृंदावन-बास—

'व्यास' भजन करिबौ करौ, भक्तनि सों करि हेत।
यहि मन सों निस्चै करी, बृंदावन सौ खेत ॥ ७९ ॥
कनक, रतन, भूपन, बसन, मिथ्या अनत बिलास।
बेटी हाट सिंगारिकै, बस बृंदावन 'व्यास' ॥ ८० ॥
बृंदावन कौ बास करि, छोड़ जगत की आस।
'व्यास' सुरसिकनि हिलमिलैं, ह्वै नव जनम प्रकास ॥८१॥
बृंदावन की द्रुम-लता, रसिकनि की घर-बात।
राधा बिहरत लाड़िली, निरखि 'व्यास' बलि जात ॥८२॥
बृंदावन की माधुरी, रसिकन की घर-बात।
चारु चरन अंकित सदा, निरखि 'व्यास'बलि जात ॥८३॥
नैन न मूदे ध्यान कों, किये न अग - नियास।
नॉचि-गाइ रासहिं मिले, वसि बृंदावन 'व्यास' ॥८४॥

१५. साधना—

'व्यास' न साधन सकल सम, हरि-सेवा सम तूल।
पत्रनि-पत्रनि जल मिटै, सींचत तरुवर मूल ॥ ८५ ॥
'व्यास' राधिका-रमन बिनु, कहूँ न पायौ सुक्ख।
डारन - डारन में फिर्‌यौ, पातन-पातन दुक्ख ॥ ८६ ॥
धर्म मिट्यौ,अब कृपा करि, दियौ भजन रस-रीति।
रसिक कुँवर दोउ लाड़िले, 'व्यास'हिं बाढ़ी प्रीति ॥८७॥

---

* व्यास जी की चौरासी में 'दाव न सकत' पाठ है।

मेरे मन आधार प्रभु, श्री बृंदावन-चंद ।
नित-प्रति यह सुमिरत रहौं, 'व्यास'हिं मन आनंद ॥ ८८ ॥
'व्यास' जु मूरति स्याम की, नख-सिख रही समाय ।
ज्यौं महदी के पात में, लाली लखी न जाय ॥ ८९ ॥
'व्यास' बिकाने स्याम-घर, रसिकन कीनौ मोल ।
जरी जेवरी ह्वै रहे, काम न आवत झोल ॥ ९० ॥
खरे-खरे सब लेत हैं, परखि पारखी सार ।
खोटे 'व्यास' अनन्य के, गाहक नंदकुमार ॥ ९१ ॥
आपने-अपने मत लगे, बादि मचावत सोर ।
ज्यौं-त्यौं सब कौ सेवनैं, एकै नंदकिसोर ॥ ९२ ॥
'व्यास' चंद आकास में, जल में आभा मंद ।
जलज मंद यह कहत हैं, जो हम सौ यह इंद ॥ ९३ ॥
'व्यास' न व्यापक देखियै, निर्गुन परै न जान ।
तब भक्तन-हित औतरे, राधावल्लभ आन ॥ ९४ ॥
राधावल्लभ मूल-फल, और फूल, दल, डार ।
'व्यास' इनहिं तें होत हैं, अंस-कला-अवतार ॥ ९५ ॥
राधावल्लभ स्रुति-सुमृति, सुमिरौं कहौं सु टेरि ।
श्री राधा-वर 'व्यास' कें, एक गाँठि सौ फेरि ॥ ९६ ॥
राधावल्लभ-मधुररस, जा के हिय नहिं 'व्यास' ।
मानुष-देही रतन सी, भली बिगारी तास ॥ ९७ ॥
राधावल्लभ परम धन, 'व्यास'हिं फबि गई लूट ।
खरचत हू निघटै नहीं, भरे भँडार अटूट ॥ ९८ ॥
राधावल्लभ 'व्यास' कौ, इष्ट, मित्र, गुरु, देव ।
श्री हरिवंस प्रगट कियौ, कुंज-महल रस-भेव ॥ ९९ ॥

१६. हरिवंश-कृपा—

उपदेस्यौ रसिकनि प्रथम, तब पाये हरिवंस ।
जब हरिवंस कृपा करी, मिटे 'व्यास' के संस ॥ १०० ॥
मोह-मया के फंद बहु, 'व्यास'हिं लीनौ घेरि ।
श्री हरिवंस कृपा करी, लीनौ मोकों टेरि ॥ १०१ ॥
'व्यास' आस हरिवंस की, तिन ही के बड़ भाग ।
वृंदावन की कुंज में, सदा रहत अनुराग ॥ १०२ ॥
श्री हरिवंस-कृपा बिना, निमिष नहीं कहुँ ठौर ।
'व्यासदास' की स्वामिनी, प्रगटी सब सिरमौर ॥१०३॥

स्वामिनि प्रगटी सुख भयौ, सुर पुहपन वरषाय ।
हित हरिवंस-प्रताप तें, मिले निसान वजाय ॥१०४॥
'व्यास' भक्ति कौ फल लह्यौ, श्री वृंदावन-धूरि ।
हित हरिवंस - प्रताप तें, पाई जीवन-मूरि ॥१०५॥

१७ कुसंग त्याग—

'व्यास' विवेकी भक्त सों, दृढ़ कर कीजै प्रीति ।
अविवेकी कौ सग तजि, यही भक्ति की रीति ॥१०६॥
'व्यास' न ता सों प्रीति करि, जाहि आपनी पीर ।
पर पीरक सों प्रीति करि, दुख सहि मेटै भीर ॥१०७॥
व्याह - वधाऐं - स्राद्ध में, पतित नृपति ग्रह दान ।
'व्यास' विवेकी भक्त जन, तजत विमुख को धान ॥१०८॥

१८. कपट से घृणा—

नामा के कर पय पियौ, खाई व्रज की छाक ।
'व्यास' कपट हरि ना मिलें, नीरस अपरस पाक ॥१०९॥
'व्यास' रसिक सब चलि वसे, नीरस रहे कुवंस ।
वग-ठग की सगति भई, परि हरि गये जु हंस ॥११०॥
'व्यास' भक्ति की कुवत कहि, गुरु-गोविंदहिं मारि ।
कै या व्रतहिं निवाहि कै, माला तिलक उतारि ॥१११॥

१९. लोक-प्रतिष्ठा—

'व्यास' वड़ाई लोक की, कूकर की पहिचानि ।
प्रीति करैं मुख चाटहीं, वैर करैं तनु-हानि ॥११२॥

२०. आशा-परित्याग—

'व्यास' आस इत जगत की, उत चाहत हिय स्याम ।
निलज अधम सकुचत नहीं, चाहत है अभिराम ॥११३॥
'व्यास' आस करि मॉगिवौ, हरि हू हरिवौ होय ।
वावन ह्वै वलि कें गये, यह जानैं सव कोय ॥११४॥
महाप्रलय अव ही भई, वृंदावन करि वास ।
पर्‌यौ रहै निस्चित मन, छोड़ि जगत की आस ॥११५॥
'व्यास' भक्त घर-घर फिरैं, हरि प्रभु की तजि सर्म ।
पति खोवैं पर घर गयैं, (ज्यौं) पातसाह की हर्म ॥११३॥
'व्यास' आस जौ लगि हिये, तौ जोगी गुरु दास ।
आस विहूनौ जगत में, जोगी गुरु जग दास ॥११७॥

२१. अभिमान से दूर—

'व्यास' अहता-ममतु तजि, सपति प्रभु कों जानि ।
ताही कर गुर हरि भजहु, भक्तन कों सनमानि ॥११८॥
'व्यास'जगत अभिमान सों,नख-सिख उमग्यौ जाय ।
ते नर बृष के भानु लौं, आपुहिं धूर उडाय ॥११६॥
'व्यास' बसै वन-खंड में, करै निरंतर ध्यान ।
तिनकों हरि कैसें मिलैं, भक्तनि सों अभिमान ॥१२०॥

२२. भ्रम-जाल—

'व्यास' न सुख ससार में, जो सिर छत्र फिरात ।
रैन घनौ धन देखियत, भोर नहीं ठहरात ॥१२१॥
'व्यास' बिभूका खेत कौ, दुक्ख न काहू देय ।
जो निसंक ह्वै जाय, सो वस्तु घनेरी लेय ॥१२२॥

२३. कंचन-कामिनी-प्रभाव—

'व्यास' कनक अरु कामिनी, ये लाँबी तरवारि ।
निकसे हे हरि भजन कों, बीचहिं लीने मारि ॥१२३॥
'व्यास' कनक अरु कामिनी, तजियै, भजियै दूर ।
हरि सों अंतर पारिहैं, मुख दै जैहैं धूरि ॥१२४॥
'व्यास' पराई कामिनी, लहसनि कैसी बानि ।
भीतर खाई चोरिकैं, बाहिर प्रगटी आनि ॥१२५॥
'व्यास' पराई कामिनी, कारी नागिन जान ।
सूँघति ही मरि जायगौ, गरुड - मत्र नहिं मान ॥१२६॥
नारि, नागिनी, बाघिनी, ना कीजै बिस्वास ।
जो वा की संगति करै, अंत जु होय बिनास ॥१२७॥
खाइ, सोइ, सुख मानहीं, कामिनि उर लपटाँय ।
'व्यासदास' अचरज कहा, ते जमलोकै जाँय ॥१२८॥
'व्यास' विषय-बन बढ़ि रह्यौ, नीच-संग जल-धार ।
हरि-कुठार सों प्रीति करि, कटत न लागै वार ॥१२९॥

२४. कुटुंब-शिक्षा—

रे भैया हो, व्यास कों, मति कोऊ पछिताय ।
हरि सों हेत न छूटिहै, जित बछरा तित गाय ॥१३०॥
झूठ मसखरी मन लग्यौ, हरि भजिबे कौं फेर ।
'व्यासदास' की पौरि तें, भक्ति गई दै टेर ॥१३१॥
तजि कें रसिक अनन्यता, विधि-निषेध लै घेर ।
'व्यासदास' के भवन तें, भक्ति गई दै टेर ॥१३२॥

रसिक अनन्य कहाइकैं, पूजैं गृहा गनेस ।
'व्यास' क्यों न तिनके सदन, जम-गन करें प्रवेस ॥१३३॥
'व्यास' डगर में परि रहे, सुनि साकत कौ गाँव ।
मनसा - वाचा - कर्मना, पाप महा जो जाँव ॥१३४॥
'व्यास' वाघ भुज भेटियै, सहियै जिय की हानि ।
साकत भक्त न भेटियै, पाछिलियै पहिचानि ॥१३५॥
'व्यास' विगूचे जे गए, साकत-राँधौ खाँइ ।
जीवत विष्टा स्वान कौ, मरे नरक मे जाँइ ॥१३६॥
'व्यास' जहाँ प्रभु कौ भजन, होते रास-विलास ।
कै कामिनि-वस ह्वै गए, ऊत - पितर के दास ॥१३७॥
साकत भैया सत्रु सम, वेगहिं तजियै 'व्यास' ।
जो वा की संगति करै, करिहै नरक-निवास ॥१३८॥
साकत वामन जिन मिलौ, वैष्नव मिलि चंडाल ।
जाहि मिलै सुख पाइयै, मनौ मिले गोपाल ॥१३९॥
साकत वामन मसकरा, महा पतित जग माँझ ।
पिता नपुंसक किन भयौ, माता भई न वाँझ ॥१४०॥
साकत, सूकर, कूकरा, इनकी मति है एक ।
कोटि जतन परवोधियै, तऊ न छोडैं टेक ॥१४१॥
साकत स्त्री छाँड़ियै, वेस्या करियै नारि ।
हरि-दासी जो ह्वै रहै, कुलहिं न आवै गारि ॥१४२॥
पूत मूत कौ एक मग, भक्त भयौ सो पूत ।
'व्यास' वहिर्मुख जो भयौ, सो सुत मूत कुमूत ॥१४३॥
नाम जपत कन्या भली, साकत भलौ न पूत ।
छेरी के गल्ल गलथना, जा में दूध न मूत ॥१४४॥
साकत सगौ न भेटियै, इंद्र - कुवेर समान ।
सुंदर गनिका गुन भरी, परसत तनु की हानि ॥१४५॥
साकत सगौ न भेटियै, 'व्यास' सु कंठ लगाय ।
परमारथ लै जाहिगौ, रहै पाप लपटाय ॥१४६॥
'व्यास' भक्त चंदन जहाँ, सो वन सकल सुगंध ।
निकट वाँस - कुल वहिर्मुख, इनमें होइ न गंध ॥१४७॥
'व्यासै' वहुत कृपा करी, दीनी भक्ति अनन्य ।
कुल-कृत सव साँचौ भयौ, जहाँ भयौ उत्पन्य ॥१४८॥

---

१५ परिशिष्ट

संदिग्ध रचनाएँ



यहाँ व्यास जी की 'तथाकथित वे रचनाएँ दी जाती हैं, जिनको व्यास-वाणी के अंतर्गत स्वीकार करने के लिए प्रमाण अपेक्षित हैं। जिन कारणों से इन रचनाओं के व्यास जी कृत होने में संदेह उपस्थित किया जा रहा है, वे उनके नीचे प्रकट किये गये हैं।

राग सारग

आज वधावौ बृषभान कें, अहो बेटी ! घरहु भानमती साँथियै,
बेटी ! गनि - गनि रोपौ सींक ।
बेटी ! उदे भयौ तेरे वीर कें, अहो बेटी ! लेहु आपनी लींक ॥
अहो भावी ! तौ मैं धरिहौं री साँथियै, भाबी ! नेग हमारौ देउ ।
अहो बेटी ! माल तिहारे बाप कौ, बेटी ! जो भावै सो लेउ ॥
अहो भावी ! भानु चढन कों धौरिला, सकट जु सौंज भराइ ।
अहो भावी ! दासी देहु बहु सुंदरी, भावी ! पट-भूषन पहिराइ ॥
अहो भावी ! रतनजटित की घूँघरी, और गले कौ हार ।
अहो भावी ! लेंहुगी हाथ मूँदरी, अरु मुतियन भरि थार ॥
अहो भावी ! सौलो तो लेहौं कला कौ, भाबी ! जात-करम गाइ ।
भावी धन लौं वरषौ हेम-रतन, भावी बरसाने कौ राइ ॥
अहो भावी ! सकल सुवसिनि बंस की, भावी ! झगरति माँगति आइ ।
अहो भावी ! भूषन-वसन सवनि कों दये, मोहिं मनभाये मँगाइ ॥
अहो भावी ! और एक माँगत यहै, भावी गरीवदास पहिचानि ।
भावी दासिनि की दासी करौ, भावी ! व्यासबंस की जानि ॥१॥

अ० भा० श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा, वृंदावन द्वारा प्रकाशित श्री व्यास-वाणी के पृष्ठ ४५२ पर पद संख्या ३६४ तथा आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी, वृंदावन द्वारा प्रकाशित व्यास-वाणी के पृष्ठ ३८६ पर पद संख्या ३६५ में श्री लाड़िली जू की वधाई के अंतर्गत उपर्युक्त वधाई भी दी गई है।

इसके अंतिम दो चरणों से यह वधाई व्यास-वंशी गरीवदास जी की रचित ज्ञात होती है। श्री गरीवदास जी श्री हरिराम जी व्यास के वंश में चौथी पीढ़ी में हुए थे। उनका आविर्भाव काल संवत् १७०० के

लगभग माना जा सकता है। उन्होंने श्री लाड़िली जू की अनेक वधाइयाँ लिखी हैं। एक प्राचीन हस्तलिखित वर्पोत्सव में गरीवदास जी कृत जो जन्म-वधाइयाँ उपलब्ध हुई हैं, उनकी शैली से यह और भी स्पष्ट हो जाता है, कि उपरोक्त पद श्री व्यास-वाणी में प्रक्षिप्त हुआ है—

(अ) मंदिर वजै वृषभानु कें।×

कीरति जू हँसि यों कही, 'गरीवदासि' पहिचान।
निज दासिन दासी करौ, व्यास वंस की जान॥

(इ) ढाढ़िया भानु-वंस कौ वृषभानु द्वार में आयौ रे।
व्यास-वंस कौ जान आपनौं,'गरीवदास'पहिरायौ रे॥

इन उद्धरणों से पता चलता है कि अपने नाम की छाप देने के साथ वे अपने वंश तथा परिवार का स्मरण भी वहुधा कर लेते थे। जिस वर्पोत्सव से यह अंश उद्धृत किये गये हैं, उसमें आलोच्य वधाई— "आज वधावौ वृषभान कें ··" भी है और इसी वधाई के ठीक पूर्व गरीवदास जी की ही एक और वधाई है,जो आलोच्य वधाई में वर्णित भाभी के झगड़े की प्रस्तावना का स्वरूप है। उक्त कारणों से यह निश्चित होता है कि आलोच्य पद व्यास जो कृत न होकर गरीवदास कृत है। न जानें प्रकाशित दोनों व्यास-वाणियों मे इसे किस आधार पर सम्मिलित किया गया है, जव कि हस्तलिखित प्रतियों में यह पद संगृहीत नहीं है।

राग वसत (इकताल)

ऋतु वसंत दुलहिन दूलह सँग, खेलत वाढ्यौ री रंग - निवाहि।
दुहूँ दिसि फूलनि देखि भयौ सुख, गावत - नाँचत सैंननि चाहि॥
वाजत ताल, मृदंग, झाँझि, डफ, देखति सुनि आनद न चाहि।
केसरि भरि पिचकारिन छिरकन, मोहन धाइ-धाइ गहत राधाहि॥
परिरभन - चुंवन मिलि विहरत, सुख - सागर महँ अवगाहि।
करि न्यौछावर वलि-वलि जाइ, तृनु तोरि जोरि कर मधुकर साहि॥२॥

अ० भा० श्री हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा, वृंदावन द्वारा प्रकाशित श्री व्यास-वाणी के पृष्ठ ४२१ पर पद संख्या ३३५ एवं आचार्य श्री राधाकिशोर जी गोस्वामी, वृंदावन द्वारा प्रकाशित श्री व्यास-वाणी के पृष्ठ ३६२ पर पद सख्या ३३७ में 'वसंत' विपयक यह पद संकलित किया गया है। इसमें एक तो 'व्यास जी' के नाम की छाप नहीं है, जो वहुत ही कम पदों में छूटी है, दूसरे 'मधुकर साहि' का नाम अंतिम चरण में ऐसे प्रसंग के साथ दिया गया है, जिससे यह पद उन्हीं की रचना प्रकट होती है। महाराज मधुकर शाह प्रसिद्ध भक्त और व्यास जी के शिष्य

एवं कवि थे। व्यास-वाणी में 'मधुकर शाह' का नामोल्लेख करने वाले अन्य तीन पद और भी उपलब्ध होते हैं, जो इस पुस्तक में संकलित हैं†, किंतु ये तीनों पद व्यासवाणी की प्रयुक्त हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्य हैं।

एक पकौरी सब जग छूट्यौ।
जप, तप, व्रत, सजम करि हारे, नैकु नहीं मन टूट्यौ॥
माया रचित प्रपंच कुटुबी, मोह-जाल सब छूट्यौ।
'व्यास' गुरू(हित)हरिबस कृपा तें, बसि बनराज प्रेम-रस लुट्यौ॥३॥

जय-जय श्री हरिबंस, हंस-हंसिनी लीला रति।
जय-जय श्री हरिवंस, भक्ति में जाकी दृढ़ मति॥
जय-जय श्री हरिबंस, रटत श्री राधा-राधा।
जय-जय श्री हरिबंस, सुमिरि नासै भव-बाधा॥
'व्यास' आस (हित) हरिबंस की, सु जय-जय श्री हरिबस।
चरन-सरन मोहीं सदा, रसिक प्रसंस-प्रसस॥४॥

कोटि-कोटि एकादसी, महाप्रसाद कौ अंस।
'व्यास'हिं यह परतीति है, जिनके गुरु हरिबंस॥५॥

अ० भा० हित राधावल्लभीय वैष्णव महासभा, वृंदावन द्वारा प्रकाशित श्री व्यास-वाणी के पृष्ठ ५३१ पर पद संख्या ३०० तथा ३०१ पर क्रमश उपर्युक्त पद संकलित हैं। इसी प्रकाशन मे सगृहीत 'साखी' के अतर्गत उपर्युक्त दोहा सं० २६ का है।

उक्त तीनों रचनाएँ व्यास-वाणी की किसी अन्य प्रयुक्त प्रति मे उपलब्ध नहीं हुई। श्री व्यास जी ने अपनी वाणी में श्री हित हरिवंश जी का अनेक स्थलों पर नामोल्लेख कर उनमें आदर भाव भी व्यक्त किया है, किंतु 'गुरु' विशेषण व्यास जी के अन्य पदों में 'सुकल' के लिए पाया गया है। इस कारण उक्त तीसरी और पाँचवीं रचनाएँ यद्यपि भाव और घटना क्रमानुसार व्यास जी जैसी ही हैं, तथापि उनके वास्तविक पाठ का निर्णय अन्य स्थानों पर इन रचनाओं को देखे बिना नहीं किया जा सकता। चौथे उद्धरण को भी लगभग ऐसे ही कारणों से व्यास-वाणी का अंग मानने में कोई निश्चित मत स्थापित करने के लिए प्राचीन सामग्री का अवलोकन वांछनीय है।

---

† (१) भक्ति बिनु केहि अपमान सह्यौ। (पद सं० १६८)
(२) होइहै सोई हरि जो करिहै। (पद सं० १०८)
(३) हरि सौं कीजै प्रीति निबाहि (पद सं० २०५)

२. परिशिष्ट

व्यास-वाणी की अनुक्रमणिका



साखी की अनुक्रमणिका

३. परिशिष्ट

नामानुक्रमणिका



श

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८	१८	परगट	पंद्रह
२६	२८	से बानपुर में	में वानपुर से
३०	१६	४६	४३
४१	१६	बुधवार	मगलवार
४६	२८	अनयता	अनन्यता
४६	३२	बन को	वन वैरी को
८६	२५	1727v.s	1627V.S
१३६	२६	भक्त	शाक्त
२४०	११	माला मदिर	माला हरि मंदिर
२३६	१२	बनिक बनिक	वनिक कनिक
३६०	१२	रासोत्व	रासोत्सव
३७७	१	रस	रास

सूर-साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान एवं विख्यात आलोचक—
श्री प्रभुदयाल मीतल कृत

सूर-साहित्य संबंधी नवीन प्रकाशन

हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित होने के पश्चात् इस समय देश-विदेश में हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों, काव्य-प्रेमियों, विश्व विद्यालयों एवं पुस्तकालयों में सूर-साहित्य की बड़ी माँग हो रही है। इसी की पूर्ति के लिए हमने निम्न लिखित नवीन पुस्तकें प्रकाशित की हैं—

१. सूर-निर्णय (द्वितीय संस्करण)—यह सूर-साहित्य संबंधी प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसमें महात्मा सूरदास के जीवन, ग्रंथ, सिद्धांत और काव्य की निर्णयात्मक आलोचना की गई है। हिंदी साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा और कई विश्व विद्यालयों की एम० ए० परीक्षा में यह पाठ्य ग्रंथ स्वीकृत है। इस समय इसका नवीन संस्करण तैयार हुआ है। बड़े आकार के प्रायः ४०० पृष्ठ, सुंदर छपाई, बढ़िया कागज, पक्की जिल्द और सूरदास का बहुरंगी प्रामाणिक चित्र। मू० ५)

२. सूरदास की वार्ता—गो० हरिराय जी कृत सं० १७५२ की प्राचीन प्रति के आधार पर इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का संपादन किया गया है। इसमें महात्मा सूरदास का प्राचीन एवं प्रामाणिक जीवन वृत्तांत है। परिशिष्ट में ब्रजभाषा गद्य के विकास और ह्रास का शोध पूर्ण विवरण है। पाद-टिप्पणियों और अनेक चित्रों के कारण पुस्तक का महत्व बढ़ गया है। मू० १॥)

३. सूर-विनय-पदावली—सूरदास कृत विनय, दीनता, पश्चात्ताप, वैराग्य, आत्मज्ञान, माया, अविद्या, आत्मप्रबोध आदि के २८० पदों का सुसंपादित संकलन। अंत में सूर-विनय का शास्त्रीय एवं सैद्धांतिक विवेचन भी है। मू० १॥)

४. सूर-रामचरित्र—सूरदास का कृष्ण-काव्य प्रसिद्ध है, किंतु इस पुस्तक में उनके रामचरित्र संबंधी पदों का संकलन है। ये पद सूरसागर, सूर-सारावली और वर्षोत्सव कीर्तन से कांडों के क्रमानुसार संगृहीत किये गये हैं। विद्वत्तापूर्ण परिशिष्ट और खोजपूर्ण प्राक्कथन से पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है। मू० १॥)

५. सूर-बालकृष्ण-पदावली—श्री कृष्ण के बाल्य वर्णन के लिए सूरदास जी जगत् विख्यात हैं। इस पुस्तक में उनके बाल-लीला संबंधी ३०० सर्वोत्तम पदों का लीलाक्रम के अनुसार संकलन है, जो हिंदी साहित्य में प्रथम बार प्रकाशित हुआ है। विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना और सूरदास के रंगीन चित्र सहित, मू० १॥)

मिलने का पता— **अग्रवाल प्रेस, मथुरा.**